

# रीतिकालीन हिंदी कविता में समाज-चित्रण ( Reflection of Society in the Riti Period of Hindi Poetry )



प्रयाग विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ़ फ़िलासफ़ी की  
उपाधि के लिए, हिंदी विभाग के अंतर्गत  
श्री माताबदल जायसवाल के निर्देशन में

कुमारी शशिप्रभा कुशवाहा  
एम० ए०

द्वारा प्रस्तुत शोध - प्रबंध



## पुस्तक सूची

साहित्य में जीवन का स्थान, जीवन एवं साहित्य के अविच्छेद्य संबंध समीक्षा के क्षेत्र में अब विवाद के विषय नहीं रहे, पहले भी विवाद मात्रा का था, गुण का नहीं। काव्य की भाववस्तु ही नहीं काव्य की विधाएं और उसके रूप एवं उपकरण भी युगानुशासित होते हैं। ऐसा न होने पर युग-विशेष का पाठक उसे ग्रहण नहीं कर पायेगा। अभिव्यक्ति के माध्यम से ही अभिव्यक्त वस्तु युग की आत्मा को सविद्य होती है।

इतिहास तथ्य के निकट होता है और साहित्य के संबंध में यह कहा जाता है कि उसमें सत्य का निर्दलित होता है। इतिहास, कदाचित् तथ्य के निकट भी नहीं होता, कम्पेकम अब तक ऐसा नहीं रहा क्योंकि अब तक इतिहासकार राजघराने की ही अपना अध्ययन-क्षेत्र मानता रहा है। लोकजीवन उसे अपने अनुसंधान की गरिमा के अनुरूप नहीं प्रतीत हुआ। इतिहासकार राजदरबार की अनर्गल एवं महत्त्वहीन घटनाओं के अनुसंधान में ही अपने कर्तव्य-कर्म की इतिवृत्ति समझता रहा है। साहित्य भी अब तक सामान्य की उपेक्षा और विशिष्ट का आलेखन करता रहा है। साहित्य एवं साहित्य-समीक्षा के वर्तमान युग का देय यह है कि वे हर क्षेत्र में "मामूली आदमी" की प्रतिष्ठा करते हैं।

जाचार्य गुप्त ने लोकमंगल के सत्य के आधार पर तुलसी के काव्य का अनुपमेय महत्त्व बताया है। लोकजीवन एवं लोकमंगल का संयोग उसी कवि के काव्य में देखने को मिलता है जिसके व्यक्तित्व में सृष्टा और द्रष्टा स्वरूपों का सम्यक् संतुलन हो। विश्व-साहित्य में कालिदास और शेक्सपियर जैसे कवियों में सृष्टा रूप की अन्धतम

अभिव्यक्ति दिखानी पड़ती है। मिल्टन जैसे कवि में द्रष्टा रूप अपने-आपसे अधिक मुखर और सुजन कम-साध्य होता है। इस दृष्टि से तुलसी का स्थान विश्व-साहित्य में अन्यतम है क्योंकि उसमें इन दोनों रूपों में से कोई एक दूसरे से घटकर नहीं है। यथार्थवादी समीक्षक काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति आवश्यक मानता है। आदर्श-मुख समीक्षक भविष्य पर दृष्टि रखता है, अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए सतृप्त पर अधिक बल देता है। लोग आचार्य शुक्ल के लोक-मंगल के महत्त्व से सहमत न हों ऐसा संभव है किन्तु काव्य को जीवन से विच्छिन्न और परे विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से परखने का समय नहीं रहा। साहित्य को जीवन के संदर्भ में देखना वांछनीय और उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है। पश्चिम के प्रभाव के फलस्वरूप जीवन, समाज और व्यक्ति के मनोविज्ञान के संदर्भ में काव्य का अध्ययन किया जाने लगा है। मार्क्स, फ्रायड और युंग की क्रमशः ऐतिहासिक भीतिज्ञावादी, साहित्य की व्यक्ति की दमित वासनाओं की और व्यक्ति की समष्टि चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करने वाली समीक्षाएं अपने-आप में अधूरी भले ही हों, उन्होंने हिंदी के समीक्षक को पराप्ति सीमा तक प्रभावित किया है, प्रेरणा दी है। रस का सिद्धांत मूलतः नाटक के संदर्भ में आया था जिसमें अभिनेता के रूप में व्यष्टि, साप्तांगिक या प्रेक्षक के रूप में समष्टि एवं नाटक की व्यावस्तु के माध्यम से जीवन या समाज की स्वीकृति और स्थान मिला था। धीरे-धीरे काव्य की प्रतिपाद्य वस्तु सीमित हो जाने के कारण रचनाकार का व्यक्तित्व तिरौछा हो गया, पाठक के अस्तित्व को भी दृष्टि में न रखा जाने लगा, जीवन की व्यापकता को काव्य में समेटना संभव न रहा इसलिए समीक्षक परंपरापोषक और विशुद्ध रूप से कलापरक हो गया। काव्य का, फलस्वरूप समीक्षक का भी, संबंध जीवन से कम होकर छूटता गया। मैथ्यू आर्नल्ड के "कविता मूलतः जीवन की व्याख्या है" सिद्धांत वाक्य में जीवन से काव्य और समीक्षा का नाता जोड़ने का ही प्रयत्न किया गया था।

रीतिकाल हिंदी कविता में कारीगरी का युग है। शास्त्रीतर हिंदी समीक्षक, जिसमें आचार्य पुरर भी सम्मिलित है, प्रबुद्ध समीक्षा-दृष्टि रखते हुए भी रीतिकाव्य का विशुद्ध कलापरक या कलाप्रधान दृष्टि से अध्ययन करता रहा है। इसीलिए सूदन, मान, सखीबाई, नागरीदास, पलटू, घास, भड्डारी और बैताल जैसे, लोक जीवन के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूक किंतु कला के प्रति उदासीन कवियों को दूसरे दल पर और मतिराम, देव, भिखारीदास जैसे, समाज एवं लोकजीवन से दूर किंतु कला के प्रति अधिक सजग कवियों को प्रथम श्रेणी में रखा गया है। शुक्लजी बिहारी की कलावाकियों से भी चिढ़ते रहे हैं और केशव के काव्य का काठिन्य उन्हें रुचिकर नहीं रहा किंतु रीतिकवियों में केशव एवं बिहारी ही ऐसे हैं जिनके काव्य में रीतिकासीन समाज का अपेक्षाकृत व्यापक चित्र देखने को मिलता है। इस अध्ययन के दौरान में मैं निरंतर आश्चर्य होती गयी हूँ कि सूदन, मान, कासिम, बिहारी, केशव, घास एवं बैताल आदि लोकपरक कवियों के काव्य के आधार पर तत्कालीन समाज का अध्ययन इतिहासवेत्ता, समाजशास्त्री और काव्य-समीक्षक तीनों के लिए समानरूप से उपयोगी है।

रीतियुग के कवि की सीमा यही नहीं है कि वह समाज या युग-जीवन के प्रति निरपेक्ष था या उसके काव्य में तत्कालीन सामाजिक रचना के बहुमुखी चित्र नहीं मिलते, वास्तव में रीतियुगीन काव्य का अभाव यह भी है कि उसके काव्य में स्पर्दन, गति, क्रिया-शीलता, सजगता एवं वैविध्य नहीं है, सारतः, उसमें जीवन का ही अभाव है। मुगल बादशाहों का वैभव-प्रदर्शन, उनकी विलास-लीला और राजकृतियों की अपेक्षा-सभी कुछ इस साहित्य में सबाई के साथ व्यक्त हुआ है जिसे देखने के लिए अपेक्षा को सकारात्मक एवं

नकारात्मक साधनों का समान रूप से आधार लेना चाहिए। वैविध्य एवं जनेकता जीवन-व्यगत की मूलभूत विशेषता है। वह सदैव पूर्णता की ओर विकसमान है। रीतिकालीन काव्य में एकरसता है, विश्रुति है, पौलष का घरातल छोड़कर नारी के आँख की छाया में सौ जाने की पुरुष की साथ है और, इस प्यास में भी तीव्रता नहीं, आकुलता है। इस काव्य में स्त्री-जीवन की संपूर्ण विविधता को रमणीरूप में सीमित कर दिया गया है, नदी-तालाब में उसके जीवन को निहारने और आह भरने में ही पुरुष के पौलष की इतिहासी हो गयी है। कवि जहाँ-कहीं सामाजिक आदर्श, नैतिक उदात्तता, धर्म और भक्ति की चर्चा करने बैठता है, उसका साहित्य निर्बल हो जाता है, राग बेसुरा और खण्डित हो जाता है। कारण स्पष्ट है। उसके पीछे उसकी अनुभूति नहीं है, केवल दृष्टि और बुद्धि काम कर रही है, यह क्रिया बेष्टित है, साहित्यकार स्वयं उसमें तन्मय नहीं है। उसकी रागमय अनुभूतियों का नैसर्गिक प्रवाह यहाँ नहीं है इसलिए वह साहित्यिक पूर्ववना-सी लगती है।

वह युग सामाजिक आदर्शों से हीन नहीं था, उसकी अपने नैतिक मान्यताएँ और उदात्त जीवन-संबंधी चारणाएँ थीं। इतिहास इसका साक्षी है। किंतु रीतिकाल का साहित्यकार दूसरे जीवन का अंग था, वह संभ्रांत व्यक्ति था और लोकजीवन से अछूत था। वहाँ वैभव था तो अपरिमित, और पतन था तो अकथनीय— जिसकी एक साथ उपस्थिति शास्त्रार्थ के व्यक्तित्व में देखी जा सकती है।

आलोच्यकाल के काव्य को समाज-चित्रण के अध्ययन की दृष्टि से मोटे तौर पर चार वर्गों में रखा जा सकता है। सर्वप्रथम कृगारी कवि, तत्पश्चात् निवृत्तिमार्गी कवि, तीसरे चरित काव्यों के रचयिता या जातीय चेतना के कवि और अंततः लोककवि या लोक-काव्य-प्रणीता। राम एवं कृष्णभक्ति के काव्य की प्राणवायु

समाप्त हो चुकी थी। प्रवृत्तिमार्गी, निवृत्तिपरक और जातीय संघर्ष की जाणी देने वाले कवि प्रायः एक ही प्रकार की सामाजिक परिस्थिति की प्रतिक्रिया-स्वरूप रचनाएँ करते थे। इस दृष्टि से उनकी काव्य-प्रेरणा के साम्य एवं प्रतिक्रिया के वैषम्य का अध्ययन तत्कालीन समाज की जीवन-दृष्टि की समझने में विशेष सहायक है। प्रवृत्तिपरक कवियों की संस्था एवं उनके काव्य का परिचाण अधिक है, अतः, उसका अंशतः निकासकर, इन चारों धाराओं के मूलस्वर को सुनने और तदनुरूप निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता है।

साहित्य के आधार पर सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों के समाज की अवस्था का अध्ययन का स्तुत्य प्रयास श्री आनंद प्रकाश मायूर के, प्रयाग विश्वविद्यालय से डी-फिल की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध में किया गया है किंतु इतिहास के विद्यार्थी होने के नाते तथ्यों का अन्वेषण अपने-आप में उनका साध्य बन गया है, उनमें अंतर्निहित प्रेरणा की व्याख्या गौण हो गयी है। उदाहरणार्थ भजन-संज्ञा के प्रकरण में संज्ञा की वस्तुओं के नाम तो गिना दिये गये हैं किंतु इस संज्ञा-बाहुल्य की मूल प्रेरक प्रवृत्ति क्या है- इस पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है इसलिए, तत्कालीन समाज को परिचासित करने वाली दृष्टि से हम अपरिचित रह जाते हैं। इस प्रकार के कार्यों में मूलचेतना को पकड़ने और तदनुरूप वर्गीकरण करने की, तथ्यों के संकलन और उनके उद्घाटन की आवश्यकता होती है।

पुस्तक प्रबंध में यह दृष्टिकोण लेकर कार्य आरंभ किया गया था। आवश्यक पूर्वाग्रह न रखने का भी एक पूर्वाग्रह बन जाता है इसलिए अपने दृष्टिकोण के प्रति निष्ठा रखी हुए ऐसी प्रवचना से बचने का प्रयत्न किया गया है। कवि भाव-लोक का प्राणी होता है, युग-जीवन उसके सुजन में प्रतिबिम्बित अवसर होता है किंतु उसके चित्र को सम्यक् एवं पूर्णरूप से देखने के लिए काव्येतर स्रोतों से



-३:-

विवेक्य काल की सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान अपेक्षित है। इस दृष्टिकोण से प्रथम<sup>अध्याय</sup> में काव्येतर स्रोतों से तत्कालीन समाज की प्रतिमा निर्मित करने का प्रयास किया गया है। दूसरे अध्याय से काव्य-स्रोतों के आधार पर तत्कालीन समाज का अध्ययन आरंभ होता है जिसमें समाज की सामान्य रचना को लिया गया है। इसमें समाज के भौतिक एवं धार्मिक विभाग, हिंदुओं की वर्णाश्रम व्यवस्थाएं और पारिवारिक रचना अंतर्भूत है। तृतीय अध्याय में तत्कालीन समाज के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन को देखने का प्रयत्न किया गया है। यह पुकरण अपेक्षाकृत संक्षिप्त है क्योंकि राजनीति, प्रशासन एवं अर्थ के सामाजिक मूल्य पर ही विशेष बल दिया गया है। चतुर्थ अध्याय में रहन-सहन के अंतर्गत मानव-जीवन की मूल आवश्यकताएं, असन-वसन-आवास, और मनुष्य के सत्व सौंदर्य-बोध से परिचातित पुंगार-प्रसाधन और अलंकरण के उपविभाग हैं। मनोरंजन को भी इसी के अंतर्गत लिया गया है क्योंकि शिक्षा के साथ उसे रखने की अब तक की सामान्य परंपरा चली आयी है, उसमें कोई औचित्य नहीं समझ पड़ा। ऐसा करने से मनोरंजन का महत्व और उसकी गरिमा में कोई वृद्धि नहीं होती और शिक्षा जैसे अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण विषय की गंभीरता न्यून हो जाती है। पंचम, षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में तत्कालीन समाज की मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। इस दृष्टि से पंचम अध्याय में लोकजीवन के उत्साह एवं आह्लाद को बाणी देने वाले संस्कार-पर्वोदि का विवेकन किया गया है। छठे अध्याय में ऐतिहासिक काल में विभिन्न समाज के नारी संबंधी दृष्टिकोण की विवेचना की गयी है। नारी संबंधी संदर्भ अन्य पुकरणों में भी आये हैं किंतु उसका महत्व आत्यंतिक है इसलिए और अन्य अनेक कारणों से इसे अलग स्थान दिया गया है। सप्तम अध्याय में आलोच्यकाल के उन विश्वासों एवं प्रत्ययों का अध्ययन किया गया है जो हिंदू जाति को एक अलग व्यक्तित्व और विवेक्य युग को अलग सत्ता प्रदान करते हैं। इसे जीवन-दृष्टि के नाम से अभिहित

-सात-

किया गया है, जिसके अंतर्गत संबंधित युग की विभिन्न प्रवृत्तियों, धर्म एवं धर्माभास, विश्वासों एवं अज्ञात आधार वाले विश्वासों, कर्मफलवाद, भाग्यवाद व पुनर्जन्म एवं सांस्कृतिक-समन्वय आदि हैं। लोकजीवन के इन विश्वासों और प्रवृत्तियों में जीवन के प्रति उसकी एक दृष्टि निहित रहती है किंतु उनमें ऐसी व्यवस्था एवं पूर्वापरक्रमबद्धता का अभाव होता है जिसके कारण उसे "दर्शन" की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता और न वह इतनी महत्वहीन एवं नमनीय होती है कि उसे विभिन्न उण्डों में करके अन्य प्रकरणों में अंतर्भुक्त कर दिया जाय।

बौरकाव्य-प्रणीतार्यों को चरित कवि कहा गया है क्योंकि उनके काव्य का साध्य अपने चरितनायक के जीवन के विविध पक्षों का यशोगान ही है। सामान्यतः "रीतियुग के कवि" से तात्पर्य रीतिमुक्त एवं रीतिभुक्त कवियों से है क्योंकि साहित्य की दृष्टि से उन्हें ही आसौज्यकास का प्रतिनिधि कवि माना गया है।

शोधकार्य में जो उत्थान-पतन और उच्चावच के दिन आते हैं उन्हीं शोधकर्ता के जीवन के पर्याप्त महत्वपूर्ण घटन निहित रहते हैं। ऐसे अवसरों पर मुझे अपने वरेण्य निर्देशक श्री माताबद्ध जामसवाल से जो सहारा, स्नेह और मार्गदर्शन मिला है वह अविस्मरणीय है। निराशा के क्षणों में उन्होंने मुझे उत्साह दिलाया है, अपने ऊपर विश्वास करना भी उन्होंने से सीखा है। हिंदी विभाग के माननीय अध्यक्ष प्रो० रामकुमार वर्मा की स्नेहित छाया विभाग के सभी विद्यार्थियों पर रहती है, उनके सामान्य स्नेह की पाकर भी हम विशिष्ट हो जाते हैं। शोध की गुत्थियों के सुलझाने और इसकी वैज्ञानिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए मैंने जब-जब जाहा है अखंड गुरुदेव डा० लक्ष्मीसागर वाज्ज्य का उदारतापूर्ण मार्गदर्शन मुझे मिला है जिसका बदला कृतज्ञता-



-जाठ-

प्रकाश से क्या दू । बाँड़मय का क्षेत्र विराट और अथाह है, उसमें नयन और मौलिकता का दावा दम है, मैंने उपलब्ध सामग्री से भरपूर सहायता ली है और उन सभी के प्रति नतशिर हूँ जिनकी कृतियाँ और जिनके विचारों का जाने-अनजाने मैंने उपयोग किया है ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से उदारतापूर्ण सुविधा के लिए मैं सहायक पुस्तकाध्यक्ष श्री ज़िन्देजी जी के प्रति कृतज्ञ हूँ । इसके अतिरिक्त साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय एवं संग्रहालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद और जिला पुस्तकालय, कानपुर की भी मैं कृतज्ञ हूँ जहाँ से मुझे अध्ययन सामग्री विशेष रूप से प्राप्त हुई है ।

आज यह शोध प्रबंध पूरा होने पर मुझे लगता है मानो किसी प्रेरणा ने हाथ पकड़ कर मुझसे लिखा लिखा हो, लड़खड़ाने से निरंतर मुझे बचाया हो । शोधार्थी के मार्ग में विषय निर्वाचन में पुनरावृत्ति का भय, सामग्री-संकलन में आधार-ग्रंथों की उपलब्धि की समस्या, विषय-प्रतिपादन में पूर्वाग्रहों से जाबद होने का भय और अंततः हिंदी का टाइप जिसमें व्यक्ति और वक्ता दोनों के अपने-अपने अभाव और सीमाएँ हैं । शोधप्रबंध का टंकण, फिर भी, अथेनाकृत सुरुचिपूर्ण हो सका है जिसका श्रेय नेशनल टाइपराइटर कंपनी, प्रयाग, के संचालक श्री जगदीश नारायण और उनके सुयोग्य सहयोगी मोहनजी को है, जो टंकण को एक कला के रूप में ग्रहण करते हैं । टंकित प्रतियों के मिलान में मुझे अपनी भतीजी इंदिरा से सहायता मिली है किंतु उसके लिए मेरा प्यार ही पर्याप्त है अन्यथाद लेकर क्या करेगी ।

इलाहाबाद:

११, नवंबर, १९६३ ई०

शांति प्रभा  
(शांति प्रभा )

## विषय-सूची

### प्राश्न

#### प्रथम अध्याय

#### रीतिमुग की ऐतिहासिक पीठिका

भूति एवं जन । समाज की रचना । राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन ।  
अर्थ । रहन-सहन । वाङ्मय (भाषा, साहित्य एवं शिक्षा) कलाएँ ।  
जीवन-दृष्टि ।

पृ० १-७९

#### द्वितीय अध्याय

#### समाज की रचना

आधार सामग्री । भौतिक विभाग । नीकरपेशा वर्ग । वाणिज्य एवं  
उद्योग-वन्धों में रत वर्ग । कृषक वर्ग । धार्मिक विभाजन । हिन्दू  
वर्ण व्यवस्था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । चातुर्वर्ण्येतर  
जातियाँ । वर्ण-व्यवस्था की पतनीम्बु स्थिति । ब्राह्मण, क्षत्रिय,  
वैश्य एवं शूद्र । ब्राह्मण । अनेकता में एकता । निष्कर्ष । परिवार-  
परिवार का स्वरूप विकास । भारतीय परिवार । परिवार में  
पुरुष एवं स्त्री की भूमिका । अन्व सङ्ग्रह । संतान । पति-पत्नी ।  
सास-बहू । देवर-बिठानी । देवर-भाभी । भाई-बहन । भारतीय  
परिवार का वैशिष्ट्य एवं योग ।

पृ० ८०-१३८

#### तृतीय अध्याय

#### राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन

१- राजनीतिक जीवन

२- आर्थिक जीवन

पृ० १३९-१५६

चतुर्थ अध्याय

बहन-सहन

- १- खानपान - आहार सामग्री । आहार का महत्त्व । खाद्यन्न एवं पकवान । फल और मेवे । खानपान में विवेक । रसोई । बर्तन । भोजनोपरान्त मुखशोधक वस्तुएं । मांसाहार एवं मद्यपान । निष्कर्ष ।
- २- वेशभूषा - परिधान धारण का प्रेरणा स्रोत । स्त्रियों के वस्त्र । धावरा, साड़ी, कुंठुकी, जोड़नी । पुरुषों के वस्त्र । शिशुओं के वस्त्र । निष्कर्ष ।
- ३- आवास एवं भवन-सज्जा - आवास-निर्माण की मूल प्रेरक प्रवृत्ति एवं उद्देश्य । उच्चवर्ग के आवास । निम्नवर्ग के आवास । भवन-सज्जा । शयनगृह । सतुओं के अनुरूप व्यवस्था । निष्कर्ष ।
- ४- श्रृंगार-प्रसाधन - सौंदर्य के विविध उपकरण । सोलह श्रृंगार की धारणा । मंजन एवं लेप । केशविन्यास । सिंदूर । बिंदी । अंजन । तांबूल आदि । चूड़ी । पुष्पसज्जा । मेहदी । महावर । गोदना । पुरुषों के सौंदर्य प्रसाधन । शिशुओं के सौंदर्य प्रसाधन । निष्कर्ष ।
- ५- आभूषण - मानव स्वभाव में अलंकरण की मनोवृत्ति । आलोच्य-काल में अलंकरण की प्रवृत्ति । स्त्रियों के आभूषण । सिर के आभूषण । कान के गहने । नाक के गहने । कंठाभरण । हाथ के गहने । कटि के आभूषण । पांव के आभूषण । पुरुषों के आभूषण । शिशुओं के आभरण । निष्कर्ष ।
- ६- मनोरंजन - मनोरंजन की उपयोगिता । मनोरंजन की साधन भूत कलाएं । आयोजित मनोरंजन । क्रीड़ाएं । अन्तर्द्वार क्रीड़ाएं । बालकों के खेल । निष्कर्ष ।

पंचम अध्यायसंस्कार एवं पर्वदि

संस्कार- जातीय सांस्कृतिक परंपरा में संस्कार । सौमंत । जातकर्म ।  
नामकरण । निष्क्रमण । अन्नप्रासन । चूडाकर्म । कणविष ।  
विधारंभ । उपनयन । विवाह । अन्त्येष्टि । निष्कर्ष ।

पर्वदि- भारतीय पर्वोत्सवों की परंपरा । वसन्त एवं होली ।  
दीपावली । गौवर्धन पूजा । विजयादशमी । रक्षा-बन्धन ।  
मूसलमानी त्यौहार । तीज । गनगौर । अन्य त्यौहार ।  
गृहण । मेले । निष्कर्ष । पृ० २६७-२९१

षष्ठ अध्यायनारी-

आधार-सामग्री । हिन्दू समाज में नारी । नारी के  
प्रति तत्कालीन समाज का दृष्टि-कोण । आदर्श नारी  
की धारणा । कामिनी रूप । असत्पक्ष । गणिका ।  
नारी की दिनचर्या । नारी पारिवारिक परिवेश में ।  
माँ, बहन, पत्नी के रूप में । निष्कर्ष । पृ० ३२९-३७८

सप्तम अध्यायजीवन-दृष्टि

आधार सामग्री । राजनीतिक पराजय और सांस्कृतिक  
पराभव की प्रतिक्रिया । जातीय चरित्र । ऐहिकता-  
परक मनोवृत्ति । धर्मापेक्षणा की प्रवृत्ति । धन का  
महत्व । मध्यमान एवं मांसाहार । निवृत्तिवादी जीवन-  
दर्शन । धर्म एवं दर्शन की विविधता । विभिन्न उपास्य  
एवं उपासना पद्धतियाँ । ज्ञेयता माहात्म्य । धर्माभास ।  
विश्वास । भाग्यवादी जीवन दृष्टि । ज्योतिष ।  
शकुन-अपशकुन । अज्ञात आधार वाले विश्वास । पुष्या  
दीप्य । बहु-विवाह । सती प्रथा । पर्दा प्रथा । सौगन्ध ।  
शिष्टाचार । उपहार । शिवा । निष्कर्ष । पृ० ३७९-४६०

पुनरवलोकन एवं समाहरण— अनुबंध - १. पुस्तक सूची  
अनुबंध - २. अधिमान-संक्षेप सूची

**अध्याय १**  
**संस्कृत**

रीतियुग की ऐतिहासिक पोलिका

## अध्याय १

### रीतिभुग की ऐतिहासिक पीठिका

#### भूमि एवं जन:

आलोच्यकाल का साहित्य प्रायः मध्यदेश अथवा हिन्दी-प्रदेश की सीमाओं में लिखा गया है। आज वहाँ साहित्य, शिक्षा तथा सामान्य व्यवहार की भाषा हिन्दी है उसकी पूर्वी सीमा राजमहल की पहाड़ियों तक, दक्षिणी सीमा छत्तीसगढ़ (विंध्यपार के महानदी के उद्गम) तक, पश्चिम में सतलज और रावी तक पंजाब में तथा बीकानेर और जोधपुर तक राजस्थान में है। प्राकृतिक दृष्टि से हिन्दी के मुख्य क्षेत्र को पीछे तीर पर निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है - १- हिमालय का पार्श्व प्रदेश, २- उत्तरभारत का मैदान, ३- राजस्थान का मरुप्रदेश, ४-मासवप्रदेश, ५- विंध्य मेखला<sup>१</sup>।

२- लगभग बारहवीं शताब्दी तक के साहित्य में आधावर्त के मध्य भाग को ही मध्यदेश कहा जाता रहा है। विनय पिटक(महावग्ग ५, १२, १३) के अनुसार मध्यदेश का विस्तार पश्चिम में धानेश्वर से लेकर पूर्व में भागलपुर के निकट तक था। उत्तर और दक्षिण में बराबर हिमालय और विंध्यपर्वत मध्य देश के सीमा-स्वरूप रहे हैं। बराहमिहिर की बृहत्संहिता(सं० ६४४) में मध्यदेश के मुख्य जनपद कुत्स, पांचाल, शूरसेन, मत्स्य और वत्स गिनाये गये हैं। बलबेहनी(सं० १०८७) ने कन्नौज के चारों ओर के देश को मध्यदेश कहा है। मुसलमान शासकों ने मध्यदेश के स्थान पर भागलपुर तक की गंगा की घाटी के

---

१- पं० राजवत्सी पांडे- हिंदी साहित्य का नुहद् इतिहास, पृ० ५, ६।

लिए "हिन्दुस्तान" शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दुस्तान के क्षेत्र में साधारणतया पंजाब, बंगाल तथा दक्षिण को सम्मिलित नहीं करते थे<sup>१</sup>। भारत के राज्य पुनर्गठन से पूर्व इसके क्षेत्र में बिहार, उत्तर प्रदेश, विन्ध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, भूपाल, राजस्थान, जमेर, दिल्ली, पूर्वी पंजाब और हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र जाता था। मध्यदेश को ही प्राकृत हिन्दी-प्रदेश भी कहा जाता है। मध्यदेश ज़ारंग से ही ज़ारंग संस्कृति का केन्द्र रहा है।

२- इस प्रदेश की घरेली बहुत उपजाऊ है। मानव जीवन की आवश्यकताओं के लिए प्रायः सभी कुछ उपलब्ध है, प्रभूत साधन और पर्याप्त वस्त्र। टेरी (१६०८), एवं बार्निबर ने देश की आत्म निर्भरता एवं भूमि की उर्वरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। देश के अधिकांश भागों में पर्याप्त जन-संख्या है, भूमि की बोवाई-बोवाई भी होती है। यहाँ जंगल बिलकुल जंगल है, युगत काल में उससे कहीं अधिक है। विलियम फिज़ (१६०८-११) ने लिखा है कि बीनपुर से इलाहाबाद तक का मार्ग भयावह जंगल प्रदेश से होकर जाता है। देश भर में विर्मल जलप्रवाहवाली अनेक सरिताएँ हैं जिनमें गंगा और यमुना मुख्य हैं।

४- जागरा तत्कालीन नगरों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ कुछ समय के लिए आलोच्यकाल में राजधानी भी रही। तत्कालीन सभी विदेशी यात्री जागरा की जन-मान्य संयन्त्रता और जनसंस्कृति की प्रशंसा करते हैं। यह कहा जा सकता है कि जागरा हिन्दुस्तान के सभी नगरों से ऐश्वर्य में बढ़ गया है। वामु गर्म तथा रु का है<sup>२</sup>। साहीर से दिल्ली और दिल्ली से जागरा तक का सारा मार्ग सुख देने वाली वृक्षावलिओं से सजा है<sup>३</sup>। दिल्ली

१- डा० धीरेन्द्र वर्मा - मध्य देश, पृ० २।

२- टेरी - ए बार्निबर टू ईस्ट इंडिया, पृ० ९९।

३- मुहम्मददास - बहागीरनामा (हिन्दी संस्करण), पृ० ८-९।

४- बार्निबर - टूवेल्थ इन इंडिया, पृ० ७८।



मुगल काल का दूसरा बड़ा और महत्वपूर्ण शहर है। शाहजहाँ ने इसे बाद में शाहजहाँनाबाद के नाम से अपनी राजधानी बनायी। यहाँ के बाजारों की बर्नियर पेरिस के बाजारों से तुलनीय समझता है।

५- भारत सदैव से अनेक जातियों - प्रजातियों का आवास-स्थल रहा है। खीन्दू नाथ ठाकुर ने इसे "महामानव समुद्र" कहा है। हमारे आलोच्यकाल में भी इस विशाल जनसमूह में विभिन्न जातियों और देशों के लोग थे। इनमें हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक थी। एडवर्ड टेरी बहांगीर के समय में हिंदुओं की जनसंख्या विश्व की जावादी का लगभग एक तिहाई बताता है<sup>१</sup>। हिन्दू अनेक वर्णों में विभक्त थे। बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि भी हिन्दुओं में ही शामिल हैं। राजपूत ब्राह्मण, कायस्थ, वैश्य हिंदुओं में उपवर्ण समझे जाते हैं। मुसलमान दो वर्गों में बँटि थे। पहले वर्ग में उन्हें रक्षा वा सकता है जो विशुद्ध विदेशी थे -- वे जो अरब, फारस वा अन्य देशों से व्यापार और रोज़गार वा अन्य राजनीतिक कारणों से आये थे। दूसरे वे जो धर्म परिवर्तन कर स्वयं मुसलमान बने थे वा जिनके दादा-परदादा मुसलमान बन गये थे<sup>२</sup>। धर्मपरिवर्तन के द्वारा मुसलमान बनने वालों की संख्या स्वभावतः अधिक थी। अरब और फारस से आये हुए विदेशी मुसलमान व्यापारी बंदरगाहों में बस गये थे। रोज़गार और नीकरी आदि के लिए आये हुए मुसलमान प्रायः उत्तरी भारत में बसे थे। कुछ अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के दरबारों में भी थे। मुगल दरबारों में विदेशी मुसलमानों का आधिपत्य था। पारसीक, अरबी, तुर्क, मंगोलियायी और उजबेगी मुसलमानों के अतिरिक्त कुछ अबीसीनिया और नार्मोनिया से आये हुए मुसलमान भी थे। ये देशीय और विदेशीय मुसलमान अपने विश्वासों के अनुसार -- शिया, सुन्नी, बोहरा और खोजा -- इन चार वर्गों में विभक्त थे।

---

१- एडवर्ड टेरी - वाकिव-----, पृ० १२१ ।

२- जीवात्सव- मुगल इम्पायर, पृ० ५५० ।



सुन्नी और शिया व अन्य मुसलमान वर्गों में पारस्परिक कलह कोई अनहोनी बात न थी । प्रजा विगत आधार पर मुसलमान तुर्क, अफगानी, पारसीक, सैयदी और भारतीय प्रजातियों में बंटी थी । भारतीय मुसलमानों में अनेक ऐसे भी थे जो अपने पुराने विभाजन को ढोते जा रहे थे । देश में बाहरी लोगों के जाने के संबंध में कोई प्रतिबन्ध न होने के कारण यूरोप और एशिया के अनेक भागों ——पुर्तगाल, इंग्लैण्ड, चीन, तुर्की आदि के राष्ट्रिय भी यहाँ देखे जा सकते थे<sup>१</sup> । पारसियों ने कई शताब्दी पूर्व यहाँ जाकर शरण ली थी । आरंभ में अकबर और जहाँगीर के समय तक वे प्रमुखतः कृषि-कर्म करते थे किंतु शाहजहाँ के समय से वे व्यापार की ओर भी झुके । सत्रहवीं सदी में यूरोपीय देशों से लोगों का जाना अधिक बालू हो गया था। यूरोप से व्यापारिक संबंध अधिक होने के कारण उस समय मुगल साम्राज्य के अन्तःप्रदेशों और समुद्री तटों पर अंग्रेज, डच, डेनिश, लोग काफी बड़ी संख्या में दिखाई पड़ने लगे थे । और वह जाना-जाना केवल व्यापार के ही क्षेत्र में नहीं था, क्योंकि मनुषी के अनुसार, शाहजहाँ के राज्यारुढ़ होने से कुछ पहले, १६५६ ई० में, मीर जुमला के अपनी सैन्य सेवा में ८० से कुछ ऊपर यूरोपीय थे<sup>२</sup> । यूरोपियों में उस समय पुर्तगालियों की शक्ति सबसे अधिक थी । गोवा और परिवर्ती समुद्र तट के कुछ प्रदेश उनके अधिकार में थे । सिंध और गंगा के मुहानों में उनके व्यापारिक केंद्र थे<sup>३</sup> ।

६- इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगलकालीन भारत एक विशाल साम्राज्य था और सभी जगहों में वह सब भी "महामानव समुद्र" था ——एक जैसे लोगों का नहीं, बल्कि अनेक जातियों-प्रजातियों का विशालत्व । उसकी परती उपजाऊ थी और उसका कोश भरापूरा । पार में वह जाव के भारत से बड़ा था । औरंगजेब की मृत्यु के समय (१७०७) उसके साम्राज्य में २१ सूबे या प्रान्त थे जिनमें से १४ हिंदुस्तान में, ६ दक्षिण में और १ काबुल में

१- जीवास्तव - मुगल एम्पायर, पृ० ५५० ।

२- वही ।

३- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, चौथी बिल्ड, पृ० ३१५-१६ ।

स्थित थे । किन्तु विवातीय शासन होने के कारण भारतीय जन जेतना में राष्ट्रीय भावना का अभाव था ।

### समाज की रचना:

विदेशियों की दृष्टि में तत्कालीन भारतीय समाज अत्यंत विकसित सत्कारितापूर्ण जीवन के सहित जाति-तानाशाही के अधीन एक संगठन है । विभिन्न वर्गों के सामाजिक और आर्थिक लाभ परिवार और धर्म जैसी सामाजिक संस्थाओं के द्वारा नियमित और अनुशासित होते थे । इन संस्थाओं के संबंध में नैतिकता की सामाजिक विधि और विशिष्ट स्वार्थों में परस्पर भेद नहीं रह गया था और व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए बहुत कम स्थान बना था । उसका भाग्य समाज में कम था न्याया पूर्व-निरिक्त-सा था । वर्णिक के अनुसार "जो जहाँ और किस स्थिति में उत्पन्न होता है वह उसी स्थिति में रहना चाहता है, प्रगति की कामना नहीं होती । बुनकर पिता अपने बेटे को बुनकर ही बनाता है, स्वर्णकार का पुत्र स्वर्णकार ही होता है।"

भारतीय समाज का एक वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ जन्म के आधार पर सामाजिक वर्गों का स्तरीकरण किया गया था । भारतीय समाज में हिन्दू अनिवार्यतः अपनी जाति से जाना जाता था और "बिना जाति का" विशेषण अनादरसूचक समझा जाता था । जाति का गौरव हिंदू स्वभाव का मूलतः अंग था और दुबोई का कहना है कि हिंदू, जाति की और, यूरोपीय लोगों की प्रजातियों की जेबों में नहीं अधिक आकृष्ट है<sup>१</sup>। धार्मिक या वर्णगत आधार पर तत्कालीन समाज को हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई-विभक्त भारतीय और बहूदी व नार्मेनिमन शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

१- वर्णिक - पृ० १५९ ।

२- दुबोई- हिंदू मेनरस्, पृ० ४१ ।

९- हिंदू जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा वर्ग है। प्रत्येक ६ व्यक्तियों में से ५ हिंदू हैं। तबनिबर बारबर्न करता है कि इस विशाल जनवर्ग में इतने बड़े से मुसलमानों का बाधितत्व कैसे स्वीकार कर लिया<sup>१</sup>।

१०- सम्पूर्ण हिन्दू समाज चार वर्गों में विभक्त है। प्रत्येक वर्ग अपने नियमों तथा प्रथाओं के अनुसार कार्य करता है। प्रथम वर्ग ब्राह्मणों का है ज्योतिष वे जो ब्रह्म को जानते हैं। इनके कर्तव्य ६ प्रकार के हैं-१, धार्मिक ज्ञान प्राप्त करना, २- दूसरों को शिक्षा देना, ३- अग्नि पूजन, ४- दूसरों से अग्नि पूजन कराना, ५- दीनों को दान देना, ६- स्वयं दान ग्रहण करना<sup>२</sup>। मनुजी लिखता है कि ब्राह्मण अपने को भूदेव कहते हैं। अपने निवास-स्थलों को वे अग्निगृह बताते हैं। मोक्ष-कामी-जन को अपनी सभी धार्मिक सम्पत्ति ब्राह्मण देवता को समर्पित कर देनी चाहिए। वे जो कुछ कहते हैं उस पर हिन्दुओं का अटल विश्वास है फिर भी वे ब्राह्मण विश्वसनीय नहीं हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मणों का स्थान पराक्रम, कर्मकाण्ड एवं विद्याध्ययन की दृष्टि से सर्वत्र सर्वोपरि रहा है और वह इस समय भी है। वर्ण-व्यवस्था के अटिक्तर हो जाने से ब्राह्मणों का महत्व और भी अधिक हो गया है।

११- महत्व की दृष्टि से क्षत्रियों का स्थान दूसरा है। इस संबंध में विदेशी शास्त्रियों के अभिलेखों में बड़ी भ्रांति मिलती है और प्रायः सभी ने इन्हें राजपूत कहकर पुकारा है जिसके कारण राजपूत विशेष और क्षत्रियों के बीच का अंतर करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। इन्हें "राजन्य" भी कहा गया है। प्रेस बात्री बर्निबर लिखता है--कि राजपूत से राजपूत का तात्पर्य है विधि

१- "At the census of India 1911, Hindus numbered 217 million and Musalman 66 the proportion of total population being respectively 69 and 21 p.c."

-तबनिबर, पृ. १४१।

२- बहामिदनामा, पृ. ३१३।

शैलकाठ से ही शूरवीरता के कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है<sup>१</sup>। ये बहुत बहादुर और नात्म-सम्मानप्रिय हैं। तबर्नियर उनके शौर्य का उल्लेख करते हुए एक कहानी प्रस्तुत करता है। एक सैनिक भयवशात् नहीं, अपनी प्रियतमा के प्रेमवश, युद्धभूमि से पलायन कर जाता है। उसे जाता हुआ देखकर वही पत्नी जो उसे अपने जीवन का सर्वस्व समझती थी, उसकी इस कायरता पर पर का द्वार बंद कर लेती है। वह ऐसे यत्नशीर्य को अपना पति मानने से इन्कार कर देती है जो एक स्त्री के प्रेम को अपनी प्रतिष्ठा से बड़ा मानता है। सैनिक युद्धभूमि में जाता है, वीर अपने वदम्व सा हस्त व शौर्य का परिचय देकर घर वापस जाता है। पत्नी उसे सम्मानपूर्वक स्वीकार करती है<sup>२</sup>।

१२- वैश्य कृषि कार्य करते हैं। कुम-विक्रम करते हैं तथा लाभ एवं सुख के लिए व्यापार करते हैं<sup>३</sup>। तबर्नियर लिखता है—इस जाति के लोग व्यापार में बहुत कुशल हैं, यहाँ तक कि बड़े से बड़े व्यापार-वस्तु यहुदी को भी वे पाठ पढ़ा सकते हैं। वे शैल से ही अपने बच्चों को शास्त्र का त्याग करने की सीख देते हैं। वीर उनके बच्चे हमारे बच्चों की तरह खेलकूद में अपना समय नहीं नष्ट करते। बल्कि वे अकामणित के सबक सीखते हैं और बड़े से बड़ी धनराशि का हितव्य विना कागज-कलम की सहायता के लोका भर में, लगा लेते हैं<sup>४</sup>। तबर्नियर जैसे कुशल व्यापारी के मुँह से यह बहुत बड़ी प्रशंसा है। दीवाली इनका प्रमुख त्योहार है।

1. "The word Rajpous signifie sons of Rajas. These people are educated from one generation to another in the profession of arms. Parcels of lands are assigned to them for their maintenance by the Rajas whose subjects they are, on condition that they shall appear in the field on the summons of their chieftains."

-बर्नियर, पृ० १९।

२- तबर्नियर - झररी बिल्ड पृ० १४५ (वीर भी-टाउ-एकल एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान), पृ० ७९४।

बर्नियर - पृ० ४०७।

३- बहागीर नामा, पृ० ११३-१४।

४- तबर्नियर- झररी बिल्ड, पृ० १४४।

११- "वस्तुर्व वर्ण शुद्ध है जो हिंदुओं में सबसे छोटी जाति है । ये सबके सेवक हैं और उन वस्तुओं का ये लाभ नहीं उठा सकते जो अन्य वर्गों की विशेषता है । इनका दिन होती है जो इनके विश्वास में वर्ण का अंतिम दिन है । (जहाँगीर यहाँ शाब्द भूल करता है— सभी हिंदू होती को ही वर्णान्ति मानते हैं ।) इस दिन रात्रि में ये सड़कों तथा गलियों में जाग बाजते हैं और दिन होने पर एक पहर तक ये एक दूसरे के कंधों तथा मुख पर राख फेंकते हैं और विभिन्न प्रकार का तोर एवं न उपद्रव करते हैं । इसके अनंतर नहा धोकर कपड़ा पहिरते और उषानों में और मैदानों में घूमते हैं । हिन्दुओं में मृतकों को जला देने की निश्चित प्रथा है इसलिए इस रात्रि में जाग बाजने से उस गत वर्ण की अंतिम रात्रि होती है—यह तात्पर्य है कि विगत वर्ण को जला दिया गया, जो मृतकों की मोक्ष को चला गया<sup>१</sup>।

१२- भारतीय वर्ण-विन्यास किसी विधि विहित संहिता का अधिनियमन नहीं है यद्यपि यह उसका दूरगम प्रभाव हो सकता है, यह भारतीय जन की अपनी दृष्टि है जिसमें निम्नतम वर्ण का व्यक्ति भी अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं, अपितु गौरवान्वित है । निम्नतम वर्ण का व्यक्ति वर्ण-व्यवस्था से बाहर नहीं है, समाज में उसे मान्यताविहित स्वान प्राप्त है, वह एक केशी का सदस्य है और स्वयं ही अपने से ऊपर के लोगों से जलग अपनी सत्ता बनाये रखना चाहता है<sup>२</sup>। यह केवल सामाजिक स्तरीकरण या हिन्दुओं के विभाजन की मौलिक विशिष्टता ही नहीं बल्कि व्यक्ति के पुंजीभूत सामाजिक संदर्भों, शक्तिशाली सामाजिक पूर्वाग्रहों, मान्यताओं और वक्तव्यताओं का प्रतिफलन भी । १७वीं, १८वीं सदी में वर्णव्यवस्था ही विवाहों का भी नियमन करती थी और यह बात बहुत कुछ ग्राह्य भी है । अंतर्जातीय विवाह अव्यवस्थायक है । वर्णव्यवस्था के अन्य नियमों की अवहेलना की जा सकती थी और समाज के कठोर दण्ड विधान से भी बचा जा सकता था किन्तु विवाह और यौन सम्बन्धों में यह

१- जहाँगीर नामा, पृ० ११४ ।

२- जे० मिल- हिंदी नामा ब्रिटिश इंडिया-पहली बिल्ड, फुटनोट- पृ० १४० ।



संभव नहीं था<sup>१</sup>। वर्णव्यवस्था का खानपान से भी बहुत निकट का सम्बन्ध था। वर्णान्तर भोजन का चेतन नहीं था। भोजन के नियमों की कठोरता प्रायः ऊँचे जाने तक सीमित थी। समाज में व्यक्ति का व्यवसाय नियत करने में भी जाति का महत्वपूर्ण स्थान था<sup>२</sup>। कुछ विदेशी लेखकों का तो विचार है कि वर्ण-व्यवस्था का जन्म ही व्यावसायिक संघों से हुआ। इबेर्टसन के अनुसार "रजत-समूह" एवं "व्यवसाय-समूह" वर्णव्यवस्था की मौलिक विशेषताएँ थीं। वर्ण-व्यवस्था का यह सामाजिक स्तरीकरण बुद्धि और चरित्र के आधार पर नहीं अपितु जन्म के आधार पर निर्धारित होता था। उच्चवर्ग की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं, निम्नवर्ग उनसे वंचित थे। समाज पुरातनपंथी व्यवस्था था किन्तु सुधार की प्रवृत्तियाँ धीरे धीरे काम कर रही थीं। नौक नवीन जातिवाँ और उपजातिवाँ बन रही थीं। इन वर्गों की अपनी सरकारें भी होती थीं। आज जो बहुत सा काम मदाततों से होता है वह उस समय वर्ण-परिषदों और वर्ण-मुख्यों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। इनके नियम अतिखिन्न थे। फिर उनमें संगठन, नैतिकता और परम्परा की छाप थी<sup>३</sup>। वस्तुतः सम्पूर्ण भारत का सामाजिक िवाचित्व वर्ण-विभाजन से जाच्छाया था। केवल हिन्दुओं में ही नहीं, अपितु उसके प्रभावस्वरूप मुसलमानों में भी सामाजिक वर्ग बन रहे थे। जामे बलकर बंगाल और बिहार में अशरफ (उच्च) राजीत (निम्न) वर्गों के विभाजन है। ये हिन्दू समाज के अन्न और शूद्र से है। मुसलमान बनाये गये हिन्दू अपने नवीन धार्मिक विश्वास के नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते<sup>४</sup>। शैव, मुगल, पठान और पारसियों में विभिन्न छोटे छोटे उपवर्ग थे। मु० अली ने सूचित किया है कि मुसलमान समाज के उच्च वर्ग में जन्म पर गर्व करना शिवा का एक

१- वर्णव्यवस्था-पृ० २५९।

२- वही।

३- एडवर्ड गी- इंडियन सोशल साइन्स।

४- मैल्कम, मेसायर, पृ० ११०-११।

आवश्यक कंग माना जाता था । यह बात विशेष कर शैल और सैबद लोगों में भी जो मुस्लिम समाज में ब्राह्मणों के समानधर्मा थे ।

### जायम-व्यवस्था:

१५- हिन्दू समाज की अतीत काल से चली आने वाली चार भागों की व्यवस्था किसी न किसी रूप में अब भी विद्यमान है । ब्राह्मण के घर में जो पुत्र होता है उसे सात वर्ष तक वे ब्राह्मण नहीं कहते । जब वह आठ वर्ष का होता है तब वे सब ब्राह्मणों को एकत्र करते हैं । वे पूज की एक डोरी बनाते हैं जिसे भीजी कहते हैं और जो हाई गुण सम्बन्धी होती है और उस पर प्रार्थना करते तथा कई बार मंत्र पढ़ते हैं । उसे किसी विद्वान ब्राह्मण को सौंप देते हैं जिसके गृह पर चारह वर्ष तक रहकर वे उसकी शिक्षा ग्रहण करें जिन्हें वे ईश्वरीय गुण समझते हैं । इस दिन से वे उसे ब्राह्मण कहने लगते हैं । इस काल में यह आवश्यक है कि वह शारीरिक सुखों से दूर रहे । दीपहर बीत जाने पर वह अन्य ब्राह्मणों के घर भिजा ग्रहण करने जाता है और जो कुछ मिलता है वह सब अपने गुरु के पास ले जाता है तथा उनकी आज्ञा से खाता है । वस्त्र के नामपर उसके पास लंगोटी के सिवा केवल दो गुण सूती वस्त्र की पर रखने को होता है और कुछ भी नहीं । यह काल ब्रह्मचर्य कहलाता है । इस काल के बीतने पर अपने गुरु तथा पिता की आज्ञा से वह विवाह करता है और पवित्रियों के सभी सांसारिक सुखों का आनंद लेता रहता है, जब तक कि उसका पुत्र सातह वर्ष की अवस्था का नहीं हो जाता । यदि उसके पुत्र ही नहीं होता तब वह अठ्ठासह वर्ष की अवस्था तक सामाजिक जीवन बिताता है । तदुपरान्त एकविंशति के लिए चला जाता है । इस काल को वानप्रस्थ कहते हैं । हिन्दुओं का यह विश्वास है कि कोई भी शुभ कार्य पत्नी के बिना पूरा नहीं हो सकता और इस काल में भी बहुत कुछ अर्चन पूजन करना होता है इसलिए वह स्त्री की भी वन में साथ ले जाता है ।

यदि वह गर्भिणी हुई तो प्रसव होने तथा संतान के पाँच वर्ष का होने तक वह वन में जाना रोक देता है। इसी प्रकार पत्नी के रक्त्वत्ता होने पर वह उसके शुद्ध होने तक जाना रोक देता है। इसके अनंतर वह अपनी स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं रखता और उसके समागम से अपने को दूषित नहीं करता तथा रात्रि में बसग सोता है। यहाँ वह बारह वर्ष व्यतीत करता है। ..... जब वह इस प्रकार वह काल व्यतीत कर लेता है तब अपने गृह लौट जाता है और अपनी स्त्री को अपनी संतानों, भाइयों तथा मामाताओं को सौंपकर अपने दीक्षा-गुरु को प्रणाम करने जाता है। इसके अनंतर संसार की त्याग देने और सम्वास देने की स्थिति जाती है।

#### संस्कारः

१६- हिन्दुत्व में समाज और धर्म की दूरी इतनी कम है कि उनका कोई भी कार्य सत्ता किसी एक कोटि में नहीं रक्खा जा सकता है। संस्कारों की भी वही स्थिति है, वे धार्मिक कृत्य होते हुए भी सामाजिक हैं और सामाजिक होते हुए भी उनका क्षेत्र धार्मिक है। इन संस्कारों की संख्या सीतः है। हिन्दुओं की यह मान्यता है कि मनुष्य एक बार माता के गर्भ से जन्म लेता है दूसरा जन्म उसका इन संस्कारों के द्वारा होता है। इसीलिए वे लोग द्विज कहलाते हैं। संस्कार "प्रकृत" के संस्करण के माध्यम हैं। प्रायः सभी संस्कारों का मूलाधार विस्मृति के गर्त में चला गया है, उनकी वैज्ञानिकता तिरौछी हो गई है; फिर भी अनुवर्तन किया जाता है। पुत्र जन्म पर, पुत्री के जन्म की अवस्था कहीं अधिक उत्सव मनाया जाता था। सत्काशीन इतिहास ग्रंथों में राजकुमारों के जन्म पर अतिशय उदात्त-वधाव के उत्सव मिलते हैं। जन्म और नामकरण के बाद यज्ञोपवीत पहना बड़ा संस्कार है। विद्या पढ़ने का आरम्भ इसी संस्कार के अनंतर होता है। धीरे-धीरे इसका पहले जैसा महत्त्व नहीं रह गया। फिर भी, किसी न किसी रूप में यह जातीय काल में चलता रहा।



१७- विवाह हिन्दू जाति में बहुत महत्वपूर्ण संस्कार रहा है। विवाह-प्राप्ति सार्वजनिक और व्यापक रही है। विवाह एक समझौता नहीं अपितु एक आवश्यक धार्मिक बंधन समझा जाता था। इसमें अनिश्चित भूल-भावना की न समझ पाने के कारण वेनिस का यात्री मनुची, जो साहबदा के दरबार में काफी समय तक रहा, भुंभताया था। उसका त्याग था कि हिन्दुओं के विचार से विवाह से अधिक हीन और प्रसन्नता का इहलौकिक कृत्य अन्य नहीं है। वे विवाह में ही जीवन की न्यूनतम कृतकार्यता समझते हैं। उनके बच्चे ज्यों ही बतना-फिरना और बोलना सीख जाते हैं उन्हें शादी-व्याह की बातें बतायी जाने लगती हैं। उनकी सहायिका तो प्रायः इससे भी पहले विवाहित हो जाती है<sup>१</sup>।

१८- हिन्दुओं में पति सामान्यतः पत्नी से कुछ वर्ष बड़ा होता है किन्तु दोनों एक ही जाति के होते हैं<sup>२</sup>। जाति से बाहर विवाह की कल्पना \* नहीं की जा सकती<sup>३</sup>। दुबोई का यह कहना कि भारत में विवाह करना और "पत्नी छोड़ना" समानार्थी है नितांत अल्प और प्रामाणिक है। मनुची की साक्षी इस सम्बन्ध में विलक्षण स्पष्ट और प्रामाणिक है। कोई भी व्यक्ति पत्नी छोड़ नहीं सकता<sup>४</sup>।

१९- शादीविवाह प्रचलित है। उस समय जाने वाले सभी यात्रियों ने एक स्वर से इसकी साक्षी और निंदा की है। सबणों में विवाह की प्रवृत्ति प्रायः एक-सी है। विवाह अल्पवय में अवश्य ही जाता है किन्तु माँ-बाप सड़की की सब तक विदा नहीं करते जब तक वह पूर्ण वय की नहीं प्राप्त कर लेती। वह विरागमन के बाद ही पति के घर जाती है। मनुची इसे खूब

१- मनुची-सीसरी जिल्द, पृ० ५४ ।

२- वही ।

३- बर्निवर १, पृ० २४९ ।

४- मनुची १११, पृ० ५५ ।

विवाह करता है<sup>१</sup>। विदेशी ब्रितानी की राय में यह बालविवाह किसी सीमा तक उचित भी है क्योंकि उष्ण जलवायु में लड़कियाँ ८ या ९ वर्ष की उम्र में ही विवाह के योग्य हो जाती हैं। क्राफर्ड ने इसका समर्थन करते हुए कहा है कि हिन्दुस्तान में व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ अन्य ठन्डे देशों की अपेक्षा शीघ्र ही पूर्णता और परिपक्वता पर पहुँच जाती हैं<sup>२</sup>। राबर्ट बार्ने का कथन है—प्रकृति ने भारतीय लड़कियों को न्यूनतम उदारता के साथ सौंदर्य का उपहार दिया है। वे सभी तेरह वर्ष की वय प्राप्त करते-करते विवाह के योग्य हो जाती हैं और तीस वर्ष की आयु में पहुँचते-पहुँचते उनका शरीर शिथिल हो जाता है, वे अधिक समय तक लावण्यवती नहीं रहती, उनमें लावण्य की इतनी अतिशयता है कि वह अधिक समय तक बना भी नहीं रह सकता<sup>३</sup>।

२०- मनुजी लिखता है कि ज्यादातर लड़कियों के विवाह बार या पाँच वर्ष की वय में ही होते हैं। तेरह की आयु तो बहुत कम लड़कियाँ ही प्राप्त कर पाती हैं<sup>४</sup>। सबकाँ में तलाक की प्रथा नहीं थी। निचले वर्ग के लोग विवाह सम्बन्ध तोड़ सकते थे। निचले वर्ग में पति-पत्नी दोनों की तलाक देने का अधिकार प्राप्त था किन्तु राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य और यहाँ तक कि कुछ ऊपर के स्तर के सुद्नों में यह बिल्कुल अनहोनी बात थी<sup>५</sup>।

१- मनुजी ।।।, पृष्ठ ५८ ।

२- क्राफर्ड, स्केपेव, पृ० ३१८ तथा टैरी, पृ० ३०१ ।

३- "Nature seems to have showed <sup>her</sup> beauty on the fairer sex throughout Indostan, with a more lavish hand than in most other countries. They are all without exception fit to be married before thirteen and wrinkled before thirty--flowers of too short a duration not to be delicate; and too delicate to last long."

-रज्जुश्री- पीसिय से उद्धृत ।

४- मनुजी, वही, पृ० ५९ ।

५- मनुजी, वही, पृ० ७० ।

११- विवाह बड़ी धूमधाम से होते थे । हर आदमी अपनी हैसियत पर, बल्कि हैसियत से अधिक प्रदर्शन के साथ विवाह करता था । बहागीर के बेटे के विवाह में हिन्दुस्तानी ताल से दस मन के लगभग द्रव तथा सुगंधित द्रव्य कन्तूरी व जबर खर्च<sup>१</sup> हुआ था<sup>२</sup> । अनेक गायिकाएँ, संगीतकार और वादक दरबार को कभी न समाप्त होने वाली मधुर तानों से मधुपुरित कर देते, साथ ही अपनी औपचारिक वेशभूषा में व्यक्ति में व्यवस्था बढ सहे रहते, हीरे जवाहरातों से सजाये गये हाथी शाही जुत्स की अतिशय भव्यता प्रदान करते जबकि नीबतखाने का मुद्दत संगीत सुपाधार श्रोताओं के कर्णकुहरों को आप्लावित करता रहता और भव्य शाही-विवाह अभियान दस इन सबसे युक्त होता । सामान्य लोग तो अपनी हैसियत से अधिक खर्च करते थे । मनुची बताता है कि विवाह के लिए आवश्यक सभी सामग्री खर्च पर प्राप्त की जाती है और विवाह के दिन के बाद लोग प्रायः सभी चीजें ठठा-ठठाकर ले जाते हैं, दुल्हन बिना गहने की रह जाती है, घर का सारा साज सामान निकल जाता है, दुल्हे को देख के जो वादे किये जाते हैं वे भी बहुत कम पूरे होते हैं । सारा घर रिक्त हो जाता है<sup>३</sup> ।

१२- भारतीयों में मृतक को जला देने की प्रथा बहुत प्राचीन है । मुर्दे प्रायः नदियों के किनारे जलाये जाते हैं जहाँ जलाने के पूर्व मृतक को अंतिम स्नान कराया जाता है । जब किसी हिन्दू की मृत्यु होती है तो उसके वर्ण-गोत्र के लोग उसके घर में जाकर एकत्र होते हैं । मृतक को स्वतः बस्त्रों से आच्छादित कर श्मशान ले जाया जाता है । उसके सम्बन्धी पीछे-पीछे "राम-राम" की पुन करते हुए चलते हैं । श्मशान में ले जाकर, स्नान के बाद मृतक का श्म जला दिया जाता है । उसे जलाने के लिए एक कित्ता तैयार की जाती है<sup>४</sup> ।

१- बहागीरनामा-पृ० ४६-४७ ।

२- मनुची, वही, पृ० १७७ ।

३- तब-निबर-खूतरी बिल्द, पृ० १६१-६२

१३- जहाँ विवाह सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर लेता है वहाँ परिवार का महत्व स्वभावतः बढ़ जाता है। भारतीय परिवार का संगठन और जीवन में महत्व संसार के अन्य सभी देशों से अधिक सुगठित और व्यापक है। वह जीवन का मूलधार है। नैतिक आदर्शों में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए गृहस्थ-जीवन को एक आदर्श संस्था माना है। परिवार समाजिक जीवन की एक प्रमुख संस्था रहा है। भारतीय परिवार पितृप्रधान था जिसमें सबसे बड़े पुरुष अर्थात् सदस्य मुखिया का प्रधान होता था। उत्तराधिकार सबसे बड़े लड़के को मिलता था। स्त्रियाँ सामान्यतः पति के धर्म की ही स्वीकार करती थीं। संयुक्त परिवारों का चलन था। सामाजिक कर्तव्यों के निर्वहन के लिए परिवार आवश्यक था। फादर बुश ने लिखा है—  
“यह सुनिश्चित है कि भारतीय माता पिता का संतति स्नेह और भारतीय संतान की मातृपितृ भक्ति पृथ्वी में अकल्पनीय एवं अन्यतम है।”

१४- हमारा साहित्य इससे भरा पड़ा है। “वात्सल्य” की इस रूप में स्वीकृति इसका प्रमाण है। परिवार में पुत्र जन्म पर विशेष प्रसन्नता प्रकट की जाती थी। मृतक का अंतिम संस्कार उसका पुत्र ही करता था। शिशुओं के पोषण-पोषण और मृतक के अंतिम संस्कार करने के अतिरिक्त सामाजिक जीवन में भी परिवार का महत्वपूर्ण हाथ था।

१५- हाथ-पाव बन्ने पर बुढ़ों के अस्वास्थ्य होने की आशंका नहीं रहती थी। सम्बन्धों में निकटता और सामाजिक संबंधों में स्वायत्तता रहता था। उत्सव और विविध उपचार पारिवारिक सीमाओं में ही होते थे। गर्भाधान, पुंसवन, जन्म विवाह आदि हिन्दुओं के सोलह संस्कार परिवार में ही होते थे। भारतीय परिवार का जीवन नीरस और एक-रस नहीं था।

### भेद और धर्म आदि:

१६- भारतीय भेद तथोद्धारों की स्थिति आलोच्यकाश में बहुत कुछ था

जैसी ही थी। हिन्दू-मुसलमानों के अनेक त्योहार होते थे जिनमें लोग परस्पर मिलते और आनंद मनाते थे। हिन्दू त्योहारों में रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली एवं होली मुख्य हैं। इन त्योहारों का विभाजन भी बहुत कुछ वर्णगत आधार पर है। रक्षाबंधन प्रमुखतः ब्राह्मणों का त्योहार है। मुगल बादशाह तक इनमें भाग लेते थे। "बहांगीरनामा" में, सम्राट् बहांगीर ने, जङ्गल के राखी बंधवाने का उल्लेख किया है। "हमारे पिता के ल समय हिन्दू खीर और उनकी नक़्क़ करने वाले अन्य लोग राखी की प्रथा के अनुसार उन्हें बाँधते थे। साथ, बड़ी मोती तथा रत्नों से सजे हुए फूलों की बहुमूल्य राखियाँ उनके हाथों में बाँधते थे।..... हमने भी इस वर्ष यह अच्छी धार्मिक प्रथा चलायी और आदेश दिया कि हिन्दू खीर तथा बाँधियों के अगुणी लोग हमारे हाथ में राखी बाँधा करें। रक्षाबंधन के दिन.... यह कार्य हुआ और अन्य जाति वालों ने भी इस धार्मिक प्रथा को नहीं छोड़ा। इस वर्ष हमने इसे स्वीकार कर लिया और आज्ञा दी कि ब्राह्मण लोग प्राचीन प्रमानुसार सूत तथा रेशम की राखी बाँधें।"

२०- दूसरा प्रमुख त्योहार आश्विन शुक्ल का विजयादशमी या दशहरा है। यह लक्ष्मी का त्योहार है। यह विजय का, शक्ति की आराधना का, त्योहार है। वर्ष की फलत आश्विन में पककर तैयार होती है। भारत की अनन्य सम्पन्नता का प्रत्यक्ष निर्देश होता है। दीपावली वैश्यों का पर्व है। यह उन विशेष पर्वों में है जो भारतवासियों में "मुख्य और प्राण शक्ति के संचारक" कहे जाते हैं। वैश्य वर्ग के साथ मिलकर सब वर्ण-जाति के लोग इसे दिन भरवती कलश के आनंद में मग्न हो जाते हैं<sup>१</sup>।

२०- होली सुद्धों का प्रमुख त्योहार है। आज की ही भाँति मुगल काल में भी यह वर्णान्ति का त्योहार था और भारतवासी पूर्ण रूप से अनुसृत होकर इसे मनाते थे। बहांगीर ने अपने आत्मचरित में इसका उल्लेख किया है।

१- बहांगीरनामा, बही, पृ० ११४-१५।

२- गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी-वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ० ११३।



३१- मुसलमानों के त्योहारों में नौरोज, बादशाह व रावकुमार के जन्म-दिन, सम्राट की राज्याधिरोहण वार्षिकी, ईद, शबिरास, बाराबफात आदि के मनाये जाने के उत्सव मिलते हैं। जहांगीर ने अपने-राज्याधिरोहण वार्षिकी के विस्तृत उत्सव अपने आत्मचरित में किये हैं। इन अवसरों पर राजनिवास भव्य रूप में मनाये जाते थे, उनमें जीवन का सौंदर्य और उत्साह उमड़ जाता था। रीतिकाल के त्योहार और उपचार जितनी पूर्णता और स्पष्टता के साथ दो भिन्न घर्षों और आदर्शों का संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं उतना कदाचित् और कोई वस्तु नहीं। ये पर्व भारतीय जन-जीवन के उत्साह को व्यक्त करते थे, इनका विभाजन वैज्ञानिक और जीवन की समग्रता के अनुरूप था<sup>१</sup>। हिन्दुओं के तीर्थस्थान, प्रयाग, हरिद्वार, अयोध्या, मथुरा, गया, गङ्गामुत्तेश्वर, नीमसार, कुल्लू क्षेत्र, उज्जैन आदि में समय-समय पर मेले लगा करते थे। हर महत्वपूर्ण कर्त्तव्य में स्थानीय मेले लगते थे। जयमेर, पानीपत सरहिंद और अजीमन मुसलमानों के मेलों के स्थान थे जहाँ देश के हर भाग से लोग पहुँचते थे।

३०- आतोक्ष्यकाल में भौतिक दृष्टि से, समाज की प्रवृत्ति सामंतीशाही थी। सामंत और आभिजात्य वर्ग समाज का प्रमुख अंग था। आभिजात्य वर्ग के अंतर्गत सम्राट्, शासक, रावा और नवाब आते थे। इस वर्ग की समृद्धिशक्ति और उसका ऐश्वर्य जगद्विख्यात था। यह एक ऐसा देश था जहाँ अतिशय निर्धनता और समृद्धि, शानशील और गुरीबी एक साथ चलती थी। मुगलिया महल अथवा कीमियागीरी, बनावट और मूल्य के लिए विख्यात थे। १७वीं सदी में मुगल सत्ताधारी संसार का सर्वाधिक समृद्ध और शक्तिशाली शासक माना जाता था। नागरिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा थी। तत्कालीन सभी यात्री मुगल बादशाह की समृद्धि और ऐश्वर्य से चकित हैं। सम्राट के बाद

१ "Perhaps nothing represents with a finer flash and flare, with a greater glare and glow, the synthesis of akin yet alien ideas and the fusion of cordial yet different cultures as the festivals of the Mughal days do,"

-Km. Kaumudi-Studies in Mughal Paintings, thesis preserved at Allahabad University, Allahabad. p.33.

सामंतों और अमीर-उमरा लोगों की स्थिति थी। वे समाज के विशेषाधिकार प्राप्त लोग थे। व्यक्तिगत जीवन और प्रदर्शन में वे लोग भी सम्राट् का अनुकरण करते थे। किन्तु उनकी आम के साधन इतने अधिक न थे कि उनकी अतिशय व्यय साध्य सुख-सुविधाओं की पूर्ति कर पाते। तत्कालीन फ्रांसीसी यात्री बर्नियर उनकी आर्थिक विपन्नता का विवरण देता है<sup>१</sup>। मंत्रदारी और रीतिदारी की भी स्थिति इसी वर्ग के अंतर्गत थी। सम्राट् या अमीर-उमरा के जुसुस आकर्षण के विषय थे। ऐश्वर्य के प्रदर्शन के लिए शाहजहाँ का कास तो इतिहास में अमूल्य है।

११- प्रतिष्ठा की दृष्टि से इनके बाद धार्मिक वर्ग आता है। धार्मिक प्रतिष्ठानों के लिए वृत्तियाँ निरिक्त थीं। व्यापारिक वर्ग प्रायः कबों और शहरों में निवास करता था। भारतीय व्यापारियों की बुद्धिमानी के प्रमाण विदेशी यात्रियों ने दिये हैं। संपूर्ण जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषक वर्ग के अंतर्गत आता है। युरोप के विवरण से स्पष्ट होता है कि देश की सम्पूर्ण जनसंख्या के २।४ लोग इसमें लगे हैं<sup>२</sup>। देश के लगभग १० प्रतिशत लोग उद्योग-धन्यों में रखे थे। व्यावसायिक या योद्धा वर्ग के अंतर्गत अध्यापक, वैद्य, कलाकार, नवीतिज्ञी, सरकारी कर्मचारी, सिपाही, दर्जी, नार्स, नर्तक आदि आते थे। ये भी प्रतिष्ठित लोग समझे जाते थे। इस वर्ग में कुशलार्थी एवं कायस्थों की संख्या अधिक थी<sup>३</sup>। इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा और जीवन के विशेषाधिकारों से वंचित निम्नवर्ग या जिसमें दास-दासियाँ और आदिमजातिवर्गों के लोग आते थे।

१२- इस प्रकार हम तत्कालीन समाज में जहाँ एक ओर मुगल सम्राट् का अमूल्य ऐश्वर्य असीमित निरंकुश अधिकार और अप्रतिहत मर्वादा और तेज देखते हैं, वहाँ अमीर-उमरा और आभिजात्य वर्ग की शान शीकत और शाह-सर्वी देखते हैं वही दूसरी ओर जीवन के विशेषाधिकारों से वंचित, केवल शान और जीवन-निर्वाह के लिए कमा सकने वाला भारत का सामान्य किसान और

<sup>१</sup>- बर्नियर-वही, पृष्ठ २१२।

<sup>२</sup>- रजुंशी, शोध प्रबन्ध।

<sup>३</sup>- रजुंशी, शोध प्रबन्ध।

जीवन की हर सुख-सुविधा से वंचित गरीब दास भी बड़ा है। वह बीर सामाजिक वैषम्य का पुग है।

### राजनीतिक जीवन:

१६- १६०५ में जब सम्राट् बक़र की मृत्यु हुई और उसका बेटा सलीम गद्दी पर बैठा उस समय तक बाबर के अदम्य साहस, हुमायूँ के शौर्य और स्वयं बक़र के नीति-कौशल ने भारत में मुगल साम्राज्य का भवन बड़ा कर दिया था। निर्माण - कास प्रथमः समाप्त हो चुका था, उपभोग का युग आरम्भ होने को था। कुली शासकों का युग आ चुका था, भोगी प्रकाशकों के युग की अवतारणा होने को थी। सम्राट् बक़र अत्यंत नीति पटु और सुयोग्य शासक था किन्तु उसकी धार्मिक सहिष्णुता की विरुद्ध नीति के आधार पर उसके शासन की और उसके स्वभाव की धर्मनिरपेक्ष व सर्वधर्म समभाव का गौरव लेकर नैतिक इतिहासकारों और अधिकांश साहित्यिक इतिहासकारों ने प्रथमः नतिशयोक्ति की है। जयकार के एक सप्तिम युग में लीला प्रकाश रेखा भी जालोक-सतम्भ-सी प्रतीत होती है। बक़र का उत्तराधिकारी बहांगीर, राजनेता नहीं था, राजनीति के बहु पंखों पर विश्वास का संकेत लेकर चलने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी, अंतर्दृष्टि की गहनता बुद्धिकौशल का उसमें अभाव था। अपने राज्यकार्यों के संचालन में भी वह जनता की छोटी-मोटी तकलीफों के सम्बन्ध में अधिक चलाक था, महान सुधारों की अवधारणा और उनके कार्यान्वय की क्षमता उसमें नहीं थी। उसका आत्मचरित् और इतिहासकारों का मत— दोनों की साक्षी उसमें एक है। भारतीय सम्राटों की परम्परा में बहांगीर एक सदासत, क्रीड़ा नादि का शौकीन, कलाओं और सुसज्जित जीवन में अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है, सभी के प्रति सहानुभूति रखना प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध संचालन की नीति का— उसके स्वभाव का वैशिष्ट्य है किन्तु अतृप्त बौद्धिक योग्यता और विराट् अवधारणा शक्ति के अभाव से न तो वह कोई महान् परिकल्पना ही कर सका और कार्यान्वय कौशल के अभाव में, न ही वह महान् प्रशासकों के बीच स्थान पा सका<sup>१</sup>।



१४- १६२६ में, बहागीर की मृत्यु के बाद, राजकुमार बुर्रम, शाहजहाँ की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा। अकबर की मृत्यु के समय बहागीर की वी स्थिति थी, बहागीर की मृत्यु के समय शाहजहाँ की स्थिति उससे कहीं सशक्त और दृढ़ थी। उसे अपनी सामर्थ्य और नीतिकौशल से एक ऐसे साम्राज्य की व्यवस्था करनी थी जिसे उसने स्वयं अपने विद्रोहों से अस्तव्यस्त कर दिया था। शाहजहाँ के शासन का आरम्भिक काल उसकी शक्ति और स्फूर्ति के लिए उत्तेजनीय है। राज्यासङ्ग होने के बाद, १६२९ में उसने दक्षिणा-पथ की यात्रा की। शाहजहाँ के विद्रोह का निर्वण करने के साथ ही उसे हैदराबाद बीजापुर व गोलकुण्डा की रिवास्तों पर भी दृष्टि रखनी पड़ी थी। इन रिवास्तों के बीच परस्पर सद्भाव न होने पर भी मुगल शासक के विरोध में इनके संगठित हो जाने की संभावना बराबर बनी रहती थी। शासन के आरम्भ-काल में मराठों ने मुगलों की अवीकता स्वीकार कर ली थी किन्तु उनका नेता बदुराय अहमदनगर के शासक से भी संबंध रखना चाहता था। शाहजहाँ ने, बदुराय को कत्त करवाकर फितहास मराठों को मिला दिया<sup>१</sup>। राजनीतिक दृष्टि से शाहजहाँ के आरम्भिक वर्ष शांति और सुव्यवस्था के लिए उत्तेजनीय है, किन्तु निर्माण और कृत्व का प्रायः अभाव है। कलात्मक अभिरूचि और सुसुविपूर्ण जीवन के प्रति लगाव उसे अपने पिता से उत्तराधिकार में मिले थे। शाहजहाँ अपने भास्वर प्रदर्शनों और अनियंत्रित व्यय-साध्य कार्यों के द्वारा प्रजा की सम्मोहित करने में पटु था, अपने स्वार्थी की वृत्ति दिये बिना वह उदार और सदाशयी भी बन सकता था किन्तु अपने पिता की भांति ही शाहजहाँ में भी विराट् कल्पनाशक्ति का अभाव था। राज्याधिरोहण के पूर्व और परचात् के उसके चरित्र में इतना अंतर और वैषम्य है कि राजकुमार बुर्रम और सम्राट् शाहजहाँ एक ही व्यक्ति के दो नाम न होकर, दो भिन्न व्यक्तित्व प्रतीत होते हैं। कबीर कवि झारखन ने अपनी कृति "जीरंगवेव" में इस अंतरविरोध की वाणी दी है। अन्य शक्ति-धर्मी

से राजनयिक सम्बन्ध रखने में भी दक्षिणापथ के जैसे छोटे-छोटे राज्यों के निकट, अपनी शान-शौकत और समृद्धि के प्रदर्शन से उन्हें बकित और विस्मित करने में ही वह राजनय की इतिश्री समझता था, महान् राजनेता की तत्सुपशी दृष्टि उसके पास नहीं थी<sup>१</sup>। उसके मस्तिष्क में व्यवस्था थी किन्तु आविष्कार की संभावना नहीं, नीतिज्ञता का स्थान नहीं। अपने शासन के अंतिम वर्षों में उसके सभी पटु परामर्शदाता समाप्त हो चुके थे, जहाँनारा के प्रति अतिशय प्रीति और उसके प्रभाव में दारा की अयोग्यताओं को स्पष्ट न समझ कर औरंगजेब की तीव्र बुद्धि और अद्भुत साहस से विमुक्त रहने के कारण वह ठीक और मजबूत फैसले नहीं कर पाता था। इस प्रकार उसके अंतिम वर्ष आगरा के किले में कैदी के रूप में बीते। यहाँ वह संगमरमर के रजतज्योत्स्नापूर्ण भवन में बंदी रहा। भाग्य की बिडम्बना। जो महल सम्राट् ने अपनी प्रियतमा स्वनामधन्या मुमताज के लिए और अपने लिए बनवाया था वहीं से आज वह अस्तहाय बंदी के रूप में जमुना के किनारे स्थित, उस सुरम्य दुर्गभवनल स्मारक ताजमहल को देखकर आह ही भर सकता था<sup>२</sup>।

१५-१६- शाहजहाँ के शासनकाल में प्रदर्शन और वर्तुत्व दोनों चरमसीमा पर थे। कुछ इतिहासकारों ने<sup>३</sup> जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों के समय मुगल साम्राज्य का "राष्ट्रीय रूप" बताया है। यह बहुत युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। यदि साम्राज्य के विस्तार से तात्पर्य हो तो औरंगजेब के शासन को "राष्ट्रीय" कहना होगा और यदि धर्म-वर्ण निरपेक्षता की दृष्टि से कहना पड़े तो भी बिना अतिशयोक्ति के इनके शासन को राष्ट्रीय कहना संभव न हो सकेगा। शाहजहाँ ने केवल दक्षिणापथ विजय के लिए ही प्रस्थान नहीं किया, १६३३ में उसने हिन्दू मंदिरों को ढहाने की भी योजना की, हिंदुओं

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, ४, पृ० २१९।

२- वही, पृ० २१५।

३- सत्यकेतु विद्यालंकार, हिन्दी सा० द्वितीय खण्ड, भा० द्वि० प०, प्रथम पृ० १५।

की अपनी वेशभूषा तक ही सीमित रहने की आज्ञा दी और ऐसे सभी कार्य बंद कर देने का आदेश दिया जो इस्लाम के विश्वासों के अनुरूप नहीं हैं। यह और बात है कि, हिन्दू मंदिरों को डहाने के बाद शाहजहाँ ने औरंगजेब की भाँति, उनके स्थान पर मस्जिद बँट्टे करने का आदेश नहीं दिया, किन्तु अंतर मात्रा का है, गुण का नहीं, अंतर बड़ा है, यह बात अवश्य है।

१७- ज्येष्ठतानुसार उत्तराधिकार का नियम पारिवारिक क़त्ल और द्वेष-प्रतियोगिता को जन्म देता है। शाहजहाँ की शासनावधि में ही उसके पुत्र सम्राट् के सहायक की अपेक्षा, स्वतंत्र सम्प्रभु के रूप में आचरण करने लगे थे। उनके पास अपार सम्पत्ति और राजस्व का स्वामित्व था, गृह-शांति के बहाने उन्होंने भारी सेना संगठित कर ली थी और बाहर उनकी प्रतिष्ठा थी<sup>१</sup>। शाहजहाँ के चारों पुत्रों में अमानक प्रतिद्वंद्विता चली, उत्तराधिकार के मुद्दे हुए। उत्तराधिकार के मुद्दे में औरंगजेब ने प्रत्युत्पन्नमतित्व, शक्तिशाली के उक्ति वितरण और संतुलित समन्वय, सेनानी की शीघ्र-दृष्टि, से कार्य लिखा, उसका अपना मुद्दा का अनुभव था, उसकी सेनाएं सामरिक कार्यों में पूर्णतः प्रशिक्षित थीं, व्यक्तियों के गुणावगुण और सामर्थ्य - क्षामर्थ्य का निर्णय करने की उसमें महान् क्षमता थी। इसी का परिणाम था कि अपने तीन समान प्रतिद्वंद्वियों के ऊपर उसने विजय पायी। अभागे द्वारा की क़त्ल कर, मुरादमल्ल की गिरफ्तार करवाकर और सुल्तान गुवा के पलायन कर जाने के बाद २१ जुलाई, १६५८ को, दिल्ली में, उसने नाम - "ई-मुवक्कर मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आसमगीर के शाह ज़मनी की उपाधि से विभूषित हो राज्यारोहण किया<sup>२</sup>।

१८- औरंगजेब के शासनकाल को दो भागों में विभक्त किया जाता है। आरंभिक वर्षों में शासन का केन्द्र उत्तर भारत रहा--महत्वपूर्ण सैनिक

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ४, पृ० २१७।

२- बर्नियर, वही, पृ० १५।

३- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ४, पृ० २२२।

असैनिक कार्यों का सम्बन्ध इसी क्षेत्र से रहा । शासन के द्वितीयार्ध में स्थिति परिवर्तित हो जाती है । साम्राज्य के सभी साधन--धन-जन-दक्षिणा में केंद्रित है, सम्राट्, उसका परिवार और दरबार, सेना और उसके सभी योग्य अधिकारी वहां रहते हैं, उत्तर भारत का महत्व गौण हो गया, उत्तर का प्रशासन शिथिल हो गया, संप्रभु की निगाह हट जाने से अधिकारियों में भ्रष्टाचार आ गया, सभी योग्य अधिकारी और तत्कालीन राजनीति से सम्बन्धित वर्ग का वारिजिक अधःपतन हुआ, अंततः मनमाने आचरण की स्थिति आ गयी और अराजकता का वातावरण हो गया<sup>१</sup> ।

३९- बीरंगदेव के शासनकाल का प्रथमार्ध शांति और सौख्यपूर्ण था । कुछ छुटपुट स्थानीय विद्रोह अवश्य हुए किन्तु उत्तरभारत की शांति में कोई बड़ा व्याघात नहीं हुआ । बीरंगदेव इस्लाम धर्म के संरक्षक के रूप में शासनाधिष्ठित हुआ था । गद्दी पर बैठते ही उसने इस्लाम की परम्पराओं की रक्षा के लिए अनेक आदेश जारी किये । मंदिर गिरवाने का काम उसने बहुत बड़े पैमाने पर कराया । बच के साथ-साथ बीरंगदेव के शुद्धतावादी विचारों में और कट्टरता आती गयी । साम्राज्य भर में मंदिर गिराने का काम इतने जोरों से चला कि उसकी देख-रेख के लिए उसे एक दारोगा की नियुक्ति करनी पड़ी थी । विश्वनाथ, सोमनाथ और मथुरा स्थित केशवदेव के मंदिर गिरवाने के साथ-साथ उसने जयपुर के मंदिरों को भी नहीं छोड़ा । अकेले जामेर में ६६ मंदिर गिरवाये गये । बबिया फिर से प्रतिष्ठित कर दिया गया । धर्म-परिवर्तन करने वालों की वृत्तियां दी गयी ।

४०- बीरंगदेव को अपने उत्तरवर्ती शासनकाल में अनेक शक्तिशाली विरोधों का सामना करना पड़ा । बाबा नानक द्वारा संस्थापित

१- कैम्ब्रिज हिंदू बाक इंडिया, ४, पृ० २२८ ।

२- वही, पृ० २४०-४१

सिक्ख संप्रदाय धीरे-धीरे धार्मिक संगठन से विकसित होकर एक सैनिक संगठन हो रहा था। सिक्खों के सबसे मूल गोविन्द सिंह ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की दृष्टि से सिक्ख पंथ को मुगल साम्राज्य का सामना करने के लिए संगठित किया। उसकी संपूर्ण वितापारा सिक्खों को सामरिक दृष्टि से संशक्त बनाने की थी। उसने इन्टेलिजेंट शिक्षा देने के साथ-साथ कलात्मक के प्रति देख-भाल रखने की प्रेरणा दी।

४१- उधर मराठे अपना स्वतंत्र राज्य कायम किये थे। वे शिवाजी के नेतृत्व में, सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में मुगल सम्राट के लिए सरदर बन गये थे। तत्कालीन यात्री शिवाजी के सौर्य और अदम्य साहस, अद्भुत संगठन शक्ति और अपराधेय नेतृत्व की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। उसके विरोधी भी उसकी सहायता करते हैं। एक मुसलमान इतिहासकार के शब्दों में "वह विद्रोह, सूटमार और उपद्रव का कार्य अनवरत करता रहा, किन्तु बड़े पापों की छाया भी उसके चरित्र की नहीं छू पाती थी, मित्रों की मर्यादा और शिशुओं के संरक्षण के प्रति वह सदैव सजग रहा और जब भी मुसलमान मित्रों या बच्चे उसके हाथ में पड़े उसने उनके साथ हीन और सीधे का व्यवहार किया"।<sup>१</sup> अंग्रेज इतिहासकार बर्न इस दुविधा में हैं कि उसके अदम्य साहस और अपराधेय संकल्प की प्रशंसा की जाय बितरें उसने भारत में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की विद्रोह कल्पना की थी या उसके तत्त्व की एकनिष्ठा और संगठन व नेतृत्व की क्षमता की<sup>२</sup>। १७०५ के बाद मराठों ने स्थिति काबू में कर ली और वे न केवल दक्षिण बल्कि मध्यभारत के कुछ हिस्सों पर अधिकार बना बैठे। वेनिस का यात्री मनूची, १७०४ में लिखता है — "आजकल मराठों के नेता और उनकी फौजें पूर्ण विश्वास के साथ भ्रमण करती हैं क्योंकि उन्होंने मुगल अधिकारियों को नाशकित कर दिया है। उनके पास सैनिक साथ सामान, हाथी, ऊँट और

१- कैम्ब्रिज हिंदूी आफ इंडिया, ४, पृ० १७९।

२- वही, पृ० १७८।



तम्बू जादि सभी कुछ है। संक्षेपतः वे मुगल सेनाओं की भाँति ही सुसज्जित हैं।"

४२- बुद्धि, मेवाड़ का राजा परिवार और मयूरा के बाट भी इस समय चुप नहीं थे। जीरंगदेव के अंतिम वर्ष बहुत दुःखद और वेदनापूर्ण थे। भारत पर मजबूत हाथों से न्यायपूर्ण शासन करने का उसका सपना टूट गया था। जीरंगदेव एक क्षाधारण बहादुर सम्राट् था। साहस की उष्णता के साथ उसमें बौद्धिक अनुशासन, और प्रत्युत्पन्न मतित्व भी था। अपने जीवन के आरम्भ से ही उसने सम्राट् के लिए अपेक्षित संघर्ष और आत्म-सम्मान की भावना पा ली थी। किन्तु अपने जीवन के अंतिम वर्षों में जाते-जाते वह इतना शक्तिशाली और शंकालु हो गया था कि कोई उसके सामने मुँह नहीं खोल सकता था। अजब इतिहासकार बर्न उसकी तुलना नेपोलियन प्रथम की तिलसित चरमसीमा से करता है। जीरंगदेव ने मुगल साम्राज्य का पतन किया था नहीं वह भले ही विवादार्थक हो, और वह बहुत कुछ क्षत्त्र भी है, किन्तु उसने इसकी रक्षा की दिशा में ठीक कदम नहीं उठाये। उसने यह कभी नहीं अनुभव किया कि बिना महान् जन के महान् साम्राज्य की कल्पना अशुभव है। सिक्खों का विद्रोह बहुत उग्र रूप धारण कर चुका था और मराठे दक्षिणापथ में मुगल साम्राज्य की जड़े हिला रहे थे। जीरंगदेव के शासन काल के अंतिम दिनों में दक्षिणापथ की विजय के समय की परिस्थितियों को देखकर, जीरंगदेव सबसे समर्थ इतिहासकार का कथित्व जग पड़ता है "उसके जीवन के अंतिम वर्ष उन्हीं तत्सकारी घटनाओं की पुनरावृत्ति है, प्रभूत धनजन की हानि के बाद सम्राट् छोटा सा पहाड़ी किता अपने कंधे में कर पाता है, बड़े दिनों बाद मराठे कमजोर मुगल सेना से किता फिर छीन लेते हैं। सात-दो सात बाद सम्राट् पुनः इस (अकिंचन) कार्य में लग जाता है। बड़ी हुई नदियों, कीचड़ वाले रास्तों और भ्रान्त पर्वतीय मार्गों में चलते सैनिकों और अनुगामी शिविरवासियों को अनिर्वर्णीय



कठिनाइयाँ फैलनी पड़ीं, भारवाहक भाग जाते थे, परिवहन-पशु कार्याधिक्य और भोजनाभाव में कालकालीन हो गये, शिविर में छायासामग्री का सदैव अभाव रहा ।..... औरंगजेब में सहानुभूति, कल्पनाशक्ति, स्वप्न की विराटता, साधनों के निर्वहण में उदारता और हृदय के उस सीवन्ध की कमी थी जो अस्तिष्क को शत्रुः दुश्मनों की क्षतिपूर्ति कर देती है । इन परित्रात सीमाओं ने मुगल साम्राज्य को अशक्त कर दिया जिससे उसकी मृत्यु के बाद यह भवन एक ही चक्के में पराशासी हो गया । अतिरिक्त जीवनी शक्ति शीघ्र हो चुकी थी और बाह्यावरण लोगों को कितने दिन तक पीछे में रख सकता था<sup>१</sup>? वस्तुतः अकबर से लेकर औरंगजेब तक, प्रत्येक मुगल सम्राट् अपने पूर्ववर्ती के दोषों से बचने का ही अधिक प्रयत्न करता रहा, स्वयं में किन्हीं मौलिक अवधारणाओं के सन्निवेश का प्रयास किसी ने नहीं किया<sup>२</sup>, और उसके बाद तो मुगल साम्राज्य के अन्तःपतन के दिन ही । औरंगजेब का उत्तराधिकारी बहादुरशाह नम्र और शक्ति-स्वभाव का था । उसके व्यवहार में मर्यादा थी और व्यक्तित्व में अविश्रित अतिशय उदारता । वह किसी को किसी वाचनावर "न" नहीं कह सकता था और राज-भैरव की उसकी कल्पना, बिना किसी को अपमान किये छोटे मोटे मामलों की सुलभता देने, बड़े मामलों को भविष्य के लिए निर्णयाधीन कर देने तक ही सीमित थी । निर्णय शक्ति और कार्यान्वय साधन का उसमें अभाव था, फिर भी औरंगजेब की वसीयत की उसने मर्यादा के साथ, अपने अल्प-कालीन शासनावधि में निभाया<sup>३</sup> । बहादुरशाह में अन्तःपतन की पराकाष्ठा थी । उसमें राजभैरव का साहस, निर्णय शक्ति और विराट् कल्पना तो थी ही नहीं, वह अपनी रचित शासक कुंवर के सम्मोहन में सामान्य बुद्धि भी खो बैठा । राजकुल की सारी मर्यादा और गरिमा तब तक पर रख दी गयी, साम्राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी

१- सर बडुनाथ सरकार, स्टडीज इन औरंगजेब टाइम्स, प्रथम संस्करण, १९३३,

सं०, पृ० २०, २१, ३० ।

२- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ४, पृ० २१६ ।

३- वही, पृ० २१४ ।

की भी प्रतिष्ठा तात कुंवर के कृपापात्र और सम्बन्धी भंग कर देती, महल इन नीच, आत्मसम्मान की भावना, शिक्षा और परिष्कार से रहित, व्यक्तियों से घिरा रहता, समाज और प्रशासन की प्रकृति में भौंडापन जा गया। तात कुंवर की वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त २०० लाख रुपये वार्षिक वृत्ति मिलती और सैनिक और नौकरी अधिकारी भूतों मरते<sup>१</sup>। तात कुंवर के प्रेमपात्र में जाबद सम्राट् साम्राज्य के उत्तरदायित्व भूत बैठा, उसे वह विस्मरण हो गया कि वह कामार्त प्रणवी ही नहीं बाबर, हुमायूँ और अकबर व औरंगजेब की सत्तन्त्र का उत्तराधिकारी, भारतभूमि का एकच्छत्र सम्राट् है। दायित्व के साथ कर्तव्य और कर्तव्य के साथ त्याग का अन्वीन्याय सम्बन्ध है। वासना दायित्वहीनता और कर्तव्यविमुक्तता को जन्म देती है क्योंकि उसे स्वार्थवृत्ति से पी सकतत्व मिलते हैं। त्याग और श्रम वहाँ कहाँ। तातकुंवर के आसिम्न में बहादुरशाह जाबद होकर राज की सुषुप्ति हो बैठा। अपने पुत्र की हार सुन उसकी चिर-निद्रा लण भर के लिए टूटी, वह दिल्ली से आगरा के लिए चला किन्तु उसकी सरकार दिवा लिया हो चुकी थी वह एक बड़ी सेना भी नहीं तैयार कर सका और न वर्तमान सेना को सैन्यानुषों से सज्जित कर सका। शाही महल का सारा सोना ले जाया गया, किले की सुनहली पर्तें भी उखाड़ कर सिपाहियों में बाँट दी गई और अतः बाबर के दिनों से संक्षिप्त स्वर्ण-राशि रिक्त हो गई<sup>२</sup>। बहादुरशाह का उत्तराधिकारी कर्तव्यविचार विचारहीन, अस्विकार चित्त और अज्ञान व्यक्ति था; वह अपने हृद के वादे नहीं निभा पाता था। किसी काम को करने का निर्णय कर दूसरे ही लण वह निराशा के गर्त में निमग्न हो जाता। उसमें अच्छा-बुरा कुछ भी करने की शक्ति नहीं थी। दुरमनों के जाने पर वह शाही हरम में छिपा हुआ पाया गया<sup>३</sup>। तात बर्ष तक साम्राज्य की राजनीतिक स्थिति अनिश्चित रही। नया सम्राट् मुहम्मदशाह

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, ४, पृ० १२६।

२- वही, पृ० १२८।

३- वही, पृ० १२९।

कमजोर और अनुभवी होते हुए भी इतना ब्रगयावीता नहीं था पर साम्राज्य की स्थिति इतनी पतित हो चुकी थी कि उसके उद्धार के लिए किसी बबर की वसूरीत थी<sup>१</sup>। दरबार का भ्रष्टाचार चरमसीमा को पहुँच चुका था। मुगल साम्राज्य की नींव डोलती पड़ गयी थी, उसे नेस्तनाबूत करने के लिए केवल एक बरके की वसूरीत थी। विनाश की कात्ती छाया सात किसे की रीशमी की घीमा कर रही थी। अशक्त और नपुंसक राजकुमारों ने राजसत्त्वी की भी काँतिहीन भिखारिणी बना दिया था। शक्ति और प्राधिकार सम्राटों के हाथ से जा चुके थे, साम्राज्य जर्जर हो चुका था, संप्रभु शक्ति पुनः बलि चाहती थी। ऐसे समय पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ। भारतीय लोककृति में नादिरशाह का नाम एक विविध विभीषिका का आह्वान करता है, वह बहादुर था या नहीं यह और बात है किन्तु अगर यश इतना निर्वल था कि उसके लिए कोई भी बहादुर बन सकता था, चींटी के लिए एक चार सात के बच्चे का पैर भी हाथी के पैर का काम कर देगा। नादिरशाह ने दिल्ली को जी भर लूटा। कत्लेआम किया। तब भी मुगल शासकों की निद्रा नहीं टूटी, सुरा-सुंदरी का मोह नहीं गया। "विनाश के बीजों का वपन औरंगजेब के समय हो गया था, और समूहोन्मूलन की प्रक्रिया जब पूरी हो चुकी थी, बड़ा प्रायः भर जाया था। धार्मिक कट्टरता ने मराठों और राजपूतों को शत्रु बना दिया था, सेना के घोरपातक आत्मा और विश्वासघात के प्रति भी नरमी बरतने से सैनिक-अनुशासन की सारी गुंजायुँ डीली पड़ गयी थी<sup>२</sup>। बाबर की व्यक्तिगत आत्मा इस अवःपतन पर एक बार कराह उठी होगी। मुगल साम्राज्य के पतन की कहानी सम्राटों/चारित्रिक अवःपतन की कहानी है, जब तक और बितने पैमाने तक मुगल सम्राट् यह समझते रहे कि विजातीय जन पर शासन करने के लिए अपराधैव शक्ति, अदम्य साहस के साथ मुखर सहिष्णुता की भी

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया-४- पृ० ३४१।

२- वही, पृ० ३४४।

आवश्यकता होती है, तब तक और उतनी ही मात्रा में सामान्य फलाफूला, अकबर ने यह बात सबसे अधिक समझी, उसका शासनकाल "मुगल-साम्राज्य" की स्थिरता का कात था, औरंगजेब ने पहला तत्व समझा, दूसरे को वह ग्रहण कर सका, इसलिए राज्य-विस्तार कर भी वह जनता की सद्भावना नहीं पा सका जो अकबर ने बहुत कुछ प्रदर्शन के आधार पर प्राप्त की ।

४३- राजनीतिक संप्रभु सत्ता की राज्य-व्यवस्थापक क्रियाओं का समवाय ही प्रशासन है । राजसत्ता इसके माध्यम से जन-सत्ता के निकट पहुंचने का प्रयास करती है । आलोचककाल के मुगल-प्रशासन पर विचार करते समय हमें यह स्मरण रखना होगा कि मुगल-सम्राट् और उनके अधिकारि सहायक विवातीय थे, दूसरे वे उस संस्करण और परिष्करण से भी वंचित थे जो व्यक्ति में मानवता की आदर्श लोकमंगलकारी भावनाओं का बीज बपन करती है । इसलिए वे जनतांत्रिक या जन-सम्मत किसी प्रशासन की बात तो सोच ही नहीं सकते थे, वे जनता के लिए अपना अस्तित्व समझने के लिये तो तैयार ही नहीं थे; शिवा और परिष्करण के अभाव के साथ विवातीयता ने उन्हें निरंकुशता और कत्याचार के लिए भी प्रेरित किया ।

४४- ग्रीक यात्री टेरी इसे अरस्तू का निरंकुश एक्टज कहता है जिसमें अशिवा और तानाशाही के कत्याचारों का समावेश था । उसकी दृष्टि में यह अच्छे राजा और प्रजा के बीच का सम्बन्ध न होकर कठोरतम स्वामी और दास का रिश्ता था<sup>१</sup> । वेनिस का यात्री मनूची, जो शाहजहाँ के दरबार में अनेक वर्षों तक रहा, इस सरकार को अत्यन्त कत्याचारी और प्रजापीड़क बर्बर कहता है क्योंकि विदेशी होने के कारण सभी राजा और राजकीय कर्माचारी अपनी प्रजा से ऐसा व्यवहार करते हैं मानों प्रजावन दासों से भी गये बर्से<sup>२</sup> हो<sup>३</sup> । प्रशासन के सर्वोच्च यदों पर विवातीय व्यक्ति प्रतिष्ठित हैं ।

१- एल्बर्ट टेरी - वाशिंगटन टु ईस्ट इंडिया, पृ० १२५ ।

२- मनूची - स्टोरिया द मोगलर, पृ० ४६ ।

अकबर की मुगल सम्राटों में सबसे सहिष्णु और राष्ट्रीय व्यक्तित्व कहा गया है। हमारे आलोच्यकाल से बाहर होते हुए भी इस प्रति का निराकरण इसलिए आवश्यक है क्योंकि बाद में, कम से कम शाहजहाँ तक, अकबर की ही परम्पराओं का अनुसरण होता रहा है। अकबर के समय में प्रशासन के दो महत्वपूर्ण कार्य थे, पर्याप्त राजस्व का निर्धारण और संग्रह और सेना का भरण पोषण। प्रशासन केंद्राभितारी था जो उसके बाद हमारे आलोच्यकाल में भी चलता रहा। भारतीय प्रशासन की आधार शिखा प्रांतीय विभाजनों के आधार पर रखी गयी थी। सारी शक्तियाँ संघु सम्राट के पास केंद्रित थी, वहीं उनका उत्स था। सम्राट अकबर के दरबार में भी विजातीय तत्वों की ही अधिकता, बल्कि एकाधिपत्य था और अनेक इतिहासकार व ग्रामः सभी साहित्यिक इतिहासकार उसकी पर्याप्तता का अभावित गायन करते नहीं सकते। मोरलेण्ड ने, जो अकबर-काल के प्रशासन के अधिकारिक विद्वान हैं, तथ्यपूर्ण गवेषणा के परवाह यह विश्वासपूर्वक घोषणा की है कि बंद उच्चाधिकारियों को छोड़कर बिनका मूल कहीं उत्पन्न नहीं मिला, शेष सभी उच्चाधिकारियों में से ६० प्रतिशत के लगभग अधिकारी उन परिवारों के थे जो या तो हुमायूँ के साथ भारत आये थे या अकबर के राज्याधीनता के बाद वहाँ पहुँचे थे। शेष ४० प्रतिशत नियुक्तियाँ भारतीयों की प्राप्त थी जिनमें आये से अधिक मुसलमान और आये से कम हिन्दू थे। उसी इतिहासकार के शब्दों में 'अकबर की ग्रामः समदृष्टियुक्त नीति के लिए प्रशंसा की जाती है जिसमें उसके हिन्दू प्रधानों की विकास के उचित अवसर प्राप्त थे और अकबर इस प्रशंसा का अधिकारी है जहाँ नीति के तत्व पर पूरा जोर दिया गया। ४० साल के बीच में ५०० मंत्र के अन्तर्गत् में उसने इतनीसे हिन्दुओं की नियुक्ति की किन्तु इनमें से सत्रह राजपूत थे, यानी अधिकांश नियुक्तियाँ अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की दृष्टि से की गयी थी और शेष चार में एक राजा बीरबल थे, दूसरे राजा टीकरमल, तीसरे उनके पुत्र और चौथे एक बड़ी महात्म्य बिनका मूल नहीं ज्ञात हो सका, किन्तु यह पूर्वानुमानित है कि उन्हें राजा टीकरमल आये होंगे। निचली श्रेणियों में तीसरे हिन्दू थे जिनमें से तीस



राजपूत थे<sup>१</sup>।

४५- मुगल प्रशासन में सम्राट की इच्छा ही कानून है। वह यदि किसी से प्रसन्न है तो उससे ईश्वर भी प्रसन्न है<sup>२</sup>। राजा की कृपा-अकृपा दोनों अस्थायी हैं। उसकी बात का कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। मनुष्य और बर्निमर दोनों सम्राट के वायदों को अविश्वसनीय बताते हैं। दण्डव्यवस्था नितान्त अमानुषिक है। चोरी व हत्या के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता है किन्तु उसके लिए कोई विधि संगत आधार नहीं, निर्णायक की स्वेच्छा पर निर्भर है। दण्ड देने के लिए अनेक अमानुषिक और क्रूर विधियों का आविष्कार किया गया है<sup>३</sup>। न्याय केवल उन्हीं वादी-प्रतिवादियों के बीच में होता है जिनके पास फूस देने और गवाह खरीदने के लिए पैसा नहीं है। फूस प्रायः सार्वभौम रूप से प्रचलित है<sup>४</sup>। भूमि पर केवल सम्राट का स्वामित्व है। सम्राट के पास ऐसे अमीर उपराजों, मंत्रद्वारों की एक बड़ी फौज है जो काम कुछ नहीं करते और व्यय सबसे अधिक करते हैं। सेना भी बहुत विशाल है।

४६- सम्राट लोकमंगल से अधिक सुख और महत्वहीन कार्यों में अभिरुचि लेते हैं। बर्निमर कहता है कि कुर्तों का एक जोड़ा सम्राट का ध्यान आकर्षित कर लेगा, छोटी-छोटी नवीन आकर्षक वस्तुओं के प्रति वह बिजासा प्रकट करेगा यद्यपि अगणित प्रजावन भूख-प्यास, शीत-गर्मी और यकान के मारे प्राण त्याग देी और सम्राट का चेहरा भावशून्य रहेगा। प्रशासन के कार्यों पर हरम का अवांछित प्रभाव है। सम्राट बहागीर ने तो सारा राज्यकार्य बेगम नूरजहाँ को सौंप दिया था। सम्राट स्वयं अपने आत्मचरित में इस तथ्य का उल्लेख करता है। बहागीर के संस्मरणों की लिखने वाले मुहम्मद हादी के अनुसार नूरजहाँ सभी

१- मोरलेण्ड - इंडिया ऐट द <sup>5th</sup> जेफ आफ अक्बर, पृ० ६६।

२- बहागीर, बहागीरनामा- पृ० ३०।

३- टेररी, वही, पृ० ३४-३५।

४- बर्निमर- वही, पृ० २३६।

मोरलेण्ड, इंडिया.... पृ० ३३।



व्यावहारिक जमीं में साम्राज्य की अंतर्निष्ठ संप्रभु हो गयी है और सम्राट् प्रायः यह कहा करते हैं कि मुझे अपने जीवन को बलाते रहने के लिए मदिरा और मांस की ही अपेक्षा रह गयी है<sup>१</sup> । बर्नियर भी इसकी साक्षी होता है । शाहजहाँ के शासनकाल में बहुत कुछ यह स्थिति उसकी पुत्री बहानारा की प्राप्त है । सम्राट् का उस पर अटूट विश्वास है और उसका सम्राट्, और परिणामतः प्रशासन व दरबार पर असीम प्रभाव है<sup>२</sup> । इस प्रकार शासन के सत्कार्यों में नपुंसक होने और असत् कार्यों में क्रूर होने के पूरे सावधानता तैयार है । बहादुरशाह ने तो लालकुंवर के मनोरंजन मात्र के लिए यात्रियों से भरी नौका लाल किले के पास यमुना में डुबवा दी थी ।

४०- चूंकि सारी भूमि पर सम्राट् का स्वामित्व है और स्वाधिकार की भावना के अभाव से कुश्क वर्ग तमाम जमीन बिना जोते जोये छोड़ देता है। देश के बहुत से भाग उजाड़ पड़े हैं, बहुत-सी उर्वर भूमि पर भी खेती नहीं होती । बर्नियर बताता है कि प्रशासकों के अमानवीय अत्याचारवश, उनकी अनुचित अतिशय माँगों के फलस्वरूप लोगों की प्रायः खाने भर के लिए भी पर्याप्त नहीं मिलता । किसान यह सोचने के लिए विवश है कि मैं एक निरंकुश अत्याचारी के लिए क्यों श्रम करूँ जो किसी भी दिन जाकर मेरा सर्वस्व छीन लेगा<sup>३</sup> । राजस्व संग्रह करके पैसा लोकमंगल के कार्यों में न लगाकर शानी-शौकत में पानी की तरह बहाया जाता है। अकबर के समय में जो राजस्व, बाइन-ए-अकबरी के अनुसार, ३६३ करोड़ दाम था, बादशाहनामा के अनुसार शाहजहाँ के समय में बढ़कर ८८० करोड़ दाम हो गया है<sup>४</sup> । जनता पर अनेक प्रकार के

१- लेनपुस्त-मीठिएवत इण्डिया ब्रह्मर मीहम्हल रूल, पृ० २२८ ।

२- बर्नियर- वही, पृ० ११ ।

३- बर्नियर- वही, पृ० २२६-२७ ।

४- एन्वर्ड एण्ड गैरिट- मुगल रूल इन द इण्डिया पृ० २६२

स्थानीय और अन्य कर लगाकर शाहजहाँ की अपव्ययता, नौकरशाही की प्रतिष्ठा कायम रखने का प्रयास किया जा रहा है। प्रशासन बहुत भ्रष्ट और विषमगामी है। औरंगजेब जैसे कठोर नियंत्रण और संयम रखने वाले सम्राट् के शासनकाल में भी, मनुची के अनुसार, उसकी सरकार चलाने वाले ऐसे लोग हैं जिन्हें झूठी गवाही देने या बाली झूठा शर बना लेने में ज़रा भी हिचक नहीं है। छोटे से बड़े तक सभी यथाकृति अपनी स्वार्थसाधना में लगे हैं, यहाँ तक कि वे अपने संप्रभु के प्रति भी पूर्णतः निष्ठावान नहीं हैं। शत्रु से गुप्त पत्राचार तक करते हैं और उसे यथार्थापि सहायता देते हैं<sup>१</sup>। अफसर निरंकुश और कत्याचारी हैं। बहांगीर ने आदेश निकाला था कि किसी के गृह में कोई बलात् न रहे। हमारे सैनिकों में से यदि कोई किसी नगर में जाए और किराये पर स्थान मिले तो ठीक है नहीं तो नगर के बाहर सेना डालकर अपने लिए स्थान बना लें<sup>२</sup>, जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि निर्धनता की आवश्यकता अभी पड़ी होगी जब ऐसा होता रहा होगा।

४८- प्रशासन के कर्तव्य-कर्म बहुत सीमित हैं। जीवन के अन्यत्प संस्वक क्षेत्रों में राज्य का प्रवेश है। शिक्षा, यदि सुव्यवस्थित नागरिक जीवन की सुविधाओं की अवतारणा, राज्य अपना कर्तव्य नहीं समझता। अकबर के जो अपनी सुधार भावना के लिए, भारतीय इतिहास में विख्यात हैं, राज्य काल में भी बंद सड़कों, कुछ बौड़े से पुलों, के अतिरिक्त न तो विज्ञान की कोई संगठित व्यवस्था थी, न शिक्षा की लोकप्रचलित कोई प्रणाली<sup>३</sup>। कुछ ऐसा विश्व बनता है जिसमें भूखी अर्धनग्न भारतीय जनता खून पखीना एक प्रक कर कमायी हुई सम्पत्ति का अधिकांश निरंकुश विजातीय सम्राट् की शानशील के लिए उनके कत्याचारी भ्रष्ट प्रशासकों को अपनी सम्पत्ति देने के लिए विवश है। सम्राट् इस सम्पत्ति का उपयोग अपने साम्राज्य की रक्षा, अपने परिवार

१- मनुची, बही, पृ० २६२।

२- बहांगीर, बहांगीरनामा, पृ० १९।

३- पोरबेण्ड - इंडिया ऐट द वेय आफ अकबर, पृ० २६।

का भरण पोषण और अल्पनीय विश्वास-वैभव, के लिए तो करता ही है, बनसामान्य उससे पूर्ण न्याय की आशा भी नहीं कर सकता। लोकमंगल का चिंतन करने वाले कुशल प्रशासकों का अभाव है। प्रशासन के पात जनहित के छुट-पुट काम करने के अलावा कोई ठोस योजना नहीं, लिखित विधियों का निर्देशन और क्रियाविधिक नियन्त्रण नहीं है। मुगल शासन का एकमात्र ध्येय सामान्य विस्तार है और उनके सभी गुण-दोष इसी प्रवृत्ति से संज्ञासित हैं। अदम्य साहसी बाबर, अस्थिर बित्त हुमायूँ, दृढ़ चरित्र अकबर, भोगासक्त जहांगीर, उद्धत शाहजहाँ और बीतराग औरंगजेब सभी के कार्यों के पीछे संचालक मनोवृत्ति यही है।

### वार्षिक जीवन:

४९- सम्पूर्ण समाज की वार्षिक दृष्टि से दो वर्गों में बाँट कर देखा जा सकता है—उपभोक्ता और उत्पादक यानी एक वे जो "वस्तुओं का उपभोग करते हैं और दूसरे वे जो "उत्पादन" में कार्यरत हैं। उपभोक्ता वर्ग में तत्कालीन समाज के दरबार और राजघराना, व्यावसायिक व धार्मिक समुदाय, खेसू नौकर एवं दास आते हैं। उत्पादक वर्ग में वे लोग आवेगी जो कृषि उद्योग या व्यापार-कार्यों में रत हैं।

५०- तत्कालीन दरबार और राजघराने में प्रायः सभी महत्वपूर्ण तत्त्व विजातीय और विदेशीय हैं। राजा जब अपनी जाति या अपने देश से अंतर लोगों पर शासन करता है तो उसकी मनोवृत्ति निरंकुशता, अव्यय, लोचन और अवाचार की होती है। आलोच्य काल में, और उससे भी पहले अकबर के समय से, राष्ट्र की जाय का अधिकांश अव्यय माध्य निरूपयोगी कार्यों में खर्च होता है जिसका भार अतः उत्पादक वर्ग, कृषक और कारीगरों पर पड़ता है<sup>१</sup>। सम्राट की अनियंत्रित इच्छाएं, राजकुल का अत्यधिक भोग-विश्राम

१- रमा - मुगल एम्पायर इन इंडिया, पृ० ८६१।

२- गोरखिण्ड - इंडिया ऐट द डेय आफ अकबर पृ० ८७।

राष्ट्रीय सम्पत्ति का निर्वाण दुरुपयोग करते हैं। दास-दासियों की संख्या गणना से परे है। अकबर के महल में अंतःपुर की स्त्रियों की संख्या ५००० थी और उनमें से हर एक के लिए अलग अलग कक्षा, अनेक दासियों और भोगविलास के नाना प्रसाधनों की व्यवस्था थी। शाहजहाँ ऐश्वर्यशाली, उसकी प्रदर्शनी की हविश की समता कर सकने वाले उदाहरण संसार के इतिहास में अधिक नहीं मिलेंगे। अकेले ताजमहल के निर्माण में २२ वर्ष लगे थे और इस कार्य में २० हजार मजदूरों ने प्रतिदिन अवरत कार्य किया था<sup>१</sup>। इसके निर्माण में अनुमानतः ४११ लाख रुपये खर्च हुए। शाहजहाँ का मयूराकृति सिंहासन भी अपार धन की लागत से तैयार हुआ था। तत्कालीन विदेश-यात्री मुगल दरबार की शानो-शीकत से विस्मित और प्रभावित थे। ऐतिहासिक साक्ष्यों और तत्कालीन यात्रियों के विवरणों से यह पता चलता है कि जिस विलास-वैभव का जीवन तत्कालीन मुगल राजघराने और अमीर उमरावों में मिलता है इसके लिए असंख्य दास-दासियों की ज़रूरत रही होगी। इस प्रभूत अपव्यय के कारण, बड़ी-बड़ी जाय के बावजूद भी सामंतों में शायद ही कोई धनी रहा हो। बर्नियर लिखता है कि उनमें से अधिकांश विपन्ना-वस्था में हैं, उन पर कर्ज का बोझ है, सुदों, सम्राट् के उपहारों और अपने निजी विलास-प्रसाधनों पर वे पानी की तरह पैसा बहाते हैं<sup>२</sup>। राजाओं के महल ही नहीं उनके शिविर भी अपने आप में एक भारी नगर होते थे। टैरी उन्हें बल्लता फिरता "राष्ट्रकुल" कहता है।

५१- आसौख्य काल में नीकर पेशा लोगों या धर्म-कार्य में रत मुत्ता-पुरोहितों का भविष्य अनिश्चित है। वे सम्राट् की कृपा पर पूर्णतः निर्भर हैं। सम्राट् की कृपा बितनी अवांछित रीति से सुलभ हो सकती है, बितनी बड़ी उन्नति की हेतु बन सकती है, उतने अकारण छिन भी सकती है और उससे कहीं अधिक, भयंकर विनाश का कारण बन सकती है। अकबर के समय से ही व्यावसायिक वर्ग में जो विवादीय तत्त्वों का प्राधान्य चला जा रहा था,

१- तबर्नियर--ट्रैवेल्स इन इंडिया, पृ० ९१।

२- बर्नियर-पूर्वोक्त, पृ० २१२।

वह इस समय भी बना रहा ।

५२- षरेलू नौकर एवं दासों की संस्थिति प्रायः राजघराने और अमीर-उमरावों के घरों में है । दरबार, और हरम में दास-दासियों की संस्था प्रायः गणनातीत थी । सम्राट की यात्रा के समय भी असंख्य किंकर-दल साथ चलता था । आलोच्यकाल से पूर्व, अकबर के शाही शिविर का उत्सव करते हुए मोरलेण्ड ने निर्देश किया है कि सैन्यरक्षकों के अतिरिक्त २००० से ३००० तक कुल थे । एक ऐसा तम्बू वा जिसे बड़ा करने के लिए एक सप्ताह तक १००० व्यक्तियों की प्रतिदिन कार्य करना पड़ता था । राजघराने के लिए आवश्यक वस्तुओं का संभरणसुदूर देशों और प्रांतों से किया जाता है जिसमें अपरिमेय धन-धन का अपव्यय होता है । अस्तबल में पशुओं के उपयोग के अतिरिक्त साधारण उपयोग के हाथी के लिए चार-चार नौकर हैं<sup>१</sup> । औरंगजेब की यात्रा और उसके शिविर का वर्णन बर्नियर ने अपने संस्मरणों में किया है और इनकी संस्था से वह इतना विस्मित है कि "असंख्य" कहने के सिवाय उसे और कोई रास्ता नहीं सूझता । निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति बड़ी संकटपूर्ण है । निकीतिन से लेकर बाबोसा, सात्वक, जार्जियन, सर टामस री, एडवर्ड टैरी, मनुची, बर्नियर और तबर्नियर सभी विदेशी यात्री इसके एक स्वर से साक्षी हैं । मनुची लिखता है कि जहाँ तक सैनिकों, कमिनों व अन्य सामान्य व्यक्तियों का प्रश्न है उनके पास सिर डंके और कमर में बांधने के वस्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है<sup>२</sup> । मजदूरी बहुत कम मिलती है । ये सभी यात्री उनकी अर्थमृत्नावस्था का अनेकधा उत्सव करते हैं । मोरलेण्ड के अनुसार "जब आप यह कह देखें हैं कि लोग प्रायः नग्न रहते हैं तो उनके वस्त्रादि का विवरण समाप्त समझिये और षरेलू साथ सामान की नज़र से उनके पास कुछ विस्तर और खाना पकाने के बौड़े-से बर्तनों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता । १६९४ में डच व पूर्वगासी यूरोपीयों से प्राप्त जानकारी से द लेई ने, सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य की स्थिति की इन शब्दों में रक्खा था "इन क्षेत्रों में जनसाधारण की

१- मोरलेण्ड-इंडिया पैट द डेव जाफ़ अकबर, पृ० ८९ ।

२- वही, पृ० २३९ ।



स्थिति बड़ी विपन्न है। मजदूरी कम है, कामगार नियमित रूप से दिन में एक बार ही खाना पा सकता है। मकान बहुत खराब और बिना ताब-सामान के हैं, लोगों के पास जाड़े के बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं।<sup>१</sup> १७वीं सदी में भारत में जनसाधारण की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गयी थी कि वह इंग्लैण्ड के राजनीतिक विवादों में चर्चा का विषय बन रही थी। मोरलेण्ड की दृष्टि में यह कोई महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन न था बल्कि अकबर के शासन काल से, और उससे भी पूर्व से यह स्थिति चल रही थी, और वर्तमान विपन्नता उसकी स्वाभाविक परिणति थी।<sup>२</sup>

५३- कुल मिलाकर जनसंख्या का अधिकांश ऐसी स्थिति में था कि हम यह नहीं कह सकते कि उनके पास खाने की पर्याप्त या या पर्याप्त से कुछ कम था, किन्तु उनके पास कदाचित् वस्त्रों की पर्याप्त कमी थी और बरेलू बर्तन बगैरह भी नहीं थे। अकबर के समय और उसके बहुत समय बाद तक अकाल और उसके परिणामस्वरूप मकानों का ध्वंस, सिलसिले शिशुओं की दासों के रूप में विक्रय, भोजन की निराशापूर्ण खोज और अंततः भूखी मरना या मनुष्यभक्षण का विकल्प—इसकी भूमिका में जागरा के ऐश्वर्य और विजयनगर की विभूति को देखा जाना चाहिए।<sup>३</sup>

५४- भारत सदैव से कृषि प्रधान देश रहा है। यहाँ की शस्य खपायला भूमि अपनी उर्वरता में अद्वितीय रही है। टेरी और बर्निबर दोनों इसकी प्रशंसा करते हैं। जब जब कृषि की ओर ध्यान दिया गया, पुष्पी माता के पास उसके पुनर्निर्माण-पुनीत नम का उपहार लेकर पहुँचे हैं उसका स्तम्भ सुविस्तृत होने लगा है। भारतभूमि हिरण्यगर्भा ही नहीं, प्रभूतान्नप्रसवा भी है। किन्तु राजनीतिक क्रांति और अकाल के दिनों में, पुष्पी का वक्षस्वस्त शुन्य और शुष्क दिखाई पड़ने लगा है। आलोच्यकाल की पैदावार में जौ, चना, मटर, तैल, बीज, ईँड, नील और अफीम प्रमुख हैं। पैदावार का रूप

१- मोरलेण्ड - इंडिया ऐट द डेय आफ अकबर- पृ० २४२।

२- वही, पृ० २४१।



स्थानीय है। गन्ना प्रायुक्त उत्तरप्रदेश के क्षेत्र में, बंगाल और बिहार में पैदा होता है। कपास की उपज सार्वभौम है। मुगलकालीन किसान खेती के प्रायः उन्हीं जीवारों का प्रयोग करता था जो आज उसके वंशज इस्तेमाल करते हैं। सिंचाई के कृत्रिम साधनों का अभाव था किन्तु देश में अनेक नदियों का जीवन-जल प्रवाहित है। समयानुसार बरसात का जल कृषि-कर्म को जीवन देता है। अकबर के समय में पैदावार की जो स्थिति रही वही बहुत बाद, अंग्रेजी शासन काल तक भी चलती रही। मत्स्यपालन अथवा मत्स्य अधिक और खनिज अथवा मत्स्य कम थे<sup>१</sup>। किसान जो लगान और कर देता है उसके बदले उसे प्रायः कुछ नहीं मिलता। प्रशासन लोकमंगल के कार्यों में रुचि नहीं लेता। अकबर के शासन-काल में जिस अयोग्यता का आरम्भ हुआ था वह सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में और तेजी से बिगड़ी। स्वार्थी और विलासी प्रशासकों के हाथ में प्रबंध कार्य होने के कारण उत्पादक कार्यों की बहुत क्षति पहुँची। उत्पादन की दिशा में अधिक प्रयास करने के लिए प्रोत्साहन देने वाले तत्वों का अभाव था। आर्थिक व राजनीतिक विनाश का बीज-बपन हो चुका था, १७वीं-१८वीं सदियों में इस सर्वग्राही वृद्ध के पल्लवित-पुष्पित होने की देर थी। प्रतिकूल मौसम में किसान की हासत और बराब हो जाती थी। उसके पास घर में भूखों मरने का निश्चित भविष्य था बाहर सड़क और जंगल में भूखों मरने की संभावना के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता था। सामान्य कृषक की स्थिति बहुत बराब थी, वह अपनी आय का बृहत्तर अंश निष्क्रिय प्रशासकों के दमन और अत्याचार की बाहुति कर देता था और बर्निबर की सा ली के अनुसार, उसे सारी भूमि जोतने और बीने के प्रोत्साहन का ही अभाव नहीं अपितु परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि वह स्वयं अपने काम की उपेक्षा करने लगता था।

१५- तत्कालीन खनिजों में नमक, जफ़ीम आदि थे। सोना, कुमायूँ और पंजाब की नदियों में प्रभूत मात्रा में उपलब्ध था। लोहा देश के प्रायः

१- जीवास्तवः मुसल एम्पायर, पृ० १५७।

२- मोरलेण्ड - इंडिया ऐट द डेय आफ अकबर, पृ० १६७।

सभी भागों में मिलता था और सेती के जीज़ार बनाने में उसका प्रयोग होता था । राजस्थान और मध्यभारत में तबि की खानें थीं । फातहपुर सीकरी और राजस्थान के अनेक भागों में सात-पत्थर, जयपुर और जोधपुर में संगमरमर उपलब्ध था । गीतकुण्डा और छोटा नागपुर की हीरे की खानें प्रसिद्ध थीं । नमक साँभर भील व गुजरात और सिंध की कुछ नदियों के पानी से बनाया जाता है । बर्निमर देश में तबि, सल्लुन, जामफर, दासवीनी, हाथियों आदि की कमी बताता है जो विभिन्न देशों से मंगायी जाती है ।

५६- अकबर व उसके उत्तराधिकारियों के समय सबसे महत्वपूर्ण उद्योग कपास के वस्त्रों का है । जागरा, बनारस, लखनऊ, बीनपुर, पटना, बंगाल, बिहार के अनेक भाग इसके लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति लोग स्वयं कर लेते हैं । बहांगीर के समय में आने वाला अंग्रेज वात्री एजेंट डेरी भारतीयों के हस्तकौशल से प्रभावित हुआ था । संदूक, टूक, गलीचे आदि बनाने के कार्यों का उत्तेज करते हुए उसने भारतीयों के हाथी दात, पत्थर, हीरे आदि के कौशल को उत्कृष्ट बताया है । भारतीय कलाकारों की अनुकरण क्षमता इतनी अधिक है कि वे किसी भी वस्तु को ऐसी अनुकृति तैयार कर देते हैं कि मूल और अनुकृति को अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाता है । इसके आभूषण-निर्माण का कौशल इतना उत्कृष्ट है कि वह यूरोपीय स्वर्णकारों की कलाकृतियों को मात करता है<sup>१</sup> । शस्त्रागुणों में धनुष-बाण, तलवारों, क्लवों आदि का निर्माण होता है । बालूद भी अच्छी बना लेते हैं<sup>२</sup> । मुगल काल में उद्योग-व्यवहों का कोई संगठन नहीं है कच्चा माल कीमती है, कर का बोझ है इसलिए, और प्रशासकीय उत्पीड़न के कारण कलाकारों की स्थिति संकटपूर्ण है । कामगारों की स्थिति अकबर के समय से ही गिरने लगी थी, बहांगीर और शाहजहाँ के समय में दुरवस्था की मध्य स्थिति की औरगंज में उसकी चरमावस्था आ गई ।

१- बर्निमर-- वही, पृ० २५९ ।

२- डेरी--पूर्वोक्त, पृ० १५० ।

५७- व्यापार-कार्यों में भारतीयों के वातुर्भ की तबर्नियर ने, जो स्वयं एक क्षुत्र व्यापारी था, मुस्तकण्ठ से प्रशंसा की है । मुगल साम्राज्य में विदेशी व्यापार बहुत विस्तृत नहीं था । मुगलकालीन भारत में जाने वाले मुख्य सामान चांदी, सोना, तंबा, रांगा, यूरोप, विशेषतः फ्रांस से बढ़िया लुनी कपड़े, फारस की लाठी से घड़े, अमरीका की बढ़िया तंबाकू और अबीसीनिया के दास थे<sup>१</sup> । जिनमें कुशक्षिति थी ऐसे राजघराने और सामंत परिवार के लोग, सम्राट् और सामंत स्वयं केवल विविधताओं के प्रति आकृष्ट रहते थे । उपयोगिता पर उनकी दृष्टि प्रायः नहीं रहती थी । बहांगिर, शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के वाणिज्य की मुख्य विशेषता डब और जीव व्यापारियों की व्यापारिक क्रियाएँ थीं जिन्होंने भारतीय वाणिज्य की प्रवृत्तियों में सुधार किया । प्रशासनिक अतिचार इतना अधिक था कि अन्य उत्पादक कार्यों की भाँति यहाँ भी घेरक तत्वों<sup>२</sup> अभाव ही नहीं बाधा की उपस्थिति भी थी । प्रसिद्ध वार्षिक इतिहासकार मोरलेण्ड ने स्थिति का चित्र इन शब्दों में खींचा है "बुनकर स्वयं बस्त्रहीन रह कर दूसरों के लिए कपड़ा बुनते थे । भूखा किसान कबों और नगरों की बल्लरतें पूरी करने के लिए बेती करता था । भारत सोने-चांदी के बड़े उपयोगी वस्तुएँ दे देता था, पानी रोट्टी के बड़े पत्थर खरीदता था । स्त्री और पुरुष<sup>३</sup> तमाम बात भूख से व्याकुल रह सामान्य की प्रतिष्ठा करते और फसल न होने, जैसा प्रायः होता था, दासों का व्यापारी ही उनका शरणदाता होता था, इसके विकल्प नरमांसभक्षण या भूख की मौत थे । इस घोर संकट से मुक्ति का एक ही उपाय था और वह था रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने के साथ उत्पादन बढ़ाना किन्तु तत्कालीन प्रशासन की दुरवस्था में उत्पादन के लिए प्रोत्साहन के बजाय प्रशासक की दण्ड-वर्षिणी थी और वर्धमान उपभोग की अधिक शोषण का एक माधार समझ लिया जाता था<sup>४</sup> । अवस्था बड़ी भयावह और दुरवस्थ थी । कुछ ऐसा था -

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, ४, पृ० ३१७ ।

२- Moreland--From Akbar to Aurangzeb, pp. 304-5.

खेती न खिस्तान को, भिखारी के न भीख, बसि,

बनिक को बनिय न चाकर को चाकरी ।

जीविका बिहीन लोग सीपभाव सोच-बस,

कहैं एक एकन सौं कहाँ बार्ह, का करी<sup>१</sup>?

और यह भी देखिये कि एक-एक से ही कहते हैं, अनेक के एक होकर कहने का युग अभी नहीं आया, प्रशासन की अपमाननीय प्रतारणा और जागृति का अभाव इसकी संभावना नहीं रहने देता ।

#### रहन-सहन:

५८— भारत में खान-पान को बहुत पवित्रतापूर्वक सम्पादित किया जाने वाला कार्य समझा गया है । गीता ने जाहार और बिहार दोनों के मुक्त(सम्पक्) होने पर जोर दिया है । हमारे यहाँ यह माना जाता रहा है कि अन्न ही पूजा है और वैसा जाहार होगा वैसे ही हमारे संस्कार होंगे। वास्तव्यकाल के भोजन स्वाद की सम्पन्नता और विविधता पीतित करते हैं । कृतीन सामंती के पार्वजनिक भोज्यों में व्यंजनों के प्रकार देखते ही बनते हैं । भोजन बनाने की मुसलमानी विधि में शान और ऐश्वर्य या किन्तु हिन्दू पद्धति में शुविता और सादगी थी । जनसामान्य के भोजन में चावल, मोटा मनाब, दास, बंगाल एवं समुद्र तट पर मछली या दक्षिण पेनिनसुला में गोश्त। मालवा के अपने अनुभ्र और पक्षीक्षण का उत्तेज करते हुए टैरी में यह स्पष्ट किया है कि मामूली लोग गेहूँ नहीं खाते हैं किन्तु एक मोटा, सुस्वादु अन्न खाते हैं जिससे उसका संकेत संभवतः ज्वार की ओर है । जागरा से साहीर तक की मुगल साम्राज्य-कालीन कृषि की स्थिति देखकर यह बहुत संभव प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र के खिस्तान आजकल बितना गेहूँ का प्रयोग करते हैं। उतना तब नहीं करते हैं । मोटे मनाब का उत्पादन अधिक था और निश्चिततः स्थानीय रूप से उसका प्रयोग होता रहा होगा, फिर यदि सामान्य लोग

गेहूँ का उपयोग आरम्भ कर देते तो राजकुल और सामंतों को गेहूँ का संभरण कम हो जाता है<sup>१</sup>। मक्खन या घी जैसे चित्कण पदार्थों के उपयोग के भी प्रमाण है। लोग अपने इस सादे भोजन से इतने अधिक संतुष्ट थे कि उन्हें अपने लूहे सूखे आध्यात्म के सामने रावभोग फीके लगते थे। (टेरी)। शराब का चलन हिन्दुओं में बहुत कम था। एडवर्ड टेरी एक प्रकार के पेय का उत्प्रेषण करता है जिसे वह काफी कहता है। बीजों को पानी में उबाल कर उसका कांता सत्व उतार लेते थे और उसी का पान करते थे। यह पाचक और स्फूर्तिदायक व रक्तशोधक बताया गया है<sup>२</sup>। बहांगीर अपने आत्मचरित में कहता है कि संभवतः इसी प्रकार का पेय था। ये काफी और कहला याव के काफी और कहला से भिन्न कोई पेय थे या थे ही हैं, कुछ निरवयवपूर्वक नहीं कहा जा सकता। दवाओं का प्रयोग बहुत कम होता था, जो स्थिति ग्रामीण लोगों में संभवतः आज भी है।

४९- स्त्रियों की दायत में स्त्रियों और पुरुषों के आर्मजना में पुरुष ही जाते थे। मुगल भोज अपनी उदात्त विभूति और विविधता के लिए विख्यात है। बड़ी बड़ी प्लेटें और उसमें सुस्वादु भोज्य पदार्थ, सुन्दर मसमती रस वस्त्रों से ढँककर रख दिये जाते थे। इन वस्त्रों में विविध प्रकार की कढ़ी दाकारी का भी काम होता था। शाही स्त्रियों में शर्वत और मीठे फलों के रस प्रिय थे। सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों के बीच हुक्का और पान भी प्रचलित थे<sup>३</sup>। इसके विपरीत हिन्दुओं के भोजन में सादगी और सात्विकता थी। खाने के लिए मक्खन, कुर्सी आदि का प्रयोग नहीं होता था किन्तु हिन्दू बीके की स्वच्छता मनुष्य जैसे अहिष्णु पशुओं की भी प्रभावित किसे बिना नहीं रही। गाव के गोबर से सिपा हुआ आर्मन दर्पण की भाँति चमक उठता था। हिन्दू स्त्रियाँ पुरुषों के बाद भोजन करती थी<sup>४</sup>।

१- मोरलेण्ड - इंडिया ऐट द डेय आफ बकवर, पृ० १५३।

२- टेरी - वायेज, पृ० १०१।

३- कु० कौमुदी, शोधप्रबंध, प्रयाग विश्वविद्यालय में सुरक्षित।

४- मनुष्य - वही, पृ० ४९।



६०- भारतीय पुरुष वेशभूषा मुगलिया चमक-दमक और राजपूती वस्त्रों के क्लाव का समन्वय करके चलती थी। मुसलमानों की वेशभूषा पर चीनी-तुर्की प्रभाव थे। हल्की जवकन, कड़े कुत्त पायजामे और कमर बंद का चलन था। सिर पर तुर्की टोपी या टर्बन का भी प्रयोग होता था। उधारी भारत में हिन्दू धोती, दुपट्टा और दुशाता इस्तेमाल करते थे<sup>१</sup>। जनसामान्य में फैशन-परस्ती का अभाव है। फैशन बल्दी बल्दी बदलता भी नहीं। जूतों का प्रयोग भी प्रायः नहीं होता था<sup>२</sup>। आर्थिक सामाजिक स्तर का अंतर वेशभूषा में मुखर हो उठता था। यदि एक और मुगल शासक परिवार और सामंत कुल के वस्त्रों की चमक और रत्नविबिद्धि पगड़ी और टोपी की दमदमाहट आंखों को चकाचीप कर देती थी तो दूसरी और भारतीय कुषक अपनी संगीटी में बाबर के समय से ही संतुष्ट बसा जा रहा था। बाबर ने भारत जाने पर उत्तर भारत के अर्धनग्न कुषक को जो दशा बताई थी वही हमारे आसीन्य युग में भी प्राप्त है। सोऊहरी सदी के अंत में फिरोज बनारस के लोगो को अर्धनग्न देखता है और सात्विक जागरा और साहीर के बीच के लोगो की विपन्नावस्था पर चार बांधू बहाता है। वेनिस का यात्री मनुची, जो शाहजहाँ के दरबार में अनेक वर्ष रहा इस दुर्दशा पर प्रभाव की साक्षी देता है। ऊनी वस्त्रों का कोई प्रमाण नहीं मिलता<sup>३</sup>। हिन्दू स्त्रियाँ साड़ी या धोती पहन्ती थीं और मुसलमान बैगमें लम्बे पायामे और चाक्रे व चाकेट। अक्बर के समय में पुरुष वेशभूषा और बहांगीर के समय में स्त्री-वेशभूषा के विकास की चरम स्थिति दृष्टिगत होती है। बहांगीर के समय तक जाकर आभरणाँ का विकास सौंदर्य और क्लाव की ओर हुआ। बुँके, कुर्ती और अंगिया के साथ हल्के कुत्त पायजामे प्रचलित हो गये। रमणियों के मसूण भुजमूलों से इतराता हुआ दुपट्टा व वस्त्र को आवृत करता हुआ निकल जाता था<sup>४</sup>। कुर्ती बहुत बढ़िया मलमल की बनी होती थी। शाहजहाँ के हरम में स्त्री आभरणाँ की अधिकता चरमसीमा को

१- रघुवंशी- शोधप्रबंध, प्रयाग विश्वविद्यालय में सुरक्षित।

२- डेरी- वायस, पृ० २०१-२।

३- मोरलेण्ड - इटालिया ऐट द डेय आफ अकबर, पृ० २५७-५८।

४- कुंजीमुदी - शोध प्रबन्ध।



पहुँच गयी थी। गहने भारतीय स्त्री के लिए सदैव विशिष्ट आकर्षण के विषय रहे हैं। धनधान्य सम्पन्नता के कारण उच्चवर्ग अपनी इच्छा को क्रियान्वित कर सकता था। तत्कालीन मुगल सम्राट् की स्वर्ण-राशि से सभी यात्री प्रभावित थे और तबनिर्भर जैसे हीरे-मोती के व्यापारी ने उसे संसार का सर्वाधिक सम्पन्न सम्राट् घोषित किया है। जहाँगीर के आभूषणागृह में डेढ़ मन गैर जड़े हुए हीरे, बारह मन मोती, एक मन रुबी, पाँच मन मरकतमणि, एक मन हरितमणि थे। इसमें उन हीरे मोतियों को नहीं शामिल किया गया जो आभरणाओं में नियोजित थे या आसन आदि में लगे थे। शाहजहाँ सर्वाधिक आभरणा प्रिय सम्राट् हुआ है। उसके पास अपने निजी आभरणा लगभग ५ करोड़ रुपये की लागत के थे और २ करोड़ की लागत के आभूषण उसने राजकुस के अन्य सदस्यों को उपहार स्वरूप दिये थे<sup>१</sup>। उसका तख्त-ए-ताऊस तो अपनी कीमियागीरी, कीमत और रत्न-सम्पदा के लिए विश्व विख्यात है। औरंगजेब के समय में भारत आकर यहाँ ठहरने वाला फ्रांसीसी यात्री बर्नियर यहाँ के स्वर्णकारों के कौशल को यूरोपीय स्वर्णकारों की कला से उत्कृष्ट बताता है। स्त्रियों में इस समय कर्णफूल के स्थान पर बाती का प्रचार हो रहा था। चम्पाकली और पीपल पत्ती की और मुसलमान स्त्रियों का विशेष आकर्षण था। आरखी उच्चवर्गीय स्त्रियों के बीच बहुत चला<sup>२</sup> और संभवतः इसीलिए तत्कालीन साहित्य में और किसी गहने से अधिक इसका उल्लेख आता है। पुरुषों में भी आभरणाओं का चलन था। इसके अतिरिक्त स्त्रियों में तैल, इत्र, महावर, मेंहदी, सुरमा आदि अन्य अनेक सौंदर्य प्रसाधनों का प्रचार था।

६१- मुगलकालीन समाज में लोगों को बूझक में पर्याप्त अभिरुचि थी। अंतर्हार(इन डोर गैम्स) खेतों में खरब, चौपड़, ताश, जुही का उच्च मध्यवर्ग के स्त्री-पुरुषों में बूझ चलन था। घर के बाहर के मनोरंजनों में पोखी, शिकार, पतंग आदि प्रचलित थे। सभी मुगल सम्राट् शिकार के शौकीन थे।

१- बीबास्तव- मुगल एम्पायर, पृ० ५८६-८७।

२- कु० कीमुदी, शोध प्रबन्ध, प्रयाग विश्वविद्यालय में सुरक्षित।

संतत बहुत प्रिय खेल था । इसके अतिरिक्त राजदरबारों में यशुवी की लड़ाई नृत्यसंगीत आदि का समां रहता था । पहले के बादशाहों की भांति शाह-जहाँ अपने जीवन के उत्तर काल में शिकार का यद्यपि उतना शौकीन नहीं रह गया था फिर भी सुवावस्था में उसने शिकार के काम में अभिरुचि ली थी । औरंगजेब के शिकार खेलने की सखी बर्निशर देता है । सिंह का शिकार सम्राट् का विशेषाधिकार समझा जाता था ।

६२- आवास की दृष्टि से भी रीति युग और वैधान्य का काल था । यदि एक ओर महान् निर्माता शाहजहाँ के ताजमहल, मोती मस्जिद और निजी महल का विस्मयकारी अतुल्य वैभव है तो दूसरी ओर भारतीय किसान की ध्वसावशिष्ट भीषण्टी । यदि एक ओर सम्राट् और समंतों के भजन हीरे जवाहरातों की प्रभा से भास्वर हो जाते हैं तो दूसरी ओर भारत की घरती का बेटा किसान अपनी कुटिया के कोने को घूमित दीपक से भी जालोकित नहीं कर पाता । अन्तर से लेकर औरंगजेब के समय तक जाने वाला कोई भी यात्री भारतीयों की आवास स्थिति पर संतोष नहीं प्रकट करता । यहाँ तक कि टैरी भी वो भारतीय जन के प्रति अन्य यात्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक सहिष्णु था, भारतीय जन की आवास सम्बन्धी दरिद्रता का उल्लेख करता है । वह लिखता है कि "सबसे भारत के सभी पत्थर हीरे नहीं है उसी प्रकार वहाँ के सभी मकान महल नहीं हैं, निर्धन वहाँ अपनी आवास-व्यवस्था नहीं कर सकता है"।" इतिहास के एक शोधार्थी<sup>१</sup> ने तत्कालीन आवासों को तीन वर्गों में बाँटा है —

- (क) कुलीन सामंतों के आवास
- (ख) मध्यवर्गीय लोगों के आवास
- (ग) निम्नवर्गीय लोगों की भीषण्टिया ।

६३- वस्तुतः मुगल-युग में मध्यवर्ग की स्थिति न के बराबर थी । इसलिए आवासों को भी दो ही वर्गों में रखना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता

१- टैरी- वायेज, पृ० १७५ ।

२- रज्जशी- शोध प्रबन्ध, प्र० वि० ।

है। प्रथम वर्ग के आवास भवनों में विस्तार, भास्वर सौन्दर्य, गालीनता और क्लोत्कर्ष दर्शनीय है। उनके भीतर प्रायः सरोवर और निकास आदि की भी व्यवस्था की जाती थी। स्नानागार या हमाम भी प्रायः रहते थे। ये गगनचुम्बी विशाल प्रासाद और इनके चौर विपरीत अस्व वासफूली भीषडिया -- इनका जालीकित ज्वोत्स्नाचलित बातावरण और झररी और किसान का प्रकाश और वायु के आवागमन की व्यवस्था से हीन मिट्टी का चरौदा--ये दोनों मिलकर उस समय का चित्र पूरा करते हैं।

६४- पहातों में उद्योनों की भी व्यवस्था रहती थी। जहांगीर के समय में मुगलकठधान-व्यवस्था पूर्णता को पहुँची थी। पर्वत श्रृंखलाओं की पुच्छभूमि से युक्त इस भौत का निकटवर्ती शातामार उद्यान इसका ज्वलंत उदाहरण है। शाहजहाँ को भी उद्यानों में अभिरुचि रही। ताहीर के निकटस्थ शातामार बाग और दिल्ली के तातकिते का उद्यान विशेषोत्तेज्य है। औरंगजेब ने इसकी उपेक्षा की किन्तु उद्यान-कला की समाप्ति नहीं हुई, स्तर क्रम गिर गया। बेगुन्निस्ता ने ताहीर के पास बहारकुर्ची नाम का उद्यान बनवाया था<sup>१</sup>।

६५- सावसामान की दृष्टि से भी सामंतवर्ग परिपूर्ण था। बटाइयाँ, मखमली गद्दों, बिक आदि उपलब्ध थे। खाना भी सोने-चाँदी के बर्तनों में खाया जाता था। टेरी हाथ के पैर फुलवाने का भी उत्तेज्य करता है। संभवतः यद्भाकर के प्रसिद्ध पद "गुलगुली मिलने" में उत्तिखित सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं। यद्यपि जनसामान्य के लिए किसी भी प्रकार के साव सामान दुर्लभ ही थे।

#### भाषा और साहित्य:

६६- तत्कालीन भाषा एवं साहित्य के सम्बन्ध में ऐतिह्य ग्रंथों में अधिक विवरण नहीं मिलते। जो बागी सम्राट के अकिंचन मनोरंजन

१- युसुफ ख़ून- ग़िलग़म्येव बाफ मोडिएवस इडिया ।

२- जीवास्तव- मुग़ल एम्पायर, पृ० १५०-२२९ ।

और जनता की महत्वहीन अभिलाषों को नज़रंदाज़ नहीं करते थे, सम्राट् की भाषा और भारतीय जन के अनेक वर्गों की विविध वाणिष्यों की आश्चर्यजनक उपेक्षा करते थे। और पाठ्यपुस्तक-इतिहासकार भी अपने कर्तव्य का गौरव-गर्व करने के बावजूद अपने परीक्षाणा में एक विहंगावलोक्ति परिशिष्ट जोड़ देना ही पर्याप्त समझता है क्योंकि आज भी उसका मन महस के भीतर ही रमाता है। विजातीय शासन होने के कारण, प्रशासन और उच्चतर औद्योगिक विकास की भाषा फारसी ही रही। जहाँगीर से पूर्व तक भी फारसी का पर्याप्त प्रचार, प्रसार हो चुका था। जहाँगीर स्वयं एक विद्वान और समीक्षक दृष्टि का व्यक्ति था, उसने बाबर के अनुकरण पर ताबुक-ए-जहाँगीर नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। इसके अतिरिक्त उर्दू, हिन्दी, संस्कृत का भी सम्बन्ध प्रचार था। साम्राज्य की भाषा का विवरण देते हुए, तत्कालीन (जहाँगीर के समय) कौजी आसतुक एज्डर्ड टैरी लिखता है "यस साम्राज्य की भाषा, मेरा तात्पर्य आम भाषा से है, राष्ट्र के नाम हिन्दुस्तान से ही जानी जाती है और फारसी व अरबी से बहुत मिसली जुलती है किन्तु हिन्दुस्तान अधिक सरस और इन दोनों की अपेक्षा अधिक बोधगम्य है, उसमें पर्याप्त अर्थवत्ता है और थोड़े में बहुत कह लेने की सामर्थ्य है। वे लोग हमारी ही तरह दाहिनी और की लिखते हैं। उसके वर्ण हैं, जो फारसी या अरबी वर्णमाला से बहुत भिन्न हैं। वहाँ (भारत में) फारसी बहुत विलक्षण है और दरबारी भाषा के रूप में बोली जाती है। अरबी उनके यहाँ उच्चस्तरीय वाक्य की भाषा है।"

६७- फारसी साहित्य की अकबर के समय से ही प्रोत्साहन मिलता चला आ रहा था। उसका राजकीय इतिहासकार अबुलफज्ज फारसी में लिखता था। अकबर ने संस्कृत-अरबी, तुर्की और ग्रीक के अनेक ग्रंथों के अनुवाद फारसी में कराये। जहाँगीर का आत्मचरित लेखक की विषय के प्रति ईमानदारी और सैली परिष्कार की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जहाँगीर विद्वज्जन का आदर करता था और उन्हें संरक्षण देता था। नसीरी उसके

दरबार का सबसे अच्छा कवि था। उसके दरबार के विद्वानों में गियास बेग, नाकिबखाना, मोतमिद खान, नियामत उल्ला और अब्दुल हक देहलवी के नाम विशेषोत्तेस्य हैं। कुरान पर टीकाएँ लिखने का कार्य चलता रहा और काव्य-रचना भी पर्याप्त मात्रा में होती रही।

६८- शाहजहाँ के शासनकाल में भी फारसी की महत्वपूर्ण और मुख्य स्थान प्राप्त रहा। फारस से आये हुए अब्दुल-तालिब नामक व्यक्ति ने कालिम उपनाम से अत्यन्त अलंकृत शैली में राजकीय घटनाओं की पद्यबद्ध किया। उसे राजकवि की उपाधि से अलंकृत किया गया। हाजी मुहम्मद खान ने भी एक इतिवृत्त लिखा जिसमें कश्मीर के बागी और शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का यशोगान किया गया था। सम्राट के बड़े बेटे दारा शिकोह ने पंजाब के चन्द्रभान नामक ब्राह्मण की सेवामोचित किया था जो फारसी में लिखता रहा<sup>१</sup>। किन्तु एक दो अपवादों को छोड़कर ये सभी कवि मध्यम कोटि के उष्टा थे। उनकी कृतियों में निर्वाह एकरसता है और उनमें दृष्टि की उदात्ता व विबल की व्यापकता का अभाव है। ये नवीन काव्य शैली के प्रति अधिक आकृष्ट और उनमें "नवनवीन्मेषशास्त्रिणी" प्रतिभा का सर्वथा अभाव है---उनका सुबल निरर्गल अतः प्रेरणा का अभाव प्रवाह नहीं; विवशताबन्ध कृति है और यह बात उसमें स्पष्टतः भ्रतकती है<sup>२</sup>।

६९- डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना लिखते हैं कि उनकी गजलें तथाकथित सूफी ढंग पर लिखी गयी हैं और उनके प्रतिपाद्य प्रायः परम्परागत साधारण विषय हैं। उनके उपमा और रूपक गल-जो-बुलबुल, शीरी-जो-फरहाद या लैला-जो-मजनू के परम्परागत काव्यभण्डार से लिये गये हैं। वे काव्य के महान् पथ में पदयात्री की ही स्थिति में हैं, कल्पना की ऊँची उड़ान का उनमें प्रायः अभाव है<sup>३</sup>। गजल के अतिरिक्त सम्राट की प्रशस्ति में कसीब भी लिखे जाते रहे

१- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, ४, पृ० २९०।

२- बनारसी प्रसाद सक्सेना- शाहजहाँ आफ दिल्ली, पृ० २५०।

३- वही, पृ० २५०।



विशुद्ध फारसी कवियों में प्रमुख सैयद-ए-गिलानी रहे जिनमें नूतन और पुरातन का समन्वय पाया जाता है। इसके अतिरिक्त राजकवि कासिम, कुदसी, सलीम, मसौह, सूफी, फारूक, मुनीर, शईदा, ब्राह्मण, हासिब, खिताबी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गद्य में भी पर्याप्त लेखन-कार्य हुआ और पद्य की भाँति वहाँ भी शैली-शिल्प का उत्कर्ष देखने को मिलता है। इतिहास, पत्राचार आदि अनेक विधाओं पर लेखन कार्य हुआ। चार शब्द-कोशों का सम्पादन हुआ और सम्राट् को समर्पित किये गये<sup>१</sup>।

७०- हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से अकबर का राजकास स्वर्ण युग रहा। जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबार में भी हिन्दी की प्रशंसा मिलती रही। शाहजहाँ के आधिकारिक विद्वान डा० बनारसी-प्रसाद सक्सेना के अनुसार सम्राट् हिन्दी बोलता था, हिन्दी संगीत का शौकीन था और हिन्दी कवियों की संरक्षण देता था। ग्वालिबर के एक ब्राह्मण कवि सुंदरदास को सम्राट् ने महाकविराय की उपाधि से कलंकृत किया था। कानपुर निवासी खितामणि को भी सम्राट् का संरक्षण प्राप्त था। इसके अतिरिक्त महाकवि देवदत्त ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। इस राजकीय संरक्षण प्राप्त कवियों के अतिरिक्त अन्य लोग भी जनसामान्य के आत्मिक जीवन के उत्कर्ष और भाषा-विकास कार्यों की वाणी देने के लिए अपनी लेखनी चला रहे थे। पन्ना के प्राणनाथ ने हिंदुत्व और इस्लाम के समन्वय के प्रयास में अनेक कविताएँ लिखीं जिनकी भाषा की रचनागत आधार हिन्दी होते हुए भी उनमें फारसी और अरबी के शब्दों का उन्मुख रूप से व्यवहार किया गया है। महमदाबाद के दादू ने अपने जीवन का अधिकांश राजपूताना में बिताया। वह एक अच्छा लेखक होने के साथ साथ एक पद्य का विधावक भी था। इनमें भी अधिक प्रभाव संत तुकाराम का रहा<sup>२</sup>। हिन्दी के अतिरिक्त

१- बनारसी प्रसाद सक्सेना- शाहजहाँ नाफ़ दिल्ली, पृ० १५५।

२- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, बिल्ड ४, पृ० १२१।

अन्य नव्य भारतीय भाषाओं को भी प्रोत्साहन मिला । औरंगजेब के समय तक जाते-जाते हिन्दी साहित्य की धारा के प्रवाह में गतिरोध आ गया । सम्राट की धार्मिक कट्टरता ने हिन्दी के साहित्यकारों का राव-बराने में प्रवेश बन्द करा दिया । अब हिन्दू राजाओं के आश्रय में कवि रहने लगे । १८वीं सदी में हिन्दी काव्य में ब्राह्मीमुखी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं --भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से ।

७१- उर्दू का जन्म तो दिल्ली सल्तनत काल में ही हुआ था किन्तु इसे भाषा का स्थान उत्तर मुगल-काल में ही मिल सका । इसे पहले बगान-ए-हिंदवी कहा जाता था । इसकी व्याकरण रचना भारतीय है । उर्दू की वास्तविक प्रगति उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ही हुई । संस्कृत की अक्षर के समय से संरक्षण मिला । बहांगीर ने भी अपने पिता की परंपरा चलायी । अबदुल हमीद साहोबी ने शाहजहाँ के दरबार के अनेक संस्कृत कवियों का उत्तेज किया है । अन्य भारतीय तत्वों की ही भाँति, संस्कृत में भी औरंगजेब की लालच नहीं थी और उसके समय हिन्दू राजाओं के यहाँ ही संस्कृत की संरक्षण मिलता रहा ।

७२- साहित्य हृदय के राग को बाणी देता है । तत्कालीन साहित्य स्पष्टतः सामान्य जीवन-प्रवाह से बहुत कुछ दूर हो गया था । इसीलिए आलोच्यकाल में तुलसी और निराला की सी विराट् जातीय चेतना के कवि का अभाव है, भूषण में जातीय अनुराग ने कवित्व की वाति पहुँचायी है, और इसीलिए आलोच्यकाल के प्रतिनिधि कवियों में जीवन के संघर्ष का स्वर न होकर एक प्राणवायुहीन अस्वाद है । साहित्य, चाहे वह किसी भी भाषा में लिखा जाता रहा हो, उसमें जीवन की ताक़गी का अभाव है । लोकजीवन के राग-विराग उसमें ध्वनित नहीं होते, उसमें लोकजीवन का स्पर्दन नहीं, एक अतिशयतापूर्ण विशिष्टजीवन का राग व्यक्त होता है ; चूँकि कवि के पर्यावरण में अंतर्करण की प्रधानता थी इसलिए उसका काव्य भी अंतर्कारप्रधान है ।

## शिक्षा:

७१- शिक्षा मनुष्य की अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। वो मनुष्य की निरंतर सुसंस्कृत बनाते हुए आत्मसाक्षात्कार और आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से परमसत्त्व का साक्षात्कार करना ही इसका उद्देश्य है। आलोच्यकाल में विजातीय और बहुत कुछ स्वयं अशिक्षित सम्राटों का शासन होने के कारण शिक्षा का क्षेत्र प्रायः उपेक्षित रहा। अकबर ने शिक्षा में थोड़ी-बहुत अभिरुचि लेकर उसका जो रूप निर्धारित किया था वही जागे भी चलता रहा। सरकार अकबर के समय में और उसके बाद तक भी, शिक्षा को अपना आवश्यक विधेय नहीं मानती रही<sup>१</sup>। न तो कोई शिक्षा विभाग ही था और न राजस्व का कोई अंश शिक्षा के लिए ही नियत किया जाता था। अफ़्ति जहाँगीर अपने आत्मचरित में जहाँ अन्य जहदियों का वेतन दस से पंद्रह बढ़ाने की योजना करता है, वहाँ शाहिद पेशा वालों का वेतन दस से बारह ही बढ़ाया है<sup>२</sup>। विद्यालय धार्मिक स्थानों से सम्बद्ध होते थे। तबर्नियर बताता है कि बनारस में विश्वनाथ के मंदिर के पास राजा का बनवाया हुआ एक विद्यालय था जहाँ हिन्दू राजाओं के बच्चे शिक्षा पाते थे। वे बनसामान्य की भाषा से इतर किसी भाषा के माध्यम से शिक्षा पाते देखे गये थे<sup>३</sup>। हिन्दू परम्परा में गुरु का महत्व सदैव से बहुत बड़ा रहा है। मुसलमानों में भी गुरु की समान प्रतिष्ठा थी।

७४- हिन्दुओं में ब्राह्मण क्लाथारण रूप से बुद्धिमान होते थे। वे संस्कृत के रक्षक और शिक्षक समझे जाते थे। मुसलमानों की अध्ययन शाखाएं मक़तब या मदरसा कहलाती थीं जहाँ फ़ारसी या अरबी के माध्यम

१- सक्सेना--शाहजहाँ, पृ० २८६।

२- जहाँगीरनामा-पूर्वोक्त, पृ० २३।

३- तबर्नियर, पूर्वोक्त, पृ० १८३।

तथा सक्सेना--शाहजहाँ, पृ० २४०।

से शिक्षा दी जाती थी। मक़तब ग़ाइमरी स्कूल का ख़ानापन्ना था। मुसलमानी मदरसों में छात्रों को क़ुरान ज़रूर पढ़ाया जाता था। हिन्दू पाठशाळाओं में उनके वरेण्य पार्षिक ग्रन्थ रामायण महाभारत आदि से पाठ-सामग्री रखी जाती थी। अक़ाणित का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण एवं उच्चस्तरीय था। रत्ना नाथ (१६२२-२५) एवं फ़ावर (१६७३-८१) दोनों यात्री इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि बच्चे पढ़ाई पढ़ते हुए देखे गये और आपस में मिलबुल कर पुरानों के उत्तर बूझने के प्रयास करते थे<sup>१</sup>। ज्योतिषशास्त्र या जगोल विद्या का उच्चस्तरीय अध्ययन भी होता था। फ़ाखीखी यात्री बर्नियर, यद्यपि अपने जातीय गौरव के मोह में, यहाँ के ज्योतिषशास्त्र की गणना को अविनाशक हीन बताता है किन्तु स्वतंत्र रूप से उसकी उच्चता की स्वीकृति वह भी करता है। तबर्नियर के अनुसार हिन्दू सूर्य-चंद्र ग्रहण के भविष्य ज्ञान में एक मिनट की भूल नहीं करते और उन्होंने इस विद्या के रक्षणार्थ बनारस में एक विश्वविद्यालय खोल लिया है जहाँ इसका उच्चस्तरीय अध्ययन अध्यापन होता है<sup>२</sup>। बर्नियर भूगोल की शिक्षा को अपर्याप्त बताता है और यहाँ के ज्ञान को अंधविश्वासों पर आधारित मानता है। इतिहास का भी बहुत सीमित प्रशिक्षण होता है था। औरंगज़ेब जब अपने गुरु से रुष्ट होकर वातलाप करता है तब शिक्षा की विपन्नतावस्था पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है, वह कहता है 'आपने मुझे पढ़ाया कि पूरा फिरंगिस्तान कुल मिलाकर एक छोटा सा द्वीप है, जिसका सर्वाधिक शक्तिशाली शासक पहले पुर्तगाल का था, फिर दक्षिण का और तदनंतर इंग्लैण्ड का। फिरंगिस्तान के अन्य संप्रभुओं के बारे में आपने बताया कि वे हमारे मामूली राजाओं से बड़े न थे और हिन्दुस्तान के नरेशों के समक्ष अन्य सभी शासकों की भाषा बलिष्ठ पड़ जाती थी..... और फारस आदि..... बड़े बड़े देशों के सम्राट् हिन्दुस्तान के शासकों के नाम से कांपते हैं। क्या ही प्रशस्तीय भूगोल का ज्ञान है क्या ही आधारण इतिहास-वेत्ता का कार्य है<sup>३</sup>? इस प्रकार कुल

१- हीसर - वेम्स जाट्वायस-यूरोपियन ट्रेवेलर्स इन इण्डिया, पृ० २१।

२- तबर्नियर- पूर्वोक्त, पृ० १४२-४३।

३- बर्नियर, पूर्वोक्त, १५५-५६।

मिलाकर तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था का जो चित्र सम्मुख आता है उससे यह स्पष्ट है कि राज्य की ओर से शैक्षणिक कार्यों में कोई विशेष अभिरूचि नहीं दिखाई जाती थी, शिक्षा राज्य के आवश्यक विषयों में नहीं थी, अधिकांश विषयों का ज्ञान वितरित अधूरा और अपूर्ण था, नारी-शिक्षा का भी बतन प्रायः न के बराबर था । बर्नियर इस विपन्नावस्था पर चार बांसु बहाता है ।

७५- इसके बावजूद भी यह ठपेकाणीय तथ्य नहीं है कि जनसामान्य में शिक्षा का प्रचार प्रसार भले न रहा हो किन्तु विद्वानों का बभाव नहीं था। सरकारी स्कूल नहीं थे किन्तु गैर-सरकार शिक्षाशास्त्रज्ञों की संख्या पर्याप्त थी। शिक्षा का व्यावहारिक और सांस्कृतिक मूल्य जाका जाता था । परीक्षाएँ नहीं होती थी किन्तु शास्त्रार्थ जादि के माध्यम से अपनी स्थािति प्रतिष्ठित करना ही प्रमाणपत्र समझा जाता था । काव्य साहित्य और उसके शास्त्रीय पक्ष का ज्ञान रीतिकालीन कवियों की कृतियों से प्रत्यक्षीकृत है । जाधुनिक लोकमनस राज्यों में शिक्षा के प्रचार-प्रसारार्थ जो कुछ किया जाता है, विजातीय बर्बर शासक में उसकी अपेक्षा करने का हमारे पास कोई औचित्यपूर्ण आधार नहीं है ।

✓ कला

### स्थापत्यः

७६- स्थापत्य कला के क्षेत्र में अकबर ने विश्व शैली-शिल्प का विकास किया उसमें भारत की जातीय और मुस्लिम शैलियों का समन्वय पाया जाता है । इतिहासकारों ने इसे भारत की स्थापत्य कला का "राष्ट्रीय रूप" कहा है । अकबर के निर्माणों में वास्तुकला का बाह्यकार सुसज्जित है किन्तु उसकी जात्ना जातीय है । उसके रंग-रंग जातीय-रक्त प्रवाहित हो रहा है ।

१- मैल्हाम - रघुवंशी के शोध ग्रन्थ है ।



अकबर की वास्तुकला का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन फ़तहपुर सीकरी के निर्माण में मिलता है। पंचमहला चौद शैली के अनुसार बना हुआ है तो चौध बाई के महल में राजपूत कला का पूर्ण निदर्शन किया गया है। सुनहरे मकान का अलंकरण और सजावट अद्वितीय है। इसी समूह के सलीम चिस्ती का मकबरा सम्राट् की बड़ाभक्ति तथा कृतज्ञता का द्योतक है और बुलन्ददरवाज़ा उसकी राजनीतिक सफलता का जीता जागता स्मारक है। स्पष्ट है कि सीकरी के निर्माण में यदि सम्राट् की कल्पना ने योग दिया तो उसकी रूपरेखा की पत्थर के माध्यम से ठाकने का जेब हिन्दू मुस्लिम कारीगरों के सामूहिक प्रयत्न को है।

..... बहागिरी महल की बनावट तथा उसका वातावरण ठेठ हिन्दू है। अकबर के अथेलाकृत उदार व्यक्तित्व और तत्कालीन परिस्थितियों ने मिलकर बुलन्ददरवाज़ा वैसी विराट् कल्पना की प्रस्तुत के माध्यम से साकार बनाया। एक लेखक के शब्दों में --इसे भावना का "विस्मयकारी अतः प्रेरणादायक उद्घाटन" कहा गया है, जिसका विषयबोध असाधारण यथा: सुर्वो से भी अधिक शक्तिशाली है। यह भारत के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट है माननी अकबर की विषय का अपराधम यथोक्त हो<sup>३</sup>।

७७- यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अकबर जैसे महान् व्यक्तित्व की कल्पना का ऐसा सुर्वे स्मारक न कभी बना है और कदाचित्, न कभी बन सकेगा।

१- बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिन्दी साहित्य(भा० हि० प्र०) द्वितीय खण्ड लेख।

२- "A marvellous revelation, an inspired translation of of the feeling that takes hold of you before that formidable arch, whence seems to issue as it were a shout of victory, continuous, louder than the trumpets of a hundred fames, from the top of the pedestal that lifts it proudly on the horizon of Hindostan. And the great cry of pride rings out over the rich plains, the peaceful towns, the unsubdued jungles, to die away absorbed in the astonished murmur of the southern shores."

७८- वास्तुकला पर यह हिन्दू-प्रभाव सम्पूर्ण मुगल शासनविधि में घीरे घीरे बढ़ता ही रहा और इसकी अभिव्यक्ति अनामत, स्कन्धी, प्राचीर, अश्वकार अभिवार व मुगल भवनों के अन्य आलंकारिक वैशिष्ट्यों के माध्यम से होती रही। हिन्दू-प्रभाव का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन मुगल सम्राटों के मकबरों में मिलता है। डी० ह्यूमिक्स के शब्दों में 'मुगल साम्राज्य का प्रथम पुरुष' यदि समरकंद में समाधिस्थ है, बाबर ने अपना राज स्वदेश, आगरा से काबुल, वापस ले जाने की आकांक्षा प्रकट की थी तो हुमायूँ दिल्ली में, अकबर सिकंदरा में और शाहजहाँ आगरा में शयित है<sup>(१)</sup>। इस हिन्दू-प्रभाव की प्रक्रिया क्रमशः तीव्रतर होती गयी और शाहजहाँ के निर्माण में इसकी चरम परिणति चटु-गोबर होती है। उसने आगरा, लाहौर, दिल्ली, काबुल, कश्मीर, अमैर, कांधार, अहमदाबाद आदि अनेक स्थानों पर महल मस्जिद और मकबरे बनवाये। शाहजहाँ की सभी निर्मितियों की शैली पारसीक है किन्तु खेत संगमरमर और प्रभूत अलंकार की नियोजना के कारण यह पारसीय आदर्शों से बहुत दूर जा पड़ी है। उसके निर्माणों का एक प्रमुख वैशिष्ट्य जाती और नक्काशी का काम है जो उसकी सुन्दरतम कल्पना-कृतियों को अलंकृत करती है और रंग-भंग्यता का प्रशस्त परिकल्पना के साथ समुचित संयोग प्रस्तुत करती है<sup>(२)</sup>। शाहजहाँ ने आगरा और दिल्ली में महलों का निर्माण कराया। आधिकारिक वास्तुकला विशेषज्ञ फर्गुसन के अनुसार आगरा स्थित महल में अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत रुबि का निदर्शन है जबकि दिल्ली के किले की यदि समग्रता में देखा जाए तो उसमें शाहजहाँ के व्यक्तित्व की उतनी ही स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलेगी जैसी फतहपुर सीकरी में सम्राट् अकबर के व्यक्तित्व की देखने में आती है। दोनों भव्य हैं, विशेषतः दिल्ली का भवन भव्यतर है, जिसमें चाँदी की पतई वाला दीवान-ए-शाह तबर्नियर के अनुमान से २६० लाख फ्रेंच मुद्रा की लागत का रहा होगा<sup>(३)</sup>। मोती मस्जिद के रूप में हमें शाहजहाँ

१- ए० वी० वही, पृ० २१० ।

२- वही, पृ० २११ ।

की सौन्दर्य प्रियता का एक और अनोखा उदाहरण उपलब्ध है। एक सेडक के शब्दों में—उन क्षुर तौरणों की रहस्यमयी प्रभावान्विति, उन खेत-नीलम, दृष्याधारों की बाधा में एक अतीतिक प्रवर्तता और गोपिक सम्पाकार भवनों की उड़ान से कहीं अधिक दिव्यता है।.....नारम्भिक प्रभाव प्रायः प्रशान्ति और प्रसाद का होता है। निर्माण की उत्कट प्रभावानुभूति तो बाद में ही होती है जो आस्थाशील साधक की भावना का रचन कर सके। भुवन भास्कर की प्रवर किरणों खेत संगमरमर में एक प्रकम्प उत्पन्न करती हैं। तदनंतर, एक बार पुनः शान्ति का वातावरण व्याप्त हो जाता है, केामतन मूर्त हो जाता है, एक विस्मयाभिभूत अतीतिक आत्मा प्रहर्ष और परमाह्लाद के सागर में डूबने उतराने लगती है।

७८- किन्तु शास्त्रार्थ की अमर कृति है ताजमहल—एक अनोखे दम्पति प्रेम का बद्धु स्मारक—जिसके निर्माण में तत्कालीन सा ली तदनिवर जिसने कार्य का नारम्भ और समापन देखा वा के अनुसार —२२ लाख लगे, जिस अवधि में २२ हजार कर्मिक अमरत कार्य करते रहे। इसमें अनुमानतः चार सौ म्यारह लाख रुपये व्यय हुए। ताजमहल कुछ ऐसी वस्तु है जिसकी प्रशस्ति में इतिहासकार, स्वापत्य कला विशेषज्ञ बनने लगता है, स्वापत्य कला-

1- "There is something more intense in the mystic impression of those denticulated arches, those <sup>while</sup> and bluey perspectives than in the flight of the Gothic perpendiculars. x x x The first impression is rather one of peace and severity. It is only latter that one begins to feel the ardour which purified meditation of the believer would there be capable of attaining. Then a vibration as of metal at white heat sends its waves coursing over those marbles. Next all is peace once more, the sanctuary is alive, a mysterious soul<sup>o</sup> throbs there between bliss and ecstasy.

विशेषज्ञ कवि बन जाता है और कवि का पुरातन-काव्य तत्व मुखर हो जाता है। वह एक नहीं अनेक भवनों का समन्वित निर्माण है बिस्ते चारों ओर से विशालाकार दीवारें घेरे हैं, जिसके दोनों पार्श्वों पर दो मस्जिद हैं। बीच में संगमरमर का कैथम व्यवस्थित उद्यान के बीच कमलवत् है। उसको क्षुब्ध वायुत करने वाले निर्झर है।

७९- एक दीर्घ वेदिका के अंत में एक विस्तीर्ण जल-कुत्सा है जिसका पुरातन रक्तवर्णीय पथ शुचिता का उत्स-सा पृथीत होता है, उत्थित मंच के कोनों में पृथ्वी की भाँति चार ऊँची मीनारें हैं। दो समीपस्थ मेहराबों के बीच का विग्रह और अन्य स्थापत्य निर्माणों में पियत्रा-द्यूरा के काम का नियोजन है, जिनमें गोभेदक कार्नेलियन, सूर्यकंतिमणि, और नीलमणिओं का प्रयोग किया गया है। इनमें मात्स्याकार, बैलबूटों की दीर्घपट्टिका, और समकोण नक्काशी का समन्वय है, वे रचना और वर्णविभक्त दोनों की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, जबकि संगमरमर पर स्थित होने के कारण इन्हें वर्ण-विभक्त के भार से मुक्त करती है। कुल मिलाकर वे स्थापत्य निर्माण में अतर्कण के अन्यतम उत्कृष्ट उदाहरण हैं। अवतीर्ण होकर हम शाही

- 
- 1- "At the end of a long terrace, its tracious outline, partly mirrored in the still water of wide canal, a fairy vision of silver white--like the spring of purity--seems frost lightly, so tenderly on the earth, as if in a moment it would soar into the sky, at the corners of the raised platforms, stand, sentinel like, four lofty minorest. The spandrels and other architectural details are picked out in a pietra duera work, the stores employed being agate, carvelian, jasper and turquoise. They are combined in wreaths, scrolls, and frets, as exquisite in design as beautiful in colour and relieved by the pure white marble in which they are laid, they form the most beautiful precious style or ornament ever adopted in architecture."

-Ferguson- History of Indian & Eastern Architecture, p. 598.

दम्पति के शयनागार में पहुँचते हैं जहाँ दो अभूतपूर्व प्रेमी समाधिगत हैं। केन्द्रीय कला की अर्थनिमीलित विभा अनिवार्यनीय है।

८०- ताज का निर्माण कौशल इतना अद्वितीय और दृढ-रहित है, उसकी शुचि अवस्था इतनी प्रभावशालिनी है और दुर्घट अवलोकन को ज्योत्स्नामयी प्रभा इतनी मोहक है और इन सबसे ऊपर दम्पति प्रेम की कण्ठ महनीयता का अदीप्त स्मारक होने के कारण वह "न भूतो न भविष्यत्" वाली प्रेमी का निर्माण हो गया है। वह पुस्तुरके माध्यम से कविहृदय का निरगतः निरुत प्रगीत है जिसका छंद ही इतना रसस्निग्ध है कि प्रेमाक नाभ्यंतर में प्रवेश करने से पूर्व ही विस्मय-रस-सिक्त हो जाता है। भारतीय वास्तुकला के विशेषज्ञ फर्ग्युसन महोदय के अनुसार— ताज अपने बाप में तो सुन्दर है ही किन्तु यदि उसे बेझा बड़ा कर दिया जाता तो उसका बापा हीन्दव्य विरोधित हो जाता है। वस्तुतः वह एक नहीं बल्कि रमणीयताओं का मनो-मुग्धकारी समन्वय है जिसमें निर्माण का प्रत्येक को ही दूसरे से मिलकर पूर्णत्व प्राप्त करता है<sup>१</sup>।

८१- तत्कालीन फ्रांसीसी यात्री बर्नियर इससे इतना अभिभूत हुआ था कि मिस्र के पिरामिड उसे "फतवरों के ढेर" मान दिखाने लगे थे। यह सब है कि दुनिया में उससे बड़ी इमारतें हैं, ऐसे भी निर्माण हैं जिसमें शब्दा और अलंकरण की विशदता कहीं अधिक विद्यमान है किन्तु भव्यता और सादगी के छंद और सौष्ठव का इतना जोड़ा संश्लेषण कहीं नहीं मिलता। यह नेत्रों को शांति प्रदान करता है, हृदय को तरंगामित करता है। इसकी व्यवस्था वह में अवरुध हुई है किन्तु इसमें मार्मिक की स्निग्धता भी है<sup>२</sup>। ताजमहल इतना अद्भुत और विस्मयकारी निर्माण है कि उसके निर्माण की कटुता और देश के जनसामान्य की अकल्पनीय विमन्नता का सारा इतिहास बापा भर के लिए मानस घटक से विरोधित हो जाता है, प्रेमाक का अंतर्गमन, वेबुल्लिता के उदाम

१- फर्ग्युसन - हिंदू बाफ इंडियन आर्ट्स, १८७६ का संस्करण।

२- बनारसी प्रसाद सक्सेना-शाहजहाँ, पृ० १६५।



पारिवारिक जीवन एवं पारलौकिक दुर्गों में उसका मन अधिक रमता रहा<sup>१</sup>। वस्तुतः जन्म कलाओं के समानांतर यहाँ भी मुगल कलाकार की जनसामान्य के सामान्य-जीवन के प्रति कोई अभिरुचि नहीं थी, उसे वैभव के आकर्षण से आकाश नहीं मिलता ।

८४- भारतीय चित्रकला की भी राष्ट्रीय शैली के विकास का नेत्र इतिहासकार सम्राट् ज़क़र की सहिष्णुता और सहानुभूतिपूर्ण नीति को देता है । उसके संरक्षण के आकर्षण में अनेक कुशलतम चित्रकार जाते और अपना कार्य-सम्पादन करते थे । उसके प्रमुख चित्रकारों में सत्रह में से तेरह हिन्दू थे । ज़क़र के राजत्वकाल का उत्तरार्ध चित्रकला की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है जब कलाकार ने उन्मुक्त होकर सौख्यीवन के भी विविध पार्श्वों का संस्पर्श करते हुए अपनी तूलिका चलायी ।

८५- अपने पिता की भाँति बहागीर की भी चित्रकला में आरम्भ से ही अभिरुचि रही और जागे चलकर तो सम्राट् चित्रकला का इतना कुशल पारखी हो गया कि वह स्वयं अपने आत्म चरित में लिखता है—“हमारे लिए चित्रकला की और रुचि और चित्रों के गुण-दोष -विवेचन की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि जब कोई कलाकृति- चाहे मुत्त चित्रकारों की हो या वर्तमान की हो, हमारे सामने बिना कलाकार का नाम बतलाए उपस्थित की जाती तो हम तुरन्त<sup>२</sup> बतला देते कि यह कसू की कृति है । और यदि एक ही चित्र में कई सवी<sup>३</sup> होतों और प्रत्येक भिन्न कलाकार की होती तो भी हम<sup>४</sup> करेक का पता लगा लेते कि कौन किस की है । यदि एक ही मुख पर किसी अन्य व्यक्ति का नेत्र तथा भी बनाया होता तब भी हम कह देते कि किसने मुख बनाया है और किसने नेत्र तथा भी<sup>५</sup> । जब सम्राट् की अभिरुचि की यह स्थिति हो तो सम्बन्धित कला का चरम विकास स्वाभाविक ही है । फल-स्वरूप मुगल-शिल्प बहागीर के राजत्वकाल में अपने पूर्ण जीवन पर आस-पड़—

१-पृ० ५०, वही, पृ० ११२-१४ ।

२- बहागीरनामा, पृ० ५१९-२० ।

था । अकबर ने जिस भवन की जायारशिता रखी उसे उसके पुत्र, राजपूत माँ के कोठ से जाये बेटे ने अपने ज्ञान और क्सात्मक सख्यबुद्धि से पूर्ण किया । उसकी निर्णयक्षमता और क्सात्मक परब का झूठा प्रभाव पड़ा है । बहांगीर मध्य और बहुत कुछ अज्ञात था, उसमें राजनेता की विराट् कल्पना और सूक्ष्म का अभाव था किन्तु उसमें क्साकार की मनोदृष्टि थी और पर्वी ज़ाउन जैसा जाधिकारिक चित्रकला समालोचक उसे "युग की क्सा की जात्मा" कहकर सम्बोधित करता है । इसप्रकार विदेशी दरबार की जाहित क्सा के रूप में जिसका सभारंभ हुआ और जिसे संरक्षण भी विदेशीय सम्राटों का ही मिलता रहा, वह क्रमशः जातीय परम्पराओं के निकट जाती गयी और अंततः उसके सभी विदेशी तत्व राष्ट्रीय-परम्परा में अंतर्भूत हो गये । पर्वी ज़ाउन के अनुसार अकबर ने मुगल चित्रकला की जायार शिता रखी किन्तु उसे उसके बेटे बहांगीर ने अपनी क्सात्मक सख्य-बुद्धि के मार्गदर्शन में विकास के परमोत्कर्ष तक पहुँचाया । मुगल चित्रकला में बहांगीर का बही स्वान है जो वास्तुकला के क्षेत्र में शाहजहाँ का है । शाहजहाँ ने चित्रकला की परम्परा तोड़ी नहीं किन्तु उसका झुकाव वास्तुकला और जाभूषणों की और अधिक था इसलिए अन्य क्साओं की भाँति चित्रकला में भी स्वर्णम वणों का विपुल वैभन और अति विशदीकरण व समृद्ध पार्श्व रेखाओं की प्रवृत्ति मिलने लगती है । शाहजहाँ में इस क्सा की उतनी परब न थी और उसके कात में ही चित्रकला में हास के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं । इस कात की क्साकृतियों का वैशिष्ट्य बहांगीर के युग की मौलिकता नहीं, अंकार और वणवैभन है । शाहजहाँ ने क्साकारों की संख्या भी घटा दी । इसके कात के अधिकतम चित्र काम पर बने हैं और शिल्प की एकरता-ही दिवायी पड़ती है<sup>१</sup> । और इस विपुल प्रदर्शन की पुष्ट-

---

<sup>१</sup> "The surface is treated with a pigment and afterwards burnished. The outline is then drawn and the body colours laid on in successive layers. The brush employed was of 'Squirrel hair, and a one-haired brush was used for the finest work."

भूमि में कला की अतिपरिपक्वता अतक मार जाती है जो पसों ब्राउन के शब्दों में पतन और द्राघ का निरिक्त लक्षण है। मुगल चित्रकला सम्राट एवं राजदरबार के विलास वैभव का इतिवृत्त है, यह कला आभिजात्य है और सामान्यजन के जीवन की अतक तो यदा-कदा ही उसमें मिलती है। वास्तुतः तत्कालीन कलाकार के सुबन में ऐहिकता ही नहीं विशुद्ध ऐंद्रिकता प्रधान हो रही थी और यह प्रवृत्ति केवल चित्रकला में ही नहीं अपितु सर्वत्र परितर्कित हो रही थी। कलाकार सामान्य जीवन से असंपृक्त रहकर सृष्टि करता या जिसके परिणाम स्वरूप उसकी कृति में निष्प्राणा ऐन्द्रिकता का प्रभाव प्रसर होता या रहा था। बनारस के सीताराम संग्रहालय में स्थित चित्रों का विवरण देते हुए कुमारी कामुदी ने कहा है—“कुछ प्रेम दूरम और हरम के चित्र तो इतने शृंगार-मुक्त हैं कि वे स्वतः इंद्रियानुभूति का तटस्पर्श कर लेते हैं। प्रेमी गुलगुले गद्दी पर बैठे हुए एक दूसरे के आसिंजनपाश में आवद्ध हैं, नवयुवती रमणी, अपनी समस्त रूपराशि, अपने प्रिय के लिए अर्पित कर रही है, उसके प्रियतम के हाथ उसके प्रमुख कामौत्सव अंगों पर अबाध रूप से विचर रहे हैं, या फिर कोई शब्दादा मध्मान कर तड़बड़ाते पगों से, सुंदरी परिवारिकाओं द्वारा हरम के भीतर से बाधा या रहा है, संगीत-सरिता का मधुर निःस्वन अर्जर मधुप्रेय के चबकों के तड़बड़ाने का स्वर वातावरण की ओर भी विलास से भर रहा है, कामौत्सव अपने पूर्ण जीवन

---

!- "It is a record of luxurious living and glowing pageantry of the King and his court, a glittering exhibition of the frivolities and furbelows of nobles and amirs. His is an aristocratic art, it is only occasionally that he gives us a glimpse of the life of the common people."

Km. Kaumud's Thesis.

पर है। (मुगल चित्रकला में नारी प्रतिमाओं में मद निःसृत हो रहा है, उनके मुख-मण्डल पर विलास और ऐंद्रिकता की विभा व्याप्त है, पुरुष में रखरिप्ता और ऐंद्रिय प्यास मानी फूट पड़ रही है। दोनों जीवन का सम्पूर्ण सुब सूट लेने के लिए जैसे विह्वल हो रहे हैं। और ऐसे चित्र देख, पद्माकर और विहारी की काव्यकृतियों में बूढ़ सेनादुष्कर नहीं होगा।) औरंगजेब की धर्मनिष्ठा ने मुगल चित्रकला पर और अधिक प्रहार किये। साम्राज्य के संरक्षण के अभाव में चित्रकला ह्रास की पूर्णता को पहुंच गई। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा के महलों की चित्रकारी ध्वस्त करा दी और सिकंदरा में अकबर के मकबरे के चित्र पुतला दिये। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ साथ चित्रकला की भी क्वास-क्रिया हो गई। येन-केन-प्रकारेण परम्परा तब भी चलती रही। किन्तु मुगल चित्रकला अपने गत उत्कर्ष की फिर से न पा सकी गुण और मात्रा दोनों में ही वह अधोगामी रही।

### संगीत एवं नृत्य:

८६- लोकजीवन का असीम उत्साह संगीत एवं नृत्य के माध्यम से कदाचित् सर्वाधिक अवाधित और नैसर्गिक अभिव्यक्ति पाता है। गायक के स्वर के

1-"Some of the love scenes and harem scenes of the Mughal artists are of extreme frankness, where lovers are lying on luxurious dawns and cosy cushions, locked in each other's embrace, the young woman lying in a carefree condition, while the lovers amorous hands freely stray over her feminine charms, or where a prince is retiring from ladies apartment in a state of intoxication, tenderly supported by a hand of female attendants or again where a prince is revelling in and his harem stocked with bright-eyed maidens, song and music flowing carelessly, while the sparkling wine in China cups and crystal goblets add further impetus to his unchaste passions."

कु. कीमुदी के शीघ्र पुन्य है।

विजाद और उत्साह में, जारी हूँ, कबरोह में और नर्तक या नर्तकी के शरीर के छंद में जीवन की बहुविध सरसता को सप्रेमणीय बना देने की बहुभूत शक्ति है। ये क्लार्क लोक्वीवन के इतना निकट पहुंच जाती हैं कि लोकप्रियता के कारण ही कभी-कभी इन्हें मनोरंजन की भेगी में उतार लाया जाता है।

८७- संगीत का राष्ट्रीय रूप भी अकर के राजत्वकाल से आरम्भ माना जाता है। उसके दरबार में हिन्दू-मुस्लिम स्वर-साधना का संगम हुआ। अबुलफ़जल इनमें से तानसेन और बाबुरहादुर के नामों का आइन-एक-अकबरी में उल्लेख करता है + और तानसेन की संगीत-उत्कर्षता का सबसे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि जब उसका नाम लोक्वीवन में "महान संगीतकार" का पर्याय हो गया है। बहामीर को भी, अपने पिता की भांति संगीत और नृत्य में अभिरुचि रही। अताधिक संगीतकार और नर्तकियाँ नित्यप्रति राज-महल में सम्राट् और उसकी पत्नियों के मनोरंजनार्थ उपस्थित रहती थीं और नौक इस रूप से प्रस्तुत रहती थी कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बुलाया जा सके<sup>१</sup>। फ़ारसीसी बाजी तबर्नियर शाहजहाँ के शासनकाल में भारत आया था। उसने राजमहल के संगीत को मयूर और भुति सुखद बताते हुए कहा है कि यह संगीत इतनी घीमी धुन पर चलता है कि राजकार्य जैसे गम्भीर विषय में लगे हुए सम्राट् एवं सांकेतों के कवचान और एकाग्र चित्तता में शेषमात्र बाधा नहीं उपस्थित करता<sup>२</sup>। कभी - कभी सम्राट् स्वयं उसमें भाग लेता और यदि राजकीय इतिवृत्तकार पर विश्वास किया जाय तो सम्राट् स्वयं एक वाद्ययंत्र निपुण और मोठी आवाज़ वाला व्यक्ति था। तत्कालीन चित्रों में डोल, पखावज, ठफा और कभी-कभी बीणा लिए हुए लोगों को दिखाया गया है। घुषद व सोहर गाने का प्रचलन था। पुरुष पखावज बजाते थे और स्त्रियाँ डोल बजाती थीं। औरंगज़ेब ने संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया था किन्तु मनुष्य की धाँव के अनुसार नर्तकियों का राजमहल में प्रवेश तब भी चलता रहा

१-विलियम फिल्ट-फार्स्टर्ड जरसी ट्रेवल्स, पृ० १८३।

२- तबर्नियर- ट्रेवल्स इन इंडिया, विल्ड १, पृ० ८१०।



और बदाकदा सम्राट् स्वयं व महिषी और सम्राट् की उपपत्तियाँ उसमें अभिरूचि लेती रहीं और सम्राट् नर्तकियों को सम्मानित करता रहा । इस प्रकार गति बंद हुई, और वह भी केवल राजमहल में अन्वया लोकजीवन में संगीत और नृत्य की परम्परा अबाधित रूप से चलती रही । अन्य कलाओं की भाँति उत्तरवर्ती संगीत और नृत्य भी अपेक्षाकृत अधिक ऐहिकतापरक, ऐंद्रिक और भ्रूणारिक - प्रधान होने लगे । ध्रुपद जैसे सशक्त रागों के स्थापन पर स्वास, ठुमरी, टप्पा और दादरा जैसे स्त्रैण रागों की प्रतिष्ठा होने लगी । बाबिदगली शाह द्वारा प्रचलित ठुमरी का उत्तेज करते हुए बाबू खामसुन्दरदास का कवन है—“अथ के अमीश्वर बाबिदगली शाह ने ठुमरी नामक गानाली की परिपाटी चलाई । वह संगीत प्रणाली का अत्यन्त स्त्रैण भ्रूणारिक रूप है । इस समय अकबर के समय के ध्रुपद की गंभीर परिपाटी, मुहम्मदशाह द्वारा अनुपेक्षित स्वास की चपल शैली तथा उन्हीं के समय में आविष्कृत टप्पे की रसमय और कोमल गायकी और बाबिद गली शाह के समय की रंगीली रसीली ठुमरी अपने-अपने वाक्यदाताओं की मनोवृत्ति की ही परिचामक नहीं, लोक की प्रौढ़ रूचि का जिस क्रम से पतन हुआ उसका भी इतिहास है<sup>१</sup> । फिर भी नृत्य और संगीत की लोकप्रियता घटी नहीं । मध्यभारत में कई वर्षों तक निवास करने के बाद श्री मल्होत्र ने भारतीय कुचक और उनकी स्त्रियों में सार्वभौम रूप से संगीत एवं नृत्य के प्रचलित होने की साक्ष्य दी है । इस संगीत और नृत्य की विविध विधाओं के माध्यम से भारत का लोकजीवन अपना हर्ष-किष्काद, उत्साह और अवसाद व्यक्त करने के साथ अपनी पारम्य परम्परा को भी अक्षुण्ण रख सका है क्योंकि इनके विषय प्रायः पारम्य या पौराणिक होते रहे हैं । तात्त्व एवं सात्त्व आदि के जरिये भारतीय नर्तक का कौशल मानव-जन की विविध अनिर्वचनीय मनोदशाओं और मुख्य अनुभूतियों के शरीर के छंद में उतारता रहा है । इसमें एक अमूर्त साहित्य और सुविता के साथ साथ अकल्पनीय को कह लेने की क्षमता भी रही है । एक महाराजा के यहाँ

१- बाबू खामसुन्दरदास-हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० २२१ ।

(डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित रीति काव्य, सभा, काशी से उद्धृत) ।

नृत्य देखने के बाद, लार्ड वेल्स ने इसे अनुपमेय बताया था। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि उनके अपने देश में इस प्रकार की कोई कला नहीं है। उसका वर्णन करते हुए लार्ड वेल्स जागे लिखते हैं — "आरम्भ में नृत्य क्रिया प्रशंसित होती है, संग-वादन में नयी-नयी तीव्रता जाती है, संगीत का स्वर ऊर्ध्वगामी होने लगता है, हाव-भावों की अभिव्यक्ति में प्रेम, प्रसन्नता, भय, स्नेह, गुणा आदि मधुर-गंभीर, उग्र, भाव परिलक्षित होने लगते हैं और अंततः संगीत और गीत दोनों अनुभूति के सौधान में ऊर्ध्वारोहण करते हुए नर्तक की अधिक आवेशपूर्ण भावों की वाणी देने के लिए अलविशेष की प्रेरणा लेते हैं। और इसका आशातीत सफल निष्पादन में अनेक बार देखा है। नर्तक अपने को वादन की चरमावस्था में सभी इंद्रियों को निरक्षित कर देता है। और समीपस्थ लोगों को उसे उठाकर ले जाना पड़ता है।"

इसके अतिरिक्त शोभा-लेखन-कला (कैलिग्राफी), मूर्ति-कला, प्रस्तुर विचर्चन, प्रसाधनरेखण आदि कलाओं के प्रचलन के प्रभूत प्रमाण प्राप्त हैं। वस्तुतः मुगल-शासन-काल और विशेषतः उत्तर मुगलकाल या हिन्दी का रीतिमुगीन कविता की पृष्ठभूमि में पढ़ने वाले और समानांतरगामी युग में सभी कलाओं और शिल्पों का महान् उत्कर्ष हुआ किन्तु लोकजीवन की सामान्य सुविधारा से अंतर्पुस्त होने के कारण उनमें ऐहिक मनीषा, विज्ञान वैज्ञान, ऐंद्रिय अभिव्यक्ति और अधिक ऐंद्रिक नमूनों में निष्प्राण जीवन-दर्शन का आभास मिलता है। यह ठीक है कि जहाँगीर ने विचकला की चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया, शाहजहाँ ताजमहल जैसे विस्मयकारी निर्माण करा सका और उत्तरवर्ती सम्राटों और नवाबों ने संगीत और नृत्य के विकास में उत्तरीतर योग दिया, कवि भी उनके महान् आश्रय पाता रहा किन्तु यह भी ठीक है कि इनका जीवन ऐसा था कि विचकार की तूतिका रंगमहल के रास में ही ली गयी, ताजमहल संसार का अत्यंत प्रेम स्मारक होते हुए भी तत्कालीन जनजीवन की विषमता और अपर्याप्तता का उपहास सा करता है और उसका सीन्दूर भी विराटता का नहीं मार्दव और स्नेहाकल्पना की

सुषराई है, ठुमरी, दादरा और टप्पा स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि संगीत की प्रगति किस ओर हो रही है। यद्यपि जहाँगीर, अतिशय भोगासक्त नारिजन प्रेमी शाहजहाँ, तासकुंवर वैसे सामान्या के आकर्षण में भारत जैसे विराट् राज्य की उपेक्षा करने वाले जहाँदरशाह का जीवन और दे भी क्या सकता था ? तत्कालीन कलाओं का जो भी वैशिष्ट्य एवं अभाव है उन्मुक्त प्राणवायु की विहीनता है और उन्मुक्त प्राणवायु महसूस की बहारदीवारी के धरे में नहीं, लोकजीवन के विस्तृत प्रागण में मिलती है। वह सत्य तत्कालीन कलाकार की प्रत्यक्ष नहीं हो सका।

### जीवन-दृष्टि:

८९ सुल्तानों और मुग़लों के आक्रमण तथा उनके सामने राजवंशी के पराजित होने के फलस्वरूप देश का विदेशी शासन में चला जाना मध्यदेश के इतिहास में एक असाधारण तथा मुगपरिवर्तक घटना थी। भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ अनेक जातियों के आक्रमण हुए, वे आयीं और यहाँ आकर धीरे-धीरे वहीं की हो गयीं। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति को उन्होंने अपना लिया। किन्तु सुल्तानों और मुग़लों का आगमन इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आरंभ में भारत में आने वाली जातियों की संस्कृति या तो भारत की स्थानीय संस्कृति से बहुत मिलती-जुलती थी या उनकी अपनी संस्कृति अल्प-विकसित अवस्था में थी इसलिए यहाँ की संस्कृति को अपना होने में उन्हें विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं होता था। वे मध्यदेश में आकर मध्यदेश के ही हो जाते थे और आज कोई नू-विज्ञान का अनुसन्धाता ही यह समझ सकता है कि मध्यदेश के वर्तमान निवासियों में से कौन किस प्रजाति से मूलतः संबद्ध है। सभी "खीरीदकी भूत-समग्ना परिसा- के न्यायानुसार एक क्षूरे में घुल मिल गये हैं और उनकी सभ्यता व संस्कृति का भी विशिष्ट अस्तित्व नहीं रहा। किन्तु सुल्तानों और विशेषकर मुग़लों के रूप में आने वाली आक्रमणकारियों की नितान्त भिन्न प्रकार की संस्कृति थी। राजनीतिक दृष्टि से पराजित मध्यदेशवासी इस विषय संस्कृति को आत्मसात नहीं कर सके और न राजनीतिक स्तर पर सामूहिक रूप में उनका विरोध ही कर सके।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यद्यपि देश की सैनिक पराजय हुई और राज - नीतिक सफलता की दृष्टि से देश ६०० वर्ष तक सिर नहीं उठा सका किन्तु साथ ही समाज, धर्म और साहित्य की रक्षा के लिए जो आयोजन देश ने सफलता के साथ किया और जिसके फलस्वरूप राजनीतिक और सैनिक पर- तन्त्रता के रहते हुए भी देश की संस्कृति की रक्षा ६०० वर्ष तक हो सकी यह संसार के इतिहास में एक अत्यन्त असाधारण घटना है। सेपेटिक, इस्लामी आक्रमण के फलस्वरूप ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, तुर्की, मिस्र आदि अनेक देशों की समस्त जनता ने इस्लामी धर्म भाषा और संस्कृति को ग्रहण कर लिया। किन्तु ६०० वर्ष तक स्वयं मध्यदेश में इस्लामी शासन रहने पर भी कठिनाई से ९ प्रतिशत जनता मुसलमान हुई और शेष ९१ प्रतिशत जाज भी देश की संस्कृति को पकड़े हुए हैं।

९०- जातीयकाल में हिन्दू अपने देश में ही स्वयं उपेक्षित और सामान्य नागरिक है, जाभियात्य वर्ग के अंतर्गत प्रमुखतः और अधिकारतः विदेशीय मुसलमान जाते हैं। इन दोनों की जीवन- दृष्टि में इतना और वैषम्य था कि सम्मिलन - बिन्दु ढूँढना दुष्कर ही नहीं असंभव - सा कार्य है। यदि एक और तत्कालीन यात्री जनसामान्य की सत्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं परिश्रम-प्रियता की साक्ष्य देते हैं तो दूसरी ओर वे ही यात्री राजकुल एवं सम्राट् के पर्यावरण की कुत्सा और अविरसनीय चारित्र्य का कथन करते नहीं सकते। अंग्रेज यात्री टेरी भारत के तत्कालीन निवासियों से हिंदुओं को अलग कर उनके परिश्रम की प्रशंसा करता है। उनकी सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "वे हमसे (ईसाइयों) से भी अधिक सत्यनिष्ठ हैं" और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि टेरी यह सत्य- निष्ठा हिंदुओं में नैसर्गिक मानता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में हिंदुओं के पास कोई मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ नहीं है वैसे कि ईसाइयों के पास प्रभु के

के आदेश "वाइबिल" रूप में संकलित हैं। जनमानस में, उस जीव ने यह समझा नहीं कि पैमम्बर जीर पुत्र के आदेश चारित्र्य का निर्माण <sup>नहीं</sup> करते, वातीय-जीवन-दृष्टि के निर्माण के कारण इससे कहीं गंभीर और निरर्गल होते हैं। उसके आगे भी टैरी ईसाइयों और हिन्दुओं की तुलना करते हुए "मध्य ईसाई, गंभीर हिन्दू (यद्यपि उसने इण्डियन शब्द का प्रयोग किया है किंतु संदर्भ बताता है कि उसका तात्पर्य किसे है) संतुलित-मना हिन्दू और बुध्दित ईसाई की देखकर उसे दुःख होता है<sup>१</sup>। टैरी के अनंतर भारत आने वाली फ्रांसीसी व्यापारी "मूर्तिपूजकों" के और ज्ञान को बताते हुए भी उनके जीवन की "निरर्गलः नैतिक" बताता है<sup>२</sup>। वे अपना प्रत्येक कार्य बड़े धैर्य और संतुलन के साथ करते हैं और किसी को गंभीर हो कोई कार्य करते देख वे कुछ कहते नहीं केवल मुस्करा देते हैं<sup>३</sup>। इसके अतिरिक्त वे आत्मा का एक योनि से दूसरी जीवयोनि में संक्रमण मानने के कारण हिंसा विलकुल नहीं करते<sup>४</sup>। जनसाधारण के बीच मध्यमान जाति का चलन नहीं है और टैरी तो यहाँ तक साक्ष्य देता है कि हिन्दू धर्मशास्त्रों में वर्णित वस्तुओं का सेवन करने की अपेक्षा मृत्यु का आशङ्कन भी आवश्यक समझता है और यदि वह अत्युक्ति भी हो तो वह स्पष्ट है कि इस प्रकार की अत्युक्ति का कोई आधार रहा होगा। इसके विपरीत तत्कालीन आभिजात्य वर्ग मदिरा के महाकुण्ड में आकण्ठ निमज्जित था, अपने जीवन के उत्तर-काल में बहागीर का मदिरापान यहाँ तक पहुँच गया था कि वह प्रतिदिन बीस प्याला तथा कभी कभी इससे अधिक पीता था। प्रत्येक प्याला एक सेर का होता था तथा बीस प्याला एराक का एक मन। इस कारण उसकी ऐसी अवस्था हो गई कि यदि एक घड़ी न पीता तो हाथ कांपने लगते तथा बैठने की शक्ति नहीं रह जाती थी<sup>५</sup>। हिन्दू निरर्गलः सहिष्णु

१-टैरी: पृ० २४०-४१।

२- तबर्नियर : टैबल्स इन इंडिया विल्ड २ पृ० १९६।

३- वही, पृ० २१४।

४- वही, पृ० १८६।

५- बहागीरनामा, पृ० १८।



वे और बर्नियर ने जब उनसे बातचीत के सिलसिले में उनके धर्म की बातचीत करती हुए पूछा कि वे इसका अनुसरण क्यों करते हैं तो उनका उत्तर था हम यह दंभ नहीं करते कि हमारा धर्म सार्वभौम उपयोग के लिए है। परमात्मा ने इसे केवल हमारे लिए बनाया है और इसीलिए हम किसी विदेशी को अपने भीतर ले नहीं सकते और न ही हम यह कहते हैं कि आपका धर्म असत्य है, संभव है वह आपकी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हो क्योंकि ईश्वर ने स्वर्ग के अनेक मार्ग बनाये हैं। और बर्नियर फिर लिखता है कि मेरे लिए यह समझा सकता संभव हो गया कि ईसाई धर्म समस्त विश्व के लिए बना है और उनका धर्म केवल कपोलकल्पनाओं का जात मान है<sup>१</sup>। कोई भी धीमा प्रान्तीय उन "अशिक्षित हिन्दुओं" और इस "सुसंस्कृत ईसाई" के कानों से यह समझ सकता है कि सत्य कहाँ है, "मिनयी एहिष्णु अशिक्षित" के पास या "धर्मदम्भी" लेखक के पास।

९१- पारिवारिक सीमानों में लोग अपने कर्तव्यों कर्मों के प्रति पूर्णतः समग थे। एडवर्ड टेररी हिन्दुओं की मातृ-पितृ भक्ति की प्रशंसा करता है। वह लिखता है कि श्री चाहे जिसने ही निर्धन क्यों न हों और अपनी आजीविका के लिए उन्हें चाहे कल्प ही उपलब्ध होता हो किन्तु वे अपने माता-पिता की सेवाभक्ति में कोई ब्रुटि जाने देने से मर जाना कहीं अच्छा समझेंगे। मैं चाहूँगा कि जो लोग ईसाई होने का दंभ करने के बावजूद अपने अस्तरतमंद और विषमताग्रस्त माता-पिता की उपासना करते हैं वे इसका अनेकधा अध्ययन करें<sup>२</sup>। यहाँ की संतति-स्नेह भी आदर्श था और तत्कालीन यात्रियों के साक्ष्य से उसकी पुष्टि होती है। हिन्दू सामान्यतः एक पत्नी-व्रतधारी होता था उसका यौनजीवन सीमित और संतुलित होता था। टेररी और तबर्नियर दोनों अपने-अपने समय में इसकी साक्षी होते हैं। इसके विपरीत राजकुल और सम्राट का यौनजीवन निर्बाध भोगविषय और प्रसन्नदाहरण की सीमा पार कर चुका था। वस्तुतः मध्यमान और अनिषिक्त यौन-भोग का

१- बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ० १२८।

२- टेररी, पूर्वोक्त, पृ० २१२-११।

जीववधन अकबर के समय से ही हो चुका था । यद्यपि यह सत्य है कि अकबर की सदाशयता उसके चरित्र के अन्य पक्षों पर पर्दा डाल देने में सहायक होती है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि मघपान वह पर्याप्त मात्रा में करता था, उसके हarem में कुल मिलाकर पाँच हजार स्त्रियाँ थीं, जिनके परिचर्या के लिए इसके अनेक गुण अधिक बाँदियों और परिवारिकाओं की बराबर चलती थी । उसके बेटे जहाँगीर में मघपान चरमसीमा को पहुँच गया, शराब पीकर सम्राट् प्रकृतियों के से जाचरण करने लगता, उसके हarem में १०००, स्त्रियाँ तो थीं हीं, जिनका सत्यापन विश्वसनीय ढंग से टेरी ने किया था, उसके अतिरिक्त उसकी कामुकता इस सीमा पर पहुँच गयी थी कि वह समलिंगभोग के लिए "सड़के" भी रखता था<sup>१</sup> । और इस साक्ष्य के साथ यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका श्रोत वह व्यक्ति है जो हमेशा सत्यता को ही देखने का यत्न करता था । यौनजीवन के भ्रष्टाचरण की अव्यवर्ती सीमा शाहजहाँ में और भी विकृत रूप में दिखायी देती है । मनुष्य उसके दरबार में अनेक वर्षों तक रहा था और उसकी दृष्टि में सम्राट् केवल एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उद्योगशील दिखता है और वह है नित्त कवीन प्रमदाओं की खोज । अपने भृत्यों तक की पत्नियों, बेटियों के साथ सम्राट् का खुला दुराचरण चलता था । बफरखाँ और बलीकुल्लाखाँ की पत्नियों के साथ उसके अव्यवस्थित सम्बन्ध इस सीमा तक पहुँच गये थे कि चलते-फिरते इन्हें बिछाया जाता था । शाकिस्ताखाँ की पत्नी का सतीत्व भंग करने की भी चर्चा है और पीटर मण्डी अपनी बेटो के शाहजहाँ के साथ अव्यवस्थित सम्बन्ध की आत्मस्वीकृति करता है<sup>२</sup> । और यह प्रवृत्ति इस सीमा तक पहुँची कि सम्राट् पर स्वयं अपनी प्रिय पुत्री जहाँनारा के साथ अव्यवागमन का और पातक लगाया जाता है । बर्नियर, तबर्नियर और कार्तू तीनों प्रायः अव्यवस्थित शब्दों में यह आरोप लगाते हैं, प्रसिद्ध इतिहासकार विलियम स्मिथ इसका समर्थन करते हैं, मनुष्य, सम्भवतः सम्राट् का नमक खाने के कारण इस सम्बन्ध में मीन है और इतिहासकार इस

१- टेरी, पूर्वोक्त, पृ० ४०६ ।

२- बनारसीप्रसाद सक्सेना- शाहजहाँ, पृ० १३७ ।

सम्बन्ध में अब तक कोई ठोस और सर्वमान्य निष्कर्ष नहीं निकाल पाये, शास्त्रहाँ के सहानुभूतिपूर्ण विद्वान डा० बनारसीप्रसाद सत्सिना की अदास्त में भी सम्राट की केवल "बहिह का साध" मिल पाता है। यह सच हो या नहीं और अधिक संभावना इसके सत्य होने की ही है किन्तु इसकी संभावनामात्र राजकुल की नैतिक अधोगामिता का पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करती है। उसके परवात् औरंगजेब के उत्तराधिकारियों का जीवन और भी गिरता चला गया। जहाँदरशाह सातकुंवर का बेमोल का नीकर ही था उसे सम्राट कहना संप्रभु की गरिमा और गौरव का उपहास करना है।

९२- इतिहासकार की अभिरूचि प्रायः राजकुल के घेरे तक सीमित रहती है, कम से कम अब ऐसा रहा है इसलिए उनके माथार पर साहित्य की पुष्ठभूमि का दिग्दर्शन कराने में रीतिभुग के सम्बन्ध में साहित्य-तिहासकार अठारहवीं सदी को सामान्यरूप से नैतिक चारित्र्य की गिरावट का काल मान लेते हैं और साहित्य में उसका प्रतिबिम्ब देखते हैं। साहित्य में युगजीवन का प्रतिबिम्ब देखना उपादेय है। किन्तु उसकी आवश्यक उपाधि यह है कि प्रस्तुत साहित्य ही जीवन को प्रतिबिम्बित करता हो। रीतिभुग का यह साहित्य-बन्ध क्लृप्त भी लोकजीवन से प्रायः अस्पृक्ष है इसीलिए उनमें अभिव्यक्ति पाने वाली भोगसिप्सा और विज्ञास-साक्षता के ऐंद्रिक वेग को तात्कालीन युगचेतना का अपरिहार्य अवयव मान लेना प्राति है। भारतीय जन जावनीति के प्रति प्रायः उदासीन रहा है और हमारी दृष्टि में भारतीयों की पराजय का कारण आपसी फूट उठना नहीं बितना राजनीति के प्रति अनसामान्य की उदासीनता। लोग यह समझते हैं कि राजकाज चलाना एक विशेष वर्ग का कार्य है और उन्हें उससे कोई विशेष सरोकार नहीं। जनताजिक भारत में भी यह प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त नहीं पायी। इसलिए रीतिभुगीन समाज की जीवन दृष्टि का अध्ययन करते समय हमें यह सर्वथा ध्यान रखना चाहिए कि नैतिक अधःपतन के विरोध में उसका संघर्षित और सरल जीवन अधिक

---

१- वर्नियर और तवर्नियर--दोनों के यात्रा संस्मरणों में इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

भार हो उठा था । मल्कोम ने भारतीयों के ही सम्बन्ध में कहा था---"मैं समान परिस्थितियों में किसी भी बड़ी जनसंख्या के सम्बन्ध में नहीं जानता था, इसी प्रकार के निर्दुःख शासन में रहकर भी इतने सद्गुणों और योग्यताओं का परिरक्षण कर सकी हो जितने सद्गुण एवं जितनी योग्यताएं इस देश के अधिकांश निवासियों में पायी जाती हैं" । और अनेक वर्षों बाद भारत के वाइसराय बारन हेस्टिंग्स ने भारतीयों को नम्र, उदार सहिष्णु, किसे हुए का आभार मानने वाले, दोनों के प्रतिशोध के लिए अविनाशित उपाय का भाव रखने वाले विश्वसनीय और मानवीय दोनों से सर्वथा मुक्त कहा है<sup>१</sup> ।

१३- जातीय चरित्र वाण में निर्मित और धराशायी नहीं होते उनकी बड़े बहुत गहरे जाती है, सभी भारतीय जन अपने चरित्र को ऐसे सांस्कृतिक संकटकाल से भी निष्पत्तिक निकाल सका है, साहित्य का संदूषण इसलिए हुआ है कि साहित्य को सृष्टि ने सोलजीवन से नाता तोड़कर सत्ता का संपर्क काव्य समझा था ।

१४- भारत की धर्म-परम्परा में मुहम्मद साहब और ईसा मसीह का स्थाना-यन्त्र कोई नहीं है । संभवतः कुरान और बाइबिल का - सा गौरव भी किसी एक ग्रंथ को प्राप्त नहीं है । आखिरीकाल में हिन्दू धर्म का जो रूप था वह अपने "सनातन" नाम को बहुत कुछ सार्वक बनाता है । यह ठीक है कि कर्मकाण्ड और आचार के पीछे निहित विचार-शुद्धता की वैज्ञानिकता की सामान्य जन नहीं समझते वे किन्तु धर्म का मूल वेद और पुराण ही थे , बाव तक भी है, इसमें सन्देह का अंतर नहीं रह जाता । यह भी ठीक है कि अतिनिष्ठ विचारभूमि के छूट जाने से अनेक धर्माभासी प्रत्यय विकसित हो रहे थे । प्राण जो एक साथ न मिलने पर भौतिक संघर्ष से वस्तुएं प्रायः मलिन होने लगती हैं । सती प्रथा तो लगभग सार्वभौम हो गयी थी । टेरी, बर्निबर, फ्रायर, तबर्निबर, मनुषी प्रायः सभी यात्री इसका उल्लेख और निंदा करते हैं । शुभाशुभ विचार पर जनसामान्य तो विश्वास करता ही था सम्राट् आदि तक हुए

१- मैल्कम - मेमार्स, पृ० ४३९-४० ।।

२-रज्जुश्री के पूर्वोक्त शोधप्रबन्ध से ।



विश्वास रखते थे और राज्य के महत्वपूर्ण कार्य, यात्रा आदि के लिए मुहूर्तशोधन के उपरांत ही कार्यारम्भ होता था। जहांगीर अपने आत्मचरित में लिखता है--"हमने सुना है कि सौभाग्य या दुर्भाग्य चार वस्तुओं पर अवलम्बित होता है, पहली पत्नी, दूसरा दास, तीसरा गृह और चौथा घोड़ा। किसी मकान के शुभाशुभ विचार के लिए नियम बनें हैं और वे वास्तव में निर्भ्रान्त हैं। जिस भूमि पर गृह बनाना हो उसके एक छोटे टुकड़े की मिट्टी खोद ले और उसी मिट्टी को उसमें भरे। यदि वह उस मिट्टी से बराबर भर जाय तो वह साधारण शुभ है, न विशेष शुभ है न अशुभ, यदि न भरे अर्थात् कम हो जाय तो अशुभ और यदि भरने पर कुछ बढ़ जाय तो विशेष शुभ है।" ज्योतिष के नीमहकीमों पर जनता का अटूट विश्वास है। दिल्ली के बाजार का वर्णन करते हुए बर्नियर यह बताता है कि स्त्रियाँ पथ के दोनों किनारों पर बैठे हुए तथाकथित ज्योतिषाचार्यों के पास जाती हैं और अपने गृह्यस्तम रहस्य उनके सामने खोल देती हैं। लोगों का यह विश्वास है कि नवाज उनके जीवन पर प्रभाव डालते हैं जिसे यह नवाज वैज्ञानिक अनुशासित कर सकता है। नगर और गाँव के मार्गों एवं गलियों में जंगे घूमते हुए फकीरों का भी उल्लेख प्रायः सभी यात्रियों के संस्मरणों में प्राप्त है। वस्तुतः अज्ञान के कारण धर्म की मूल भूमि से परिवर्ण छूट जाने के फलस्वरूप धर्म एवं धर्माभास में कोई अंतर नहीं रह गया था, यह सत्य है

किन्तु उसके साथ यह भी बाधनीय है कि ये तथाकथित विजातीय विद्वानों द्वारा प्राप्त समझे गये आचार वस्तुतः अज्ञानमूलक एवं असत्य हैं और क्या किसी भी सीमा में ऐसा संभव है कि हम जनसामान्य को इतना प्रबुद्ध कर दें कि वह अपने धार्मिक प्रवृत्तियों का दार्शनिक, कर्तावित विवेचन कर सके, विशेषतः ऐसे धर्मसमाज में जहाँ बाइबिल और कुरान जैसी एकनिष्ठ भक्ति पाने वाला कोई ग्रंथ नहीं है,--इस दृष्टि से इन पर विचार किया जाये। वस्तुतः भारत एक ऐसा देश है जहाँ लोकजीवन का प्रत्येक महत्वपूर्ण और महत्वहीन कार्य या संघटना किसी न किसी रूप में धर्म से सम्बन्ध कर दी गयी है। गठारहवीं सदी



मे दुबोई ने हिन्दू रीति-आचारों का अध्ययन करने के बाद लिखा था "अनेक वर्णों की अधि में हिन्दू रीति-आचारों का अध्ययन करने के बाद भी मैं एक भी ऐसा उदाहरण नहीं पा सका, चाहे सम्बन्धित आचार कितना ही गंदा और अकाम्य क्यों न हो, जिसकी आचारशिक्षा धर्म न हो। कोई भी बात संयोग पर नहीं छोड़ी गयी, हर वस्तु के सम्बन्ध में नियम बना दिये गये हैं और उनकी सभी प्रथाओं का मूल उत्स विशुद्धतः धर्म ही है। यही कारण है कि हिन्दू अपने रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं को अनुत्सर्जनीय समझता है, तत्त्वतः धार्मिक होने के कारण, वे उन्हीं को धर्म समझते हैं। भारतीय समाज के सम्बन्ध में दुबोई का अभिमत वितना उस समय सत्य था, प्रामाण्यः अशिक्षित समाज के लिए उतना ही आज भी सत्य है।

१५- धार्मिक और व्यापक सांस्कृतिक स्तर पर यह दो महान संस्कृतियों के सम्मिलन का काल है। सम्राटों की राज्यसत्तिष्ठा और तर्क कह और हवा, प्रदर्शित एवं अत्याचार की कहानी इतिहासकार की अधिक रोचक और रोमांचकारी प्रतीत होती है, राजमहल की अकिंचन व्याप उसे पन्ने पर पन्ने रंग देने की प्रेरणा देती है और इस धार्मिक सम्मिलन एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध पर अध्याय के अंत में कतिपय संज्ञितियों का परिशिष्ट उसे पर्याप्त समझ पड़ता है किन्तु सत्यदर्शन के क्षणों में इतिहासकार भी इसका महत्व समझता है। एक आधिकारिक इतिहास ग्रंथ के अनुसार "मानव जाति के इतिहास में दो इतनी पूर्णविकसित और इतनी नितांत अलग—हिन्दू और मुसलमान—सभ्यताओं का—सा विराट् संगम शायद ही कभी हुआ है। उनकी संस्कृतियों एवं उनके धर्मों की विस्तृत दूरी ही उनके पारस्परिक प्रभाव की अधिक महत्वपूर्ण और विशिष्ट बना देती है। इस सम्मिलन का सूर्यास्त और स्वर्णकाल अकर के राजत्व में आरम्भ होता है। श्री मुसुफ़ ख़ूबन शही-बरात की "शिराजि" से और ताजिया की कृष्णासीता से

१- दुबोई- हिन्दू मैगर्स पृ० ११ ।

२- कैम्ब्रिज हिन्दू आण्ड इस्लाम, पृ० ५६८ और ६४० ।

साम्ब बताते हुए प्रभाव निर्देश करते हैं<sup>१</sup>। वस्तुतः इस दिशा में अकबर के प्रशस्तिगान में कुछ अतिशयता हुई है किन्तु उस अतिशयता के लिए औचित्य आधार अवश्य है। उसका बेटा जहांगीर अनिश्चित धार्मिक विचारों का व्यक्ति था किन्तु उसने बहुत कुछ अपने पिता द्वारा प्रशस्त मार्ग का ही अनुसरण किया। अपने पीते अकबर की बीमारी के समय उसने शिकार छोड़ देने तक की मनाती की थी। अपने "आत्मचरित" में वह स्वयं स्वीकार करता है कि "हिन्दुस्तान के छः भाग मनुष्यों में पाँच भाग हिन्दू तथा मूर्तिपूजक है। बहुत-सा व्यापार, खेती, वस्त्र बुनना, कारीगरी तथा अन्य कार्य इन्हीं के हाथ में हैं। यदि चाहें कि सबको मुसलमान बना दें तो संभव नहीं कि वे मारे न जाएँ। यह कार्य कठिन है और अंत में ईश्वर उन्हें दण्ड दे सकेगा। मुझे इनके मारने से क्या काम है<sup>२</sup>।" अकबर द्वारा प्रचलित रक्षानियम में राखी बंधवाने की परम्परा उसने बनाये रखी। शाहजहाँ में उतनी सहिष्णुता नहीं थी। उसने एक स्थिति पर हिन्दू मंदिरों की ध्वस्त करने का भी आदेश किया और वस्तुतः मंदिर गिराये<sup>भी</sup> गये। औरंगजेब के शासन में धार्मिक सहिष्णुता और कट्टरता का रूप धारण कर लेती है। यद्यपि यह कहना ठीक नहीं कि अन्य सम्राट् हिन्दू और मुसलमान प्रजा को बराबर समझते थे<sup>३</sup> यह अकबर का शासन धर्म निरपेक्ष था किन्तु यह सत्य है कि औरंगजेब की-सी घातक कट्टरता किसी में नहीं थी। औरंगजेब ने इस्लाम की रक्षा और प्रचार-प्रसार के लिए ही शासन देने की योजना की थी। मंदिर गिराने, बलिबा लगाने आदि के कार्यों से उसने हिन्दू मुसलमान प्रजा के बीच गहरा द्वेष और घाई पैदा कर दी। कूटनीति कुशल औरंगजेब यदि अकबर की नीति कुशलता-अन्य धार्मिक सहिष्णुता की पाठशाळा का स्नातक होता तो शायद मुगल साम्राज्य का भविष्य कुछ और ही होता। प्रो० हुमायूँ खीर, डा० ताराचंद बेहे विद्वानों ने हिन्दू संस्कृति और भारतीय दर्शन पर विशेषतः शंकर पर इस्लाम संस्कृति एवं दर्शन के प्रभाव की अतिशयोक्ति की है, इतनी बड़ी कम्युनिस्ट के

१- मुसक हुसैन—गिलम्यसेब्र जाव मी डिप्लमेट इण्डियन कल्चर, पृ० १९६।

२- जहांगीरनामा, पृ० ४६-४४।

साम्य बताते हुए प्रभाव निर्देश करते हैं<sup>१</sup>। वस्तुतः उस दिशा में अकबर के प्रशस्तिगान में कुछ अतिशयता हुई है किन्तु उस अतिशयता के लिए औचित्य का कारण अवश्य है। उसका बेटा बहागीर अनिश्चित धार्मिक विचारों का व्यक्ति था किन्तु उसने बहुत कुछ अपने पिता द्वारा प्रशस्त मार्ग का ही अनुसरण किया। अपने पोते अकबर की बीमारी के समय उसने शिकार छोड़ देने तक की मनाती की थी। अपने "आत्मचरित" में वह स्वयं स्वीकार करता है कि "हिन्दुस्तान के छः भाग मनुष्यों में पाँच भाग हिन्दू तथा मूर्तिपूजक है। बहुत-सा व्यापार, खेती, वस्त्र बुनना, कारीगरी तथा अन्य कार्य इन्हीं के हाथ में हैं। यदि चाहें कि सबको मुसलमान बना दें तो संभव नहीं कि वे मारे न जाएँ। यह कार्य कठिन है और अंत में ईश्वर उन्हें दण्ड दे सकेगा। मुझे इनके मारने से क्या काम है<sup>२</sup>।" अकबर द्वारा प्रचारित रक्षाबंधन में राखी बंधवाने की परम्परा उसने बनाये रखी। शाहजहाँ में उतनी सहिष्णुता नहीं थी। उसने एक स्थिति पर हिन्दू मंदिरों की ध्वस्त करने का भी आदेश किया और वस्तुतः मंदिर गिराये गये<sup>३</sup>। औरंगजेब के शासन में धार्मिक सहिष्णुता और कट्टरता का रूप धारण कर लेती है। यद्यपि यह कहना ठीक नहीं कि अन्य सम्राट् हिन्दू और मुसलमान प्रजा को बराबर समझते थे<sup>४</sup> यह अकबर का शासन धर्म निरपेक्ष था किन्तु यह सत्य है कि औरंगजेब की-सी पातक कट्टरता किसी में नहीं थी। औरंगजेब ने इस्लाम की रक्षा और प्रचार-प्रसार के लिए ही शासन लेने की योजना की थी। मंदिर गिराने, बजिया लगाने आदि के कार्यों से उसने हिन्दू मुसलमान प्रजा के बीच गहरा द्वेष और खाई पैदा कर दी। कूटनीति कुशल औरंगजेब यदि अकबर की नीति कुशलता-अन्य धार्मिक सहिष्णुता की पाठशाळा का स्नातक होता तो शायद मुगल साम्राज्य का भविष्य कुछ और ही होता। प्रो० हुमायूँ खीर, डा० ताराचंद जैसे विद्वानों ने हिन्दू संस्कृति और भारतीय दर्शन पर विशेषतः संस्कृत पर इस्लाम संस्कृत एवं दर्शन के प्रभाव की अतिशयोक्ति की है, इतनी बड़ी अनुक्ति के

१- बृहत् कौटिल्य-गोपबन्धु नाम श्रीहर्षवत् इण्डियन क्वेयर, पृ० १९६।

२- बहागीरनामा, पृ० ४६-४७।

लिए न तो आधार ही हैं और न वह बाँझीय ही । भावनात्मक एकता के आवेशमय प्रयास में चिंतन की समस्त भूमि छोड़कर यह नहीं भूलना चाहिए कि शंकर वैसा अतीतिक शक्ति संपन्न मेधावी प्रभावों से नहीं विकसित होता, उसके सुजन में सत्त्वों वर्ण की जातीय केतना का उर्वर कोश रीता हो जाता है, राष्ट्रमाता जिस मनीषा को आकार देकर कृतकार्य हो जाती है, वह विवातीय पीणक तत्वों के बल पर दृष्ट-पुष्ट नहीं होता । किसी भी महान देश की बठराग्नि आयात-निर्यात के बाधात्मक से नहीं शक्ति होती, तब उसके मन की भूख विदेश का दर्शन कैसे मिटायेगा यह सामान्य सत्य उपेक्षित नहीं होना चाहिए । काश, मुसलमान शासक न होकर हिन्दुओं के सहवासी होते या शासक बर्बर न होकर सदाशमी होते तो इस समन्वय की प्रक्रिया में कितने पुष्प खिलते यह कल्पना ही बड़ी अर्गर्भ और संभावनाशाम है ।

९६- इस प्रकृति-पुरुष समय सृष्टि के में स्त्री का स्थान हमारी जीवन दृष्टि के अन्तरतम सत्त्वों का आधार बनता है । भारतीय संस्कृति में "यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमते तत्र देवताः" से लेकर "द्वारं तु नरकस्य एको हि नारी" की परस्पर विरोधी पीषणाएं मिलती हैं । वस्तुतः व्यक्तिगत एवं पारिवारिक सीमाओं में स्त्री का जितना महत्वपूर्ण स्थान रहा है, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन से वह उतनी ही दूर रही है । स्त्री स्वतंत्रता पर तो प्रायः आरम्भ से ही प्रतिबंध रहे हैं । भारतीय परिवार का आदर्श रहा है -

पिता रक्षति कीमर्षि, भ्राता रक्षति यैवने ।

रक्षन्ति स्वविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥

फिर भी उसको कार्यों में मंत्री, करणीयों में दासी, भोजन के अवसर पर स्नेहमयी माँ, समनावसर में वक्षत यौवना अप्सरा का स्थान मिलता रहा है । आलोच्यकाल में भी हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमान स्त्रियों की अपेक्षा कहीं

अधिक स्वतंत्र थीं। तत्कालीन बाकी क़ायम लिखता है कि मुसलमान अपनी स्त्रियों को सभी की निगाहों से बचाकर रखते हैं जबकि हिन्दू स्त्रियाँ बाहर जा सकती हैं और स्वच्छ वायु का सेवन कर सकती हैं।

१७- भारतीय परम्परा में एकपत्नीयुत का वैधान्तिक और बहुत कुछ व्यावहारिक महत्व तो रहा ही है, पतिभक्ति की उससे बड़ी महत्ता है। पति वस्तुतः देवता समझा जाता रहा है। बर्नियर लिखता है कि हर हिन्दू सत्तना को घर में यह सीख दी जाती है कि पति ही उसका सब कुछ है, और जिस में उसका वरण किया है, उसके साथ ही उसे अपनी जीवनसीसा समाप्त कर देनी चाहिए। हमारा साहित्य स्वकीया के आदर्शों से ज्ञान्नात है। विवाह कल्पवृक्ष में ही होते थे और द्विरागमन ही जाने के बाद पति के घर पहुँचकर सभी एक कथन्त कठोर अनुशासन में पड़ जाती थी। उसे घर के छोटे बड़े सब काम करने पड़ते—धामी भरना, बर्तन धोना आदि। मनुषी उसकी स्थिति दासी की-सी बताता है। वह कभी अपना मुँह नहीं खोलती, नम्रमुखी रहती है। साथ की गलत-सही माँगें पूरी करती है, प्रसव-काल में उसकी सारी स्वतंत्रताएं छिन जाती हैं। स्त्रियों की पुनर्विवाह की जाणा न थी, और न सताक देने का अवसर। वे पति चाहे जैसा ही उसके साथ निर्वाह करने के लिए बनायी गयी थीं। इसी आधार पर सती पृथा का प्रचलन था। विधवा-जीवन बहुत नारकीय होता था। पितृ-गृह में दासी का जीवन बिताना पड़ता था। उसका जीवन बाँसुनों और तकलीफों की कहानी बन जाता था। वह अपना समय पूजा आदि में बिताती और जीवन के समस्त सुखों का त्याग कर देती। किसी शुभ अवसर पर उसकी उपस्थिति अमांगितिक समझी जाती। बिना धिंदूर की, रीती माँग उसकी अभिला थी।

१८- किन्तु इसके बावजूद भी यह स्वीकरणीय है कि भारतीय समाज में नारी के प्रति अस्वस्थ दृष्टिकोण नहीं था, यदि उन्हें स्वतंत्रता नहीं



थी, तो उन पर क़ायमवार भी नहीं हो सकते थे । यूँ ही मैं बंदी बनायी गयी सित्रियों के साथ क़वन्त मर्यादित और प्रतिष्ठापरक व्यवहार किया जाता था । शिवाजी का व्यवहार तो लौक्यसिद्ध है ही । मनुषी इसकी प्रशंसा करता है । एलेक्जेंडर टाड लिखता है कि भारत में नारियाँ इतनी पवित्र और रक्षणाय समझी जाती हैं कि क़त्ले ग़ाम और महान-विध्वंस के बीच भी सामान्य सैनिक तक उन्हें क़पुष्ट छोड़ देता है । हरम विषय की सभी निरंकुश कृतियों से मुक्त है ।" आलोच्यकाल में नारी परतंत्रता की कटु आलोचना करते समय समालोचक यह भूल जाता है कि नारी स्वातंत्र्य की कल्पना आधुनिक है, अभी दस वर्ष भी नहीं हुए जबकि ईंग्लैण्ड जैसे दीर्घ जनतांत्रिक परम्परा वाले देश की लार्ड सभा की पहली महिला सदस्य बनायी गयी हैं । वह सभा पिछले चार सौ वर्षों से काम कर रही थी । जीवनगत प्रत्यक्ष युगानुशासित होते हैं, इस सामान्य तथ्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जब के बितन को रीति-रुग पर बोपना क़ांछनीय है ।

::::::::::::

अध्याय २  
समाज की रचना

## अध्याय २

### समाज की रचना

#### जाधार-सामग्री-

आलोच्यकाल के समाज की रचना पर विचार करते समय उसके विभिन्न भौतिक एवं धार्मिक या जातिगत वर्गों से संबद्ध सामग्री का अन्वेषण करते समय हम यह देखते हैं कि इस संबंध में हमारे प्रमुख सहायक रीति कवि, वीर काव्य के प्रणेता, संत और तत्कालीन नीति काव्य रचयिता सिद्ध होते हैं। रीति कवियों में ऐसा प्रतीत होता है, केशव (१६१२-१६७४) का सामाजिक अध्ययन सर्वाधिक व्यापक, गहन और प्रमाणिक है। तत्परवात् सेनापति (१६४६) बिहारी (१६६०-१७२०) और पद्माकर (१८१०-१८९०) के काव्य हमारी जाधार भूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं। संत कवि संभवतः तत्कालीन सवर्ग कवि वर्गों से समाज के प्रति कहीं अधिक सवर्ग दिखते हैं। यह जरूर है कि संत कवि तत्कालीन समस्याओं का तैयार समाधान कदापि नहीं दे पाये किन्तु सुवन-प्रधान न होकर दुष्टि-प्रधान होने के कारण इन कवियों का काव्य लोकजीवन और विशेषकर उसके निचले वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहा है। संत कवियों में सुंदरदार (१६५३-१७४६), दरिया साहब (१६३४-१७८०) और पतट्ट साहब विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं। पराजित जाति के वीरकाव्य का मूलस्वर प्रायः प्रतिरोध की भावना का हुवा करता है, इसलिए, आलोच्यकाल के वीर कवियों में हमें यह बात दुष्टिगत होती है। आलोच्य-कालीन वीर कवियों ने प्रायः कोई न कोई ऐसा चरितनायक चुन लिया है जिसे वे हिन्दू जाति और हिन्दुत्व का रक्षक मान कर उसका गुण गान करते हैं। स्वभावतः उनके काव्य में उनके चरित नायक से संबद्ध प्रदेश की सामाजिक अवस्था, वहाँ बसने वाली विभिन्न जातियों और वर्गों के विवरण जाये हैं। इनके चरित नायक तत्कालीन हिन्दू राजा हुए हैं और उनके राजधान्तर्गत सामाजिक व्यवस्था और विभाग का विश्व राजा की कीर्ति के वर्णन के साथ या जाना स्वाभाविक ही था। वीर कवियों में भूषण (१६७०-१७७२) मानकवि (१७१७), सुदन (१८१०), बीरराज (१८७५) विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए

हैं। इनके चरित नामक कृतः शिवाजी और छत्रास, राजसिंह, सुवान और हम्पीरदेव रहे हैं। स्फुटकवियों में गिरधर (१८००) और दीनदयाल (१८८८) विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं। कृष्ण भक्त कवियों में एकमात्र नागरीदास (१७८०-१८१९) से सहायता मिल सकी है। इस संबंध में सूफी काव्य से सामग्री न मिलने की बात बटक्ती है। संभवतः उसका कारण यह रहा हो कि सूफी कवि साधना और रहस्य के कवि हैं। इस संबंध में प्रतीक रूप में कवि अपना कर्म बोध-गम्य कराने के लिए पारिवारिक संबंधों के उपयोग उनके काव्य में अपेक्षाकृत अधिक मिल जाते हैं किन्तु सामाजिक विभाग अपने आप में भेद-भाव पर आधारित होने के कारण उन्हें न सक्तता रहा होगा। यह बात संत कवियों के संबंध में भी प्रयोज्य हो सकती थी किन्तु उन्होंने इस विभाजन की अपेक्षा न करके उस पर प्रहार करना अधिक उपयुक्त समझा। कृष्ण भक्त कवियों में नागरीदास के संदर्भ मिलना आश्चर्यजनक है क्योंकि इन कवियों को भी अपने कहेवा की रास-सीता से फुर्सत कम ही मिली करती थी।

२- भारत के सामाजिक जीवन में परिवार का महत्व अत्यधिक है। वस्तुतः हिन्दू का जीवन जन्म से मरण तक परिवार में ही व्यतीत होता है। परिवार के संबंध में आलोच्यकाल के कवियों की रचनाओं में प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। उसमें व्यापकता का अभाव अस्वर है। उसमें समस्त पारिवारिक संबंधों की अन्तर्भूत करने की चेष्टा नहीं की गयी और कुछ ही संबंधों के अन्तर्गत जाने वाली कुछ विशेष मनोदशाओं और किमाओं का ही अधिक उल्लेख हुआ है। कुल मिला कर परिवार की रीति काल के कवियों ने पर्याप्त मात्रा में अपने काव्य का विषय बनाया है। यही रीति कवियों ने यदुमाकर (१८१०-१८९०) से हमें सर्वाधिक सहायता प्राप्त होती है। उसके अतिरिक्त बिहारी (१६६०-१७९०) मतिराम (१६७४-१७५८), बेनी प्रवीण (१८७४) अक्षर साहि, प्रतापसाहि (१८८३-१९००), के काव्यों से भी सहायता मिली है। संतकवियों में दरिया साहब (१६३४-१७८०) और सुंदरदास (१६५३-१७४६) के काव्य के आधार भूत सामग्री प्रदान करते हैं। सबसे बड़ी का काव्य पारिवारिक सम्बंधों से प्रचुर समृद्ध है।

रूनी होने के कारण पारिवारिक वातावरण में उनका मन स्वभावतः अधिक रमता रहा है। सूफ़ी कवियों में जान (१६१०-१७६४) कासिमशाह (१७५८) और बीषा (१८३०-१८६०) विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं। कृष्ण कवियों में यहाँ भी नागरीदास का आधार मिलता है और वह भी पारिवारिक संबंधों की व्यर्थता बताने की दृष्टि से। वीर काव्य में भूषण के अतिरिक्त (१६७९-१६७९) गीरे सात (१७६४) और सुदन (१८९०) के काव्य आधारभूत सामग्री प्रदान करते हैं। रफ़ूट कवियों में उत्तम सहायता केवल पाव से प्राप्त होती है।

### भौतिक विभाग:

२- रीति कालीन काव्य में व्यक्ति समाज की भौतिक दृष्टि से चार मोटे वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वर्ग के अन्तर्गत राजकुल और सामंत परिवार के लोग आयेगी जो संस्था में सबसे कम होते हुए भी समाज के सर्वाधिक सुखी सम्पन्न और शक्तिशाली लोग थे। समाज का आर्थिक एवं राजनीतिक ढाँचा कुछ ऐसा था कि उसमें शक्तिशाली स्वाभाविक रूप से समाज के छोटे से अभिजात एवं विजातीय वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गयीं थीं। सम्राट् राजनीतिक दृष्टि से सर्वप्रभुत्वसंपन्न अधिपति था। देश की समस्त भूमि और जनता उसके निरंकुश अधिकार में थी। राजनीति और अर्थ एकत्र रूप से सम्राट् के पास होने के कारण उसका और उसके परिवार का जीवन अत्यन्त सुखी और विश्वासपूर्ण था। समीक्ष-काव्य का कवि इस वर्ग के जीवन से इतना प्रभावित था कि उसका मूल स्वर ही बदल गया। राजा की दिन चर्या का वर्णन करते हुए फैसल दास ने "वीरसिंह देव चरित" में बताया है कि फ़ातः कास महं के पासतू शुक नादि पक्षियों की ध्वनि सुनकर राजा उठे और ईश्वरार्पण करते हुए आर्यन में जाते हैं। सुन्दरी मुनिमा उनके पाँव पधारती हैं और स्वच्छ कपड़ों से उन्हें पोछती हैं। वस और मुक्तिका विधिपूर्वक मिलाकर सात प्रकार से उनके हाथ धोये जाते हैं। सदनन्तर कृष्ण चन्दनादि से उनके चरण पुनः पधारे जाते



है, दातीन करने के बाद गंगा बत्तसे स्नान कर, सूर्यदेव की उपासना कर, गोदान देकर फिर भोजन करते हैं<sup>१</sup>। राधा की दिन-चर्या का वर्णन करते हुए सेनापति बताते हैं कि नृप प्रातः स्नान कर, वस्त्रादि बदलने के बाद सभाभवन को जाते हैं, धीरे-धीरे धूप बढ़ने पर प्यारी के संग गणपूरित रंगमञ्च में बत्ताते रहते हैं। रंग-मंदिर के द्वार इस प्रकार बन्द रहते हैं कि बाह्य वातावरण के उत्थान-पतन और परिवर्तन उन पर कोई प्रभाव नहीं डालते<sup>२</sup>।

### नौकर पेशा वर्ग:

४- इस दृष्टि से दूसरा वर्ग नौकर पेशा लोगों का है। इसमें राजकीय अधिकारी एवं भूय और दास दासियाँ आदि आते हैं। कुछ अन्य संपन्न परिवारों में भी घरेलू नौकर नौकरानियाँ रखे जाते थे। दासियाँ गृह-कार्य में गृह-स्वामिनिमों की सहायता करती थी<sup>३</sup>। भौतिक दृष्टि से

१- कै०बी०च०, पृ० २६१-२६३।

२- प्रातः नृत्य-हात, करि आसन बसन गात,  
पैथि सभा जात वी सौ बासर सुहात है।  
पीछे बत्ताने, प्यारी संग सुखाने, बिह-  
रत कसबाने, जब धाम निररात है ॥  
तागे क्वाट, सेना पति रंगमंदिर के,  
परदा परे, न बरक्त कहुँ पात है।  
कोई न भनक, हूँ के जनम - मनक रही  
बेठ की दुमहरी कि मानौँ अररात है ॥

-से०क०र०, पृ० ५८।

३- दासी घर की काम सब करती डोले हाथ।  
बुझती ऊँचे बंस की बीमें ताके हाथ ॥

-सु०गु०पु० १९०।

राजकीय अधिकारियों भूत्यों एवं इतर दास दासियों का यह वर्ग सुख सुविधा पूर्ण जीवन नहीं व्यतीत करता था । शास्त्रहीन तक जाते-जाते मुगल साम्राज्य का वैभव और प्रदर्शन बहुत व्ययसाध्य हो चुका था । राष्ट्रीय उत्पादन पहले से कम या बराबर था, कर वसूल करने में कड़ाई बरतने की आवश्यकता पड़ने लगी थी और उसका दायित्व इन्हीं राजकीय अधिकारियों को सँपा जाता था अतः समाज से भी इन्हें अधिक सद्भाव और सहानुभूति प्राप्त नहीं थी । सरकारी सिखा पढ़ी का काम प्रायः कायम करते थे<sup>१</sup> । औरंगजेब के समय में तो सरकारी कर्मचारियों को पूरा वेतन मिलना भी पूर हो गया था और उसके उत्तराधिकारियों के समय स्थिति और भी बिगड़ गयी थी अतः यह वर्ग अस्तुष्ट, फलतः, क्वाचारी था ।

वाणिज्य एवं उद्योग वर्गों में रत वर्गः

५- तीसरा वर्ग वाणिज्य एवं उद्योग वर्गों में लगे लोगों का था । इसमें सुनार, कंठार, सूबी, सुन्नार, रंगार, तमोली, तेली, तत्पार, नापित, बितारे, लुहार, रंगरेव, भड़भी, कतार आदि के नाम राजविलास में आए हैं<sup>२</sup> । केस ने वैष्णव का भी उल्लेख किया है<sup>३</sup> । उद्योग वर्गों और व्यापार की स्थिति भी बहुत कुछ अनिश्चित-सी थी । रीतिकालीन काव्य

१- मान - राज विलास, पृ० १४ ।

२- क्लृप्त वर्तत सुनार कंठार, सुबी सुन्नार भराए रंगार ।

सिखावट रह कुंठवि नहीर, कुलासल मासिय भाइय भीर ॥

तमोलिय तेलिय बुंद तत्पार, सिखीकर नापित सक्क लुहार ।

बितारे लुहारे सु कागदि केव, बरादि बरादि क्लृ रंगरेव ॥

-मान- रा० वि०, पृ० १४ ।

३- देखत ही भागे रिपु लोग,

ज्यों बन्धनरि भाये रोग ॥

-के० गू०, पृ० ५४२ ।

में विभिन्न समाज के रहन - सहन को देखते हुए वह अनुमान लगाना तथ्य-सम्मत नहीं होगा कि तत्कालीन सामाजिक जीवन का स्तर सामान्य रूप से बहुत ऊँचा था और उद्योग-धन्ये फल-फूल रहे थे । बहुत से उद्योग और व्यापार तो सम्राट् की एवं राजपरिवार व सामन्तों की तथा राजकीय अधिकारियों की कृपा पर निर्भर थे और वह कृपा कितनी ज्यादाति रूप से प्राप्त हो सकती थी उतनी ही अकारण छिन भी सकती थी । कलाकारों और कामगारों को अपनी आजीविका के सम्बन्ध में स्थिरता नहीं प्राप्त थी ।

### कृषक वर्ग:

६- भौतिक दृष्टि से चौथा और जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा वर्ग कृषकों का है । भारत वारंभ से ही कृषि प्रधान देश रहा है । आलोच्यकाल में भी परिमाण की दृष्टि से कृषि की ही प्रधानता रही । वस्तुतः कृषक ही राज्य के सामान्य नागरिक का प्रतिनिधित्व करता है । देश की समझा किसी प्रतिष्ठित जनता कृषि-कार्य में संलग्न है । कृषक - वर्ग गावों में बसता है उस समय तक बड़े-बड़े नगरों का अस्तित्व नहीं था और भारत की संस्कृति और सभ्यता का प्रधान वर्ग ग्रामीण ही था । उसकी आत्मा गावों में बसती थी । उसके रीति और आचार का मूल स्रोत भी ग्रामीण समाज ही था । जनसंख्या और सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से प्रमुख वर्ग होने पर भी वार्षिक विपन्नता और राजनैतिक अधिकार-हीनता के कारण कृषक-वर्ग सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्त्व पूर्ण स्थान नहीं रखता था । उसके जीवन में सादगी और सरलता ही नहीं थी अपितु विपन्नताजन्य अभाव और श्लेश भी थे । गांव के निवासियों को अल्पसंख्यक नागरिक हेतु

दृष्टि से देखते थे<sup>१</sup> । समस्त भूमि पर सम्राट् का अधिकार था और भ्रष्ट प्रशासकों के उत्पीड़न एवं अत्याचार से दवा कुञ्जक गण्डायीपरि अपरः पिहकः सम्बृतः<sup>२</sup> वाली कहावत को चरितार्थ करता था । पास कुछ तो था ही नहीं, जो कुछ था, बहुत कम था, और उस अस्तहाव की नगण्य सम्पत्ति पर भी सौक्ष्म प्रशासक वर्ग की और सम्राट् की भी गूढ़-दृष्टि लगी रहती थी । जब तक होने वाले अकालों ने गरीबी में और भी आटा गीता कर दिया था । इतनी बड़ी संस्था में होकर भी भारत का भूमिपुत्र अपनी ही परती में सामाजिक दृष्टि से महत्व हीन हो गया था ।

### धार्मिक विभाजनः

७- भारत के सांस्कृतिक इतिहास में समाज को अर्थ एवं शक्ति के आधार पर न बाँट कर आरम्भ में कर्म और उत्पराधात् जन्म के आधार पर विभक्त किया गया था इसलिए स्वभावतः सांस्कृतिक इतिहास का अध्येता भारतीय समाज की जाति और वर्ण के आधारों पर ही प्रमुखतः विभक्त कर समाज का अध्ययन करता है । भारत सदैव से विभिन्न जातियों एवं संस्कृतियों का संगमस्थल रहा है । समीक्षकाक्ष में भी अनेक विजातीय तत्व भारत की सामाजिक रचना में उपस्थित थे । तुर्क, भूतपूर्व शासक होने के कारण और

१- कर है, वृधि सराहि हूँ, रहे सबे गहि मौनु ।

गयी मय, गुलाब की गंवई गाखु कीनु ॥

+ + + -वि०र०दी० ६२४ ।

वे न इहाँ नागर, बड़ी दिन जादर तो जाव ।

फूल्ही अनकूछी भयी, गंवई - गाव, गुलाब ॥

+ + + -वि०र०दी० ४३८ ।

सबे छत कर तारि दे नागरता के नाब ।

गयी गरबु <sup>x</sup> मुन की सरबु गये गंवारे गांव ॥

-वि०र०दी० २७६ ।

मुगल तत्कालीन शासक होने के कारण, हिन्दुओं के बाद, संख्या में सबसे अधिक थे । पद्माकर ने तुर्कों के लोग का उल्लेख किया है । बीरसिंह देव चरित में, मुगल और पठानों की अत्यन्त भीड़ होने की बात कही गई है<sup>१</sup>। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार अरब, फारस, पुर्तगाल, इंग्लैण्ड, फ्रांस, डच आदि देशों के लोग भी अच्छी खासी संख्या में थे । भूजण के काव्य में फ्रांसीसियों, फिंरगियों, हम्मियों और तुर्कों के नाम आये हैं<sup>२</sup>।

### हिन्दू (वर्णव्यवस्था):

८- हिन्दू भारतीय समाज का सबसे बड़ा धार्मिक और जातिगत वर्ग रहा है । हिन्दू समाज का ताना बाना वर्ण व्यवस्था के धुरीति निर्मित है । वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज का अपना वैशिष्ट्य है । ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में यह बताया गया है कि ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य उदर से तथा शूद्र चरणों से उत्पन्न हुए हैं<sup>३</sup>। गीता में योगिराज कृष्ण ने गुण-कर्म के आधार पर स्वयं चातुर्वर्ण्य की सृष्टि करने की बात कही है । वे

१- गूजर, मैना बाट बहीर । मुगल पठानन की अति भीर ।

- कै०वी०च०, पृ० १९ ।

२- भूजन भनत करसिंह त्यों फिरगी मारि,

हकसी तुरक डारे डलटि बहाव है ।

देखत मैं स्वसतम साँ की बिन बाक किया,

सात की सुरति जाबु सुनी सो जाबाब है ॥

-भू०गु०पृ० १२० ।

३- ब्राह्मणोऽस्म्यमुबभासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरु तक्षय बक्षीरयः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत् ॥

(पुरुष सूक्त) ।



स्वयं को ही उसका कर्ता और व्यवसाय मानने का आदेश देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्मगत था। कालान्तर में यह कर्म और व्यवसाय का आधार वर्ण बन गया और वर्ण का आधार जन्म हो गया। इस प्रकार कर्म, वर्ण और जन्म एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप में संबद्ध होते चले गये। संस्कृति की उन्नतावस्था में जीवन के हर क्षेत्र में उन्मुक्ति का आतावरण रहता है। कोई भी प्रक्रिया आरम्भ में ऊँच और निर्दोष रूप में प्रवर्तित होकर कालान्तर में बटित और सदीप्त हो जाती है। वर्ण व्यवस्था के संबंध में यह बात पूर्णतः लागू होती है। आरम्भ में जो व्यवस्था कर्म के आधार पर चली और कर्म के परिवर्तन से ही जिसमें हेर-फेर संभव था वही जागे चल कर बटित, अन्याय और जन्मगत आधार वाली बनती चली गयी। अतीत्यकाल भारतीय संस्कृति के इतिहास में यदि पतन का नहीं तो संस्कृतिक गति-रोध और स्थिरता का काल आरम्भ है। इसलिए वर्णव्यवस्था में, समीक्ष्य काल में बटितता और मंदस्तापन आ गया था। शादी-व्याह, खान-पान और वेश-भूषण आदि में तो कठोर नियमों का पालन किया जाता था किन्तु तात्त्विक दृष्टि से विभिन्न वर्ण अपना विशेष विस्मृत कर देने के बाद भी वर्ण विशेष में बनेरहते थे और उससे प्राप्त होने वाली सभी सुख-सुविधाओं का उपभोग करते थे। उन्मुक्ति के स्वान पर बंधनकारी प्रवृत्तियाँ काम करने लगी थीं। पहले स्वर्ग में रत शक्ति और शूद्र की सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई विशेष भेद और ऊँच-नीच का अन्तर नहीं माना जाता था किन्तु जागे चल कर ऊँच-नीच की भावना फट कर गयी और अतीत्यकाल तक जागे-जागे स्थिति पर्याप्त विगड़ चुकी थी। समीक्ष्य काल की वर्ण-व्यवस्था को हमे इसी संदर्भ में देखना होगा।

१- चार्तुवर्ण्यं मया दृष्टं गुणकर्मविभागतः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्वयकर्तारमव्ययम् ॥

९- रीतिकालीन काव्य में वर्णार्थ व्यवस्था के विशद् सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। सुन्दर दास के अनुसार भावान ने वर्णार्थ की व्यवस्था कर सभी को अपने-अपने कर्म का ज्ञान करा दिया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को अपने अपने विशेष बता दिये हैं। केशव ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्तव्यों और वैशिष्ट्यों का जलग-जलग उल्लेख किया है। पंडितगण गुणमंडित, क्षत्रिय धर्मपुत्र और समररत, वैश्य सत्त्वनिष्ठ और पाप से रहित, और शूद्र इन सब के सेवक होते हैं। अन्य स्थान पर केशवदास विप्रा के लिए अध्ययन, राजान्यों के लिए प्रजापालन तथा सत्त्वसदन, और वणिक् वर्ग के लिए कृषि और व्यापार आदि के काम बताते हैं। सात कवि के अनुसार भी जग में जो चार वर्ण जाये हैं और उन सबके लिए प्रभु ने जलग-जलग उच्चों की व्यवस्था की है और उच्च के माध्यम के रूप में हाथ पाव दिये हैं। सुन्दरदास

१- वर्णार्थ बंशोव करि अपने अपने धर्म ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पुनि, शूद्र दिठाए कर्म ॥

-सु० गु० भाग १, पृ० १३ ।

२- पंडितगण मंडित गुन दंडित मति देखिये ।

क्षत्रियवर धर्मपुत्र युद्ध समर देखिये ।

वैश्य संहित सत्त्व रहित पाप पैकट भानिह ।

शूद्र सकति विप्र भाति जीव जगत जानिये ॥

-के० गु०, पृ० १३३ ।

३- विप्र बढ़त नरपात पुनि पातत बल बल दति ।

बनिबनि विविध बधन्य शूद्र कृषि गोकुल सी रति ॥

-के० गु० पृ० ६१८ ।

४- चारि वरन बेका में जाये । सबको प्रभु उच्च ठहराये ।

हाथ पाइ उच्च की दीनी । ताते उच्च करत पुनीनी ॥

-सात - छत्र प्रकाश- पृ० ९१ ।

ने ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों के लिए ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना एवं ऋग्यजुः पवित्र सुख के सागर में कृत्यपुति स्नान करना आवश्यक बताया है। वात्रि का कर्तव्य है कि वह स्त्रि पर ज्ञान-छत्र धारण किये हुए पुत्र का प्रतिपालन करता रहे। वैश्य और शूद्रों को भी स्वर्ग के द्वारा आत्मसाध करने का प्रयत्न करना चाहिए।

### ब्राह्मणः

१०- वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि है। केशवदास जो स्वयं ब्राह्मण थे, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में सर्वाधिक उत्साह दिखाते हैं। उनके अनुसार द्विज जाति को अन्य सभी का प्रभु समझा जाना चाहिये। हम्मीर रासी में विष्टों की भतीभांति पूजा किये जाने का उल्लेख जाया है। केशव रासा के साथ-साथ ब्राह्मण को भी वादरणीय मानते हैं।

१- ब्राह्मण कहावे तौ तू जापहि को ब्रह्म जानि,  
कति ही पवित्र सुख सागर में नहावये ।  
वात्री कहावे तौ तू पुत्रा प्रतिपाल कर,  
हीस वै एक ज्ञान छत्र को फिरावये ।  
वैश्य तू कहावे तौ एक ही व्यापार कर आत्मा को साथ-जनायास पावये ।  
शूद्र तू कहावे तौ तू शूद्र देह त्यागि कर सुंदर कछु निज रूप में समावये ॥

-सु०गुंथ - २, पृ० ३१२ ।

२- भूषण सूरज वंस को भूषण कति को मानु  
दास एक द्विज जाति को सबही को प्रभु जानु ।

-के०वी०दे०व०, पृ० ९ ।

३- जीपराब - हम्मीर रासी- पृ० १४२ ।

उनके विचार से रावा को मारने से स्वार्थ का और ब्राह्मण को मारने से परमार्थ का नाश होता है और संसार इसकी निन्दा करता है<sup>१</sup>। कवित रत्नाकर में भी बामदाग्नि की बनेकृपुस्त अर्थात् ब्राह्मण होने के कारण ही अशुभ कहा गया है<sup>२</sup>। विज्ञान गीता में केशव ने हरि भक्ति से पहले द्वि भक्ति का उपदेश दिया है। क्योंकि ब्रह्म भक्ति से हरि-भक्ति निस्सर्गतः उत्पन्न होती है। नृपति की विपु की सीख सुननी चाहिए और ब्राह्मण की ब्रह्म के समान समझना चाहिए उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहिए और उनका चरणौदक लेकर वासीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। गहंकार छोड़कर भूदेव ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए<sup>३</sup>। आबान् राम जी जगत के नाथ है उन्होंने भी मथुरा-मंडल में सनाह्य ब्राह्मणों के पाँव पूज कर ग्रामदान दिया था<sup>४</sup>। केशव तो यहाँ तक कहते हैं कि पंगु, मूक और जंघ, जनाय और ज्ञा सभी प्रकार के ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए<sup>५</sup>। ब्राह्मण सर्वथा अदण्ड्य होता है। केशव ब्राह्मण को

१- बाम बमदाग्नि जानतैक एक घरी माँक ।

होती जी न ज्वारी यह बिरह बनेकृ की ॥

-से०क०र०, पृ० ८९ ।

२- ब्रह्म भक्ति कीने नृपति उपधि परे हरि भक्ति ।

ताते पहिले ही सुन्हे सिबाल द्वि भक्ति ॥

विपुन की सब सीख सुनो बू । ब्राह्मण ब्रह्म में समान गुनो बू ।

देहु सबे दक दुख न दीजे । वासीअ सो चरणौदक सीजे ॥

छाड़ि गहंकर विपुनि पूजो । भूत में एद ज्ञान पूजो ।

काम सबे तेद पूजन पूजे । ब्राह्मण पावहु पूजन पूजे ॥

-के० वि०गी०, पृ० ९३० ।

३- विधि सो पाँव पवार के राम जगत के नाँह ।

दीन्हे ग्राम सनौदिक मथुरामंडल माँह ॥

-के०गु० पृ० ३६४ ।

४- पंगु ब्राह्मण गुंग अब जनाय राज कि रकं ।

ज्ञा होहि कि विज्ञ भेद न मानिए करि संक ॥

पूजिए मन बचन कर्मनि प्रेम पुण्य प्रमान ।

सावधान हूँ सेइये सब विपु ब्रह्म समान ॥

-के० वि०गी०पृ० २३१ ।

सदैव जड़पडनीय बताते हैं<sup>१</sup>। अर्थक्या में तो एक ऐसा भी प्रसंग आया है जहाँ चोर भी ब्राह्मणों को कष्ट नहीं देते और उन्हें छोड़ देते हैं<sup>२</sup>। सूक्त के अनुसार ब्राह्मण अपने परंपरागत दायित्वों का ज्ञान कर रहे हैं उनमें से कोई कोई सामरिक योग्यताओं में भी प्रवीण है। अनेक रथसंवाहन में दया है, अनेक वेदपुराणों में कुशल है, बहुत से ब्राह्मण वेद स्मृति और ज्योतिष आदि का ज्ञान रखते हैं<sup>३</sup>। ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत भी अनेक उपविभाग हो गये हैं। आलोच्यकाल तक आकर यह व्यवस्था बहुत जटिल हो गई थी। रौट्टी-बेटी के संबंध करते समय केवल वर्ण का ही नहीं अपितु इन उपविभागों का भी ध्यान रखा जाता था और उनके नियमों और वर्जनाओं का कठोरता

१- हे जड़ठ भूधेव सहार्द्र यम तव सुनिवे बधुरार्द्र ।

ईश साव जम याकह दीवे चूक हीन अरि कौठन की वे ॥

-केशव० पु० २०० ।

२- सूत काहि होरा बह्यो किए बनेल चार ।

पहिर तीन सिद्धु बने राख्यो एक ठवार ।

माटी सीनी भूमि से पानी सीनी तात ।

विष्णु बेश सीन्वो बने टीका कीनी भात ॥

-ब०ब०क०, पु० ४७ ।

३- + + + +

तब बनारसी पटा सिलोक दी आसीस उन सीनी चौक ।

कहे चौधुरी आवहु पास तुम नारायन मैं तुम्ह दास ॥

-ब०ब०क०, पु० ४७ ।

४- किते विष्णु कवि धनुष बंग रंगनु के बैठा ।

किते रवनु कलवार सुबस कीरति के बैठा ।

किते पुरान प्रवीन किते बोलिस के जाता ।

किते वेदविधि निपुन किते सु मुक्तन के जाता ॥

-सु०सु०क०, पु० २९ ।



पूर्वक पातन किया जाता था । इनमें भी ऊँची नीची की दृष्टि का प्रवेश हो गया था । केशव दास ने सनाढ्य जाति की नर्मदा की भाँति पवित्र और अन्य उपजातियों से उत्कृष्ट बताया है<sup>१</sup> । मान ने राजविज्ञान में ब्राह्मण उपजातियों में पुरोहित, भट्ट, पाठक, व्यास, तिवारी, चौबे और दुबे के नाम लिखे हैं<sup>२</sup>।

### जात्रियः

१- वर्ण व्यवस्था के स्रोतान में ब्राह्मणों के बाद जात्रियों का स्थान जाता है । उनका कार्य समाज में शांति और सुव्यवस्था बनाये रखना और ब्राह्मण, गी जाति का पातन और रक्षण, रिपुद्वेष एवं आत्माविक तत्वों का संहरण है<sup>३</sup>। वे अपनी बात पर मटल रखते हैं<sup>४</sup>। जीधराज जात्रिय का वादवी बताते हुए कहते हैं कि उसे गर्म खाना नहीं खाना चाहिए, भूमि पर उकड़ू नहीं बैठना चाहिए, शरणागत का त्याग नहीं करना चाहिए, परस्त्री के सम्मुख खड़ा करनी चाहिए । नकारण झूठ नहीं बोलना चाहिए, रण में पीठ नहीं दिखानी चाहिए । एक अन्य स्थान पर हम्पीर-रासो में ही कहा गया है कि जो दोन का दुख देख कर उसका दुख दूर करने का प्रयास

१- सनाढ्य जाति सर्वदा यथा पुनीत नर्मदा - के०वी०दे०च०, पृ० २३५ तथा ६ ।

२- पुरोहित भट्ट पाठक व्यास । तिवारिय चौबे दुबे सुप्रकाश ।।

-मान०स०वि०, पृ० १४ ।

३- यह धर्म छविन को प्रभान पुरान-वेद सदा की ।

द्विज-गऊ पार्श्वहि रिपु ठसासहि सस्त्र-पावहि तन सहे ।

जग जुवा बुद्धु की कबहुँ सपनेहुँ नहि नाहीं की ।

ऐसे परम रजपूत की रन गिरत बारंगन बरै ।।पद्म०गु०पृ० १५ ।

४- रजपूत की संपत्ति यहै पति सदा अपनी राखिये ।

पति गयो पतिनी जादरे नहि और की कह भाषिये ।।

-पद्म०गु०, पृ० १६ ।

करता है, जो पूजा पर प्रीति रखता है, और जो दूसरी के हित के लिए अपने प्राण त्याग देता है, ऐसा शत्रुत्व समर में श्रेष्ठ होता है<sup>१</sup>। जो शत्रुत्व अवस्था और गाय की पुकार सुनकर के उसकी रक्षा के लिए नहीं निकल पड़ता उसका कुल पुण्यी पर तो निन्दनीय होता ही मृत्यु के उपरान्त उसे स्वर्ग भी नहीं प्राप्त होता । अपने कर्तव्य - कर्म का निर्वाह न करने के कारण ब्रह्मलोक में वक्रीयता और परलोक की हानि होती है<sup>२</sup>। शत्रुत्व कुलभूषण को बुद्ध-स्वतन्त्र में पीछे पांव न धरने पर ही जगत में कीर्ति और सुरलोक में वस की प्राप्ति होती है<sup>३</sup>। शत्रुत्व बुद्ध के लिए सौत्वाह प्रमाण करता है बुद्ध में जाते समय उसका सम्बन्ध शृंगार आदि किया जाता है । हम्मीररासी में बुद्ध के लिए पुरुषान करने से पूर्व सङ्गम गौदान करने, सिर पर मौर धारण करने और सूर्य को नमन करने के परवात् बड़ा धारण करने का वर्णन आया है<sup>४</sup>। वही एक अन्य स्वान पर शत्रुत्व अपने शीश पर मौर रखने

१-(क) नहीं भोजन सोहि गरम्भ करै । उरु नहिं बैठत भुम्भि भरे ॥  
 सरणागत आवत नाहिं तबै । पर वाम तबै मन माहिं तबै ॥  
 बहाँ जास्त प्राण न राख तहाँ । नहिं भूठ नकारन भाव तहाँ ॥  
 रन में नहिं पीठ दई कबहुँ । तबि जारति बन्सन सो अवहु ॥  
 तहाँ मेनत जारति वारति ही । मुखे उवरी न टरे कब ही ॥

- जाला हम्मीर रासी, पृ० ५० ।

(ख) तबि दीनन को दुख हरे की पूजा पर प्रीति ।

पुन तबै पर काज की छनी समर कभीत ॥ च०वा० हम्मीरदठ, पृ० २९ ।

२- शत्रु सुनि की ना करै, तबि बल गाय गौहारि ।

पुण्यी कुल गारी बड़े सरम होव मुख कारि ॥ - उ०वि०, पृ० १४९ ।

३- दीन, ग०, पृ० २३२ ।

४- सङ्ग गल करि दान रख सिर मौर सु बण्णी ।

कर्मी बुद्ध की साज छन कुल सुजस सु संण्णी ।

करि सूरज को नमन रख कर सङ्ग संवारी ॥

-बीध० कुरा०, पृ० १४५ ।

राठीर, गीड़हार, बीहान, तोमर, चंदेल, वादल, पौरव, घुन्डीर, पंवार, सेंगर, सोतकी, बंधेरी, बीचर, बुंदेल, बनावर, बड़गुजर, सिक्करवार आदि के नाम लिये हैं।

**वैश्यः**

१२- वर्णावस्था में वैश्यों का स्थान क्षत्रियों के बाद जाता है। वैश्य वर्ण व्यापार - वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। व्यापार-वस्तु में सक्ती (सम्पत्ति) की कृपा होती है। और सक्ती से उन्मत्त होकर दीनदुस्त्रियों को ज्ञात देने आदि के रूप में वस्तु का दुरुपयोग भी संभव है। इसलिए व्यापार - वस्तु या सम्पत्ति वस्तु का नियंत्रण शासन वस्तु द्वारा किया गया है। जैसा कि इनकी उत्पत्ति के इतिहास से स्पष्ट है वे उत्पादन और निर्माण के कार्य करते हैं। वर्णावस्था के विकास की आरम्भिक अवस्था में वे कृषि और वाणिज्य आदि के कार्य करते थे किन्तु कृषिकर्म संभवतः अधिक दिनों तक इनके एक मात्र अधिकार में नहीं रहा और समाज के वैश्येतर लोग भी इसमें भाग लेने लगे होंगे। वाणिज्य-कर्म काफी समय तक अधिकारितः वैश्य वर्ग ही करता रहा है इसका परिणाम यह हुआ है कि वैश्य और वाणिक् या हिन्दी का बनिमा शब्द एक दूसरे के पर्याय हो गये। पारम्परिक रूप में अधिक दिनों तक एक ही कार्य में संलग्न रहने के कारण सभी भारतीय वर्णों में अपने-अपने कार्यों में विशेष दक्षता और कौशल प्राप्त हो गया

१- क्रम राठीर गीड़ हाड़ा बड़वान पौर,  
तोमर चंदेल वादी बंय वितवार है।  
पौरव घुन्डीर पौरहार बी पंवार वैद्य,  
सेंगर सिंहीदिवा सुतकी वितवार है ॥  
सुरकी बंधेरी बीचर बुंदेल वाके,  
बादल बनावर सदा ही वितवार है।  
बीर बड़गुजर बसाठत सिक्कर वार,  
होत कववार वे करत निवार है ॥

है । इस दृष्टि से वार्षिक एवं व्यापारिक कार्यों में बैरयों ने असाधारण कौशल एवं असामान्य दक्षता प्राप्त की है । अतोव्यक्त में भारत जाने वाले यात्री मनुष्य और तबर्नियर दोनों; और तबर्नियर विशेष रूप से, भारतीय बणिक् की गणित संबंधी और व्यापारिक योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं । अतोव्यक्त के काव्य में बैरयों की लाभ-दर्शी दृष्टि की अनेक प्रशंसा की गई है । दीनदयास ने बाजार का रूपक लेते हुए यह बताया है कि वहाँ अनेकानेक दुकानें सबी हुई हैं और बणिक् अपनी-अपनी दुकानों पर बैठे हैं । कवि अन्धोक्ति के माध्यम से अपने मतव्य को प्रकट करने के लिए बरीदार की सलाह देता है कि वह अपनी धन-सम्पत्ति वहाँ न गवाये वह घर में काम जायेगा वहाँ तो सब सूटने वाले हैं । बनिषा अपने बाप को भी ठाने में नहीं हिचकता और अपनी माँ अर्थात् जन्मभूमि को तो वह दिन रात ठाता ही रहता है । गिरधर कविराय संसार के लोगों को उद्बोधित करते हैं कि बैरया और बनिषा मतलब के भार होते हैं । स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर वे किसी के नहीं होते । अन्य बणों की भाँति इनमें भी उपजातियाँ रही होंगी जैसे कि जाव भी हैं किन्तु इनके उत्प्रेष काव्य में प्रायः नहीं मिलते । कुछ ऐसे व्यवसायियों और व्यापारियों के उत्प्रेष अवश्य मिलते हैं जिनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह निरिक्त रूप से बैरय ही थे ।

१- बनिषा अपने बाप का ठौ न लावै बार ।

निशि बासर जननी ठौ वहाँ सेत अवतार ॥

-गिरधर सा० पृ० पृ० ९५० ।

कह गिरधर कविराय सुनी रे सवरे दुईनवा ।

मतलब के ही बार होत बैरया और बनिषा ॥

-गिरधर सा० पृ० पृ० ९१ ।

## शुद्ध:

१४- शुद्ध विराट्-पुरुष के चरणों से उत्पन्न और अन्य तीन वर्णों के सेवक माने गये हैं। जहाँ एक ओर ब्राह्मणों का काम ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में समाज को आगे बढ़ाना, शत्रुओं का विषेय सामाजिक सुरक्षा, शांति और सुखवस्था और वैश्यों का कार्य समाज का भरण-पोषण है उसी प्रकार शुद्धों का कार्य इन सभी वर्णों की कर्त्तव्य रूप में समाज की सेवा करना है। शुद्ध जाति के हाथ में शिल्पबल दिया गया था। वाङ्मय ने "शिल्पैर्वा विविधै-जीवेत् द्विजातिहिमावरन्" की व्यवस्था बतायी है। इनमें भी भिन्न-भिन्न शिल्पों के लिए भिन्न जातियों का विभाग कर दिया गया था। वह शिल्पबल शुद्ध-वत्त है !..... इस दृष्टि से शुद्धवत्त का नियंत्रण व्यापार-वत्त के द्वारा किया गया<sup>१</sup>। इस वर्ग के अन्तर्गत समाज के कौन-कौन-से काम करने वाले लोग जाते हैं। धोबी, चमार, कुम्हार, भोंगी, क्लार, दर्जी, बुढ़िहार, बड़ई आदि इसके अन्तर्गत जाते हैं। वस्तुतः वाङ्मय शुद्ध और अशुद्ध शब्द प्रायः पर्याय से हो गये हैं किन्तु वर्णगत विभाजन के आरम्भ में ऐसी धारणा नहीं थी। वर्णविभाजन के अन्तर्गत शुद्ध उन्हें कहा जाता था जो समाज के सेवार्थ आर्थिक काम करते थे। आरम्भ में उन्हें वस्त्रधर एवं हीन भी नहीं समझा जाता था। ये भावना क्रान्ति में बिकसित हुई। आलोच्य काल के काव्य में इनमें से कौन-कौन-से जातियों के उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर दीनदास ज्योतिष के लिए धोबी के व्यवसाय का आधार लेकर कहते हैं "ये धोबी मेरा निवेदन है कि तुम ऐसी धुलाई करो जो फिर कभी गन्दी न हो<sup>२</sup>।" सुन्दरदास ने धोबी, कुम्हार, दर्जी, बड़ई और

१- पं० गिरिधर शर्मा कर्तुर्बो-वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ० २०६।

२- हे रे मेरे धोबीया तौसी धाणत डेर।

ऐसी धोनी धोव जो मैली होहि न फेर ॥



लोहार के कर्तव्यों का उत्प्रेष किया है। घोड़ी कपड़े धोता है, कुम्हार मिट्टी का काम करता है, बड़ई और लोहार क्रमशः लकड़ी और लोहे के काम करते हैं। दर्वी कपड़े सिलता है जिसके लिए सुई के प्रयोग का उत्प्रेष हुआ है<sup>१</sup>। दीनदयाल ने ग्वास्तिन, किरातिन और पनिहारिन के नाम लिखे हैं। ग्वास्तिन या गद्दीरिन दूध दही आदि से संबंधित गृह कार्य करती है। दही में पानी डाल कर मथने के स्थान पर पानी में दही डाल कर मथरही है। इसलिए कवि उसे मम व्यर्थ न करने का उद्बोधन करता है। किरात वन्य ब्रह्मति है इसलिए किरातिन वन के मृगों को माणिक्यमुक्ताओं से अधिक मूल्यवान् समझ कर, माणिक्यमुक्ताओं को त्याग देती है। पनिहारिन बलाशय में लोगों से भगड़ती रही है और बाली पड़ा लिये घर चली जा रही है वहाँ उसे अपने पति की डांट बानी पड़ेगी<sup>२</sup>। इनके अतिरिक्त दीनदयाल के काव्य में माखी, कुत्ता, दर्वी के नामों और कामों का उत्प्रेष जाया है। माखी बाग बगीचे आदि की व्यवस्था का काम करता है। उसके बाग में चन्दन का विशाल वृक्ष है। कुत्ता या कुत्तार मादक वस्तुओं को तैयार करते और बेचते हैं। मादक वस्तुओं के संपर्क के कारण उसे भी मद हो गया है, कपड़े सीते-सीते दर्वी को न जाने कितने दिन बीत गये

१- कपरा घोड़ी को गहि धोवै । माटी बपुरी की कुम्हार ॥  
 सुई बिचारी दरिबिहिं लोवै । सोना तावै पकरि सुनार ॥  
 लकड़ी बड़ई को गहि छीसै । बाल सु बैठी भवै लुहार ॥  
 -सु०गुं-पु० ५२३ ।

२- बारि बिलोवै छारि दधि करी बांधरी ग्वासरि ।  
 हूँ हे कम तेरी बुधा नहिं पैहै कुत छारि ॥  
 गुवन की वन देखिके मुकुन दीनी त्यागि ।  
 करी अबूक किरातिनी धिक धिक तेरी लागि ॥  
 पनिहारी इहि सर परे तरति रही सब पाह ।  
 रीतौ छट है घर चली उतै मारिहै नाह ॥

-दी०गु० पु० २३५-२३६ ।

हैं ।

चार्तुर्वर्ण्येतरः

१४- कुछ ऐसी बातियों के उत्प्रेष भी मिलते हैं जिन्हें चार्तुर्वर्ण्य के अन्तर्गत रखने में कठिनाई होती है । इनमें काव्य प्रमुख है । किसी क्षेत्र में यह अपने को ब्राह्मण कहते हैं वहीं इन्हें क्षत्रिय वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट करते हैं और कहीं शुद्र ही समझा जाता है । काव्य में इसप्रकार के उत्प्रेष आये हैं जहाँ इनके कार्यों की चर्चा है । ये लोग प्रशासन सम्बन्धी शिक्षा पढ़ी में अत्यन्त निपुण होते हैं । प्रशासन के छोटे बड़े पदों पर सेवा बीका रक्ने और लिखने - पढ़ने का काम करने के लिए इन्हें नियुक्त किया जाता था । राजविस्तार में महाराजा जगतसिंह के वैभव और नगर का वर्णन करते हुए मानकवि ने बताया है कि वहाँ कई हजार काव्य बसते हैं और विभिन्न प्रकार की शिक्षा पढ़ी का काम करते हैं<sup>१</sup> । राज-दरबार और प्रशासनिक कार्यों से संबद्ध होने के कारण ये दरबारी सभ्यता में विशेष दया होते थे । केशवदास जी स्वयं दरबार से संबद्ध थे और अत्यंत व्यवहार-कुशल थे, काव्यों की प्रशंसा करते हुए बताते हैं वे अत्यन्त साधु प्रकृति के, निरर्था भी और सच्चे होते हैं, उन्हें धर्माधर्म और कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान रहता है । और वे राजकीय शिष्टाचार में अत्यन्त निपुण होते हैं<sup>२</sup> ।

१- माखी तेरे बाग में चंदन लगी विस्तार--॥

कौनो मद में है भरी या की करी पिछान ।

यहि कुशल की देखि रही प्रसन्न निधान ॥

दरजी सीवत तोहि मे दिन बहु बरने कौन ॥

-दीन-गुं० पु० २३२-२३४ ।

२- यही तहं काव्य केतु ह्वार । लिखै बहु लेख अतिव लिखार ॥

-मान-रा० वि० पु० ३४ ।

३- परम साधु काव्य बानिष, निरर्था भी सावो मानिष ॥

बानि धर्माधर्म विचार बानि आनि नृत्त व्यवहार ॥

-के०वी०दे०च प्रकाश ११ छन्द ३ ।

वर्ण व्यवस्था की पतनोन्मुख स्थिति : ब्राह्मण-

१५- वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म के आधार पर आरम्भ हुई थी। वस्तुतः वर्णव्यवस्था हिन्दू संस्कृति का एक ऐसा वैशिष्ट्य है जिसका समतुल्य किसी भी जाति की संस्कृति में उपलब्ध नहीं है। जिस पुरुष सूक्त<sup>१</sup> में सभी वर्णों की उत्पत्ति का इतिहास बताया गया है उसमें यह दर्शनीय है कि चारों वर्ण एक ही विराट् पुरुष शरीर के अवयव हैं और जब ब्राह्मण की मुख तथा शूद्र की विराट् पुरुष चरणस्वरूप बताया जाता है तो ब्राह्मण की इस रूप में बड़ा बताने का प्रयोजन कदापि नहीं है कि उसका महत्त्व शूद्र की हीनता का कारण बन जाय। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर में मुख, हाथ, उदर एवं चरणों का समान महत्त्व है उसी प्रकार भारत की सामाजिक रचना में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्णों का अपना अपना महत्त्व है और एक के महत्त्व में अनिवार्यतः दूसरे की हीनता नहीं सिद्ध होती। अतः हिन्दू वर्ण-व्यवस्था ने तो वह आधार प्रदान किया जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का समाज में एक निश्चित स्थान और महत्त्व निर्धारित हो सका। डा० राधा कृष्णन् के अनुसार "हिन्दू-वर्ण-व्यवस्था हिन्दुत्व पर बाहर से पड़ने वाले प्रभावों और तन्त्रन्त्र समस्याओं का समाधान सिद्ध हुई। यह एक ऐसा माध्यम थी जिसके द्वारा हिन्दुत्व ने विभिन्न जनजातियों को अपने भीतर लेकर उन्हें सभ्य और सामाजिक बनाया।" इसके अग्रे हिन्दू वर्ण-व्यवस्था की आधार - भूत मान्यता और धारणा को बताते हुए डा० राधा कृष्णन् के अनुसार हर समाज में ऐसे विभिन्न सक्रिय व्यक्ति समूह होते हैं जो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। चूंकि यह विभिन्न समूह एक ही एक सामान्य सत्य की पूर्ति के लिए क्रियाशील रहते हैं इसलिये वे

१- ब्राह्मणी स्व मुखमासीद् वाहू रावन्वः कृतः

ऊरु तदस्य वक्षसः पद्भ्यां शूद्रो जायत ॥

-पुरुष सूक्त ॥

२- राधाकृष्णन् - द हिन्दू अथ माफ़ साइफ, पृ० ७५।

एकता की भावना एवं सामाजिक बन्धुत्व की शुद्धता में आवद्ध होते हैं। सांस्कृतिक और आध्यात्मिक, सैनिक एवं राजनैतिक, आर्थिक और अकशुल नैतिक - ये वर्ण-व्यवस्था के चार आधार-स्तम्भ हैं। इस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न कर्तव्य कर्म स्पष्टतः पृथक् कर दिये गये और उनके विशिष्ट एवं पूरक स्वरूप की मान्यता दी गयी। हर वर्ण का अपना सामाजिक प्रयोजन है उसकी अपनी आवश्यकता और परम्पराएँ हैं ---। हर समूह अवाप्ति रूप से अपने स्वयं की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने की स्वतन्त्रता रखता है। विभिन्न वर्णों के कार्य समग्र समाज के लिए समान महत्व के समझे गये हैं। अध्यापक की पुनीतता, योद्धा का शौर्य, वणिक् की सत्यनिष्ठा और नैतिक का वैय्य और उसकी ऊर्जा सभी सामाजिक समुदाय के समान रूप से योग्य हैं। प्रत्येक की अपनी पूर्णता है।" किन्तु जिस व्यवस्था को इतने सद्भाव और ठोस लोकमंगल की धारणा के आधार पर बनाया गया, जिसका आधार गुण और कर्म थे, जो वास्तव तत्त्वों की आत्मसात् कर, विभिन्न सामाजिक समूहों की उक्ति और वैय्य महत्व देने के लिए निर्मित हुई थी वही धीरे-धीरे सत्त्वहीन, पतनोन्मुख और विकृत होती गयी। सद्भाव-मूलक व्यवस्था ने दुर्भाग्यवशों के बीच बोये। ठोस व्यवस्था के आधार पर वर्ण-विभाग का भ्रम खोखला और खरब होने लगा। संघटन और समन्वय के लिए जो संगठन तैयार किया गया था वह विघटन और अस्तमंथन का हेतु बना। कर्म और गुण के स्थान पर बन्ध और पावण्ड के आधार पर अवैय्य और अवांछनीय व्यक्ति अनुचित स्थानों पर बने रहे। विजातीय तत्त्वों को अपने में लेना और उनके लिए सामाजिक रचना में एक विशिष्ट स्थान देना तो दूर रहा अपने ही समाज में अनेक कटघरे बन गये। व्यक्ति और विराट् धारणा के स्माय पर संकीर्णता और हीनता का वातावरण उत्पन्न हो गया। वहाँ सभी की समान महत्व का का स्थान प्राप्त था। वही एक वर्ण दूसरे वर्ण को, एक उपजाति दूसरी उपजाति को हीन समझने लगी।

हर वर्ण अपना कर्तव्य तो भूलने लगा किन्तु अपने अधिकार पर अपना-कृत अधिक और आजादीय बल देने लगा । यह प्रक्रिया आरम्भ तो बहुत पहले ही हो गयी थी । मनुस्मृति आदि ग्रन्थ शूद्रों के प्रति अपने उदार और सहिष्णु नहीं है किन्तु आलोच्यकाल तक जाते-जाते, सांस्कृतिक पराभव की प्रक्रिया की चरमावस्था के परिणामस्वरूप वर्ण-व्यवस्था में जितना गंदापन आया उतनी ही दुरुस्ती भी आयी । छुआछूत, खानपान और अन्य प्रकार के सामाजिक आदान-प्रदान के नियम अधिकाधिक कठोर होते गये । बृन्द कवि को यह सलाह देने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि कुछ करने से पूर्व सम्मत् ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । किसी का बन्धन ग्रहण कर लेने के बाद वर्ण कृत आदि के सम्बन्ध में पूछाछ करना उपयुक्त नहीं है<sup>१</sup> । विप्र, विचार के स्थान पर आचार और कर्मकाण्ड के क्षेत्र में बलिबादी हो गये<sup>२</sup> । कवि नागरीदास लिखते हैं कि अनेक विप्रों ने अपना धर्म छोड़ दिया है और वे अब पवित्र आचरण वाले और इन्द्रियवित् नहीं रह गये हैं अपितु अपनी विभिन्न इन्द्रिय बुभुक्षाओं की सम्पूर्ति में ही लगे रहते हैं । सुपात्रों की संख्या घोड़ी है, कुपात्रों की संख्या अधिक हो गयी है । द्वित्व का चिह्न अनेक मात्र शेष रह गया है । द्विकृत यद्यपि कलिकात बन्धन कमुणों से मुक्त हैं फिर भी समर्थ हैं । जो इनकी सेवा करे वह तो भला समझा जाता है पर इनकी सेवा न करने वाले की निन्दा होती है । यद्यपि इनमें अनेकानेक कमुणों का वास है तथापि वह सभी वर्णों

१- जो करिए सो कीविये पहिले की निवारि ।

पानी पी कर पूछियो नाहिं न भली विचार ॥

बृन्द.सा० प्रभा० पृ० १९० ।

२- बलि करहिं विप्र आचारा । दे चौका लोक निनारा ॥

सु०मं० पृ० ११८ ।



के सिरमौर है, परती के देवता हैं । दरिया साहब का कटाव इससे भी पैना और तीखा है । शाक्तों को निन्दा करने वाला वैष्णव ब्राह्मण अपने घर में शाक्त स्त्री रखता है अपने को बड़ा कुलीन कहने वाला यह ब्राह्मण उस मांस भक्षिणी स्त्री के साथ सहवास करता है, उसका चुंबन लेता है । वह सरासर भूठ बोलता है फिर भी कन्धे पर बनेल धारण करता है<sup>१</sup> । वेदाध्ययन तो किसी सीमा अ तक जब भी शेष है पर जीव हत्या करके मांस-भक्षण करने वाले वेद के पठन-पाठन से क्या साधक ऐसे ब्राह्मण

१- बहुविप्रुन तवि दीनी धर्म:- - - - - ॥

सिसन उदर पोषन कीप्रीति मुचि जावार न इन्दीजीत ॥

पातक बोरे बहुत कुपात्र रही न एक बनेल मात्र ॥

द्विज कसि कुत जीगुन भरे तल समर्वा दीय ॥

भली करे सेवे इन्हे बुरी ओसे होय ॥

जयपि जीगुन हू भरे तल वरन के भूष ॥

कहीं है देव ब्रह्मन्व हरि विप्रमान की रूप ॥

- ना० स० पृ० ४१

२- सकल जीव का कहै बुझाई । चञ्छित के घर सोच न जाही ॥

अपने ब्राह्मन किस्मों होई । घर में साकठ मेहरि होई ॥

मासु खाव संग सूतई जाई । ताके मुख चुंबन गहि ताई ॥

कहत फिरै हम बड़ा कुलीना । परवा में तुरकिन नहि बीना ॥

भूठ कहै सब भूठ सुनावै । नौमुख कापि बनेल सावै ॥

- द० गृ० पृ० ८४ ।

की बात मान कर संसार की व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मांस  
पछती भक्षण करने वाला ब्राह्मण अन्ततः नर्कगामी होता है<sup>१</sup>।

### वात्रिय एवं वैश्यः

१६- इसी प्रकार वात्रिय वर्ण भी अपना कर्तव्यकर्म भूल बैठा  
है। समाज में शांति और सुव्यवस्था बनाये रखने, सत्य और न्याय की रक्षा  
करने वाला उत्तरदायी वर्ग स्वयं जातताधी और कर्माचारी बन गया है।  
उसे स्वयं कुर्म करते हुए लग्ना नहीं जाती। रक्षक भक्षक बन गया है, पातक  
ने संहारक का रूप धारण कर लिया है। वह स्वयं प्रजा की संपत्ति और  
प्राणों का हरण करने लगा है। गौ और ब्राह्मणों का प्रतिपालन करने  
वाला वात्रिय स्वयं उनके विनाश का हेतु बन गया है वह स्वयं चोर है और  
उन्हीं के संपर्क में रहता है सत्य का उसमें वैश्यान् भी शेष नहीं रह गया है।  
उसका बाह्य स्वरूप मूछी का तना होना, बड़ी भुक्ति और हाथ में कुपाण  
तो अब भी ज्यों का त्यों है किन्तु रण से भागते उसे लग्ना नहीं जाती।  
सौम्य और सौहार्द, उदारता और विश्वास इत्येता, सहिष्णुता और  
सदाशयता, सत्यनिष्ठा और क्षमाशीलता जैसे गुण उसकी प्रकृति के अंग नहीं  
रहे। बौढ़ी सी भूमि के लिए पिता पुत्र की हत्या कर देना उसके सख्त हो  
गया है। अपने कर्तव्य-कर्मों से विहीन वात्रियों ने वणिक् कर्म में दबाव  
प्राप्त कर ली है<sup>२</sup>। लोभ और स्वार्थ उसके पास नहीं फटके, अहंकार की सुन्दर स्त्री  
के साथ वे बसाहकार करते हैं। रोगी और बलहीन हो गये हैं। वैश्य भी

१- ब्राह्मण वेद पढ़े का पाप है। जीव मारि मांस मुख लावे ॥

ताक बात माने संसारा। जैसे वेदि उतारहिं पारा ॥

मांस पछती ब्राह्मण वो जाई। की कात फेरि जम फर जाई ॥

-दरिया-गुं, पृ० ११।

२- ना.सं०, पृ० ४९।

उनकी प्रकृति का सख्त ऋण हो गया है<sup>१</sup>। वैश्यों में भी परम्परागत गुण नहीं रहे। अयम और पाप का उनके वहाँ भी बोझ बाँटा है। वे मस्तिन वस्त्र धारण करते हैं। परमार्थ का विम्वन तो कभी करते ही नहीं अपने कर्तव्य से भी विरत हैं। अन्य वर्णों की सेवा से मुँह मोड़ते हैं कपट और मिथ्यावरण उनके लिए स्वाभाविक हो गये हैं। राह छोड़ कर कुराह पर चले हैं, चोरी करते हुए भी साहूकार कहे जाते हैं<sup>२</sup>। गिरधर कविराय लोगो को यह बताते कि वैश्य और वनिजा मतलब के पार होते हैं। वनिजा अपने बाप को भी ठाने में संकोच नहीं करता। जिस घरती की कीड में उसने जन्म लिया है उसी के निवासियों को दिन रात ठगता रहता है<sup>३</sup>।

सु५:

१७- जब उच्चवर्णों की यह दशा है तो तथाकथित निम्नवर्ण का तो कहना ही क्या? वास्तुतः जिस प्रकार सद्गुण और चारित्रिक स्वास्थ्य समाज के उच्च वर्ग या नेतृ वर्ग से चलकर नीचे की ओर विभिन्न धाराओं में प्रसरित होते हैं, उसी प्रकार दुर्गुण और चारित्रिक अधःपतन भी उच्च वर्ग में आरम्भ होकर निम्नवर्ग की ओर फैलता है, और क्लेशाकृत अधिक तेजी से फैलता है। नागरीदास के अनुसार जब मुक्त वर्णों की यह अव्यवस्था है

१- तिनके एक लोभ को स्वारथ । दया मया नाहीं परमारथ ॥  
 वा निर्वल के सुन्दर नारी । गहि जानत अइसे विभिवारी ॥  
 ऋण सरीस सदा बलहीन । पर कर ही भाग्य है दीन ॥

-ना०स०पु० ४२ ।

२- वैश्य वंश महापापी भये । मनठेपम धर्मनि को लये ॥  
 मस्तिन वस्त्रनि महा कुचील । परसै उपबल नहान सचीन ॥  
 परमारथ कबहुँ नहि करै । चतुरात्म सेना से टरै ॥  
 वणिज कपट परिपाटी पड़े । मिथ्या महा विवादनि बड़े ॥  
 छलित राहल लो कुनाल । चोरी करै कहावै साह ॥

३- गिरधर०दा०रत्नाकर, पृ० ९१ । -ना०समु०पु० ४३ ।

गिरधर०दा०प्रभाकर, पृ० ९५० ।

तो लुड लुडों की दाता तो और भी चिन्तनीय होना स्वाभाविक है । वे लोग भी अपना कर्तव्य-कर्म भूल बैठे हैं । अनेक प्रकार के अकरणीय कार्य करने लगे हैं । उनके पास कर्मों की सूची अकर्णनीय है<sup>१</sup> । इस प्रकार समाज के सभी वर्गों में अयःपतन और अराजकता व्याप्त है । ब्राह्मण गते में बनेका धारणा करने के बाद भी ब्रह्म से अनभिज्ञ है, शास्त्रि शौर्यहीन और शास्त्रार्थ-विहीन है, क्षत्रिज् और शूद्र भी अपने अपने कर्तव्यों को भूल चुके हैं<sup>२</sup> । यह चातुर्वर्ण्य के अयःपतन की पराकाष्ठा का कात है । किन्तु ऊपर उद्धृत साक्ष्य पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि<sup>३</sup> टिप्पणियाँ लोक हित-वितक संत कवियों की हैं ।

१८- इस व्यापक अयःपतन और लोचलेपन का ही परिणाम है कि अनेक लोग जाति-पाति को निरर्थक समझ कर उसका खण्डन करने लगे थे । जब कोई व्यवस्था अपना अभिप्रेत सिद्ध नहीं करती तो सबसे पहले समाज का चिन्तक और भविष्यद्रष्टा वर्ग उस पर प्रहार और आक्रमण करता है किन्तु यह वर्ग धोषी और निष्प्राण व्यवस्थाओं पर जितने ही क्रूर प्रहार करता है वनसाधारण उनसे उतना ही बिपका रहना चाहता है । उसे इन जर्जन और सड़ी-गली परम्पराओं से एक प्रकार का मोह हो जाता है । वह भविष्य द्रष्टा

१- मुख्य वर्ग हू कि बु बहे गति । लुडनि लुडनि की कहा मति ॥

तपस्वी रूप पतिग्रह लेत । जानत नहीं आपनी भेष ॥

विविध अकर्मन के परकार । तिनके बसत है विस्तार ॥

पापकर्म की कहा लगि कहै । अतब लुड की का तहै ॥ ना०स०, पृ० ४३ ।

२- सूत्र गरी महिं भेलि भयो द्विज ब्राह्मण हूँ कर ब्रह्म न जान्यो ।

शास्त्रि हूँ कर शास्त्र धर्यो सिर हूँ गव पैदल सो मन मान्यो ।

वैश्य भयो वपु की वय देखत मूठ प्रपंच बनिन्य छिठान्यो ।

शूद्र भयो मिल लुड शरीरहि सुन्दर आपु नहीं पहिचान्यो ॥

-सु०सं० पृ० ५८६ ।

विचारक की बात सुनकर झुंझता पड़ता है। जाति व्यवस्था के संबंध में यह पूर्णतः सत्य है। जालोच्य-काल से पूर्व, तुलसी जैसे लोककवि ने भी वर्ण-व्यवस्था के संबंध में हलके-हलके, उसकी अनावश्यकता के संकेत देने आरम्भ कर दिये थे, और तुलसी से भी पूर्व कबीर के प्रहार, समाज की अन्य वर्ग मान्यताओं, गौरे विश्वासों और अशिक्षित पाखण्डों के साथ ही वर्ण व्यवस्था पर, भी अत्यन्त निर्मम और कठोर थे। जालोच्यकाल तक जाति-जाति के प्रहार अधिक गुरुतर और व्यापक होते गये। दरिया साहब के विचार से जाति पांति कोई नहीं पूछता- पूछती वास्तव में निर्मल ज्ञान की होती है। संतों की जाति और अजाति तो इस बात पर निर्भर है कि उसे मोक्ष मिला या नहीं जिसे निर्वाण पद प्राप्त हो गया वह उत्तम और जिसे नहीं प्राप्त हुआ वह निकृष्ट है<sup>१</sup>। पलटू साहब के अनुसार ब्राह्मण, शूद्र, के विभाजन निराधार है। हम सबमें एक ही आत्म-तत्त्व विद्यमान है। फिर यदि ब्राह्मणात्व का बिह्वल जनेऊ है और ब्राह्मण उसे धारण किये रहता है तो ब्राह्मणों के गति में भी वह बिह्वल होना चाहिए, बैसा कि होता नहीं, और जिसके अभाव में उसे शूद्र स्त्री समझा जाना चाहिए और शूद्र स्त्री का बनाया जाने वाला व्यक्ति ब्राह्मण भी है, यह बात समझ में नहीं आती<sup>२</sup>। यह विचार संत कवियों का ही नहीं है। महाकवि देव भी इस <sup>विषय</sup> में है कि सभी की उत्पत्ति रज-बीज से हुई है, सभी विनाशशील है, सभी एक प्रकार के हैं, किसी में कोई वैशिष्ट्य नहीं है, सभी कुम्हार के एक बाजा के बर्तनों जैसे हैं। तिस पर भी वह ऊँचीब का विचार करना और इस निराधार को बढ़ाना अर्थ है। वेद छोड़ देने के बाद ब्राह्मण और शूद्र एक से <sup>ही</sup> जाते हैं, एक की पावनता और दूसरे की अपावनता का प्रश्न नहीं रह

१- जाति पांति नहीं पूछहु, पूछहु निर्मल ज्ञान ।

संत के जाति अजाति है विन्दि पद पायी निर्वाण ॥

-दरिया-गुं, पृ० २८९ ।

२- पलटू बानी २।४४ ।



जाता<sup>१</sup> ।

आश्रमः

१८- वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ आश्रमों के रूप में व्यक्ति के जीवन का चार भागों में बाँट दिया गया था । आरंभ में ब्रह्मचर्य, तत्परचात् गार्हपत्य, वानप्रस्थ और अन्ततः संन्यास । ब्रह्मचार्याश्रम में व्यक्ति गुरुकुल आदि में वेदाध्ययन करता था । उसके बाद विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करता, पुत्रों के बड़े हो जाने पर घर का काम काज उत्त्साहपूर्वक सपत्नीक बन को चला जाता और अंत में एक बार जाकर, पारिवारिक परिस्थितियों का पुनः अवलोकन कर, तत्संबंधी अंतिम व्यवस्था कर संसार से विराग हो संन्यास आश्रम में प्रवेश करता । "वर्णव्यवस्था जहाँ सामाजिक संगठन दिखाती है, वहाँ आश्रम व्यवस्था एक ही व्यक्ति को समय भेद से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति का साधन करना सिखा देती है । केवल लौकिक उन्नति के चक्कर में पड़ हम आध्यात्मिक दृष्टि से विमुक्त न हो जायें और मनुष्य जीवन का फल ही सर्वथा न लो बैठे । इसका उपाय आश्रम-व्यवस्था कर देती है<sup>२</sup> । आलोच्य-काल में वर्णव्यवस्था के साथ साथ आश्रम विधान के उत्सृष्ट भी मिलते हैं किन्तु स्पष्टतः आश्रम व्यवस्था का अस्तित्व नाम - मात्र को ही रह गया था । व्यक्ति के जीवन के सभी व्यापार गार्हपत्य में ही सम्पन्न होते थे और सर्वश्रेष्ठ रूप से या किसी व्यापक पैमाने पर भी आश्रम व्यवस्था के प्रचलित होने की संभावना नहीं

१- है उपवे रजबीवहि ते विनसे हू सवै छिति पाद के छडि ।

एक - से देख कहू न कितेहु ज्यों एकै उन्हार कुन्हार के भडि ।

तापर ऊँच जौ नीच विचार बुधा बक्वाद बढ़ावत चडि ।

वेदानि मूढ़, कियो इन मूढ़ कि सुदु अपावन पावन पाडि ॥

-देव०दे० सु०, पृ० २१ ।

२- गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी- वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ० २०८ ।

प्रतीत होती ।

अनेकता में एकता:

भारत आरंभ से ही विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है । इसीलिए भारतीय संस्कृति का प्रमुख वैशिष्ट्य अनेकता में एकता का विधान तथा एकता में अनेकता की रक्षा रहा है । भारतीय इतिहास का अष्टम ज्ञात प्रथम ऐतिहासिक काल, यहाँ आर्यों के आगमन से आरम्भ होता है । तबसे लेकर अब तक विदेशी और विजातीय यहाँ आते रहे हैं । अपने साथ वे अपनी संस्कृति और सभ्यता लाते, इस देश की धरती में बसते, यहाँ के लोगों से घुलमिल जाते और अन्ततः यही के बन जाते रहे हैं । सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत काल में भारत में विजातीय तत्वों को पचा कर अपने से मिला लेने की अद्भुत शक्ति रही है । भारतीय जन का निर्माण करने वाले विभिन्न तत्वों अनार्य, आर्य, शक, हूण, पयन आदि में से कुछ को बाह्य विशिष्टताओं और आचारगत भिन्नताओं के आधार पर पहचान लेना भी संभव हो किंतु उन सबके अन्ततः में प्रवाहित भारतीय संस्कृति के स्रोत का दर्शन भी उतना ही सहज और स्वाभाविक है । भारतीय संस्कृति का कोई विशुद्ध रूप नहीं है और किसी भी परिवार का व्यक्ति अपने को इन आरंभिक वर्गों में से किसी एक का विशुद्ध वंशानुवर्ती बताने का दावा नहीं कर सकता । अब दो जन परस्पर संपर्क में आते हैं तो संवेदन-शील प्राणी होने के नाते उनमें पारस्परिक ज्ञान-प्रदान चलता है । यह ज्ञान-प्रदान स्थूल रक्त एवं वंश के घरातन पर हो सकता है, संभव है न भी हो किन्तु अन्तर्मन के स्तर पर संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में आचार और व्यवहार की दृष्टि से यह ज्ञान-प्रदान अपरिहार्य हो जाता है । भारतीय जन के निर्माण में यह प्रक्रिया स्थूल आनुवंशिक घरातन पर और सूक्ष्म सांस्कृतिक क्षेत्र, दोनों रूपों में चलती रही आरम्भ में कोई बाति या संस्कृति बाहर से आती है तो स्वभावतः उसके संदर्भ में भीतर और बाहर दोनों क्षेत्रों में एक प्रतिक्रिया होती है । देश के लोग युद्ध-विग्रह आदि के रूप में विजातीय जन का सामना करते हैं और जातीय संस्कृति विजातीय संस्कृति के तत्वों से संघर्ष करती है । प्रतिरोध और संघर्ष की यह प्रक्रिया थोड़े समय बाद समाप्त हो जाती है । एक और शारीरिक

धरातल पर दोनों एक जाते हैं, जागतिक की आक्रामक शक्ति और जातीय जन की प्रतिरोध-शक्ति दोनों क्षीण होने लगती हैं। दूसरी और मानसिक धरातल पर दोनों एक दूसरे के प्रति सहिष्णु और सहिष्णुता होने लगते हैं। दोनों के आचार-व्यवहार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यदि राजनीतिक शक्ति जागतिक के हाथ में चली गयी और उसने कूरता एवं बर्बरता के साथ दमन-चक्र चलाया और देशीय जनकी प्रतिरोध शक्ति हताश की सीमा तक क्षीण हो गयी तो सांस्कृतिक पराभव की प्रक्रिया आरंभ होती है। आलोच्यकाल की पीठिका में जो काल पड़ता है, उस समय तक बाबर और हुमायूँ की विजय के बाद अकबर ने मुगल साम्राज्य का संगठन सुदृढ़ कर लिया था। अकबर उदार और सहिष्णु भी था। यद्यपि उसकी उदारता और सहिष्णुता की पृष्ठभूमि में नीति व की प्रेरणा अधिक थी किन्तु लोक मानस पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था ही। पराजित हिन्दू जाति को संतोष के लिए एक बाजार तो मिल ही गया था। जहाँगीर राजकीय मामलों में कभी-कभी बितना ही निर्मम हो उठता था धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों के प्रति उतना ही उषेणा भाव भी रखता था। अकबर का शासनकाल प्रशासनिक दृष्टि से बहुत अच्छा तो नहीं था किन्तु जहाँगीर की शासनावधि में प्रगति अपेक्षणीय ही रही। शाहजहाँ प्रदर्शन प्रिय, प्रशासनिक दृष्टि से सामान्य कुशलता का व्यक्ति था। उसका काल राजनीतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत शांति का काल था किन्तु धार्मिक क्षेत्र में लण्डन और अन्धकार की जो प्रक्रिया औरंगजेब के समय में चरम सीमा पर पहुँचती है उसके छुट छुट उदाहरण शाहजहाँ के समय ही मिलने लगे थे। औरंगजेब ने राजनीतिक क्षेत्र में मुगल साम्राज्य की बितना व्यापक और विस्तीर्ण किया। जिस अदम्य साहस और बहुल राजनयिक प्रतिभा के बल पर अपने शासन को उसने अधिक कठोर बनाने की चेष्टा की उतनी ही निर्ममता से उसने जातीय संस्कृति और धर्म पर प्रहार किये। आलोच्यकाल की दो महान् संस्कृतियों हिन्दू और मुस्लिम के अन्तर्सम्बन्धों को देखते समय हमें यह पृष्ठभूमि अपने मस्तिष्क में रखनी चाहिए।

छोटे-छोटे राजाओं और रिवाजों का आपसी बैर, मुगल साम्राज्य के प्रति मराठों और बुन्देलों और जाटों आदि के छुट-पुट प्रतिरोध, जातीय जीवन में व्याप्त हताश और संघर्ष से निरति इन परिस्थितियों में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की बहुत अच्छी स्थिति संभव नहीं थी । इसलिए एक और कबीर के समय से चली आती संत परम्परा के कवि हैं जो हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और सद्भाव की वकालत करते हैं तो दूसरी ओर हिन्दू राजाओं के दरबार के कवि हैं जो मुगलों के विरुद्ध उनके संघर्ष का बतिसमता पूर्ण वर्णन करते हैं । इसलिए समन्वय का प्रयास इन संत कवियों में दृष्टिगत होता है जो संसार से बाहर रह कर भी लोक-कल्याण की कामना रखते हैं । कदाचित् इसका कारण यह रहा हो कि उन्हें अपमान और क्रथाचार के कुर दुरम देखने और उनका अनुभव करने का अवसर न मिला हो या पूर्णतः आध्यात्मिक स्तर पर सोचने के कारण वे जातीय और विजातीय तत्वों में अंतर ही न करते रहे हों । दरिया साहब हिन्दू और तुर्कों को एक ही समझते हैं क्योंकि सभी जीव-साहब के हैं । सभी के शरीर जन्म जल से पातित-पोषित होते हैं , सभी में एक ही आत्मतत्त्व संवरित होता है इसलिए हिन्दू और मुसलमान में भेद करना उचित नहीं है<sup>१</sup> । सुंदरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों की राहें छोड़कर "सहज मार्ग" अपनाना चाहते हैं जिसमें राम और कृष्ण एक हैं<sup>२</sup> । इसके विपरीत मान, जोधराज और भूषण आदि कवि संघर्षशील हिन्दुत्व की बाणी छेती हैं । उनमें अन्तरतम् की अपराधिय शक्ति न होने के कारण काव्य भले ही द्वितीय श्रेणी का रह

१-सभे जीव साहब कर बहई । बुझि विचार जान एक कहई ॥

जन पानी सभे के होई । हिंदू तुरुक दूजा नहि कोई ॥

-दरिया - गृ० पृ० ६१ ।

२- हिन्दू की हृदि छाड़ि कै तबी तरक की राह ।

सुंदर सत्सी हीन्हियाँ एकै राम अताह ॥

- सु०गुं- पृ० १०४ ।

गया हो, और वह स्वाभाविक भी था क्योंकि तात्कालीन लोकचेतना में वह शक्ति नहीं थी और कवि को उसका आधार लोक चेतना से मिले तभी उसका काव्य उत्कृष्ट होता है, किन्तु वे मुसलमानों के प्रति अहिष्णुता और कभी-कभी घृणा का भाव तो भर ही रहे थे । ये कवि मुस्लिम संस्कृति और इस्लाम धर्म के जाग्रमण से हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म को बचाने के लिए सतत् प्रयत्नशील थे । इनके प्रयत्न को साम्प्रदायिक और संकुचित कह कर निर्दिष्ट बनाना कदाचित् उचित न होगा क्योंकि उस समय तक धर्म-निरपेक्षता एवं राष्ट्रीयता आदि की धारणाओं का विकास नहीं हुआ था । मुगल शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था, धार्मिक भेदभाव और राज-नीतिक अतिचार को देखते हुए यदि मान कवि तुर्कों और औरंगजेब जैसे शासकों को कुर कहता है, भूषण उन्हें मलेच्छ कहता है तो उनकी भावनाएं बहुत स्वाभाविक नहीं हैं । राजविशेष में महाराज राजसिंह को स्वान-स्वान पर हिन्दुत्व का रक्षक और नेता कहा गया है<sup>१</sup>। उनके पिता महाराजा जगतसिंह की भी "हिन्दुमा रक्षन", "हिन्दुकुल आदीत", "हिन्दु सिर सिंगार" आदि विशेषणों से अभिहित किया गया है । महाराज राजसिंह की हिन्दुत्व, हिन्दुईत, हिन्दुपास, हिन्दु आधार, हिन्दुमान आदि विशेषण दिये गये हैं । वे हिन्दुओं की "रक्ष" करने वाले हैं । महाराजा राजसिंह और महाराजा जसवंतसिंह दोनों बाराहें लेकर जब बूंदी नरेश राय छत्रास के महा पड़ुवि और तोरण-बंकाई की रस्म पर वाद-विवाद हुआ तो जसवंत सिंह के विरुद्ध वह भी तर्क रखा गया था कि उन्होंने किसी युद्ध में विजय प्राप्त करके हिन्दुओं की मर्वादा की रक्षा नहीं

१- मान० रा० वि०, पृ० ८, २७ ।

हुन त्यों हरि अवतार इह, राजसिंह महाराजा ।

औरंग से कुरेस हों, जोसै बंग बु जान ॥

अपति परि औरंग अति, कूर कपट कौ कोट ।

जिन मारे बंधन बनक कसह दे विच जोट ॥

-मान०राज० विशास, पृ० १०२ ।



की अपितु वे स्वयं आसुरों के अधीन हैं अतः उन्हें पहले तोरण बंधाई का अधिकार नहीं है<sup>१</sup> । इसके विपरीत महाराजा राजसिंह स्वयं हिन्दुओं की परमादा के रक्षक कहे गये हैं<sup>२</sup> । हिन्दू और मुसलमानों के बीच के इस वैर-भाव के हेतु की व्याख्या करते हुए मानकवि ने बताया है कि वैर से वैर बढ़ता है और सद्भाव से सहिष्णुता और पारस्परिक सम्मान की वृद्धि होती है । जिस प्रकार फटे हुए दूध का दही नहीं बन सकता उसी प्रकार फटे हुए मन कभी नहीं मिल सकी औरंगजेब कितनी ही नीतियों से काम क्यों न ले किंतु महाराज जसवंत राय का मन क्योंकि फट चुका है, औरंगजेब के आसुरी कार्यों से उनके मन में एक गाँठ पड़ गयी है इसलिए उनके संबंधों की समरस नहीं किया जा सकता ।। इसीलिए भूषण आत्मगीर औरंगजेब की सहिष्णु और उदार होने की सलाह देते हैं । बहादुर का काम है बहादुर से लड़ना । हीनों और अशक्तों को सताना उसे शोभा नहीं देता । लीज करके, गरीब हिन्दुओं के मठ-मंदिर तोड़ना और उन्हें सताना ठीक नहीं औरंग को इसका कर्त्तक नहीं लेना चाहिए उसे चाहिए कि हिन्दूपति शिवाजी से मुकाबला करे<sup>३</sup> ।

१- कब के तुम नरनाह, कही कम पण्ड कहा निय ।

बीति कहाँ तुम जंग, हर राखी हिन्दुआ निय ।

तुम आसुर आधीन, धीम दे घरनि सु रत्नहु ।

इन करनी हम आग, ऊँच मुह करि करि बन्धहु ॥

-मान० रा० वि० पृ० ५२ ।

२- मान० रा० वि०, पृ० ५२ ।

३- मान० रा० वि०, पृ० १०७ ।

४- बाब घरी सिव बू सों सराँ सब सैयद सेब पठान पठाय के ।

भूषन ह्याँ गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय के ॥

हिंदुन के पति सों न बिस्ताति सतावत हिन्दु गरीबन पाय के ।

लीये कर्त्तक न दिल्ली के बासम, आसम आसमगीर कहाय के ॥

- भूषण - गृ० पृ० ७४ ।

### निष्कर्ष:

२१- रीति काशीन काव्य के माध्यम से सामाजिक रचना का क्लृप्त करने पर कुछ इस प्रकार का विम्वरता है। भौतिक दृष्टि से सामाजिक रचना के शिखर पर राजकुल और सामंत परिवार वासीन है। इस वर्ग की भौतिक जीवन के सम्पन्न सुख साधन और शक्तियाँ उपलब्ध है। प्रकृति से ही यह वर्ग सर्वाधिकारवादी, शोणक और उत्पीड़क है। अपने सुख-साधन के लिए यह वर्ग वैष-वैष सभी प्रकार के तरीकों का उपयोग कर सकता है। इस प्रकार सत्ता की अधिकार शक्तियों और सम्पत्तियों का स्वामी यही वर्ग है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यह वर्ग विजातीय है। दूसरे स्थान पर नीकर पेशा लोग हैं जिनमें राजकीय भूतम और सामंतों जादि के पास काम करने वाले अन्य कर्मचारी जाते हैं। इस वर्ग का जीवन सुख सुविधा पूर्ण नहीं है। इनका भविष्य "गणो रुष्टा गणो तुष्टा - रुष्टा तुष्टा तु गणो गणो" वृत्ति के सम्राट् और सामंतों के हाथ है। ये स्वयं जितने पीड़ित हैं प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे वर्गों को उतना ही अधिक सताते हैं। तीसरे स्थान पर बाणिज्य एवं उद्योग धन्यों में लगे हुए लोग जाते हैं। चूंकि जनसामान्य में कम शक्ति अधिक नहीं है, बाजार का जरूरी सामान तो साधारण लोग खरीदती है, किन्तु बाज की भाँति औद्योगिक मनोवृत्ति न होने के कारण सुख साधनों का उपयोग जन सामान्य की पहुँच के बाहर था। उद्योग धन्यों में निर्मित होने वाला सामान भी अधिकारतः उच्च वर्ग के ही उपयोग के निमित्त होता था। उच्च वर्ग का मन नितान्त अस्वस्थ और चंचल है अतः इस वर्ग की स्थिति भी बहुत कुछ अनिश्चित-सी है। अंतिम किन्तु जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा, भारतीय संस्कृति की परंपरा के जीवन के सम्पन्न संघर्षों को वहन करने वाला वर्ग, किसानों का है। इतना बड़ा होकर भी यह वर्ग विपन्न, उपेक्षित और सब प्रकार के अधिकारों से हीन है। इसके लिए दोहरे शोषण की प्रक्रिया चलती है। एक ओर राजशक्ति के स्वामी प्रशासक वर्ग की प्रतारणा और उसके शोषण एवं कबाधार से पीड़ित है, तो दूसरी ओर उसके गाँव का साहूकार भी

उसकी गरीबी और विवशता का अनुचित लाभ उठाता है ।

२२- इतिहास के उत्थान-पतन ने भारत को एक ऐसे महासागर का रूप प्रदान किया है जिसमें विविध जाति रूपी सरिताएं जा-जाकर अपना स्वत्व समर्पित कर देती हैं । हर नयी सरिता उसकी अगाधता और व्यापकता में वृद्धि तो करती है किन्तु उस महासागर के हृदय में ठबल-पुल्ल और विक्षोभ उसे कभी विनाशकारी स्थिति तक नहीं पहुंचाते, उसका अपना स्वत्व बना ही रह जाता है । आसौम्यकाल में हिन्दू और मुसलमान दो प्रमुख जाति वर्गों के अतिरिक्त तुर्क, पठान, और अरब, फारस, पुर्तगाल, फ्रेंस, इंग्लैण्ड आदि देशों के लोग भी अच्छी खासी संख्या में हैं । मुसलमानों में दो प्रमुख वर्ग हैं, एक तो वे परिवार जो बाबर और हुमायूँ के साथ या अकबर के समय विदेश से आये और दूसरे वे लोग हैं जो इनके प्रभाव में आकर इस्लाम धर्म ग्रहण कर मुसलमान बन गये । इनमें से प्रथम अर्थात् विशुद्ध विजातीय वर्ग अपेक्षा-कृत अधिक अच्छी स्थिति में है । धार्मिक या जातिगत दृष्टि से हिन्दू भारत का सबसे बड़ा वर्ग है । हिन्दू-समाज वर्णव्यवस्था के आधार पर विभक्त है । वर्णव्यवस्था के मूल स्रोत वैदिक काल में प्राप्त होते हैं तदनुसार समस्त हिन्दू समाज चार वर्णों में विभक्त है । ब्राह्मण इनमें शिखरस्व हैं । वे वेदपाठी अध्ययन-अध्यापन के कार्य में रत रहे गये हैं । तत्परचात् समाज की रक्षा शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने का काम करने वाले पराक्रमी शक्तिशाली हैं । वणिक् वृत्ति अपनाने वाले वैश्य और शिल्प कार्य में रत अन्य वर्णों की सेवा करने वाले शूद्र हैं । कुछ वर्ण ऐसे भी हैं जो चातुर्वर्ण्य की परिधि के भीतर नहीं समेटे जा सकते । जिस विराट् पुरुष के मुख, गहड़ु और उदर और चरणों के रूप में चारों वर्णों की कल्पना की गयी है उसके पीछे यह धारणा सुनिश्चित थी कि सभी वर्णों का अपना-अपना कार्य और सामाजिक रचना में अपना-अपना स्थान है । आरम्भ में वर्ण व्यवस्था का वादर्थ रूप रहा होगा पर आसौम्य - काल तक जाते-जाते वह पर्याप्त दृष्टित हो गई थी उसके अपने उद्देश्य पराजित हो गये थे । जो वर्णव्यवस्था संघटन और समन्वय के लिए निर्मित की गयी थी । वह समाज के विघटन और अस्मत्त्व के बीच बचन कर चुकी थी। जिसका उद्देश्य यह था कि बाहर से आने वाली जातिवर्गों को अपने भीतर अन्तर्भुजित कर ले नहीं

जागृतकों को अवांछित अतिथि की भांति तिरस्कृत करने लगी । समाज में समानता संतुलन लाने और ऊँचबीच का भेद मिटाने के स्थान पर वर्ण-व्यवस्था ने असमानता, असंतुलन और छोटे - बड़े के अन्तर को जन्म दे दिया था । वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण और कर्म नहीं जन्म और पावण्ड हो गये । भविष्यद्रष्टा संत कवियों ने वर्णव्यवस्था के अयः पतन के चित्र देखे हुए उन पर विशेष रूप से आक्रमण किये हैं ।

२३- आत्म-व्यवस्था इस समय तक आते-आते प्रायः सिद्धान्त रूप में ही रह गयी है उसका अस्तित्व वास्तविक रूप में नहीं रहा । बार बारलों के सभी कार्य गृहस्थ आत्म में ही संपन्न होते हैं ।

२४- आलोच्यकाल में धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दो महान् जातियों, यों एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ । यह आदान-प्रदान कभी संघर्ष और सहिष्णुता, कभी समरसता और सहिष्णुता के रूप में देखने को मिलता है । एक ओर भूषण, जोधराव और मान जैसे हिन्दुत्व का उद्घोष करने वाले कवि हैं जो जाति की रक्षा के उत्साह में अपने बरित-नायकों को हिन्दुत्व की रक्षा करने का प्रेरण देने के साथ साथ तुर्कों की कठोर वचन कहते हैं । वे जाति पर होने वाले बलाचार और उत्पीड़न के प्रति अत्यन्त सजग और संवेदनशील हैं । इन कवियों में यदि दृष्टि की विराट्ता का अभाव न होता तो हिन्दू जाति के लिए वे जितना कर सके हैं संभवतः उससे अधिक कर सकते । इनके पूर्ववर्ती तुलसी और परबर्ती निराला ने विराट् दृष्टि की उपस्थिति ही काव्य की अधिक सरस और कवि के स्वप्न को महान् बना सकी है । दूसरी ओर संत कवि हैं जो "सबे जीव, सा हव का बहरी" "हिन्दू तुर्क दूजा नहिं कोई" के संदेश के द्वारा पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष को मिटा कर सहिष्णुता और समरसता का सुजन करना चाहते हैं । प्रथम वर्ग के कवि वहाँ वास्तविकता के प्रति अधिक संवेदनशील हैं वहाँ संत कवि वास्तविकता से प्रायः भाव मूढ होते हैं । हिन्दू और तुर्क की एकता का उपदेश

ऐसे समय में यह भूत जाते हैं कि तत्कालीन विदेशी शासक और प्रशासक वर्ग के नाम पर कितना क्रवाचार और शोषण कर रहे हैं। यदि प्रथम वर्ग के कवियों के पास औणात्य अधिक सहिष्णुता या विराट् दृष्टि होती या संत कवि ब्याप्य जीवन की वास्तविकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील होते तो सामाजिक विातिव पर प्रभाव का दर्शन करने के लिए संभवतः इतने दिन प्रतीक्षा न करनी पड़ती।

### परिवार का स्वरूप-विकास:

२५- अपने निर्माण और सुजन के प्रति निर्माता और सृष्टा का सहज स्नेह होता है। यह प्रकृति सभी जीवधारियों में देखी जाती है। जीवधारियों की सभी ऐच्छताओं में काम विजीविष्णा और अपनी परम्परा को आगे बढ़ाने की इच्छा कदाचित् सर्वाधिक बलवती होती है। पशुओं की ये ऐच्छताएँ वहाँ प्रकृत और तब स्वरूप में व्यक्त होती है वहाँ मनुष्य प्रकृत्या एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी ऐच्छताओं की सम्पूर्ति के हेतु व्यवस्था और संगठन करता है। इसीलिए उसकी ऐच्छताएँ निरन्तर होती हुए भी संस्कृत - परिष्कृत दृष्टि से परिवर्तित होती है, संगठित और जटिल होते हुए भी सुनिरिक्त होती है और उनकी सम्पूर्ति के लिए वह अपनी प्रकृति-प्रदत्त विवेकशक्ति का प्रयोग करता है। इतर प्राणियों की भांति मनुष्य में भी काम विजीविष्णा और अपनी परम्परा को बनाये रखने की इच्छा स्वभावज है। सामाजिक सुरक्षा और शासन-पासन की सुविधा के अतिरिक्त सन्तति-स्नेह परिवार के विकास का मूल कारण है। सामान्यतः परिवार एक ऐसा सामाजिक वर्ग है जिसके सदस्यों में परस्पर बंशक्रम संबंधी अवस्था किन्ही सामाजिक प्रथा (दत्तक आदि) से स्थापित संबंध होता है जिनके धार्मिक हितों तथा धार्मिक विश्वासों में एकता होती है और जो सामान्यतः एक घर या एक स्थान पर रहते हैं।" परिवार प्रायः एक



सार्वभौम सामाजिक व्यवस्था है। भारतीय वर्ण व्यवस्था ने सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर जिन समस्याओं के समाधान दिये वह संसार के सामाजिक संगठनों में सर्वोत्तम है या नहीं यह विचारणीय हो सकता है किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि सामाजिक समस्याओं का यह अपने ढंग का अनोखा समाधान था। वर्ण-व्यवस्था समाज में व्यक्ति का स्थान निर्धारित करती है, उसे कर्मक्षेत्र में उतारती है। भारतीय परिवार समाज के विज्ञान भवन में प्रवेश करने के लिए व्यक्ति को प्रवेश पत्र ही नहीं बरन् ज्योतिषित सर्वांगीण प्रशिक्षण भी देता है। विनय, सहिष्णुता, सौहार्द, शिष्टता, कर्मठता आदि जिन गुणों की, कर्मक्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है, वे सभी पारिवारिक परिधि में उपलब्ध होते हैं। भारतीय परिवार मनुष्य जीवन के चारों पुरुषाचार्यों को अपने में समेटे है। धर्म-सम्बन्धी कृत्य परिवार में ही संपन्न होते हैं और व्यक्ति को आरंभिक धार्मिक प्रशिक्षण भी परिवार में ही मिलता है। धर्म वस्तुतः मानव के व्यक्तित्व के आस्था पक्ष का परिणाम है और भारतीय परिवार जिस रूप में संगठित हुआ है, आस्था और विश्वास को व्यक्तित्व का आवश्यक अंग बना देता है। परिवार के आर्थिक हित आरंभ में, आर्थिक व्यवस्था खानी बटित न रहने पर, कदाचित् एक न रहे हों पर विकसित समाज में परिवार के सभी सदस्यों के आर्थिक हित परस्पर संलग्न होते हैं। काम तो वस्तुतः परिवार का जन्मदाता ही है। भारतीय परिवार ने यौन संबंधों की अनुमति परिवार की सीमाओं में ही दी है। मोक्ष अपने सही अर्थ में इन सबसे मुक्ति पाना नहीं है अपितु इनके माध्यम से मुक्ति पाना है और परिवार के निष्कल सात्विक और शुद्ध वातावरण से उत्तम माध्यम जन्मत्रय कहाँ मिल सकता है? इस प्रकार भारतीय परिवार व्यक्ति के जीवन को जब से इति तक अपने में समेटे हुए है। जन्म-भूमि से लेकर मरणोत्तर तक के सभी संस्कार परिवार में ही संपन्न होते हैं। स्वर्गस्थ पितरों की भी जाद आदि के माध्यम से कुछ न कुछ मिलता रहता है।

### भारतीय परिवारः

१६-

भारतीय परिवार ज्ञात इतिहास के उष्णकाल, ज्ञेय काल, पितृसत्तात्मक रहा है उसमें पितृपक्ष के पुरुष सक्षय, उनकी पत्नियाँ तथा

अविवाहित कन्याएँ सम्मिश्रित होती थी । अर्धवैदिक काल का संयुक्त परिवार साधारणतः तीन पीढ़ियों तक सीमित होता था । परिवार में होने वाले संबंधों दादा-दादी, पोता-पोती, माता-पिता, चाचा-चाची, भतीजा-भतीजी, पति-पत्नी, भाई-बहन, सास-ससुर, पुत्र-वधू, देवर-ननद, भाभी-बेठानी हो सकते थे<sup>१</sup> । एक अत्यन्त दीर्घ मुगवात्रा के परवात् वालोध्य-काल में भी भारतीय परिवार का मूलस्वरूप यथावत् बना रहा । तत्कालीन संत कवि परिवार को महत्वहीन, अवांछनीय और पारिवारिक संबंधों को सभी दुखों का कारण मानता है । उनके विचार से यह देह शष्पभंगुर है इसे बिना समझे व्यक्ति गृह और गृहिणी के बात में फँसा रहता है । पुत्र, पति और स्त्री यह दुख के कारण-भूत है व्यक्ति इनकी मृगतृष्णा में पड़कर मृत्यु रहता है<sup>२</sup> । मरने के परवात् माता, पिता, पुत्र, भगिनी, आदि में से कोई साथ नहीं जाता सभी बड़े देखते रह जाते हैं और यमराज प्राण ले जाता है । गड़ा हुआ धन ज्यों का त्यों गड़ा रह जाता है, सब कुछ जहाँ का वहाँ रह जाता है । बन्धु-बान्धव रोते कलपते हैं फिर मृतक शरीर को ले जाकर जग्गिन देव को समर्पित कर देते हैं और सब कुछ समाप्त हो जाता

१- शिवराज शास्त्री- आ वैदिक में काल में पारिवारिक संबंध पृ० ९० ।

२- छिन भंगुर यह देह न जानी । उसटी समुझी अमर ही मानी ।

पर-परनी के संग यों राज्या । छिन छिन में नट कपि ज्यों नाज्या ॥

-धुनदास- वृ० मा० सा०, पृ० १७१ ।

+

+

+

सुत -पित-पति-तिन-मोह महादुख मूल है ।

जग-मृग-तृष्णा देखि रह्याँ ज्यों भूत है ?

-नागरीदास-वृ० मा० सा०, पृ० १९० ।

है। किन्तु यह स्मरणीय है कि ये कवि परिवार पर उस दृष्टि से जाग्रत करते हैं जिसके लिए परिवार का सुवन नहीं किया गया था। मृत्यु के उपरान्त यदि पति-पत्नी, पिता-पुत्र या बन्धु-बांधवादि सहायक नहीं होते तो यह कहाँ सिद्ध होता है कि इससे उनका लौकिक प्रयोजन समाप्त हो गया। परिवार तो अतोन्मय काल में भी सुरक्षा और सामाजिक प्रशिक्षण की दृष्टि से उतना ही, अथवा उससे अधिक, आवश्यक रहा, जितना वह अपेक्षाकृत अधिक उन्नत, सांस्कृतिक काल के लिए था। क्रूर, विजातीय विासलागी शासकों के प्रशासन काल में व्याप्त मनमानेपन के समय सार्वभौम हताशा के युग में तो परिवार और भी आवश्यक हो जाता है। अफस और हताश व्यक्ति को भ्रष्ट और अनेतिक होने से बचाने के लिए, असाधारण और अयोग्यों के साहाय्य, और भरण-पोषण, अवसरों की रक्षा के लिए परिवार आवश्यक है। मन्दोदरी अपने परिवार पर गर्व करके ही कह सकती थी कि कुम्भकर्ण-सा डेर, मेघनाथ-सा पुत्र और रावण-जैसा पति पाकर मुझे किससे डरने की आवश्यकता है<sup>१</sup>।

### परिवार में पुरुष एवं स्त्री की भूमिका:

२७-

भारत की पारिवारिक व्यवस्था में पुरुष की घर के बाहर

१ - माता पिता सुत बंधी भगिनी । अपने मन में सब कोई धाँगी ॥  
 मरन काल कोई संग न हाजा । जब जब मुसुक दीनों हाजा ॥  
 मातु पिता घरनी घर ठाढ़ी । देखत प्रान लीन बिय काढ़ी ॥  
 गाड़े घन गहिरे जो गाड़े । छूटे पात बहाँ से भाड़े ॥  
 नैन भवावन बाहर डेरा । रौबहि सब भित्ति जामन घेरा ॥  
 बाट उठाव काँपि कर लीना । बाहर जाए जगिन जो दीना ॥  
 -दरिया-गुं० पृ० ११५ ।

२- डेर कुंभ करन सों, हरि-हरि सौ सुत पाय ।  
 रावन सौ प्रभु, कौन की मन्दोदरी डराय ॥  
 -कै०गुं० पृ० २२६ ।

का और स्त्री को घर का काम मिला है। सृष्टि में पुरुष पुरुष-तत्त्व का प्रतीक है उसमें बल, शक्ति, साहस, जीव, कर्मठता, सहनशक्ति और संघर्षशक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसके विपरीत नारी जो प्रकृतितत्त्व की प्रतिनिधि है अधिक सुन्दर मुद्गु, मधुर, क्लृप्ता, कामाशील, व्यवस्था प्रिय और अपनी सीमाओं में पूर्ण होती है। पुरुष में व्यापकता और विराट्ता होते हुए भी पूर्णता और संतोषवृत्ति का अपेक्षाकृत अभाव होता है। इसलिए पुरुष निर्माण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। वह अग्निमय होता है, नित नये परिवर्तन और नये विधान चाहता है। इसीलिए घर की बहारदीवारी उसका कार्यक्षेत्र नहीं हो सकी। इसके विपरीत स्त्री को अपने सीमित संसार को पूर्ण बनाने का स्वर्ण अवसर परिवार में मिल सका। जालीव्यकाल की स्त्रियाँ सभी प्रकार के घरेलू कार्य करती हैं। सुन्दरी तिलक में यदि एक गोपी नीर भरने के लिए तड़के यमुना के किनारे जाती है तो दूसरी स्त्री गौरस बैच कर लीटने पर लाल के अनुराग में रंगी रहती है, तीसरी गाय दुहाने के लिए प्रस्तुत रहती है। चिन्तामणि की नायिका भी ग्रीष्म में बापी, कूप, सरोवर आदि सूख जाने के कारण बहुत दूर जाती है और वापस आते-आते तक उसके पसीना बहने लगा है शरीर घर घर कापने लगता है। बिहारी की एक नायिका अपने सृष्टा की ही भाँति पटु और विदग्ध है। रात में प्रिय-मिलन की उत्कंठा-वशात् वह दीड़-दीड़ कर घर की "टहल" करती है तो दूसरी ताबा धुँसी हुई पीती पहने है, उसकी मुख की ज्योति प्रखर है, रसोई में से

१- हौं अलि जाव गई तरके यहाँ मोहल बू कसिंदी नीर के कारन ।

+ + + -सु० ति० पृ० ६२

२- गौरस बैचि फिरी बानिता जल गाइन लाल किने अनुरागी ।

+ + + -सु० ति० पृ० ७७

३- गाय दुहावन की कहि संभु बरी बरीकान सबीन के साथ में ।

-सु० ति० पृ० ११७ ।

४- चिन्तामणि- क० की० पृ० १६७ ।

जब वह जाती है तो उसके शरीर की जाभा से रसोईघर दीप्त हो उठती है<sup>१</sup> । पुरुष का कार्य क्षेत्र बाहर होने के कारण, और परिवार के आर्थिक पक्ष का विधायक होने के फलस्वरूप परिवार पर ज्येष्ठतम् पुरुष सदस्य का अधिकार क्षेत्र बहुत व्यापक होता है । वह परिवार का रक्षण, भरण-पोषण और शिक्षण-प्रबन्ध करता है । उसे घर के अन्य सदस्यों के विवाह-संबंध निश्चित करने का अधिकार होता है । वह परिवार की वस्तु-वस्तु सम्पत्ति का दान कृप-विक्रम तथा परित्याग कर सकता है । यही नहीं, उसे परिवार के अन्य सदस्यों को दण्ड देने का भी अधिकार प्राप्त है । पुत्र को और परिवार के अन्य कनिष्ठ सदस्यों को पिता या परिवार के स्वामी की आज्ञा माननी चाहिए । भारतीय आदर्शों के अनुसार पिता की आज्ञा अपने आप में प्रमाणस्वरूप है<sup>२</sup> । पुत्र को माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए । उसे ऐसा करने से सर्व सुख की प्राप्ति होगी । भगवान् राम स्वयं ब्रह्म-स्वरूप होकर भी माता-पिता को पुणाम करते हैं । उनके सामने विनम्र रहते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं<sup>३</sup> । पिता के बृद्ध

१- ज्यों-ज्यों जावत निशि, त्यों-त्यों खरी उताल ।

कमकि-कमकि टहली करै, लगी रहवटे बात ॥-वि० प्र० मि० विहारी, पृ० १८६ ।

२- वि० प्र० मि० विहारी, पृ० १८७ ।

३- पिता हुकुम सु प्रमान । दद मुक्कमो निव दारुन ॥

बहुरे कुमर सुवान । बानि अकुष वर बारुन ॥-मा० रा० वि० पृ० १६४ ।

४-क- मातु पिता गुरु आज्ञा पावे । सदा सुखी बग काहू न सावे ॥

कीन्है प्रनाम मातु सिर नाई । सभ से विनय कीन रघुनाई ॥

-द० गृ० पृ० १४९ ।

४-ख- जन्म देई सीख देइ राखि लेइ प्रान जात ।

राज बाप मोल से करै बु पोषि दीह गात ।

दास होइ पुत्र होई सिष्य होइ कोई माय ।

साक्षना न मानई तो कोटि जन्म नरक जाय ॥

-के० गृ० पृ० २७४ ।



होने पर और अयोपार्वन की शक्ति क्षीण हो जाने पर उसके पारिवारिक अधिकारों का ह्रास होने लगता है<sup>१</sup>। परिवार के छोटे सदस्य उसकी शक्ति-हीनता के कारण प्रायः उससे उदासीन होते जाते हैं। भारतीय संस्कृति में माता का स्थान पिता से कहीं ऊँचा रहा है यहाँ "कुपुत्रो जायेत् त्वविदधि कुमाता न भवति" की परम्परा रही है। वह शिशु को नौ मास तक अपने गर्भ में रखती है, जन्म के पश्चात् स्तन्य पिला कर दृष्ट-पुष्ट और बलशाली बनाती है<sup>२</sup>। उसके अभाव में लाड़-प्यार करने सुबह उठाकर क्लेश देने वाला कोई नहीं रहता। बाल्यावस्था में माता-पिता के दिये हुए सुख बड़े हो जाने पर स्वप्न हो जाते हैं<sup>३</sup>।

#### जन्म सदस्यः

२८- परिवार के जन्म सदस्यों और संबंधियों में सखीवाई ने माई, दाई, बापू, भाई, दादी, बहणी, नानी, बुआ, चाचा, भतीजा, पोता, चाचा, भाभी, भावे आदि के नाम लिये हैं। पारिवारिक संगठन आरंभ से उन्हीं विवाद संबंधों को महत्व दिया जाता था जो पति के परिवार के सदस्य

१- कस्ये बहुत शीघ्र पुनि माया । सखी दुखी कुटुक के साथे ॥

पूत बहु लखि नाक बढावे । बहुत पुकारे निकट न जावे ॥-सखी०सु०प०पृ० ५३।

+ + +

बिन कारण पवित्रा दिन राती । प्यार करे नहिं कुटुक संघाती ॥

सुन पोते सुगंध भिनावे । टहल करे जब नाक बढावे ॥-सखी०स०पृ०पृ० ५५ ।

२- जब जिहि जन नव मास उदर में राखी जतनहु खवाया है ।

पुन प्यास दूध बहुपास पोसके पुष्ट करी सुत काया है ।

बठ ताहि न मानत जानत जीवन प्रान कहूँ की जाया है ॥पजा०गृ०पृ० २९६।

३- मात बिन की लाड़ लड़े की उठि भीर क्लेश देह ।

मात पिता दीन्हें सुख जैसे ते बीते सब सपने जैसे ॥

लाह-छत्रपुकार-पृ० ६२ ।

जीर बधू बीच होते थे । जैसे ससुर-पतीहू ननद -भीजाई आदि । परन्तु पत्नी के पिता के परिवार के कुछ सदस्यों के साथ होने वाले संबंधों को, भी महत्व दिया जाता था । जैसा कि ऋग्वेद में "वामातर" और "व्यास" के उल्लेख से प्रतीत होता है<sup>१</sup> । सूदन के सुवान-चरित में भी बाया, मामू, भान्वा, ससुर, साते, पुत्र और बधू के नाम आये हैं<sup>२</sup> । भारतीय परिवार की सुख की कल्पना थी । कृषिकर्तृकृत प्रमाण देस होने के कारण सुखी परिवार की कल्पना में भी प्रायः तत्सम्बन्धी वस्तुओं को ही सम्मिलित किया गया है । बाघ के अनुसार बमीन हो, चार हस्त हो, घर हो, घर में गृहिणी हो, दूध देती हुई गाय हो, बरह्त की दास, बड़हन का भात हो, रसदार नीबू, गर्म ची हो, दही और छाँड़ हो और विशाल मैनों वाली गृहिणी परोसने वाली हो तो सबसे बड़ा सुख अन्य कोई नहीं हो सकता ।

#### संतानः

२९- बुद्धि परिवार का मूलधार माता-पिता का शिशु के प्रति स्नेह और रक्षा की भावना है इसलिए परिवार में संतानीत्पत्ति का महत्व असाधारण है । किसी भी परिवार के इतिहास में संतानीत्पत्ति विशेष रूप से पुत्रीत्पत्ति के समान महत्वपूर्ण जन्म घटना नहीं है । बल्कि सुवन और पातन व प्रशिक्षण

१- शिवराव शास्त्री- आ वैदिक काल में पारिवारिक संबंध- पृ० ९० ।

२- कहिं निगर कुड़िए कहिं भाया बाया ॥

कहिं मामू कहिं भानवा कहिं ससुरा साता ॥

कहीं भाई कहिं पुत्र है बडुआ बिनु वाता ॥-सूदन सु०च०पृ० १४२ ।

३- भुइयां छेड़े पर हो चार, घर हो गिहयिन, गरु दुवार ।

रहर की दास बड़हली का भात, गायल निबुआ जी यिन तात ॥

छाँड़ दही वो घर में होय, बकि नैन परोसै जीय ।

कहे बाघ तब सबही भूठा उहाँ छोड़ वही पैकुठा ॥

-बाघ- भडरी - पृ० ९८ ।

ही शायद परिवार के साध्य हैं और वे संतान के संदर्भ में ही सार्थक होते हैं ।  
वही नारी धन्य समझी जाती है जो पुत्रवती हो<sup>१</sup> । पुत्र-जन्म के समय  
अनेक प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं । जिस घड़ी में पुत्र का जन्म हुआ वह  
वह घड़ी धन्य है । उस घड़ी गाँठों दिशाओं में दुंदुभी नाद होने लगता है  
सर्वत्र हर्ष की लहर व्याप्त हो जाती है<sup>२</sup> । वस्तुतः पुत्र के बिना कुल-  
परिवार की परंपरा नहीं चल पाती । पुत्र के बिना सारे सुख निरर्थक हो  
जाते हैं वह घर का उजाला होता है<sup>३</sup> । सम्राटों की अपनी समस्त शक्ति और  
समृद्धि के बावजूद बिना पुत्र के राजभवन में अधिरा रहता है<sup>४</sup> । बालक की  
क्रीड़ाओं आदि में विशेष अनुराग उत्पन्न होता है । बालक विभिन्न प्रकार  
की क्रीड़ाएँ करता है लकड़ी के पीछे पर चढ़ कर इधर उधर घूमता है और  
परिवारवालों का मन हरता है<sup>५</sup> ।

१- जाके जंग संग लाल है सुफल बहे बग नारि ।

-जानकवि -

२- जन्मयो पुत्र उठी यह बानी । धन्य बरी सबही यह मानी ॥

दुंदुभी बने लोक सुख दानी । गाँठो पिला प्रसन्न भवानी ॥

- गीरे - छत्र प्रकाश, पृ० २३ ।

३- अति सुख भोग दीन विधि राजा, एक बंस बिन सबै बकाबा ॥

का० ह० ब० पृ० ९ ।

४- अनसन, हेम जो लछ्मी, सेन बनेक अपार ।

एक दीय संतति बिना, राजभवन अधिवार ॥

-उ० वि० पृ० १५ ।

५- सुंदर केतन बाप यह बालन बड़ की बाल ।

ज्यों लकरी के बख बड़ कूट डोलै बाल ॥

-सु० गं० पृ० ७७१ ।

### पति-पत्नी:

३०- पति-पत्नी पारिवारिक व्यवस्था के आधार फलक हैं ।  
मूलतः और प्रायशः परिवार में एक ही पति-पत्नी होते हैं । यद्यपि भारतीय परिवार संयुक्त होने के कारण अनेक दम्पतिओं के संयोग से निर्मित था । पति और पत्नी का संबंध भारतीय संस्कृति में अन्य जातीय संस्कृतियों की अपेक्षा कुछ भिन्न रूप में देखा गया है । इस संबंध के मूल में "सेक्स" तो है ही किन्तु भारतीय व्यवस्था में वह एक काम ज़राज़ सामाजिक साकेदारी नहीं रह गयी अपितु उसे अविच्छेद्य धार्मिक संस्कार की गरिमा प्राप्त हो गयी । पति और पत्नी का सम्बन्ध इस जीवन और जन्म का ही नहीं जन्म-जन्मांतर का माना जाने लगा । वह एक ऐसा रिश्ता हो गया है जिसे सामान्य परिस्थितियों में तोड़ा नहीं जा सकता । ज्ञातौःकाल में इस सम्बन्ध में हमारी मूल धारणा में कोई उत्प्रेक्षणीय परिवर्तन नहीं हुआ था । पत्नी का पतिव्रत, और पत्नी के प्रति पति की सहिष्णुता और उसका स्नेह परिवार रूपी भवन की दृढ़ता पूर्वक जोड़े रहते हैं । पत्नी पति के अभाव में और पति पत्नी के अभाव में उसीप्रकार दीन रहते हैं जिस प्रकार चन्द्र के बिना चन्द्रिका और वामिनी के बिना चन्द्र<sup>१</sup> । वही पत्नी चन्ध है जिसे अपने पति का प्रेम प्राप्त है । पति के प्रेम के बिना वस्त्र-आभूषण आदि सभी फीके हैं । पतिव्रता अपनी सम्मयकावों में अहंकरणा विहीन रहने पर भी अलग ही प्रकाशित होती रहती है<sup>२</sup> । रीतिकाल जीवन के अन्य विभिन्न क्षेत्रों के एक-दूसरे विभक्त है । उसी प्रकार पारिवारिक परिवेश में भी पति-पत्नी के

१- पतिनी पति विन दीन अति पति पतिनी विन नंद ।

चंद विना ज्यों चांदनी ज्यों वामिनी विन चंद ॥

-केशु० पु० १९५ ।

२- तिय सौई प्रेम प्रिय नीका । भुक्त वसन भक्ति विनु फीका ॥

पतिवर्ता के गते न मोती । सभ सखियन में फलके मोती ॥

-दरिया० गु० पु० १९९ ।

मधुर संबंधों पर ही अधिक दृष्टिपात किया गया है। पद्माकर की नायिका का पति उससे अत्यधिक स्नेह करता है किन्तु उसे कष्ट इस बात का है कि उसका अतिशय स्नेह पत्नी के मायके जाने में बाधक होता है। माँ बेटी के अभाव में खाना-पीना छोड़े है। भाभी अकेल है। उसका भाई उसे बुलाने आया है किन्तु प्रियतम उसके बिना रह नहीं सके उसे जाने नहीं छोड़े। मतिराम की नायिका के गाने की "बूनरी" प्रियतम पर टोना सा किये हुए है। अब से उसने घर में पैर रखवा है प्रियतम ने अपने संगी-साथियों के साथ फ्रीडा जादि छोड़कर घर में ही आसन बना लिया है। प्रिया से मिलने की सतक साँझ से ही उन्हें सताने लगती है। इस प्रकार रीतिकास का कवि पति-पत्नी के जीवन से संबंधित उन्हीं घटनाओं और प्रसंगों में अधिक रमता है जो उसे सरस प्रतीत होती है, जिनमें एक प्रकार की मधुरिमा और विजांति है। विवाह का उत्साहपूर्ण वातावरण, उससे भी अधिक गाने की कौतुक और विजाता पूर्ण भाव दशा और उससे भी अधिक कही पति-पत्नी का काम-फ्रीडा और मनुहारें, रुठना और मनाना कवि की दृष्टि में महत्वपूर्ण तथ्य होते हैं। इनमें उसके रासिक मन को विजय मिलता है किन्तु

- १- मो बिन माद न साइ कछू पद्माकर त्यों भई भाबी अकेल है ।  
 बीरन जाए सिवाइये की तिककी मुदु बानिहुं मानि न लेत है ॥  
 प्रीतम की समुभावत त्यों नहिं ये सखी तू बु पे राखति छेई है ।  
 और तौ मोहि सवे सुख री दुखरी यहै मादके जान न छेत है ॥

-प० गू० पृ० १०८ ।

- २- पाँव परे कुलही बिहि ठौर, रहे "मतिराम" तहाँ दूग दीन ।  
 छोड़ि सबान के साथ की बैलियो बैठ रहे भरही रस मीन ।  
 साँझहि ते सलके मन-ही-मन सासन यों रस के बस सीन,  
 सीनी सखीनी के बगनि नाह बु गाने की बूनरी टोने-से-कीने ॥

-मति० गू० पृ० २२३ ।



पति-पत्नी के सम्बन्ध यहाँ तक सीमित नहीं है। वे गृहस्थों की गाड़ी के दो पहिए हैं, घर में ही नहीं, घर के बाहर भी उनमें से एक जो करता है उससे दूसरे के साथ अविविच्छिन्न संबंध है। जीवन कर्मक्षेत्र है और उसमें विभिन्न प्रकार के उत्थान - पतन होते रहते हैं। उसमें सरसता ही नहीं नीरसता, और कहीं-कहीं विरसता भी है, सुख और सफलता ही नहीं, श्लेश, पीड़ा और असफलता भी है। जीवन रूपी वस्त्र में उत्सव और श्रावणों के ताने-बाने ही नहीं सौ, मातमपुर्णों के धागे भी हैं। रीति-कालीन कवि कर्मक्षेत्र के संबंध में पति-पत्नी के सहकार और सहयोग की चर्चा करना भूल जाता है। कदाचित् उसके रसिक मन से परिचालित होने वाली दृष्टि जीवन की कठोरता को देखने का साहस नहीं रखती।

### सास-बहू:

१- पति के घर में पत्नी को पति के अतिरिक्त सास-ससुर, बैठ-बिठानी, ननद-देवर-देवरानी आदि के संपर्क में भी जाना पड़ता है। सास उसके लिए अपनी माँ की स्वाम्यापन्न होती है। उसे सास के स्नेह के रूप में माँ की नमता प्राप्त होती है<sup>१</sup>। सास प्रायः घर की मातृकिन होती है। अपने पुत्र की माँ और गृहपति की पत्नी के रूप में उसके अधिकार बड़े और कर्तव्य बहुत व्यापक होते हैं। घर में प्रविष्ट होने वाली नव बहू को वह घर से संबंधित विषयों की जानकारी देती है। ननोढ़ा को गृहकार्य में प्रशिक्षित करती है, अपना सहज वात्सल्य और स्नेह देती है। यह प्रशिक्षण की प्रक्रिया थोड़े दिनों बाद ही समाप्त नहीं हो जाती अपितु परिवार में सास बहू का संबंध ऐसा है जिसमें सास का स्थान सदैव ऊपर रहता है और वह बहू के शिक्षक के रूप में कार्य करती है<sup>२</sup>। सोमनाथ की

---

१- को है हमारे, हमें क्यों कहे - कछु, यों सिसकै परी सासु की गोद में।

बैनी०पु० सा०प्रभाकर, पृ० १३८।

२- सास देत सीख बहू कीरी की गनत बात।

सु०गु०- पृ० १७।

नायिका सबध कर अपनी सास के पास बैठी थी कि उसे अपने पति के संभावित वागमन का समाचार मिलता है। लज्जा और हर्षातिरेकश बहु भाग कर भीतर चली जाती है<sup>१</sup>। पद्माकर की नवोद्गा नायिका का मुख मुरझा गया था। इतने से ही सास और बिठानी को व्याकुलता हो जाती है। वे उसके उपचार के साधन जुटाने लगती हैं<sup>२</sup>। बहु को सास का स्नेह ही नहीं मिलता उसके कठोर अनुशासन में भी रहना पड़ता है। वह उसकी अनेक प्रकार के गृह-कार्य बताती रहती है और मुत्तैदी के साथ उन्हें पूरा करवाने में प्रयत्नशील रहती है। अक्षर की सुकुमार सखीनी नायिका सास के आस से दुखी है। उसे "पापिन सास" नित्य प्रति भारी गगर भर खाने के लिए भेज देती है उसके कोमल शरीर का ध्यान भी नहीं रहती<sup>३</sup>। यही नहीं प्रिय के साथ उन्मुक्त मिलन में भी वह बाधक बनती है इसीलिए पद्माकर की नायिका की सहेली उसे सलाह देती है कि वह या तो पति के संग खुल कर बैठे, साथ संकीचादि छोड़ दे या किसी प्रकार के विलास की कामना न रखे क्योंकि मित्र की प्रीति और सास का भय दोनों एक साथ नहीं रख सकते इनमें से एक ही चुना जा सकता है<sup>४</sup>। रीति काव्य "मीत की प्रीति", सास की आस, बिठानी के भय और नन्द की गुप्तवरी से भरा पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे रीति काव्य की सभी नायिकाएँ मित्रों की लोभ में रहती थी और उनकी सासों, नन्दों और बिठानियाँ बराबर चौकसी करती रहती थी। तभी तो वेनी प्रवीण की

१- सोमनाथ- री० गृ०- पृ० १४३ ।

२- पद्म गृ० पृ० ११६ ।

३- भारी महा गगरी निरजों तन मेरी, लज्जा सुकुमार नवीनी ।

मोहि पानी की पेलि बठावतु, पापिन सास महादुख दीनी ॥

अक्षर-गृ०-म०पृ० २८ ।

४- कल सुकेलि सुतिके भट्ट के तबि बैठ विलास ।

हूँ हूँ लये न भीत लौ प्रीति सास की आस ॥

पद्म गृ०- पृ० ५६ ।

नायिका को यह शिक्षा है कि निगोड़ी सास और ननद दिन रात घर में चौकती करती रहती है और बिठानी के भी तैवर बड़े रहते हैं।

### देवरानी-बिठानी:

३२- सास और बहू के संबंधों के परचात् परिवार में बिठानी देवरानी के सम्बन्ध जाते हैं। वस्तुतः हिन्दू परिवार विविध संबंधों का संग्रहालय है जिसमें एक व्यक्ति पिता पुत्र चाचा भाई, भतीजा, भैया, देवर सभी कुछ हो सकता है। कोई स्त्री बड़े परिवार में किसी की सास, किसी की बिठानी, किसी की देवरानी, किसी की बहू और किसी की माता-चाची आदि हो सकती है और इस संबंध-सौपान-व्यवस्था के सम्बन्ध में सबसे बड़ी बात यह है कि एक स्त्री देवरानी के रूप में पारिवारिक व्यवस्था में बितने सुधार लाती है बिठानी और सास के रूप में उतनी ही पुरातन पंथी और प्रतिक्रियावादी होती है। सास और बहू की वय और पद की स्थिति में अधिक अन्तर होने के कारण उनके बीच भाव-नामों और विचारों का उतना उन्मुक्त आदान-प्रदान नहीं हो पाता जितना <sup>बौर</sup> बिठानी, देवरानी में संभव है। देवरानी-बिठानी की वय और परिस्थितियों में कम अन्तर होने के कारण उनके पारस्परिक संबंध बहुत मजबूत होते हैं। पद्माकर की नायिका को तो उसकी बिठानी तम्बागृह तक सजा-संवारकर ले जाती है सेव पर लिटा कर बहाना बना कर बाहर निकल जाती है इस प्रकार वह प्रियतम से मिलन की व्यवस्था करती है<sup>१</sup>। नन्ने मुरफानी बहू को देख कर सास ही नहीं बिठानी भी चिंतित है<sup>२</sup>। नबोदा पर सास का ही नहीं, बिठानी का भी

१- निसि बाहिर सासु निगोड़ी ननद, न गहे सौ नेकहु डीखत है।

नित बेठी उमेठी सौ भीहें करे दुख देन की दासो समीसतु है ॥

-बै० प्रवीन-नव० र० त०-पृ० १८ ।

२- सावि सिंगारनि, सेव पै पारि भई मिस ही मिस जोट बिठानी।

-प० गृ० पृ० १६९ ।

३- बारी बहू मुरफानी बिसोकि बिठानी की उपचार किसी की।

त्यों पद्माकर लंबी उसाह त्यों मुख सास को हूँ रहसो फीकी।

-प० गृ० पृ० ११६ ।

निर्व्रण होता है। सुन्दरी तिसक की नायिका की समस्या यही नहीं है कि सास छाया सी लगी रहती है बल्कि जिठानी की भाँवे भी तनी रहती हैं<sup>१</sup>। उसे अपने पहिरने संवरने में सास के साथ ही जिठानी की "रिस" का भी ध्यान रखना पड़ता है<sup>२</sup>। बीधा की नायिका सास के साथ और जिठानी की तीखी बातों से पीड़ित है<sup>३</sup>।

### ननद-भाभी:

११- ननद और भाभी के संबंध भी परिवार में विशेष स्थान रखते हैं। वस्तुतः भारतीय परिवार में यह एक अनोखा रिश्ता है। ननद और भाभी के संबंध अपनी सपुत्रता और कृतज्ञता दोनों के लिए समान रूप से विख्यात है। एक और पतिदेव की लाइली बहन होने और सम्बन्धका होने के नाते वह अपनी भाभी की अन्तरंग होती है तो दूसरी ओर भाभी से पछो घर की समस्या होने नाते परिवार के वरिष्ठ सदस्यों माता, पिता, भाई आदि पर विशेष प्रभाव रखने के कारण अपनी भाभी के साथ और भय का हेतु बनती है। पुतापुताहि की नायिका की समस्या यह है कि ननद और जिठानी दोनों ही माँओं पर उससे अंतर्गुह्य रखती है और बनेक प्रकार की बातें बना-बना कर उसके प्रियतम के कान भरती रहती हैं, उनका हाथ यह है कि मौन धारण किये रहने पर भी उनसे मुक्ति नहीं मिलती। अपने-अपने घर के लिए तो सारी व्यवस्थाएँ कर रहती है पर उस विचारों के केति-मंदिर दीपक

१- सु० ति० छन्द० ७६७।

२- ती सी न बाइ तहाँ पहिरै किन, बी सी रिसा हल सासु जिठानी।

-ब०गुं० पु० १५४।

३- खरी सासु खरी न छमा करिहै, निशि बाहर जासन ही मरबी।

सदा भीहै चढ़ाय रहै ननदी यों, जिठानी का तीखी सुनै बरबी ॥

-बीधा० टी०गुं०- पु० १९५।

बीच संबंधों के निर्माण तक बीच से गये हैं। ऐसे संबंधों की सृष्टि में बिहारी सिद्ध हस्त हैं। अपनी बात को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिये उन्होंने देवर की "कुवत" के साथ भाभी के सहज पारिवारिक संबंधों को भी जोड़ दिया है। उनकी नायिका पारिवारिक संबंधों के संकोच के कारण देवर के अवार्जित और असह्य प्रयासों का सेवा-बोधा प्रस्तुत करते हुए सकुचाती है और इसी सोच में दिन - दिन दुबली होती जाती है<sup>१</sup>। इतना ही नहीं कहीं कहीं तो देवर की प्रीत भाभी पर भी अपना साती है। छेत छेत में देवर ने जो फूल मारे उनके स्पर्श से भाभी के जंग-जंग हजातिरेक से फूल उठे हैं। सखियां उन्हें देह के दौरे समझ कर जीजधि की व्यवस्था करती हैं<sup>२</sup>।

#### भाई-बहन:

१५- परिवार में भाई बहन का संबंध अपनी अविच्छेदता और पवित्रता के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। जब तक बहन घर में रहती है, शौच में भाई उसका झोड़ा सहचर होता है दोनों एक साथ पाते पोसे जाते हैं और बड़े होते हैं किन्तु सामाजिक व्यवस्था के कारण बहन विवाह के बाद ससुराल जाती जाती है। भाई घर में रह कर पिता का उत्तराधिकार संभालता है। भाई बहन का संबंध रीति काशीन कवि की रसिक प्रवृत्ति के लिए बहुत उपयुक्त भावभूमि नहीं प्रदान करता अतः उत्सव्यन्धी उत्सव अत्यन्त विरल है। मदा-कदा ऐसे उत्सववाचे हैं जहाँ भाई बहन को लिवाने उसकी ससुराल जाता है लोक गीतों में भी भाई बहन के इसी संबंध की भावाभिव्यक्ति अनेकाकृत

१- कहति न देवर की कुवत, कुलतिव कहइ ठराति ।

बंदर-गत मंगारबडिग, सुक ज्यों सुकति जाति ॥ वि०र०दो० ८५ ।

२- देवर-पूजत - हने बु, बु बु उठे हजि जंग फूलति ।

छोी करत जीजधि सखिनु देह-दौरन भूति ॥

बिहारी रत्नाकर, दो० ३४६ ।



अधिक हुई है। वहन वृत्ति नैहर छोड़ कर ससुराल चली जाती है और घर की सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता इसलिए भी भाई उसके प्रति सहिष्णु और उदार रहता है। भाभी के रूप में भाई की पत्नी से यदि वहन के संबंध बच्चे हुए तो भाई वहन के संबंधों में प्रायः स्थायीरूप से सम-रसता बनी रहती है। भाभी कह सुन कर अपनी ननद को बुलाने के लिए पतिदेव को धेवती है।

३५- रीतिकालीन काव्य का सर्वेक्षण करने पर भारतीय परिवार के विविध संबंधों, उन संबंधों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सहिष्णुता, स्नेह श्रद्धा और सद्भावनाओं के चित्र मिलते हैं। तत्कालीन भारतीय परिवार की रचना संयुक्त आधार पर की और पितृप्रधान होने के कारण रीतिकालीन काव्य में प्रायः उन्हीं संबंधों का उल्लेख जाया है जो पितृप्रधान संयुक्त परिवार के अन्तर्गत जाते हैं। पितृ प्रधान परिवार में वंशपरम्परा को अनवरुद्ध रखने के लिए पुरुष संतान का बहुत महत्व होता है इसलिए तत्कालीन काव्य में कन्या की अथेला पुत्र का जन्म अधिक हर्ष और सौभाग्य का विषय समझा गया है। परिवार का आधार पति और पत्नी होते हैं। रीतिकालीनकाव्य में विशेष रूप से केशव, दरिया, पतिराम, पद्माकर, बेनी प्रबीण और सुंदर नादि के काव्यों में पति-पत्नी के मधुर और परस्पर पूरक संबंध के विशद् उल्लेख जाये हैं। परिवार के अन्य सदस्यों और संबंधियों में सास, ननद, देवर, भाभी, भाई, वहन के अतिरिक्त दाई, बापू, नानी, कुआ, चाचा, भतीजा, साता, भांजा, पोता, नादि का भी उल्लेख है। रीतिकाल का प्रतिनिधि काव्य वृत्ति रसिक कवियों का सुजन है इसलिए मधुर संबंधों के अथेलाकृत अधिक विवरण प्राप्त होते हैं जो संबंध अनेकपक्षीय है जैसे पति पत्नी का विशेष रूप से, उनके भी मधुर पक्ष का चित्रण ही अधिक हुआ है। पति-पत्नी वस्तुतः जीवन के कर्मक्षेत्र में सहभागी होते हैं और उन्हें मिलकर जीवन के सद्दे पीठे

---

१- बीरन - जाये लिखाइये की - - - - -॥(पूर्वोद्धृत)

अनुभव करने होते हैं किन्तु रसिक कवि का मन जीवन के संघर्ष में उतना नहीं रमता जितना नायक-नायिका की काम-कथा और झीड़ा में । संतकवि पारिवारिक संबंधों को मोहल्लव्य अतः अनावश्यक मानते हैं ।

### भारतीय परिवार का वैशिष्ट्य और योगः

१७- भारतीय परिवार संकोच और सहिष्णुता का अनायास उदाहरण प्रस्तुत करता है । पति संकोच के कारण होते ब्राम अपनी पत्नी से मिल नहीं सकता । बहु सास ननद और बिठानी के डर और संकोच के कारण विषवगाभिनी और गृहकार्य कौशल विहीन नहीं हो सकती । पुत्र पिता का त्याग रखी हुए सत्कार्य पर लगा रहता है । देवर की भाभी के स्नेह के कारण माँ के वात्सल्य और पत्नी के प्रेम का अभाव नहीं अनुभव होता । मतिराम के "सला" रात को केसि कर सन्तुष्ट नहीं हुए किन्तु पारिवारिक वातावरण के संकोच में वह पत्नी के पास रह भी नहीं सकते अतः रीतिवादी विद्वान् नायक ने एक नई युक्ति निकाली है । वह बिना प्यास के ही प्यासे होने का नाटक करते हैं और पानी मांगते हैं । परिवार के अन्य सदस्य उनका अक्षि-प्राप्त समझ कर नायिका को ही पानी देने को भेजते हैं किन्तु नटबट नायिका द्वार की देखली पर ही पानी रख कर चली जाती है और नायक अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है<sup>१</sup> । इससे भी बढ़ कर संकोच नायिका की ओर से है । विदेश से जाये हुए प्रियतम माँगन में अन्य कुटुम्बियों के साथ बैठे हैं । भवन के भीतर बड़ी सुकुमार नायिका घूँट के पट की जीट से प्रियतम का मुख निहार

---

१- केसि के राति बघाने नहीं, दिनही मैं सला पुनि पात लगाई ।

प्यास लगी कौट पानी दे बाइसी, भीतर बैठिकें बात सुनाई ।

बैठी पठाह गई दुतही डंसि, हे रि हरे "मतिराम" बुझाई ।

कान्ह के बोल में कान दीन्हीं, सौ गेह की देखी ये परि जाई ॥

रही है । नन्द "निसदिन" निंदा करती है और सास बाण बाण में नाराज होती है पर बधू प्रथम सुत को गोद में लेने से तबाती है ।

१८- हिन्दू परिवार, वर्ण व्यवस्था की ही भाँति भारतीय समाज की महत्वपूर्ण इकाई रहा है । विदेशी संस्कृतियों के आक्रमण के फलस्वरूप समाज को विखंडित होने से बचाने में पारिवारिक व्यवस्था का दाय अत्यन्त महत्वपूर्ण है । परिवार में जिन सद्गुणों का प्रशिक्षण मिलता है वे ही जागे चल कर समाज के व्यापक क्षेत्र में सफल और सुसंस्कृत होने में व्यक्ति की सहायता पहुँचाते हैं । यद्यपि यह किसी सीमा तक सत्य है कि परिवार की सीमाओं में सुख और शान्ति की, सन्तोष और पूर्णता का उपलब्धि होने के कारण भारत के नागरिक ने कभी कभी गृह्य और राष्ट्रीय नागरिक के कर्तव्यों में संघर्ष होने पर गृह्य के कर्तव्यों को प्राथमिकता दी है किन्तु यह भी सत्य है कि सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण रखने, समाज में सदावरण और नैतिकता का वातावरण बनाये रखने में, परिवार से अधिक और किसी संस्था ने योग नहीं दिया । रीतिरिवाज कवि विशेष मनोवृत्ति का व्यक्ति होता था । उसमें व्यापक दृष्टि के अभाव में भारतीय परिवार को सर्वांगीण रूप में नहीं देखा । परिवार की आन्तरिक समस्याएँ, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में उसका दाय, जीवन के कर्मक्षेत्र में उतरने के लिए व्यक्ति को परिवार

१- बाए बिदेसैं तैं प्रान पिमा "नतिराम" अनंद बढ़ाय असेवै ।

लोगन सँ मिति बांगन बैठि, बरी-होन्दी सिगरी घर पेवै ।

भीतर मौन के द्वार खरी, सुकुमारि तिया तन-कंप बिसेवै ।

बूधट की पट बीट दिए, पट-बीट किए पिय को मुख देखै ॥

-मा०गु०पु० ११८ ।

२- निदि दिन निदति नंद है, छिन छिन सासु रिखानि ।

प्रथम भवे सुत को बहु अकहि तेति तबानि ॥

-मति० गु०, पु० ४५९ ।

में मिलने वाला प्रतिक्षण, उसकी सीमित भाव परिधि में नहीं समा सका । पारिवारिक जीवन के रस पूर्ण चित्र रीति काल के काव्य दृष्टा और दृष्टा की अपनी और जाकृष्ट करते रहे किन्तु हिन्दू परिवार की कोई विराट् प्रतिभा ये कवि नहीं बना सके ।



अध्याय ३

राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन



## अध्याय ३

### राजनीतिक एवं जातीय जीवन

#### राजनीतिक:

१- अकबर तक जाते-जाते मुगल साम्राज्य अपनी स्थिरता और दृढ़ता के शिखर पर पहुँच गया था यद्यपि औरंगजेब के शासन काल में वह और भी विस्तीर्ण होने को था। जहांगीर का शासन-काल रीति-काल की पृष्ठभूमि में पड़ता है। रीति कवियों में केशवदास, सेनापति, बिहारी और चिन्तामणि जहांगीर के समकालीन थे। यह स्मरणीय है कि इस समय एक सम्बन्ध संघर्ष के परचात राजनीतिक क्रांति में अथेक्षाकृत शांति का वातावरण था। पराजय और अत्याचार के कटु अनुभव कुछ तो समय बीतने के फलस्वरूप मनी-वैज्ञानिक कारणों से और कुछ सीमा तक अकबर की सहिष्णु नीति के कारण विस्मृत हो चले थे और हिन्दू जाति अपनी वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट-सी हो चली थी। जहांगीर के समय और उसके बाद तक भी देश की राजधानी आगरा में रही<sup>१</sup>। केशवदास ने "जहांगीर-वस-चन्द्रिका" में जहांगीर का यशोगान किया है। जहांगीर को युग-युग तक राज करने का आशीर्वाद केशव जैसे हिन्दुध्व, और विशेष रूप से ब्राह्मण संस्कृति के पौष्पक, कवि की ओर से विविच-सा लगता है<sup>२</sup>। किंतु राजनीतिक पराजय की निराशापूर्ण प्रतिक्रिया में यह कदाचित् स्वाभाविक सम्झा जायेगा। जहांगीर के दरबार में कामरू, कन्नौज, कच्छ, करनाट, कैम्ब, कुल, करमीर, कुमायू, काम्बोज, केरल, गुजरात, बाल्हीक, तैलंग, फिरंग, मालव, मेवाड़, मुल्तान, मगध, बलोज, कंगाल, बिहार, बरार, बिन्ध्य, नेपाल, आदि स्थानों के राजाओं की उपस्थिति का उत्सव

१-उदति सभाग अनुरागिनि सौ बहू भाग साहिबी को आगरी बिलाक्यो

आनि आगरी ।

-कै० गु०, पृ० १२२

२- कै० गु० पृ० ११४ ।

है<sup>१</sup> । इनके अतिरिक्त गौड़ प्रदेश, गुजरात, गान्धार, अरब, ईराक, तांभल, सिंध, बान्धार, बुरासान के राजा भी बहांगीर की सभा में उपस्थित हैं<sup>२</sup> । यहाँ यह बात देखने लायक है कि छोटी-छोटी देशी रिवाजतों के प्रति निष्ठा और भक्ति होने के कारण देश की व्यापक धारणा नहीं रह गई थी इसलिए गुजरात, बंगाल, मगध और मेवाड़ जैसे भारतीय प्रदेशों को देश ही नहीं कहा गया अपितु उन्हें अरब, ईराक और फ़िरंग आदि के साथ गिनाया गया है ।

२- केशव दास ने बहांगीर की राजनीति (जिससे उनका तात्पर्य कदाचित् शासन - प्रबन्ध से है) की भूरिशः प्रशंसा की है । सम्राट् दाश दिशाओं में दूत, भेज कर राज को उनसे सुबनाएँ लेता है । डाकुओं और चोरों आदि से रक्षा करता है, प्रजा की अन्याय और अत्याचार से मुक्त रखता

१- कामल कन्नीय कच्छ कर्नाट कैम कुरु कासमीर कोस कुमाठ कुतलेस के ।  
कामबीज कुक कुनिद बल कुतीभीज किरकीची कुतकोत केरत सुदेस के ।  
कुंठिन कुमार सोम सरमक सुरसेन बाह्लीक साकस सकस निष्पयेस के ।  
सैलिंग तिलक विद्यानगर फ़िरंग सन्न साहिब की सभा राजे राजा देस के ॥  
मातव मेवार मुलतान माल मन्तिवार माधुर मगध मञ्ज मेवस्त महेस के ।  
बलच बलीच बंग बंगाल बरार बिन्ध्य बातुका बिहार धार बर्बर कुवेस के ।  
पंजाब पामर पुलिंग पुंडू ताट हून हाटक नेपाल कालकेम कालकेस के ।  
सहिन के साहि बहांगीर की सभा कैरीराम राजत है राजा देस देस के ॥

-के.गुं. पृ० ६३० ।

२- गौर गुजरात गया गोड़वाने गोपाचल  
गंधर गन्धर गूढ गामक गनेस के ।  
अरबअरोंक आबू आसेर अयध अंग  
आसापुरी आदि गाँव गंगत सुवेस के ॥  
संभल सिंधल सिंधु सीरठ सौवीर सूर  
संधार सुरेस बुरासान बान देस के ।  
साहिन के साहि बहांगीर साहिब की सभा  
कैरीराम राजत है राजा देस देस के ॥

-के.गुं. ६२९-३० ।

है। दगाबाजों और अत्याचारियों के लिए केशव ने कड़ा दण्ड-विधान बताया है। बचन-दण्ड से लेकर "तनु-भा" तक के स दण्ड और मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था उनकी दृष्टि में उचित है। दण्ड-व्यवस्था की कठोरता के संबंध में संभवतः बहुत कम लोग केशवदास की मान्यता को मंजूरी दे सकेंगे। जनतांत्रिक राज्यों में भी यह सभी प्रकार के दण्ड दिये जाते हैं किन्तु तत्कालीन ऐकतान्त्रिक व्यवस्था में सभी अधिकार सम्राट् या राजा के पास रहते थे इसलिए मुकदमा चलाने, उस पर निर्णय करने और निर्णय को कार्यान्वित करने के समस्त अधिकारों और कर्तव्यों के उपयोग की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। संपत्ति और शक्ति का स्रोत व्यापक जनसत्ता या कोई सूक्ष्म सत्ता न होने के कारण सम्राट् या राजा में ही सारी शक्तियां निहित होती हैं। परिणाम यह होता है कि राजा या सम्राट् की सेवा सभी प्रकार से फलप्रदायिनी होती है। और यह फल भी उन्हीं

१- चार दूत पठ्यै दस दिशा । बाए दूतनि पूछ निशा ॥

+ + +

सा ज्ञातेन ते रक्षा करै । चौर चार बटपारिन हरै ॥

जन्वाई ठानिकर निवारि । सबतैं राजहिं पुवाविवारि ॥

के०गु०पु० ५९६ ।

२- मचला दगाबाज बहु भाति । बेरे-बेरी सेवक जाति ॥

भिक्षुक रिनिवा चातीदार । अपराधी अधिकारी ज्वार ॥

वे सुख सोदर सिष्य अपार । पुवा चौर बल रत परदार ॥

वे सिब देत मरे वी ताव । ह्मा तिनकी नाहिंन राज ॥

के०गु० पु० ५९७ ।

धिगदंड बचन दंड संविष । राजसोक आगमनि निषेध ॥

चोरे काढ़ सेव अधिकार । पावे दीवे देत निकार ॥

छठे रोकि राखे अवलोकि । साती धरि देव नहिं भोकि ॥

बाठी ताड़ नम तनु-भा । छी वीच को करै अनंग ॥

छाी दंड बच के पु विवेक । जानहु धन के दंड बनेक ॥

के०गु० पु० ५९८ ।

३- सोभा दंडक की लुचि बनी । भातिन भाति सुन्दर फनी ।

सेव बड़े नृप की अनु लखै । श्रीफल भूरि भाव बहं बखै ।

के०गु० पु० ५९९ ।

मिलता है जो नृप के बचने व्यपत्ति होते हैं । नारी शरीर में बचन रूपी नृपति ने स्तन, मन, नयन और नितंबों को बचना समझ कर जल्पन्त विस्तार और जीन्मत्व प्रदान किया है<sup>१</sup>, जिस प्रकार कोई राजा अपने सहायकों और संबंधियों को विभिन्न प्रकार से पुरस्कृत करता है । "हिम्मत बहादुर बिरुदा-बली" में पद्माकर ने हिम्मतबहादुर के कृपा के फलस्वरूप ही "घर की साहिबी" प्राप्त होने की बात कही है । उन्हीं की कमाई पर सभी प्रकार के सुख प्राप्त करने का अवसर मिला । उनकी कृपाण एवं कृपा से नृपतियों का सा जीवन प्राप्त हुआ, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और परगने आदि मिले<sup>२</sup> । जोधराज ने भी बारह हजार मनसब देने की बात कही है<sup>३</sup> । किन्तु एक और राजा की कृपा जहाँ अनेकानेक फलों को देने वाली है वहीं उसकी अकृपा सभी प्रकार की विपत्तियों और पातनाजों का कारण बन सकती है । विशेषरूप से दुर्बल को तो राजा पातक और रोग सभी सताते हैं<sup>४</sup> । दो हरे

१- बचने जंग के जानि के जीवन - नृपति प्रवीन ।

स्तन, मन, नैन, नितंब की बड़ी इजाफा कीन ॥

बि०र०दी० २ ।

२- हिम्मतबहादुर ने हमें सब साहिबी घर की दई ।

राई सु सब सुख की विधि इनकी बदीलत तें भई ।

इनकी कमाई जनम तें साई कमाई और की ।

इनकी कृपा 'रु' कृपा तें पहुँचि नृपन के तौर की ।

हाथी सुरंग रथ पालकी परगमें इन बक्से सबे ।

पद्० गू० पृ० १८ ।

३- जीवत पकरि पाहि बच लीवै ।

मनसब दस्त सख्त करीवै ॥

जोध०हरा०पृ० १५८ ।

४- कहे यहि नृति सुभ्रवी, यहि सयाने लोग ।

तीन दबावत निहकहीं पातक, राजा, रोग ॥

बि०र०दी० ४२९ ।

राजकीय नियंत्रण में प्रजा का कष्ट उसी प्रकार बढ़ जाता है जैसे अमावस्या के दिन चन्द्रमा और सूर्य मिल कर संसार को अधिक तमसाच्छन्न कर देता है<sup>१</sup>। राजा के हाथ में समस्त शक्ति और दायित्व केन्द्रित हो जाने के कारण प्रशासक राजा को प्रसन्न करने के लिए जबवा कभी-कभी उसके वज्रान का साथ उठा कर प्रजावनों को सताते हैं, विभिन्न प्रकार की यातनाएं और कष्ट देते हैं। बिहाररी को संभवतः इसी स्थिति से प्रेरित होकर "स्वारथ सुकु न" वासा दीहा कहला पड़ा। जिसकी व्याख्या करते हुए बिहाररी रत्नाकर के टीकाकार ने बिर्वा राजा जयशह की और इसका संकेत माना है<sup>२</sup>। वस्तुतः एक ही व्यक्ति में सभी शक्तियों का केन्द्रित होना अपने आप में बुरा है किन्तु ज्ञान हीन और प्रजा के हितों की उपेक्षा करने वाले एवं मंत्रियों आदि पर अधिकार करने वाले राजा के संदर्भ में तो यह स्थिति और भी बुरी हो जाती है<sup>३</sup>।

१- पराजय की मनोवृत्ति अत्यन्त व्यापक होते हुए भी यज्ञ-तन्त्र उसके अपवाद मिल जाते हैं। सेनापति घरती के म्लेच्छ राजा के सेवक कहलाना पसन्द नहीं करते इसलिए वे राजा राम का यशोगान कहीं उपादेय और उच्च मानते हैं<sup>४</sup>। रीतिकालीन कवियों में भूषण में राजनीतिक दृष्टि और

१- झुह दुराज प्रजानु की ज्यों न बड़े दुख ददु ।

अधिक जघरी जग करत मिति पावस रवि-चन्द ॥

वि०र०दी० ३५७ ।

२- स्वारथ, सुकु न, अमु ब्रवा, देखि बिहंग, बिचारि ।

बाज, पराए, पानि पर तू पच्छीनु न मारि ॥

वि०र०दी० ३०० ।

३- मंत्रिनि के बस जो नृपति, सो न सखु सुख साव ।

म०गु० पु० ४८८ ।

४- धिता अनुचित तवि, धीरव उचित सेना-

पति ह्वै सुचित राजा राम बस गाइये ।

चारि बरदानि तवि पाइ कपलेश्वर के,

पाइक मलेश्वर के काहे को कहाइये ॥

से०क०र०पु० १०७ ।



जागृति सबसे अधिक है। हिन्दुओं की हार के कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा है वह अपने आप में बिल्कुल ठीक भी हो न हो किन्तु हिन्दुओं का फूट के फलस्वरूप उनकी पराजय का सिद्धान्त राजनीतिक इतिहासकार भी अब तक दोहराता रहा है। भूषण औरंगजेब के समय के और औरंगजेब के परम शत्रु छत्रपति शिवाजी उनके वरिष्ठ-नामक थे इसलिए भूषण के काव्य में औरंगजेब की कायुरुषता और उसके बतबानारों का वर्णन और शिवाजी एवं छत्रपति के अजेय परीक्षण का यशोगान एक साथ प्राप्त होता है। औरंगजेब ने अपने पिता बादशाह शाह-जहाँ को गिरफ्तार कर लिया है, उसका बड़ा भाई दारा भी उसकी कैद में है, (और अन्ततः दारा को कत्ल करवा दिया) भाई मुरादबख्श के साथ भी दगाबाजी की है। इसके विपरीत शिवाजी गरीबों के रक्षक और राम

१- जापस की फूट ही है सारे हिन्दुमान टूट,  
टूट्यो कुल राजन नीति नति करते ।

-भू.गुं.पुं. १४४ ।

२- किल्ले के ठौर बाप बादशाह साहिबहाँ,  
ताको कैद किया मानो जागि साई है ।

बड़ी भाई दारा ताको पकरि के कैद किया,  
मेहेरहु नहि ताको जायो सगो भाई है ।

बंधु है मुराद कस्त बादि चूक करिबे को,  
बीच है कुरान बुदा को कसम साई है ।

भूषण सुकवि कहै सुनी नवरंग बेब,  
एते काम कीन्हें केरि बादशाही पाई है ॥

भू. गुं. पुं. १११ ।

के साक्षात् अवतार हैं। तत्कालीन चरित कवियों की दृष्टि में हिन्दू-जाति आधुनिक राष्ट्र की कल्पना की स्थापना की और अपने चरितनामक को वे हिन्दू जाति का प्रतीक, रक्षाक और यदा कदा पर्याय, मान कर चले थे। शिवाजी ने हिन्दुओं के हिन्दुत्व की रक्षा की, स्मृति, पुराण और वेद आदि की परम्परा को बनाये रखा, राजपूतों की पर्यादा कायम रखी, राजाओं के राजधानियों की रक्षा की, पुण्य में धर्म को बनाये रखा और मराठों की सीमा की रक्षा की। ऐसे शिवाजी के शीर्ष से दिल्ली का शासक भयभीत और क्रुत हो गया है। भूषण ने अपने चरितनामक शिवाजी के शीर्ष और पराक्रम का जितना वर्णन किया है वह अत्युक्तिपूर्ण भी है ही सगे किन्तु मनुष्य जैसे तत्कालीन यात्रियों के जाँची देखे वर्णन के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि उस प्रशस्ति का अधिकांश निराधार नहीं। मराठे और मुन्हे औरंगजेब के शासनकाल में दिल्ली की गद्दी के प्रमुख और प्रबल विद्रोही थे। भूषण एवं गोरेशाह ने शिवाजी और छत्रास द्वारा सम्राट के विरुद्ध किये जाने वाले संघर्ष की

१- बाबु गरीबनेवाब मही घर तो सो तुही सिवराज विरावें ॥

भू०गु० पु० १३ ।

दिल्लि दसन दक्खिन दिसि बभन, ऐह घरन शिवराज विरावें ॥

भू०गु० पु० ४२ ।

सरवा सिवाजी राम ही की अवतारु है ॥

भू०गु० पु० ५० ।

२- राखी हिंदुआनी, हिन्दुआन के तितक राखी,

स्मृति पुराण राखी वेद-विधि सुनी मै ।

राखी राजपूती, राजधानी राखी राजन की,

घरा में घरम राखी राखी गुण गुनी मै ॥

भूषण सुकवि बीति हृद नरहठन की,

देस देस कीरति बखानि तब सुनी मै ।

साहि के सपूत सिवराज समीर तैरी,

दिल्ली बस दाविके दिवास राखी दुबी मै ।

भू०गु० पु० १७३ ।

(राम नरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित)

हिन्दू जाति के प्रतीक के संघर्ष के रूप में चित्रित किया है। इसलिए स्वभावतः उसमें कहीं कहीं दुर्घर्ष और अपराधों की भाषा मिलती है। शिवाजी की शक्ति से वास्तविक वेगमें वादताह से, शिवाजी से, बैर न करने की प्रार्थना करती है। शिवाजी के प्रताप और वास्तविक के कारण पुर्तगाल जादि उन्हे कर लेते हैं।

४- श्रीरंगदेव के शासन कास में सम्राट् और प्रशासन की सांप्रदायिक दृष्टि के कारण हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की भावना और प्रबल हो गयी। श्रीरंगदेव ने बहुत बड़े पैमाने पर अहिंसक और धर्मात्मक गिरवाये, तीर्थयात्रा पर कर लगाये<sup>१</sup>। श्रीरंगदेव ने इस्लाम धर्म के रक्षा के रूप में शासन की बागडोर ली थी इसलिए गद्दी पर बैठते ही उसने हिन्दुत्व विरोधी कार्य आरम्भ कर दिये<sup>१</sup>। अपनी कूटनीतिक दृष्टि और व्यक्तिगत पराक्रम के फलस्वरूप श्रीरंगदेव ने मुगलसाम्राज्य को विस्तार दिया किन्तु और अपने

१- सबन में साहन की सुंदरी सिबाई ऐसे,

सरवा से बैर बनि करी महाबली है।

पेस की भैरव बितायति पुरुषमास,

मुनिके सहम जाति कारनाट यही है ॥

भूग० पृ० ७५।

२- जबते साह सखत पर बैठे तबते हिंदुल ही डर ऐठे।

मंहुमे कर तीरयन लगाए बैद देवाली निदर डहाए।

कर पर बांध बंजिया लीन्हें अपने मन भाये सब कीन्हें।

सब रबपूत सीस नित नाथै ऐड करै नित पैदल धानै ॥

सात० उ०पृ० ७८।

३- पातसाह लागे करन हिन्दु धर्म की नाथु।

सुधि करि बंफतराय की लई बुन्धेला साधु ॥

गौरी० उ०पृ० ८४।

जीवन की सादगी, संयम और अनुशासन से उसने सहायकों और प्रशासकों में एक प्रकार का जातक भी बना दिया किन्तु उनके यही गुण पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के प्रतिकूल परिणाम वाले सिद्ध हुए। साम्राज्य के विस्तार में लग जाने से प्रशासन उपेक्षित हो गया, विशेषरूप से उसके बीस वर्ष के दक्षिण प्रवास के समय मध्यदेश की स्थिति अत्यन्त बिगड़ गई। अपना हर काम स्वयं करने के कारण धीरे-धीरे वह अपने सहायकों का विश्वास एवं सहानुभूति खो बैठा। अनुशासन की कठोरता और जातक के कारण उसके सहायक लगन के बजाय विवशता में संकलित कार्य करने लगे। सम्राट के भूतों के और परामर्श-हेतु भी सक्रिय करने का किसी की साहस न रह गया। उसके उत्तराधिकारी प्रायः बुद्धिहीन, बलात्, विवासी, मध्य और कामर रहे। नादिरशाह के आक्रमण के समय देश की राजनीतिक अवस्था का भी विश्व कानानन्द ने प्रस्तुत किया है वह तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की सार रूप में सच्चे और अच्छे ढंग से व्यक्त करता है। मोहम्मद शाह नादिरशाह का सामना नहीं कर सका बाबर और हुमायूँ जैसे बहादुरों का बसाया हुआ राज-वंश इस गति अवस्था की प्राप्ति हुआ।

#### वार्त्तिक जीवन:

५- सामान्यतः कल्पनावीवी साहित्यकार और उसका सौन्दर्यपारखी समीक्षक दोनों यह मान कर चलते हैं कि कल्पना-लोक के सृष्टा स्वयंभू साहित्यकार की, विशेषकर कवि की, जीवन के और व्यापक वार्त्तिकवशा

---

१- नीम पातसाह ऊन्ही, सुबमि मनसुब चून्ही,  
बहुत दिन निजाम चून्ही काविश <sup>देख</sup> क्रिये ।  
देखा मद्यमान करि छकि गये जमीर तेरे,  
रब तम की चार काढ़ी बूटे की विलीकिये ॥  
दिल्ली भई विल्ली कटेला कुला देखि डरी,  
भूयो मुहम्मद शाह पहिले अब कह टोकिये ।  
बाबर हुमायूँ की बसायो अब वंश,  
ताकी यह कैसी लोक परवा करम ठोकिये ।

से कोई प्रयोजन नहीं होता । वह ऐसे की दुनिया की देव और तिरस्करणीय समझ कर एक ऐसे लोक का सूजन करता है जहाँ आर्थिक वैषम्य की विह्वलता अन्ततः नहीं रह जाती किन्तु साहित्य का इतिहास इसके प्रतिष्ठित साक्षी प्रस्तुत करता है । आधुनिक समाजोच्च और काव्याचार्य यह प्रायः मान चुके हैं कि साहित्य समाज से विच्छिन्न नहीं रह सकता क्योंकि साहित्य जीवन से परे होकर जी नहीं सकता और मनुष्य का जीवन समाज से परे संभव नहीं । यह अवश्य है कि भविष्य-दृष्टा साहित्य-सृष्टा का सूजन कभी-कभी समाज की गति और दिशा भी देता है, और कभी उससे विनियमित भी होता है । काव्य की विषयवस्तु ही नहीं उसकी विभिन्न विधाएँ और उसके विभिन्न रूप भी युग जीवन से अनुशासित होते हैं । आलोच्यकाल का साहित्य समाज-हीन आर्थिक व्यवस्था से विशेष रूप से प्रभावित रहा है और उसके स्पष्ट प्रतिबिम्ब भी साहित्य में हैं । वस्तुतः इस युग के कवियों का एक बड़ा वर्ग उस समाज के अधिक निकट था जिसमें राजशासक और जनशासक दोनों प्रभू परिमाण में केन्द्रित थीं और उनसे उत्पन्न होने वाली अच्छाइयाँ बुराइयाँ भी उपास्थित थीं । कवियों का एक बहुत बड़ा वर्ग दरवारी था । उनके आत्म दाता तो इन्द्र-पद के अनुसूय अपने जीवन की वैभवा और प्रदर्शित से मुक्त रहते ही थे, उनका आश्रित कवि भी वैभवा और विलासपूर्ण जीवन की ओर आकृष्ट था । पद्माकर ने एक स्थान पर अपने रहन-सहन और जीवन से संबद्ध जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें अत्युक्ति भले ही हो किन्तु वह निराधार नहीं है । भूमते हुए हाथी, मस्त घोड़े, हीरे मोतियों से जड़े हुए गहने आदि का वैभवा देख कर देखता बेचारे इन्द्र-लोक छोड़ कर प्रतापसाहि के आकर्षण में घरती पर जाना चाहते हैं और उनका कवि अर्थात् पद्माकर स्वयं इतनी विभूतियों से मुक्त हैं कि इन्द्र अपना इन्द्र-छोड़ कर क्लीन्द्र कहलाना चाहता है और इन्द्राणी कविरानी की पक्षी पाकर अपने को गौरवान्वित करना



वाहती हैं<sup>१</sup>। वैभव के प्रति इस आकर्षण ने आलोच्यकास के, विशेषकर तत्कालीन गुजराती कवियों में एक प्रकार की "शहरी" मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी थी जिसके कारण वे नगर-संस्कृति और सम्पत्ता में ही रमना अधिक उपयुक्त समझने लगे थे। विषयवस्तु और अभिव्यक्ति दोनों की दृष्टि से वे परिष्करण की इस सीमा तक खींच ले जाते हैं कि वह कृत्रिम होने लगता है। बिहारी ने जब गुलाब के गंधी की गंधी गाँव में जाने और वहाँ व्यापार करने से मना किया था तो उसके पीछे भी यह शहरी मनोवृत्ति और उच्च वर्ग के जीवन के प्रति मोह काम कर रहा था<sup>२</sup>।

६- आलोच्यकास के काव्य में आर्थिक जीवन की इस सामान्य छाप के अतिरिक्त तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था के विशिष्ट प्रमाण भी मिलते हैं। गुजराती कवि अपने उपमान भी यदाकदा जीवन के आर्थिक पक्ष से चुन लेता है। बिहारी की नायिका की टेढ़ी अलक मुख पर गिर कर उसके मुख की कान्ति को उसी प्रकार बढ़ा देती है जैसे "बंक बकारी" देने से दाम रूपया हो जाता है<sup>३</sup>। रूपये में दो अघेसी, चार पावसी, आठ दुआन्नी, सोलह जाने, बत्तीस अघान्नी, चौसठ पैसे, एक सौ बट्ठाइस अघेसे, दो सौ छप्पन्न छदाम, और पाँच सौ बारह दमड़ी होती<sup>४</sup>। जमीन नापने के लिए बिस्वा और बीघे की माप प्रचलित है बीस बिस्वा का -

१- इंदपद छोड़ इन्द्र बाह्य कविन्द्र पद-

बाहे इन्द्ररानी कविरानी कहाइयो ॥ पद्म०गु०पु० २०४ ।

२- कर है, सूर्य, सराहि हूँ रहे सवे गहि मीनु ।

गंधी अथ गुलाब की गंधी गाहकु कीनु ॥ वि०र०दो० ६२४ ।

३- कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगी इती उदीतु ।

बंक बकारी देत ज्यौ दामु रूपैया होतु ॥ वि०र०दो० ४४९ ।

४- क० की० पु० ५०९ ।

एक बीघा होता है<sup>१</sup>। तौलने के लिए बाटों का प्रयोग होता था और "मन" की तौल होने का उल्लेख सेनापति एवं बौधराव के काव्य में मिलते हैं<sup>२</sup>।

७- जीविकोपार्जन के लिए कृषि विभिन्न व्यवसाय और उद्योग-धन्धी तथा वाणिज्य कर्म का व्यापार लिया जाता है। भारत आरम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है और आसोज्यकास में भी देश की अधिकांश जनता अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक साधनों का विकास न होने के कारण आसोज्यकास में, उससे पहले भी और आज भी भारत का किसान पानी के लिए बघाई पर निर्भर रहा है। खेती के लिए बाघ "नखत" की उतना ही आवश्यक मानते हैं बितना ज्यादा के लिए दूल्हा<sup>३</sup>। ऐतिहासिक साक्ष्य से यह विदित होता है कि ईस की शती उस समय पर्याप्त मात्रा में होती थी। बिहारी जैसा नागरिक मनोवृत्ति का कवि भी कभी-कभी किसी गोरटी का गदरावा तन देखने के लिए ग्रामीण मंचल में पहुंच जाता है। उससे ग्राम्य-जीवन का महत्व परिलक्षित होता है। उसकी नायिका के बीस मिश्री की तरह नहीं ईस की तरह मीठे हैं<sup>४</sup>। उसकी रसीली नायिका के शेष के समय जबवा रसहीन स्वस में भी रसिकों को रस मिलता है जिस प्रकार साठि जयति ईस की कठिन गांठ में भी मिठास की अतिशयता होती है<sup>५</sup>। बिहारी

१- बौधराव- ह० रा० पु० १३१।

२- सेनापति- क० र० पु० ८।

बौधराव- ह० रासो- पु० ६९।

३- वर से ज्यादा, नखत से रेवती।

बाघ- भ० पु० ६४।

४- छिनु छीसे तास, वह नहि की सगि बतराति।

ऊब, महुब, पियूज की ती सगि भूषि न जाति ॥

वि० र० दो० ५०४।

५- अनरस हू रस पावतु, रसिक, रसीली-पास।

वैसै साठि की कठिन गांठ भी मिठास ॥

वि० र० दो० १३७।

ने ईश के साथ बरहर का भी उल्लेख किया है<sup>१</sup> । कृषि का भारतीय जीवन में जागीरिका और संस्कृति दोनों दृष्टियों से असाधारण स्थान होने के बावजूद भी रीतिपुगीन काव्य में उसके उल्लेख अपेक्षाकृत अल्प हैं । यह तो स्पष्ट ही है कि उपर की दृष्टि से खेती की तत्कालीन स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी । उसका कारण संभवतः यह नहीं था कि धरती की उर्वरता कम हो गई हो किन्तु उस समय जैसे प्रशासनिक व्यवस्था थी उसमें किसान को अधिक लगन से काम करने के लिए उत्प्रेरक तत्वों का एकान्त अभाव था । रीतिकालीन काव्य में खेती के प्रति किसान की लगन और उसके परिश्रम, जमीन के संबंध में उसमें स्वत्व की भावना के अभाव का एक कारण संभवतः यह भी रहा हो ।

८- रीति काव्य में विभिन्न पेशों के उल्लेख भी जाये हैं । इनमें वैद्यक का उल्लेख अन्य पेशों की अपेक्षा अधिक मिलता है । सेनापति, बिहारी, बौधा और जीपति वारों के काव्य में यत्र-तत्र वैद्यक का उल्लेख जाया है<sup>२</sup> । सुन्दरदास ने दर्जी, बढ़ई, सोनार, जौहरी, लोहार और कुन्हार के व्यवसायों का उल्लेख किया है । दर्जी का पद्माकर ने भी स्मरण किया है । बिहारी पौषी (कपड़ा धोने वाले) जीढ़ (ईंटों बना डोने वाले लोग) और कुन्हार

१- सनु सूर्या नीत्यों बनी, ऊखी खई उबारि ।

हरी हरी बरहरि जगई, धरि धरहरि बिय, नारि ॥

वि०र०दी० १३५ ।

२- सेनापति- क०र० पृ० २६ ।

बिहारी- र० दोहा ४०९ ।

बौधा- वि०वा०, पृ० १०० ।

जीपति- क० की० पृ० ५५९ ।

(मिट्टी के बर्तनों का काम करने वाले) के नाम लिखे हैं। सुनार के कार्य का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत विवरण सेनापति के कवित्त रत्नाकर में उपलब्ध होता है<sup>१</sup>। बिहारी ने भी बड़ई का उल्लेख किया है<sup>२</sup>। दरिया साहब ने कसाई और चर्मकार के नाम लिखे हैं<sup>३</sup>। बाजीगरी और नट के खेल के द्वारा भी जीविकोपार्जन का विवरण प्राप्त होता है<sup>४</sup>। अकबरसाहि ने गुजार मंजरी में सुनारिन, धात्रेयी, प्रतिवेशिनी, शिल्पिनी आदि के रूप में दूतियों का उल्लेख करते हुए स्त्रियों के भी कुछ व्यवसायों का परिचय दिया है<sup>५</sup>। भिखारी ग्रन्थावली में नाहन, नटिन, चुरिहासिन, बरइन, रामबनी, रंगरेजिन, कुवरिन, बहिरिन, वैदिनी, गन्धिन, मातलिन और नटी का उल्लेख आया है। यह स्पष्ट नहीं कि इनमें कौन सी स्त्री अपने पति के व्यवसाय के कारण उस संज्ञा से अभिहित की गई है और कौन स्वयं यह पेशा करती है<sup>६</sup>।

९- वाणिज्य अथवा व्यापार भी विकसित समाज में जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है। पूँजीप्रधान अर्थ-व्यवस्था में तो यह संपत्ति के अर्जन और उसके फलस्वरूप शोषण और आर्थिक वैषम्य का कारण बन जाता है। माओव्यक्ताहीन अर्थव्यवस्था सामन्तवादी थी। पूँजीवादी समाज में अर्थ शक्ति और राजशक्ति अष्टवदा रूप से एक दूसरे से संबद्ध होती है। प्रायः पदों के पीछे से अर्थशक्ति राजशक्ति का संवाहन करती है किन्तु सामन्तवादी

१- सेनापति- क० र० पृ० २५।

२- बिहारी- विरवनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७८।

३- कसाई करम लुधियर भरि किएऊ । चर्मकार मासु रिधि दिएऊ ॥

द०गु० पृ० ३८१।

४- द०गु०पृ० ३३७(नट)

३९३(बाजीगर)।

५- अकबर- गुंथ०, पृ० १२४-१२८।

६- भि०गु०, पृ० २९-३२।

समाज में अर्थ-शक्ति भी रावतता में ही केन्द्रित हो जाती है । आलोच्यकाल में व्यापार की स्थिति सामान्यतः सामन्तवर्ग की कुशक्ति पर निर्भर थी । सामन्तवर्ग की परसंदगी और नापसंदगी बहुत कुछ अपनी उनकी सनक पर आश्रित थी । प्रदर्शन और विश्वास उनकी कुशक्ति के मूल-प्रेरक तत्व थे, उपयोगिता के लिए वहाँ संभवतः कोई स्थान न था । इसलिए प्रायः तत्कालीन साहित्य में अनुपयोगी या अपेक्षाकृत कम उपयोग वाली किन्तु विश्वास और प्रदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण वस्तुओं की तात्तिका अधिक मिलती है । इतिहास गुप्त देश की तत्कालीन आर्थिक विपन्नता के साक्षी है और जनतापारणा में कुशक्ति का प्रायः अभाव सा है । इसलिए ही संभवतः आलोच्यकाल के साहित्य में दैनन्दिन उपयोग की वस्तुओं से संबंधित व्यापार के उदाहरण अधिक नहीं मिलते । भारत का व्यापार परंपरा से ही वैरघों के हाथ में रहा है । आलोच्यकाल में भी ऐसा ही है<sup>१</sup> । कुशक्ति में मध्यस्थ होने वाले दलालों का भी उससे तत्कालीन काव्य में प्राप्त होता है<sup>२</sup> । व्यापार भी आवागमन के लिए अन्य साधनों के अतिरिक्त नाव या बहाव का उपयोग अधिक होता था । बिहारी सतसई में दो स्थानों पर नाव का व्यापार लेकर कवि ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है<sup>३</sup> । भूषण ने तो व्यापार के लिए बहाव का प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख किया है<sup>४</sup> । तत्कालीन उद्योगों में वस्त्र उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है । तत्कालीन काव्य में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का अनेकधा उल्लेख आया है । इनमें सुदन

१- बल्लि बनिवा' संग व्यापार भारी-----

बीरराज- ह०रा०पु० ७७ ।

२- देवसुधा- पृ० १२५ ।

३- वि०र०दीहा- ४६१ और ४९१ ।

४- बिहारी बहाव के, न रावा भारी राज के,

बिहारी हों कीड़े महाराज तिलराज के ।।

भू. गु० पृ० ८१ ।



में दुशासा, पट्ट, जाला, बुनी, जाला, मलमल, छोट, क्लिबाब, पसमी, जरदीज, मुकेशी, दानाफेशी, मसल, ताफता, बादी जादि अनेक वस्त्रों का उत्प्रेष किया है जो बाजार में बिकते थे<sup>१</sup>। राजविलास में बाजार के वर्णन के प्रसंग में वस्त्रविक्रेताओं की दुकानों पर जरदाफ, मलमल, मसन्जर, गाढ़ा, सिक्कात जादि अनेक प्रकार के वस्त्र रखे हैं। तन्सुब, सूफ, पटोर, दरियाई, और मन्सुब जादि बमीरों के योग्य वस्त्र बिक रहे हैं<sup>२</sup>। केशवदास ने गुजरात के वस्त्रों की प्रशंसा की है<sup>३</sup>। जमड़े का काम भी होता था तथा तो बिहारों ने बूहे के जमड़े से दामा न बनने का रूपक बना कर छोटे लोहों से बड़ों का काम सम्पन्न न होने की बात कही है<sup>४</sup>। सखी बाई ने साबुन का उत्प्रेष किया है जो कपड़े जादि धोने के काम में लाया जाता था<sup>५</sup>। चूंकि तत्कालीन राज्यव्यवस्था युद्ध और सैनिक शक्ति पर आधारित थी इस लिए सेन्यायुधों का निर्माण और उत्पादन स्वभावतः अधिक होता था। इनका उपयोग पर्याप्त उन्नत अवस्था में था परमाकर ने गुरदा, छुरी, तमबा, तीर जादि के नाम लिए हैं<sup>६</sup>। हमीर रासों में इन हथियारों के उत्प्रेष बहुत विस्तार पूर्वक आए हैं। गोला और बारूद जैसे आग्नेय-विस्फोटों का प्रयोग होता था। तीर और बन्दूकों का उपयोग होता

१- सू०सु०च० पृ० ७४।

२- मान०रा०वि०पृ० २५।

३- कैसीराव पातवान राजत है राखीन से।

जासन बसन बाछे बाछे गुजरात के ॥ के०गु० पृ० १३३।

४- वि०र० दोहा १३१।

५- सखी- स०पृ० पृ० २५।

६- गुरदा बगुरदा छुरी बमबर दम तमचे कटि ली।

बर बिबिध तीरन सों भैं तई है तुनीर महा ली ॥

पद०गु० पृ० १६।

या<sup>१</sup>। सेल, बड़ा, तेल, कटारी और छुरी के प्रयोग का भी उल्लेख आया है<sup>२</sup>।

१०- तत्कालीन ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार भारत का विदेशी, व्यापार भी उस समय प्रायः उन्हीं वस्तुओं से अधिक संबद्ध था जो द्रव्य वर्ग या सामंतवर्ग के उपयोग की थी। मुख्यतः चांदी, सोना, तांबा, और अच्छे किस्म के ऊनी कपड़े यूरोप, और फ्रान्स से विशेष कर मंगाने जाते थे। फारस की खाड़ी और बुरासान से घोड़ों का आयात अधिक होता था<sup>३</sup>। पद्माकर ने ईरान के घोड़ों की देखकर सह्यादों के प्रसन्न होने की बात कही है। इसके अतिरिक्त तूरान तुरंग गति में हिरनों से भी जागे हैं। "रुम" और बुरासान के घोड़े भी विशेष रूप से प्रशंसित होते हैं<sup>४</sup>। किन्तु कुछ मिलाकर विदेशी व्यापार की स्थिति संभवतः बहुत अच्छी नहीं रही होगी।

११- रीतिरिक्तलीन समाज की आर्थिक रचना का तत्कालीन काव्य के माध्यम से, ऐतिहासिक साक्ष्य की सहायता लेकर जो चित्र बनता है वह कुछ इस प्रकार का है। आर्थिक रचना के शिखर पर राजकुल और सामंत परिवार स्थित है जो देश की जनसंख्या का अल्पमूल्य अल्पांश है और बसके पास देश

१- बीच० ह०रा० पृ० १५१ और ७०।

२- वही, पृ० १५२।

३- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया - विल्ड ४, पृ० ११६।

४- महा अस्व ईरान के गौं कसकै । सबे की बिन्ही साहिवादे सतकै ॥  
तहां तेव तूरान के हैं तुरंगा । बिन्ही सीरि में नाहि पानि कुरंगा ॥  
महा सान हस्फान के हैं हुमकै । मनी पानि के गानि की सेत हकै ॥

+

+

+

करी रुम के अस्व डम्भगिम् ऐसी । करी ही कपी सिंधु कूदत बैसी ॥  
बुरासान के सान के है खिजाने । तुरकी समकै कसकै सुहाने ॥

पद्० गृ० पृ० २००।

की समस्त राजशक्ति और अधिकांश धनशक्ति केन्द्रित है। इस वर्ग का ध्यान देश की विविधमुखी वार्षिक उन्नति की ओर नहीं है उनके अपने जीवन में भी उपयोगिता से कहीं अधिक विलास और प्रदर्शन की ओर दृष्टि है। ऐसी स्थिति में वाणिज्य और उद्योग धन्यों की उन्नति के लिए अपेक्षित उत्प्रेरकों का अभाव है। राष्ट्रीय भाव की राशि सीमित और निरिक्त होती है उसका एक बड़ा बड़ा भाग जब इस प्रकार ऐस-बारास के साधन बुटाने में कुछ लोग प्रयोग करते हैं तो शेष बहुसंख्यक जनता के लिए कम ही बचता है। इसलिए वास्तव्य-कासीन काव्य में जनसामान्य की वार्षिक विषमता, के प्रभूत चित्र न होने पर भी वह निष्कर्ष, निकासना निराधार न होगा कि "खीसत जादमी" गरीब था। उसकी गाड़ी कमाई का एक बड़ा हिस्सा एक ऐसे वर्ग के हाथ में चला जाता है जो राष्ट्रीय भाव को अनुत्पादक कार्यों में लगाता है, फल-स्वरूप देश के वार्षिक विकास में एक प्रकार का गतिरोध वा गया है। वार्षिक जीवन के अध्ययनों का स्वभाव सा हो गया है कि वे वार्षिक दृष्टि से समाज की उच्च, मध्य और निम्न वर्गों में विभाजित कर देते हैं पर वास्तव्यकाल में संभवतः मध्यवर्ग ही नहीं। दिल्ली के संबंध में तो वार्नियर ने अष्टादश शब्दों में यह घोषणा की है कि वहाँ मध्यवर्ग का कोई अस्तित्व नहीं है। निम्न-वर्ग की वार्षिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है उसे संभवतः अपने जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं मिल पाता। नीकर पैसा वर्ग और कलाकारी वगैरह की स्थिति अनिश्चित सी है। उनका भविष्य सम्राट् और सामन्तों की प्रसन्नता अप्रसन्नता पर निर्भर है। उत्पादक वर्ग में कृषि कर्म में लगे हुए लोगों की संख्या सर्वाधिक थी किन्तु अन्य उत्पादक वर्गों की भांति कृषकों की स्थिति भी सामान्यतः अच्छी नहीं थी। गुंमार-प्रापनों और जीवन की अन्य अनुपयोगी वस्तुओं के अत्यन्त विलुप्त उत्प्रेष और कृषि जैसी सार्वभौम महत्व की वस्तु की रीतिकालीन काव्य में अपेक्षाकृत अभाव होने का कारण तत्कालीन कवियों की प्रकृति के साथ साथ कृषि की स्थिति की सार्वभौम गिरावट भी है।

अध्याय ४

रहन - सहन

## अध्याय ४

### रहन - सहन

#### आधार सामग्री-

१- रहन-सहन के विभिन्न पार्श्वों का अध्ययन करते समय हम यह देखते हैं कि जीवन के अन्य पक्षों की अपेक्षा इस संबंध में रीति काव्य विशेष रूप से सहायक होता है। ज्ञानपान का सर्वेक्षण करते समय रीति कवियों में केशव (१६१२-१६७४), बिहारी (१६६०-१७९०), मतिराम (१६७४-१७५८), तोष (१७९१), पद्माकर (१८१०-१८९०) के काव्यों से विशेष सहायता प्राप्त होती है। सूफी कवियों में उस्मान (१६७०) का काव्य इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। कासिम (१६९३) और बोधा (१८०४-१८६०) के काव्यों में भी आधारभूत सामग्री उपलब्ध होती है। चरित काव्य के प्रणेताओं में सूदन (१८२०) और जोधराज (१८७५) का काव्य सहायक सिद्ध होता है। संत कवियों में एकमात्र सुंदरदास (१६५३-१७४६) पर निर्भर रहना पड़ा है। ज्ञानपान के अधिक उत्तेजक बाबू भट्टरी (१७५३) की लोकोक्तियों में मिलते हैं। परिमाण की दृष्टि से, ज्ञानपान के संबंध में, रीतिकवि अपेक्षाकृत कम विवरण प्रस्तुत करते हैं और इनके जो विवरण उपलब्ध भी हैं वे प्रधानता उच्चवर्ग से संबद्ध हैं। अपेक्षाकृत अधिक विवरण बाबू की कहावतों और उस्मान के काव्य में है।

२- वैशम्पायन के संबंध में रीतिकवियों में आधारभूत सामग्री परिमाण की अधिकता के क्रम से ज्ञेय (१७३०-१८०२), केशव एवं मतिराम के काव्यों में उपलब्ध होती है। इनके अतिरिक्त बिहारी, बिहारीदास (१७५५) तोष, पद्माकर, ग्वात (१८७९) के काव्यों में उपयोग की सामग्री प्राप्त हुई है। नीतिकाव्यों में दीनदयाल (१८८८) और संत कवियों में सुंदरदास (१६५३-१७४६) के काव्यों से सहायता मिलती है। चरित काव्यकारों में मान (१७१७) और सूदन की रचनाएं सहायक हुई हैं। यह उल्लेख<sup>१०१</sup> है कि वैशम्पायन के वर्ण विभक्त की दृष्टि से ज्ञेय का काव्य सर्वाधिक समृद्ध है।



३- जावास एवं भवन - सन्धा के प्रकरण में केशव, सेनापति, बिहारी, मतिराम, देव, फानंद, पद्माकर और ग्वाल् कवि की रचनाएं सहायक होती हैं। इनमें भी केशव, सेनापति, देव और ग्वाल् का काव्य अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। वैशम्पायन के प्रकरण की भांति यहाँ भी देव के काव्य में वर्ण साम्य और वर्ण वैचल्य का वैभव है। इनके अतिरिक्त उल्लेखनीय सहायता चरितकवि सूदन और सूफी कवि उस्मान के काव्यों से मिलती है।

४- शृंगार-प्रसादन के बीच में हमे रीतिकवियों में केशव, बिहारी, मतिराम, देव, फानंद (१७४६-१७९६) लोच, सोमनाथ (१७९४), पद्माकर, प्रतापसाहि (१८८९-१९००) की रचनाएं विशेष रूप से समृद्ध दिखायी देती हैं। चरितकाव्य लेखकों में उल्लेखनीय सहायता केवल मानकवि से प्राप्त होती है। नीतिकवियों में दीनदयालगिरि और कृष्ण भक्त कवियों में नागरीदास (१७८०-१८१९) के काव्यों में भी तत्सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। सूफी कवियों में कासिम का काव्य सहायक हुआ है।

५- जाभूषणों के विवरण प्रचुरता के क्रम से बिहारी, भिखारीदास (१७५५) मतिराम एवं केशवदास के काव्य से सहायता मिली है। इनके अतिरिक्त सेनापति (१६४६) देव रसखान (१७५६) वात्सल (१७४०-१७६०) पद्माकर और ग्वाल् की रचनाएं विशेषरूप से सहायक सिद्ध हुई हैं। इनमें भी जाभूषणों के नामोल्लेख की अधिकता और उनके सौन्दर्यबोध की दृष्टि से बिहारी अन्य कवियों से अधिक सबग समर्थ जायेगी। सूफी कवियों में समयबकु से उस्मान कासिम नूरमुहम्मद (१८०१) की रचनाएं सहायक हैं। चरितकवियों में मानकवि, सूदन और जोधराव (१८७५) के काव्यों में जाभूषण संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

६- मनोरंजन के संदर्भ रीति कवियों में केशव, बिहारी में अधिक मिलते हैं। सेनापति, मतिराम, लोच, पद्माकर और वात्सल (१७४०-१७६०) के काव्य से भी जाधार सामग्री उपलब्ध होती है। चरितकवियों में मान, गोरेसाह (१७६४) सूदन एवं जोधराव के काव्यों में मनोरंजन सम्बन्धी उल्लेख पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। उनके चरितनायक राजा के अंतः राजाओं से संबंधित मनोरंजनों का उल्लेख

इनके काव्यों में अपेक्षाकृत अधिक है। सूफी कवियों में कासिम और इस्मान के काव्यों से भी उत्तेजनीय सहायता मिलती है। संत कवियों में सुंदरदास तथा सखी बाई (१८००) की रचनाएँ विशेषरूप से सहायक हैं।

७- रहन-सहन सम्बन्धी विभिन्न प्रकरणों के देखने पर यह विदित होता है कि जीवन की जो अपेक्षाकृत अधिक अनिवार्य आवश्यकताएँ उनके उत्तेज रीतिकवियों में कम किन्तु अन्य कवियों में अधिक मिलती हैं और रमणीयता में बृद्धि अवस्था वित्तास के लिए अपेक्षित वस्तुओं के उत्तेज रीतिकवियों में अधिक और अन्य कवियों में प्रायः कम मिलते हैं। इस प्रकार प्रचुरता की दृष्टि से रीतिकाव्य में पहले आभूषण, गुंजार प्रसादन तब वैभूषण और तत्परचात् खानपान का स्थान आता है। खानपान से अधिक संदर्भ तो भवन के सम्बन्ध में ही रीति काव्य में उपलब्ध हो जायेगी। रीतिकाव्यीन काव्य के आधार पर तत्कालीन समाज के रहन-सहन का अध्ययन करते समय इस दृष्टि से भी अधिक सबग रहने की आवश्यकता है कि तत्कालीन अधिकारी कवियों का, विशेषकर रीतिकवियों का, संपर्क उच्चवर्ग से था, और किसी भी वर्ग पर वातावरण में रहने का प्रभाव कवि-जीवन-दृष्टि पर बाह्य वित्तम्व से पड़े, बाह्य रहन-सहन पर अपेक्षाकृत बल्दी पड़ जाता है।

### खानपान

#### माहार का महत्व:

८- माहार की गणना उस क्षुर्ग में की गयी है जो मनुष्य और पशु में समान होता है। माहार पेट भरने और उसके द्वारा जीवनी शक्ति को बनाए रखने के लिए मनुष्य और अन्य जीवधारियों के लिए समान रूप से आवश्यक अवश्य है किन्तु अपनी अन्य आवश्यकताओं की भाँति मनुष्य ने इसमें संस्करण-परिष्करण के प्रयास किये हैं। इस प्रकार किसी कास की सम्भवा एवं रहन-सहन के स्तर पर तत्कालीन खान-पान और पाकविधि से स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। कृषिकार्य, भोज्य एवं पेय पदार्थ तथा पाकविधि का उत्तरीतर विकास सम्भवा की प्रगति के सूचक है। भारतीय मनीषा प्राणों को अन्नमय मानती

है। यह माना गया है कि, जैसे निर्माणकारी तत्व होगी वैसी ही निर्मित होगी, अर्थात् जैसा अन्न होगा वैसे ही प्राण निर्मित होगी। इसी-लिए भारत की सामाजिक नैतिकता में बेटी ही नहीं रौटी के भी आरूपदे निश्चित है, उतने ही कठोर संयम और अनुशासन की व्यवस्था आहार के लिए भी की गयी है। गीता ने बिहार को ही नहीं आहार को भी मुक्त बनाने का आदेश दिया है। क्या खाना चाहिए? कब खाना चाहिए? और कहाँ से प्राप्त अन्न का भोजन करना चाहिए? आदि प्रश्नों के निश्चित उत्तर दिये गये हैं। आद्य-अद्याय का विशद् विवरण प्रस्तुत किया गया है। विकास की प्राथमिक अवस्थाओं में दृष्टि आवश्यकतापूर्ति पर अपेक्षाकृत अधिक होती है। कच्चे फल एवं कंद-मूल का भोजन जीवनी शक्ति को बनाये रखने के लिए किया जाता रहा, किन्तु कालान्तर में दृष्टिकोण बदलता है, ध्यान आवश्यकता से हट कर विलास एवं स्वाद-सौंदर्य की ओर जाता है और भोजन में अनेकानेक सौन्दर्य-व्यवनों के विधान किये जाते हैं। इस दृष्टि से आलोच्यकाल के काव्य में चित्रित समाज जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति खान-पान में भी सौन्दर्य और स्वाद की दृष्टि लेकर चलता है। इसमें भी यत्र-तत्र अतिशयता की प्रवृत्ति मिलने लगती है।

९- भारतीय आदर्श एवं परम्परा के अनुसार शाकाहार ही सात्विक एवं उत्तम भोजन माना गया है। रीतिकालीन काव्य-स्रोतों से ज्ञात होता है कि इस समय भी भोजन का आदर्श शाकाहार ही था यद्यपि मांसाहार का प्रचलन भी पर्याप्त रूप से था। अन्य क्षेत्रों की भाँति खान-पान में भी उच्च एवं साधारण वर्ग के मध्य गहरी खाई स्पष्ट देखी जा सकती है। उच्चवर्ग बड़ा सोने-चाँदी के मनोहर पात्रों में सुस्वादु एवं मूल्यवान् पकवानों का भोग करता था वहीं साधारण वर्ग का व्यक्ति मिट्टी के लोढ़े बर्तनों में, पेट भरने के लिए, साधारण अन्न की रौटी और साग ढाकर ही अपने को चैन्य समझता था। राजस्य वर्ग के प्रतिदिन के एवं विशिष्ट भोज्यों पर परीसे गये विभिन्न व्यंजन स्वाद की संपन्नता एवं पकवानों की विविधता के चोखे हैं।

### साधान्न एवं पक्वान्नः

१०- रीतिकाल में अन्न की बहुलता थी । जनसाधारण तथा उच्चवर्ग में पक्वान्नों के निमित्त प्रयोग में लाए जाने वाले विविध साधान्नों का उल्लेख सूदन ने किया है । गेहूँ, चावल, जना, बड़द, मूँग, तिल मटर, मसूर, सरसों, सब्जी, को दौ, मरका एवं मकरा आदि अन्नों के अतिरिक्त मीठे पसाई, कागुनी, कुरावटी, कुत्थी, सिंवारा, सकरा आदि भी भोजन में व्यवहृत होते हैं<sup>१</sup> । हिन्दुओं के सादे, स्वास्थकर एवं सुखविपूर्ण सत्त्वगुण-प्रधान भोजन का स्थान अब धनी एवं उच्च वर्गों में चटपटे मसाले वाले बहुमूल्य एवं विशिष्ट रजोगुण प्रधान भोजन ने ले लिया था । हिन्दू सामन्तों की बड़ी दावतों एवं विशाल भोज्यों में पाकशास्त्र की उन्नत कला के अनुसार बनाये गये रसचिकर एवं सुस्वादु व्यंजनों की अपेक्षा रहती थी । इरानी एवं पारसी पाककला की विधियाँ सम्पन्न हिन्दू एवं मुस्लिम वर्ग में समान रूप से लोकप्रिय हो गयी थीं । भोजन की बहुमूल्य, उत्तम एवं सुस्वादु बनाने के लिए विविध मसालों का विधिवत् प्रयोग किया जाता था । भोजन के संदर्भ में सूदन ने कालीजीरी, जायफल, बवाइन, जीरा, दासवीनी, पीपर, वाय-बिरंग, जाबला, बसलोवन, इलायची, लींग, ईसबगोल, सौंफ आदि मसालों के उपयोग का वर्णन किया है<sup>२</sup> । मसालों तथा अन्य अनेक आवश्यक पदार्थों के मेल से अनेकानेक मीठे एवं नमकी पक्वान्नों का निर्माण किया जाता है । इन पक्वान्नों की बहुलता एवं विविधता का अनुमान सूदन की सूची के द्वारा सहज ही किया जा सकता है । इनमें लड्डू, नुक्की, मोदक, क्ताकंद, सिमई, मगद, सेव, बुरमा, गुलाब पपड़ी, बमिरती, बलेबी, गुझिया, गुलकन्द, घेवर, मास-पुन्ना, कबीरी, हलुवा, छिलमी, क्तरी, रसनासुख, रेवड़ी, इलायचीदाना आदि के साथ ही दही बड़ा का नाम भी है<sup>३</sup> । पक्वान्नों की एक लम्बी सूची

१- सूदन- सु० च० पृ० १७८ ।

२- चिरीजी, छुहारी, जावित्री, जायफल, बवाइन जीरा-----

सु० सु० च० पृ० १७५ से १७७ ।

३- सूदन- सु० च० पृ० १७८ ।

मान कवि ने भी राजविलास के अष्टम विलास में दी है।

११- काव्य में यत्र-तत्र इन भोज्य पदार्थों के खाने-खिलाने के भी चित्र मिलते हैं। केशव ने रामचन्द्र के द्वारा अट्टरस व्यञ्जन किये जाने का उत्प्रेष किया है जिसमें चार प्रकार की बीर तथा तीन प्रकार स्वादिष्ट मट्ठा भी है। छल-जवाहिर के विवाह में दूध, दही एवं रस परोसा गया है, इस प्रकार के पौष्टिक-भोजन को ग्रहण कर बृद्ध भी तरुण हो उठे तो स्वाभारव्य है। तेल का भी व्यवहार होता है। संभवतः दूध, दही, चावल, फल तथा तेल संबंधित आदि निर्धनों के विशिष्ट भोज्य पदार्थ थे, जिन्हें वे अपना पूजा निधान के लिए त्याग देते थे। विवाह भोज तथा अन्य उत्सव-आयोजन पर दावत और निर्व्रजता का प्रबन्ध किया जाता है। विजावली के विवाह के समय आयोजित ज्वीनार का बहुत विस्तृत विवरण उल्मान ने प्रस्तुत किया है। उससे तत्कालीन उच्च वर्ग के भोज-प्रबन्ध की विशिष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है। बरात को बन्वासे में बैठा दिया गया है। रसोई की व्यवस्था

१- धीर मुनिबदूर, बंड बनका रू पतासा ।

मिंदोरा दहीबरा, दीवठा बाबा बासा ॥

पैरा बुरमा प्रगट सेतना गुंफा लखस ।

क्लाकंद क्लार, सरस खीरे सुनिमे रस ॥

मुलमुला शरकबारा सबल देविदमी दादर मसत ॥

सु बसेवी खेमी मक्करी नीर बमुली ।

फेनी फुनि रेवरी स्वाद कन बंड खिखी ।

मरफनी बरफनी बीलखार फलखार खिखी ॥ मान०रा०वि०पृ० ९१ ।

२- पुनि त्यों चौविध मानु बन्धी ।

तक तीन प्रकारिन शीम सन्धी ॥ के०की० ३।१५१ ।

३- दूध दही चावर रस भाई ।

तरुन होय जो बूढी बाई ॥

४- य०ज०क०पृ० ९६ ।



भजन के भीतर ही है चंदन कुंकुम आदि से जागन को सौंपकर चीके के उपयुक्त बनाया गया है । सोने के थाल में खाने की वस्तुएं सजायी गयी हैं ।  
 बारी लोह दोने और पत्तल भी लाये हैं । कुंकुम-कर्पूर से सुवासित शीतल जल की व्यवस्था है । पत्तल ठाल देने के बाद थाल सजा दिये गये और अनेक जन विविध पक्वान परोसने लगे । दूध से घुले गेहूं का प्रयोग किया गया है । चावल सुगंधि से भरपूर है जिससे आकृष्ट होकर भौरे भी जा गये हैं । अनेक प्रकार के व्यंजन बनाने के लिए मूंग और चने का प्रयोग किया है, इनसे बने व्यंजनों की संख्या जगणित है । डुहका, छीमी और बड़वरा के साथ अमिरितबरी फुलारी और बरे भी हैं । इनके अतिरिक्त सपसी की मिठास है, अनेक प्रकार के जचार हैं, समोसे के नमकीन स्वाद के समानान्तर खीर की मधुरता है । भोजन में स्वाद के संयोग और वैषम्य की बहुत कुछ वैसी ही सृष्टि की जाती थी जैसे वस्त्रों में वर्ण संयोग और वर्ण वैषम्य की । मीठे के साथ मीठा और मीठे के साथ नमकीन दोनों का अपना स्वाद होता है । यहाँ जाम के सट्टेपन के साथ कटहल की मिठाई है, नींबू के साथ दाब की मधुरता है, बादाम के साथ खजूर है । इनके अतिरिक्त मिश्रित स्वाद की वस्तुएं हैं । मिठाइयों में सड़हू, खाना, फेनी और बलेबी है ये सभी वस्तुएं इतनी अच्छी बनती हैं कि खाना तो सांस की हवा से ही उड़ जाता है, फेनी बहुत महीन और बलेबियाँ रसभरी हैं<sup>१</sup> । हंस बजाहिर के विवाह में बत्तीस वर्णों की विरंची, चौसठ प्रकार के नान एक से एक बढ़ कर सवारे हुए और सुवासित सकराना के सहस्रों थाल परीसे गये<sup>२</sup> । दूध, दही, रस आदि के साथ अत्यन्त स्वादिष्ट चावल भी लाये गये । लोह भोग करने लगे और चावल की मनोहर सुगन्ध से ही सब तृप्त हो गये<sup>३</sup> । विशिष्ट

१-उस्मान वि० पृ० १९९-२०० ।

२- कासिम हं ब० पृ० १७७ ।

३- दूध दही पानी रस दाबा । पुनि चाठर बस सुना न चाबा ।

लोह लोह भोग सब बाही । बासहिं से गये पुरुष जबाही ।।

का० हं ब० पृ० ८८ ।

भोज्य पदार्थों में सुंदरदास ने रायता, लपसी तथा रबड़ी की गणना की है<sup>१</sup>। हिन्दुओं के मध्यम वर्ग के परिवार में दास, चावल, रोटी, तरकारी, पापड़, मूठा आदि सादे एवं पौष्टिक पदार्थों से युक्त भोजन किया जाता है। गृहिणी साधारण भोजन की उचित रीति से बनाती है और उसमें विशेष स्वाद आ जाता है। उसकी दास भली भाँति गली होती है, चावल से सुगन्ध की लपटें निकलती है, पुरियां नरम होती हैं, पापड़ों को देखकर ही मुँह में पानी आ जाता है, तरकारी स्वादयुक्त है तथा मूठा गुुधा को शमन करने में समर्थ है<sup>२</sup>। इस प्रकार के स्वादिष्ट भोजन पाते को तृप्त कर वह उसका मन हर लेती है। कढ़ी, बेसनी का भी परिवार में प्रचलन है<sup>३</sup>। अत्यन्त निर्धन परिवार में कोदी, मूंगा, सब्जी, जैसे अति साधारण अन्न का व्यवहार होता रहा होगा क्योंकि इन्हें हेम दृष्टि से देखा गया है<sup>४</sup>।

#### फल और मेवे:

१२- रीति काव्य में जाये उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस समय फलों का प्रयोग पर्याप्त रूप से होता था परन्तु मूल्यवान् होने के कारण इनका प्रचार घनी एवं उच्चवर्ग में ही सुलभ था। फलों का व्यवहार प्रतिदिन के भोजन के उपरान्त या दावत आदि के समाप्त होने के बाद किया जाता है। उस्मान ने विवाह आदि के भोज की समाप्ति पर जनबास के

१- सुंदरदास ग्री, पृ० ३५२, ७३४ एवं ७३७।

२- दारि गली है भली विधि सों बहु चाउर है गी सुगंध भरी बू।

देखि बराबरि रीझि रहौगे सु पापरि पूरी करी न उरी बू।

है तरकारी सब्ज भरी बनि गौरस सेवक भूष हरी बू।

सुंति०पृ० ३२८।

३- सुंति०पृ० ३२८-३२९।

४- कोदी सब्ज अन्न नहीं। बुलाहा बुनिया बन नहीं॥

वा०फ०, पृ० ७०।

वृत्तिधियों द्वारा आम, नीबू तथा खूर आदि फल गहना किये जाने का वर्णन किया है<sup>१</sup>। पद्माकर ने ग्रीष्म की ज्वाला को शान्त करने के लिए, गर्मी के दिनों में रईसों के द्वारा खूर के सेवन का उल्लेख किया है<sup>२</sup>। जोधराज के हमीररासों से ज्ञात होता है कि आम, नीबू एवं केला के अतिरिक्त अनार, सेब, जामुन, नारंगी, खिरनी, नारियल, आदि फलों का प्रयोग बहुतायत से होता है। कटहल, बड़हल, कदंब एवं मौसमी का प्रयोग भी फलों में लोकप्रिय है<sup>३</sup>। सूखे फलों एवं पौष्टिक मेवों की खपत भी धनी वर्ग में के बीच प्रचुर मात्रा में होती थी। रीतिकान्त में नाना प्रकार के मेवों एवं सूखे फलों के द्वारा उच्च वर्ग में अतिथि-सत्कार किये जाने के प्रसंग ब्रज्य है<sup>४</sup>। इनमें दाव, छुहारे, निरौबी, किशमिश, कमलखट्टा, मखाने, मुनक्का आदि हैं। अन्य पौष्टिक पदार्थों में कमलपूत, गोंद, खैरु, गोखरु, गुग्गुलु तथा मिर्ची आदि का प्रयोग विविध प्रकार से मिलता है। मेवों और फलों की बायात बुबारा एवं समरकन्द से होता था। बर्नियर ने बाड़े की वस्तु में लई की तरह में लिपटे हुए खूर तथा नाशपाती के बिकने का उल्लेख किया है<sup>५</sup>। गर्मी की वस्तु में आम और तरबूरे बहुतायत से बिकते थे और यथाशक्ति हर व्यक्ति इनका प्रयोग करता था।

### खानपान में विवेक:

१- खान-पान में सन्तुलन का ध्यान रखा जाता है। पाच ने बाठ कठीता मठा पीने वाले और सोलह मक्खी की रोटियाँ खाने वाले दरिद्र के घर में पर लौक न करने की सलाह दी है<sup>६</sup>। रीतिकान्त के व्यक्त<sup>ति</sup>

१- इस्मान--विजयवती, पृ० १९९।

२- पद्म० पृ० १५९।

३- जो० हमीररासों, पृ० ७१।

४- बर्नियर की भारत यात्रा, पृ० ४३।

५- बाठ कठीता मठा पीने सोलह मक्खी खाने।

उसके घरे न रोड़े घर का दारिद्र ब्रज्य।।

वाक-५, पृ० २६।

विभिन्न वायु पदार्थों के संयोग एवं उसके उपयोग के प्रभाव से भी पराजित है। बिचड़ी यदि बिना बी के बायीं वायु तो न तो वह पीष्टिक रहती है और न सुस्वादु हो<sup>१</sup>। उड़द को पचाने के लिए हींग और सोंठ, केला के लिए बी, गीरस के लिए सरसों, आम के लिए नींबू का अचार उत्तम समझा जाता है<sup>२</sup>। पुंज्यां और पूरी को एक साथ खाना स्वाग्न्ध्य के लिए हानिकर कहा गया है। वायु के अनुसार ऐसा करने वाला व्यक्ति बिना मीत ही मरता है<sup>३</sup>। किंतु विशेष ऋतु में भोजन-विशेष का क्या दुष्प्रभाव हो सकता है इससे भी तत्कालीन समाज अनभिज्ञ नहीं था। इस दृष्टि से चैत में गुड़, वैशाख में तैल, ज्येष्ठ में बेस, सावन में साग, भादों में दही, असार में दूध, कार्तिक में मठा, मगहन में बीरा, माघ में मिर्ची तथा फागुन में चने खाने का निषेध किया गया है<sup>४</sup>।

रसोई:

१४-

मातृजीवकास में भी हिन्दू गृही की रसोई की परम्परा

१- बिना माघे भिन्न बिचड़ी वाय, बिन गहने ससुरारी वाय ।

बिना ऋतु के पहिरे पीमा, को वाय वह तीनी कीमा ॥ वा०भ०, पु० ५१ ।

२- उड़ के पचाइवे को हींग बरु सोंठ बेस केला को पचाइवे को भिन्न निरधार<sup>५</sup>।

गीरस पचाइवे को सरसों पुवल दण्ड आम के पचाइवे को नींबू को अचार है।

श्रीपति-क०की०पु० ३८९ ।

३- बाकी मारा बाहिए बिन मारे बिन वाय ।

बाकी मही बतारण पुंज्यां पूरी वाय ॥ वा०भ०, पु० ६० ।

४- चैते गुड़ वैशाखे तैल, जेठ का पंग ज्येष्ठ का बेस ।

सावन साग न भादो दही, कार दूध न कार्तिक मही ।

मगहन बीरा पूरे चना, माघे मिर्ची फागुन चना ॥ वा०भ०पु० ६८ ।

का निर्वाह किया जा रहा था। रसोई बनाने की विधि वैज्ञानिक थी। हिन्दू परिवार में भोजन बनाते समय स्वच्छता, एवं शुद्धि का विशेष ध्यान रखा जाता था। बिहारी की नायिका "टटकी" धोई धोती पहन कर ही रसोई में प्रवेश करती है<sup>१</sup>। उच्च वर्ग के लोग एवं राजे महाराजे भी फर्शी पर गंगाजल छिड़क कर अथवा गौबर से लिपे फर्शी पर आसन हासकर बैठ कर भोजन करते थे<sup>२</sup>। चित्रावती के विवाह में पहले बीका लगाकर आंगन को चंदन एवं कुमकुम से लीपा गया तभी खोने के बालों में भोजन परीसा गया<sup>३</sup>। भोजन के उपरान्त हाथ को अच्छी तरह से धोना आवश्यक था इसके बाद ही मुख को स्वच्छ एवं सुवासित करने के लिए पान अथवा बीरा दिया जाता था। हंसबाहिर<sup>४</sup> तथा चित्रावती<sup>५</sup> दोनों के विवाह में बरातियों ने भोजन के परवात् हाथ धोकर पान बाया। विशिष्ट मेहमानों एवं अतिथियों का भोजन के पूर्व पांव भी धुलवाया जाता था। चित्रावती के विवाह में भारी और बटुआ लेकर पांव धुलाया गया तदुपरान्त सब लोग अपनी २ बाति के साथ पंक्तिबद्ध होकर बैठे<sup>६</sup>। भोजन के बाद की स्वच्छता

१- टटकी धोई धोती, चटकीली मुखजोति ।

लसति रसोई के बगर, अगरमगर दुति होती ॥ वि० र० दी० ४७७ ।

२- मुगल राजमहलों का जीवन, पृ० ४३ ।

३- उरूपान- वि० पृ० १९९ ।

४- कासिम-हं० ज० पृ० ८९ ।

५- अचम उठे खरिका कर सिन्हे, हाथ पौवाइ पाठ पनि दीन्हें ।

उ० वि० पृ० २०० ।

६- भारी गडुआ लोग संभारी, ते जस पछिले पांव पखारी ।

बैसि गये सब पातिन्ह पांती, साथ साथ सब बपने जाती ॥

उ० वि० पृ० १९९ ।



के लिए बारी जादि रहते थे जो पक्षों समेट कर जागिन वा फरी को पुनः साफ करते थे<sup>१</sup>।

१७- रीतिकान्ध में स्त्री और पुरुष के द्वारा सम्मिलित रूप से भोजन करने के उत्तेज नहीं, प्राप्त होते । स्त्री-पति एवं घर के अन्य लोगों को खिलाने के बाद ही जाती थीं । भोजन करते समय वह अपने पति को बड़े स्नेह से पंखा झलती थीं । हंस जवाहिर की नायिका गुलाब बल से भरी भारी लेकर अपने प्रिय के हाथ-पैर धुलाने में सहायता करती है और जब पति भोजन करता है तो अपने आँख से झाँकती है<sup>२</sup>। भोजन से प्रिय को तृप्त करके पुनः हाथ धुलाती है और आराम करने के लिए पलंग सजा देती है । सुगंधित पान देने के बाद दाण भर पंखा झलकर पुनः पति के पैर धवाने लगती है<sup>३</sup> । रुक्मिणी भी भोजनोपरान्त आचमन कराके पान के बीड़े देती है<sup>४</sup> ।

१८- भोजन की स्वच्छता एवं सुविधानुसार बनाने और परोसने के लिए विभिन्न प्रकार के बर्तनों का भी उपयोग किया जाता था । बर्तन विभिन्न धातुओं के बने होते थे । उच्च वर्ग में वे सोने, चाँदी जादि मूल्यवान् धातुओं के होते थे तो निर्धनों के यहाँ मिट्टी के कूरा, कर्वा, हण्डियाँ,

१- उस्मान- बि० पृ० २०० ।

२- लीन उठाव आप कर भारी पिठ के हाथ धुलावे बारी ।

पुनि जाँवर से वायु हुआवे पै पीतम नहीं और उठावे ॥

का० ह० ब० पृ० ९५ ।

३- पीतम भोग अथाव जो लावा, तब धन प्रिय के हाथ धोवावा ।

सुरवा टार पलंग तर डारा, लीला धन तब पान पिटारा ॥

छिन बक नारि हुआवेत वायु पुनि लागी करवावेत<sup>५</sup> । का० ह० ब० पृ० ९७

४- भोजन कर पुनि अचमन कीन्हा रुक्मिणी सब कर बीरा दीन्हा ॥

रत्नकुमारि, प्रेमरत्न, पृ० ३२ ।

में यह समान रूप से लोकप्रिय था । लोग पान अथवा "बीरी" तैयार करने की कला में दक्ष थे । पान को सुगंधित, सुन्वाद्य एवं रसविकर बनाने के लिए अत्यावश्यक पदार्थों के साथ ही कुंकुम, मेदोज, मृगमद एवं कर्पूर आदि पदार्थों का मेल किया जाता था । इस प्रकार के बीरे बनाकर वनितार्थ वर्तनों में तैयार रखा करती थी<sup>१</sup> । पान के अत्यधिक प्रचार के कारण इसकी दुकानें लगा करती थी । माधवान्त में नगर में प्रवेश करके सुन्दर बीरा रखते हुए बरई की दुकान में आश्रय लिया था<sup>२</sup> । पान का उपयोग कई दृष्टियों में होता था । सर्वप्रथम इसका महत्व अतिथि-सत्कार की दृष्टि से था । हर अवसर पर, जाने बीर जाने के समय स्नेह एवं आदर के साथ पान प्रस्तुत करना साधारण शिष्टाचार एवं अतिथि सत्कार के अन्तर्गत जाता था<sup>३</sup> । भोजन के उपरान्त मुख को स्वच्छ करने के लिए भी पान दिया जाना आवश्यक माना जाता था । विवाहोत्सव एवं हस्त-व्याहार के विवाह में इसका उत्तेजक कई बार होता है ।

१८- पान-पुण्य-झीड़ा एवं चित्तार-पेष्टाजो के क्षेत्र में भी विशेष स्थान रखता था । संयोगवस्था में नायक-नायिका एक दूसरे को पान का बीड़ा चित्ताते हैं परन्तु स्पर्श छुब के कारण उनके मात्र शिथिल हो जाते हैं । हाथ का बीरा हाथ में रह जाता है और मुंह का मुंह में<sup>४</sup> । विहारी की

१- बल बल फल फूल भूरि, नवर पटवास धूरि ।

स्वच्छ वलाकर्दम हिस, केन वनिता जी ।

कुंकुम मेदोजवादि मृगमद कर्पूर आदि,

बीरा वनितन बनाय भावन भरि राखे ॥ के०की० २।१२५ ।

२- बर दुकान बरई छुवन बीरा रखत करीर ।

करि पुण्यम सन्मान कर बरई लाग्गी पाई ॥ बी०वि०वा०पु० ५८ ।

३- गोब- वाग्नेज आदि, पु० २३७-३८ ।

(प०पी०मायूर के शोधप्रबन्ध से उद्धृत) ।

४- केन क०पि०, पु० १२९ ।

नायिका का स्वांग और भी निरासा है। प्रियतम पुण्याभिज्ञानी होकर नायिका के हाथ से पान का बीड़ा लेने का आग्रह करता है, नतनयना नायिका मुस्कराकर प्रियतम के मुँह में पान का बीड़ा रख देती है<sup>१</sup>। पान की पीक नायिका के गले में घँसती हुई ऐसी मालूम होती है मानों गले में गुलबन्द की लाल रेखा हो<sup>२</sup>। संयोगवस्था में नायक नायिका के नेत्र एवं मस्तक आदि पर लगी पीक का उत्सव अनेक बार हुआ है।

रौतिकाव्य में उस समय तम्बाकू के प्रचलन का पता भी चलता है। नायक तम्बाकू पीने के साथ-साथ नायिका का मन भी अपनी ओर खींच लेता है<sup>३</sup>। तम्बाकू खाने पीने का चलन इस सीमा तक पहुँच गया प्रतीत होता है कि उसकी निदा में कटु बातें कहने की आवश्यकता प्रतीत हुई। साधु जनों का यह आदर्श है कि भाँग, अफीम और पान आदि न लयें। वस्तुतः पान के साथ तो नैतिकता अनैतिकता का प्रश्न नहीं जुड़ा रहा परन्तु भाँग, अफीम, मदिरा की भारतीय समाज सदैव अवांछनीय और अनैतिक समझता आया है और केवल साधु जन ही नहीं जनसमाज भी इन्हीं इसी रूप में देखता आया है।

### माँसाहार एवं मज्जपानः

१९- माँसाहार भी होता था परन्तु इसका चलन वाणिज्य वर्ग जबवा शुद्ध वर्ग में ही अधिकार रूप से था। बर्निबर ने बाज़ार में विभिन्न प्रकार के माँसों के विक्री का उत्सव किया है<sup>४</sup>। सामान्यतः कोई प्रसन्न हिंदू को माँसादि खाने के लिए तैयार नहीं कर सकता था परन्तु मुगल परिवार में इसका सामान्यरूप से उपयोग होता था। वाणिज्य वैश्य एवं कुछ ब्राह्मण उपजातियाँ पूर्णरूपेण शाकाहारी थीं। साधारणतया माँसाहार समाज में

१- विहारी र० दी० १२७।

२- वही, दी० २ ४४०।

३- शांतिग्राम, सा०प्र०पु० ४४१-४२।

४- बर्निबर, पु० १४५।

बच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था ।

२०-

मद्यपान के सम्बन्ध में हमारी दृष्टि कुछ भिन्न रही है । यह ठीक है कि देश के इतिहास में कोई भी ऐसा काल नहीं रहा जब मद्यपान के प्रयोग का एकान्त अभाव रहा हो किन्तु यह भी सत्य है कि मदिरा और मांस गहिरे घेव और भोज्य समझे जाते हैं । नैतिक दृष्टिकोण से त्रिविध छन्द रूप में उनके संबंध में सोचना कभी संभव न रहा अतः खानपान सामान्यतः और खानपान की निषिद्ध वस्तुएं विशेषतः धार्मिक परिदृश्य देखी जाती रही है । मद्यपान और मांस भक्षण को नैतिक अपराध समझा जाता रहा है और यहां तक कि पश्चिम के प्रभाव से विचारधारा में कुछ परिवर्तन आने के बाद भी आधुनिक युग के सांस्कृतिक नेता महात्मा गांधी की दृष्टि में मदिरापान बेरमागमन के समान ही पातक है । आसोज्यकाल में कदाचित् इसी कारण से हिन्दुओं के बीच मदिरापान और मांसभक्षण का बड़े पैमाने पर चलन होने के प्रमाण नहीं मिलते । बहागीर के समय में भारत आने वाले अंग्रेज यात्री एडवर्ड टेरी ने भी हिन्दुओं के बीच मदिरापान के एकान्त रूप से वर्णित होने की ताली दी है । काव्य में यत्र-तत्र मदिरापान के उदाहरण अवश्य मिलते हैं । नायक नायिका मद्यपान से उन्मत्त हो आसंगनपाश में जाबद्ध हैं<sup>१</sup> । कहीं नायिका अकेली ही वात्सल्य के मद में मत्तवाली हो रही है<sup>२</sup> । किन्तु काव्य के इस साक्ष्य पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस काव्य का पैरणा स्रोत वह समाज था जहाँ स्त्री या पुरुष के लिए मद्यपान दैनन्दिन और स्वाभाविक कार्य था । बहागीर का मदिरापान तो बिल्पात है ही, औरंगजेब के अतिरिक्त अन्य सभी मुगल सम्राट् जिनमें बक़र भी हैं, काव्य और कामिनी के अतिशय भक्त रहे हैं और उनके ईर्ष्या-मिर्द रहने वाले सामन्त और सामन्त-परिवार में मदिरा का सार्वभौम चलन स्वा-

१- लीला - सु० नि० पु० १५० ।

२- पद्० गू० पु० ८७ ।

भाविक है। राजदरबार से संबंध कवि के काव्य में मदिरापान के उत्तेज देखकर वह निष्कर्ष निकालना उचित और संभव नहीं होगा कि तत्कालीन समाज में मदिरा का बहुत व्यापक चलन था। बल्कि ऐतिहासिक साक्ष्य तो प्रायः इसके विपरीत ही है। जनसामान्य वार्षिक और नैतिक कारणों से कादम्ब-कामिनी और पास से दूर रहता रहा होगा इसे मानने के आधार पर्याप्त ठोस और सबल हैं।

### निष्कर्ष:

११- रीतिकालीन काव्य के आधार पर तत्कालीन समाज के ज्ञानपान का एक सर्वेक्षण करने के परचात् यह दिखायी पड़ता है कि जीवन के अन्य पक्षों की भांति यहाँ भी कवि की दृष्टि साधारण जन के जीवन में नहीं रमती थी। ऐतिहासिक साक्ष्य से यह विदित होता है कि तत्कालीन भारत शासकों का दृष्टि से और सर्वतः वार्षिक दृष्टि से भी अतीतकालीन भारत की अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध नहीं था वरन् इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि ब्राह्मण्यकाल में अन्य कालों की अपेक्षा दुर्भिक्ष और अकाल अधिक हुए। तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था और शोषण के कारण स्वभावतः जनसामान्य के पास जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की न्यूनतम पूर्ति के साधन भी कठिनाई से बचते थे। रीतिकालीन काव्य के आधार पर यदि तत्कालीन ज्ञानपान के संबंध में कुछ निष्कर्ष निकाले जायें तो ऐसा प्रतीत होगा कि समाज में शासकों की प्रचुरता तो थी ही उनके विविध सुस्वादु व्यंजनों का निर्माण भी होता था। ऐतिहासिक साक्ष्य से मिलाने पर यह विषय वास्तविक नहीं ठहरता<sup>१</sup>। यह ठीक है कि राजकुल और सामन्त वर्ग के ज्ञानपान में विविधता और स्वाद की दृष्टिकोण ही प्रधान था। समाज की राजनीतिक और वार्षिक रचना ऐसी थी कि अपनी विस्तृत सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के सभी साधन इस वर्ग के पास उपस्थित थे और काव्य में भोज्य पदार्थों की

---

१- अध्याय १ में दी गयी ऐतिहासिक पीठिका के संदर्भ में।



विविधता और स्वात्मपन्नता के जो उल्लेख है, उस वर्ग का बहुत कुछ वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते हैं और इस दृष्टि से वे चित्र जिस वातावरण में सिरजे हैं, उस वर्ग के प्रति पर्याप्त ईमानदारी के साथ अंकित किये गये हैं। यह बात तत्कालीन सामाजिक जीवन के नन्य पक्षों के काव्य में पाये हुए चित्रों की भाँति खान-पान के संबंध में भी समान रूप से सत्य है।

### वैशभूषण

#### परिधान-धारण का प्रेरणा स्रोत:

२२- मनुष्य के परिधान - धारण के मूल में दो ही मनोवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं। एक तो इतर जीवधारियों की भाँति वह नग्न न रहकर बचने की आवश्यक और संभव रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। दूसरा, इसी का परिणाम है—वह है उसका सौन्दर्य बोध। समाज की विकासवस्था में यहही मनोवृत्ति ही प्रधान रहती है। मनुष्य कपड़े पहनता है क्योंकि वह नन्य जीवधारियों की भाँति नंगा नहीं रह सकता। उसे शीतातप से बचने के लिए भी वस्त्रों की आवश्यकता है किन्तु यह अवस्था कर्माभिमुख और विकासोन्मुख समाज में ही रहती है। कर्म की उत्साहमयी भाभा के तिरौछे होने पर, जीवन के सबस्त्व तत्व की विजातिदायिनी छाया के प्रसार पर और समाज की अधिक विकसित अवस्था में, और विशेषकर इन दोनों के संयोग में परिधान-धारण का प्रयोजन आवश्यकतामय नहीं रह जाता, हमारा सौन्दर्य बोध उसका दिशा निर्देश करने लगता है। वस्तुतः हर रवस्त्व तत्व प्रधान समाज में अनिवार्य आवश्यकताओं और प्राणिगत बुभुक्षणी की तृप्ति के लिए आवास-साध्य सामग्री बुटावी जाने लगती है। वास्तव्यकास में भी ऐसा हुआ है। रीति-काव्य की रचना उच्च एवं सामन्त वर्ग के लिए हुई थी। जिस सामन्तीय रूपि के लिए वह रचनाएँ की गयीं थीं उनमें वस्त्र केवल जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में ही नहीं धारण किया जाता था। रीतिकाल में वस्त्र उपयोग उन्नत अवस्था में था वतः वस्त्रों की विविधता एवं बहुलता दिखायी पड़ती है। काव्य में संस्थातीत वस्त्रों का अनेक बार उल्लेख हुआ है। सूदन

ने "सुवान वरित" में अनेक वस्त्रों की वर्ण की है, यथा लुमात, दुहाता, पट्टू, जाला, चूनी, जाला, मलमल, छोट, रंगीन वस्त्र, पसमी केवल, जरदोज, मुक्केशी, दाना-केशी, मुसल ताफता, बाघतबंद, मानकचन्दी चौबाने, किमशाव, खादी आदि, वस्त्रों के अनेक प्रकार थे जो तत्कालीन बाजारों में प्रचुर परिमाण में विक्री दिवायी पड़ते थे<sup>१</sup>। इसी प्रकार मान कवि ने रावबिहास में तत्कालीन हाट का वर्णन किया है जिसमें वस्त्रविक्रेता दुकानों पर विभिन्न प्रकार के सुंदर रंगविरंग वस्त्रों को लेकर बेचने बैठे हैं। स्वान-स्वान पर बजाव जरबाफ, मलमल, मलज्जर, गाढ़ा नारिय-कुंवर, सिक्तात आदि सख्यों वस्त्रों को सुन्दरता से सजा कर बैठे हैं। कहीं तनोसुब, सूफ, पटोर, दरियाई, खीरोदक, चैनी पीतांबर, मनोसुब, आदि बड़े बड़े जमीरों के योग्य वस्त्र मिल रहे हैं तो कहीं बजाव अपने दस्तारों के साथ मलमल, चीतार, दुतार, इक्तार आदि रंगीन धारियाँ दिवा रहे हैं<sup>२</sup>। बिना सिले हुए वस्त्रों

१- लुमात, दुहाता पट्टू जाला चूनी जाला सोभ बनी ।

मलमल बन्नातें बल सक्तातें भातिन भातें छोट बनी ।

बहुदंग पटंबर पसमी कुंवर पवल सुजवर कौन गनी ।

जरदोज मुक्केशी दाना केशी मलल केशी सेत बनी ।

बादला दरियाई नीरंग छाई जरकस काई भित्तमित है ।

ताफता कलंदर बाफत बंदा मुसवर सुंदर गिलमित है ।

बीसकर बिलंदी दूरिपरंदी मानिकचंदी चौबाने ।

किमशाव सुसातू खादी सातू नीम सातू जग बनी ॥ सुदन—सु० व० पु० १७४ ।

२- किते बहुमीलिक वस्त्र बजाव, बड़े जरबाफ मुलमल साव ।

मलज्जर नारिय कुंवर मिशु, सुभे सिक्तात दुभात सहस्रु ॥

तनोसुब सूफ पटोर दर्याव, खीरोदक चैनी पीतांबर ल्याव ।

मनोसुब जामिरी सहिबी पाट, हीरामर सेनिय हीर सुगाड़ ॥

मलमल साहि चीतार कुतार, उभे एक्तार सु पीत जपार ।

सु धारिय चीरस रंग रंगीत, दिवावहिं बाघ दस्ताव बसीत ॥

मा० रावबिहास पु० २५ ।

की बनेक दूकानें तो हैं ही, सिधे सिताये वस्त्रों की भी कमी नहीं । तत्कालीन समाज में उपयोग में जानेवाले वस्त्रों की चर्चा भी सूदन में अपने गृह सुजान चरित में की है । इन वस्त्रों में नीमाजामा, तवादा, कुत्ती, दगला, दुतही, नीमास्तीन, कादरी, चोला, भगता, तंबा, बांधिया, तनिमा, पवता, बगरी, चीरा, ताबगोस, कदासिर, दुपट्टा, कंबुकी, दुताई, चादर, इक्ताई, कटिबंद, कुतही, जोड़नी, धोती, सारी आदि का विशेष रूपसे उल्लेख है<sup>१</sup> । रीतिपुग में वस्त्र पर्याप्त उल्लेख अवस्था में है, फलस्वरूप मनुष्य के दैनिक जीवन में ही नहीं उसके विचारों में और उन्नतियों में भी वस्त्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है । गुरु के बहुमुख बचन सुनकर संसार की व्यक्ति को गुल-सा लगता है, जिस प्रकार मेनवसित वस्त्र में (मोमजामे) गुरु का उपदेश-रूपी बल नहीं ठहर पाता<sup>२</sup> । वस्त्र का रूप धारण कर लेने पर क्वास मतमत, सितारा, सिर्रीसाक, बाफता, अघोतर, परकाता गबी आदि नामों से विभूषित होता है<sup>३</sup> ।

२- बहुमुख, सुन्दर एवं चमक-दमक से युक्त भड़कीले वस्त्रों के प्रति लोगों की विशेष रुचि थी । अलंकार- युग में दिखावा, ठाठ-बाट के

१- नीमा जामा तिलक तवादा कुत्ती दगला ।

दुतही नीमास्तीन कादरी चोला भगता ।

तंबा सूदन सरी बांधिया तनिमा पवता ।

बगरी चीरा ताबगोस बंदासिर बगता ।

दुपट्टा सु दुताई चादर इक्ताई कटिबंद बर ।

कंबुकी कुतूँवा जोड़नी बग वस्त्र धोती बबर ॥सू०सु०च०, पृ० १७४ ।

२- के०की० २।४१ ।

३- भूमि विकास क्वास भवी नाना विधि दरसा

जाता मतमत सहन सितारा निपबहिं सरसै ।

सिर्री साक बाफता अघोतर भेव कहिये ।

परकाता बरु गबी मतत कइ वीर न सहिए ॥

सू०गु० पृ० ७५ ।

लिए छोटे वस्त्रों के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था । गंगाबल, जगरई, जीसकर, कासमीर चीर आदि वस्त्र महीन एवं सुकुमार होते थे । जीराम गंगाबल वस्त्र के पाग से सुशोभित है<sup>१</sup>। डोरिया पंक्तोरिया आदि अत्यन्त महीन वस्त्र होते थे जिनमें से नायिका के जर्गों की सख्ख शोभा भासित होती थी । भारी मूल्यवान् एवं जमकदार वस्त्रों की बाधा में वृद्धि करने के लिए उनमें सोने चांदी के तार का काम तथा सुनहरी बरी का उपयोग होता था<sup>२</sup>। बाफता, जसा और मलमल आदि वस्त्र निश्चय ही चौखई जैसे साधारण वस्त्रों से श्रेष्ठ एवं मूल्यवान् थे<sup>३</sup>। गोपालचन्द्र मिश्र ने भी मुसन्वर, मलमल और मुकेशी आदि वस्त्रों का उल्लेख किया है जो उष्णवर्ग में लोकप्रिय हैं<sup>४</sup>। इन वस्त्रों की और भी सुन्दर बनाने के लिये बीच बीच में फूल बनाये जाते थे<sup>५</sup>। रीतिकान्त के नायक-नायिकाएं एवं अभिषारिकाएं समयानुरूप विभिन्न प्रकार की रंग के वस्त्र धारण करती हैं । कभी नायिकाएं खेत वस्त्र धारण कर चांदनी को लबबती हैं तो कभी खसम वस्त्रों में निशीमिनी का कृष्णामा प्राप्त करती हैं ।

१- गंगाबल की पाग सिर लोहा भी रक्ताव के ।

क०कौ० १।९१ ।

२- क- सिल्क स्फुरिबसली मित्ठ विष सितवर एण्ड गोल्ड इन्टू वेल्वेट्स,  
सेनिन्स एण्ड टेफेटास बाब प्रोड्यूस्ड ॥ (टेरी)

क- चीर चीर साबू सेवा समता बहारदार

बरकसी काम बहाँ होत नाना भाँति है ।

गोपालमिश्र क०कौ०पृ० २६५ ।

३- सु०गु०, २।७५७ ।

४- गोपाल मिश्र क०कौ० २६४ ।

५- सु० गु०, पृ० ८०४ ।

इनके अतिरिक्त कुसुमी, गुलाबी, पीला, लाल, नीला, केसरिया, बसंती, हरा और आसमानी वस्त्र भी स्त्रियाँ विशेष रूप से रंग कर धारण करती हैं। कभी-कभी शरीर के वस्त्रों की चौड़ा, चंदन आदि से भी वह रंगा जाता है।

१४- रीतिकालीन काव्य में स्त्रियों के विन वस्त्रों का उत्तेज प्राप्त होता है उनमें निम्नलिखित वस्त्र प्रमुख है।—

धाघरा: मुगल काल में धाघरा स्त्रियों का बघी वस्त्र था जो कमर में पहना जाता था। यह कमर में बिपका रहता था और नीचे की ओर फैलदार और बुल्लट से युक्त होता था। पछो क्लीदार धाघरे बनने के बाद में जायता-कार टुकड़ा काम में आने लगा जो डोरी की सहायता से कमर पर बंधा रहता था। बाबर और अबुल फजल के लेखों में भी धाघरे का उल्लेख है।<sup>१</sup> मुस्लिम

१- बीरा की लहर गहरकुसुमई रंग ।

पान सा०-पु० पु० ३१८ ।

पान कमि दुपट्टा दुदानी को गुलाबी फेटा ।

पान-सा० पु० पु० ३१८ ।

सारी सितारित बीरी रतीसिद्ध में बगराई बहे छवि प्यारी

भिक्षु० २।१३८ ।

लसत गूबरी लबरी बिलसत लाल रबार ।

म० ग० पु० २९२ ।

बिलसत नील दुकूल में लसत बदन बरबिंदु ।।

म० ग० पु० ४९३ ।

केसर रंग रंगी लगे अंगिया अंगन संग ।

म० ग० पु० ५०३ व भिक्षु० २।१३९ ।

सोने के पलंग पर बसन कसती छाये ।

गुलाब - सा० पु० पु० ३४८ ।

सोने लीं शरीर आसमानी रंग और लामे ।

सोमनाथ- सा० पु० पु० २७७ ।

२- अकबर शृ० म० पु० १६९ ।

३- बल्लेकर - पीबीशन आफ बीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन,

पृ० ३४६ ।



शासन की स्थापना के कुछ सताब्दियों बाद ही सहाय नववा बाघरा बन-  
साधारण में प्रचलित हो गया । बाघरे भाँति भाँति के रंग के होते थे । प्रायः  
इनमें फूल नववा बेल बूटे भी बने होते थे । नीचे की ओर बरी बरी गोटे  
बादि का काम भी किया जाता था सम्पन्न घर की छिन्नियों के सहयोग में बड़ा काम  
किया रहता था जो बटकीली चून्नी के साथ सुन्दर लगते थे । बाघरे  
का प्रयोग सर्वसाधारण में भी था । सौन्दर्य एवं प्रेम के उद्दीपन में इसका  
योग कम न था । कभी नायिका की छवि धरदार बाघरे के फुलान के कारण  
छलकी पड़ती है तो कहीं चून्नी बाघरे से उसकी इत्ताम पड़ी मन को खींच  
लेती है । प्रायः नृत्यकारों से भूषित सुकीर्ण यात्र बाघरे से एक भक्तक दिखा  
जाते हैं । बाघरे के साथ नायिकाएँ कभी बरकती सारी पहने होती हैं,  
कभी किनारीदार लहरी पर बूटेवाली सारी<sup>१</sup>। "मुसल बनवा" के विशेष  
लहरी का उल्लेख भी काव्य में मिलता है<sup>२</sup>। नायिका के कांतिमय, जीवनपूर्ण  
सरीर की नाभा भीने बाघरे एवं महीन सारी से विविध प्रभाव उत्पन्न करती  
है<sup>३</sup>। जेवर के बाघरे रूप और चाल में अपूर्व सौन्दर्य वृद्धि करते हैं ।  
बाघरे का महत्व उसकी मनीहारी "चून्नी" एवं भार के कारण चाल में मोहिनी  
उत्पन्न करने में है । हिंदी में पर तो बाघरे और साड़ी की घुमड़न विशेष  
नाकामिक होती है<sup>४</sup>।

१- दे० त०र० पृ० २५ । दे० प० पृ० ११७ ।

प०गु० पृ० १२६ । तीज सु० नि० पृ० १०४ ।

२- बेनी नितंबन पर बहरे सहेरे सहारा मुसल बनवा के ।

ती०सु०नि०पृ० ९८

३- बाघरी भीन सों, सारी महीन सों, चीन नितंबनि भार उठे छवि ॥

कि०गु० २।१०६

४- बाघरे की घुमड़ि, उमड़ि चाल चून्नी की

सावन में जीयति मवायन हिंदोरे की ॥

जीयति टी०गु० पृ० १४१ ।

## साड़ी:

२५- इसका प्रयोग प्रायः किसी अधोवस्त्र, यथा लहंगा, चाबरा आदि के साथ होता था । मध्यकाशीन विधों में यह सामान्यतः बाबरे के ऊपर से होती हुई, पृष्ठभाग को आवृत करती हुई तिर पर जाती है । संभवतः इसका प्रयोग बहुत कुछ जीवनी या दुपट्टे की तरह ही होता था । स्वस्थ शरीरमण्डित के सुडौल अवयव और गौरवर्ण की रक्ताभा स्पष्ट लक्षित हो सके, इसके लिए प्रायः महीन साड़ियों का व्यवहार होता था । देह की नायिका की देह प्रति महीन सारी में से दीपक की भाँति दीप्ति दे रही है। नायिका अपनी रुचि के अनुसार भाँति-भाँति की साड़ियाँ पहनती है और उसका हर रूप नित्यन्त मनोहारी होता है । कभी वह गौर वर्ण पर सात साड़ी पहनती है तो कभी स्वर्णवर्णित क्लिारी जाती खेत सारी पहन लेती है । कभी-कभी वह कंचन वर्ण की क्लिारीदार साड़ी पहनती है जिसमें इकलौ मोतियों भूमती रहती है, कभी वह जसावरी की सारी में सजती है और कभी सातु की सारी में<sup>२</sup>। इसी प्रकार तन्मुख की क्लिारीदार साड़ी में भी उसकी छवि मुखरित होती है<sup>३</sup>। विहार की नायिका की महीन खेत सारी में से भक्तको तर्पना की शोभा यदि गंगा पर पड़ी सूर्य के प्रतिबिंब की भाँति है तो कहीं गौरे वदन पर बरी का कीर छवि छतका रहा है ।

१- उज्ज्वल उज्जारी सी भक्तमति भौन सारी ।

भाई सी दीपित देह दीपति विशाल सी ॥

२- सो हति क्लिारी लाल वादना की सारी ।

दे० भा० वि० पु० १२१ ।

३ गौरे मुख सेत सारी कंचन क्लिारीदार ।

दे० क० पु० १५२ ।

पीत रंग सारी गौरे रंग मित गर्द दे ।

दे० पु० पु० १८ ।

दे० क० र० पु० १५ । दे० क० पु० १५३ । दे० र० वि० पु० ११० ।

४- सो हल क्लिारी वारी तन्मुख की सारी ।

दे० र० वि०, पु० १२४ व सेनापति क० र० पु० ४७ ।

जौर कभी वह केवल खेत पंचतोरिया पहन कर ही बल के दीपक की तरह जगमगाती है।

२१- रंग-संयोग जौर वर्ण-विरोध --दो रूपों में वर्णों के रंगों का संयोजन किया जाता है। रीतिभुग की कविता में दोनों के प्रभु उदाहरण उपलब्ध है। कहीं पर कवि ने विरोधी रंग के वर्णों में नायिका की छवि में आकर्षण भर दिया है। मतिराम की नायिका का जौर गौर वर्ण का है और उस पर नीला वर्ण सुशोभित है। इनकी नायिका भी कभी खेत सारी में जौर कभी जरतारी की सारी में दिखाई पड़ती है और कभी "सारी सुही" की किनारी मुसबन्द पर इस प्रकार खती है मानों पूर्ण चन्द्र के किनारे परिवेश की रेखा हो। सोमनाथ की नायिका अपने सोने के रंग के

१- ससतु खेत सारी उम्मी, तरस तरसोना जान ।

पर्यी मनी सुरसरि-ससित रवि -प्रतिबिम्ब विहान ॥

+ + + वि०र०दो० १०६ ।

जरी-जौर गौरि बदन बड़ी जरी छवि, देख ॥ वि०र०दो० १०४ ।

+ + +

सख खेत पंचतोरिया पहिरत नति छवि होति ।

बल चादर के दीप ली जगमगाति तन-बीति ॥ वि०र०दो० १४०

+ + +

२- विह्वल नील दुकूल में ससत बदन जरबिन्दु ---म०गु० पृ० ४९९ ।

+ + +

खेत सारी सी छत उजारी मुसबंद की -सी ---म०गु०पृ० १०८ ।

+ + +

सारी जरतारी की झलक झलकति तैसी ।--म०गु० पृ० २१४ ।

+ + +

सारी सुही "मतिराम" लखे मुख संग किनारी की सी छवि छवि ।

पूरन बंद विभूज मयूज मनी परिवेष की रेख विराख ॥

म०गु० पृ० १४९ ।

शरीर पर विरोधी रंग की आसानी साड़ी धारण करती हैं जो उसके गौर वर्ण की और भी निहारती हैं<sup>१</sup>। इसी प्रकार आनन्द की नायिका अपने गौरे शरीर को निहार कर स्वाम वर्ण की सारी को चुनती है जो उसके शरीर पर फबती है। आनन्द की गौरी राधा भी वर्ण के अनुरूप रंग की सारी पहनती है<sup>२</sup>।

२७- संपूर्ण शरीर पर एक ही रंग के वस्त्र धारण करने का भी प्रभाव भी अद्भुत होता है। रीति-काव्य की नायिका इससे भी अनभिज्ञ नहीं है। भित्तारीदास की नायिका अपने कनक वर्ण शरीर पर कैसरिया पट धारण करती है और स्वर्णभूषण से सब कर निरासी हो दिखायी देती है। इसी प्रकार ग्वात की नायिका जब बसती वसन में सोने के पसंग पर पड़ी रहती है तो उसे देख स्तब्ध होना पड़ता है<sup>३</sup>। कई रंग के मिश्रित सारी में भी (स्वत, स्वाम, पीत) वही छवि साती है जो एक रंग के वस्त्र में<sup>४</sup>। तोष की नायिका बूटेदार सारी पहन कर सबका मन छूट लेती है<sup>५</sup>।

१- सोमनाथ - सा० प्र० पृ० २७७ ।

२- कैसी फकी धन आनंद जोपनि सौं पहिरी चुनि सामरी सारी ॥

प० गृ० पृ० ७८ ।

सारी सुरंग चुहचुही निषट पहिरी राधा गौरी ।

प० गृ० पृ० २०१ ।

३- कैसरिया पट कनक तन कनका भजन सिंगार ।

भि० गृ० २।१३९ ।

४- ग्वात- सा० प्र० पृ० १४८ एवं भि० गृ० ब २।१३८ ।

५- छूटि मन सिधे जात बूटेदार सारी की ।

तोष सु० नि० पृ० १०४ ।

कंवुकी:

१८- रीतिकालीन काव्य के वस्त्रों में सबसे अधिक उत्प्रेष कंवुकी का ही मिलता है। रीतियुग का सुष्ठु साहित्य-कार रूप और सौन्दर्य का पुजारी था, उसकी रूपान्धेष्मिणी दृष्टि "वरनारी" पर ही पड़ती थी और वह भी उसके प्रकर्षमयोत्पादक रंगों पर। इस दृष्टि से रमणी के वस्त्रवत् उसके विशेष आकर्षण के विषय थे। फलस्वरूप कंवुकी का वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसके लिए बांगी, बगिया, चोली आदि नाम भी आया है। रीति साहित्य में आये कंवुकी वस्त्रा चोली के संदर्भों से उसकी बनावट, आकार आदि का स्पष्ट बोध नहीं होता। सामान्यतः यह स वस्त्र की आवृत्त करती हुई कंधों पर फाँसी रहती है और पीठ पर तभी से बंधी होती है। वस्त्र प्रायः शरीर की आवृत्त कर उसका सौन्दर्यवर्धन करते हैं किन्तु यह मनोवा अन्तर्विरोध है कि बगिया विशेष प्रभावकारी तभी होती है आवृत्त रंग के साम एककार होकर उसके सौन्दर्य को मुखरित करे। रीतिकाव्य की चतुर नायिकाएँ इसका ध्यान रख कर शरीर में कुस्त बगिया पहनती हैं। पद्माकर की नायिका उन्नत उरीजों पर तंग बगिया पहने हैं जिसकी तनी का बंधन कहा हुआ है। कभी-कभी नायिका के हथौड़ी-छास वस्त्रा पुस्तन्ता से उदीप्त होने मात्र से वह तनी टूट जाती है और रखवा भी कवि के लिए यह मनोवा उत्पन्न होता है।

१९- नायिकाओं की सौन्दर्य-दृष्टि वर्णसाध्य एवं वर्णविषम्य के द्वारा वांछित प्रभाव लाने के प्रति अत्यन्त खेष्ट दिखाई पड़ती है। शरीर की गोराई का विरोधी रंग कासा वस्त्रा नीला है अतः सामान्यतः इसी रंग की चोली

१- कहे पद्माकर त्यों उन्नत उरीजन थे,

तंग बगिया है तनी तनिन तनाइके ।

पं.गुं.पुं. १२५ ।

२- पति बागो परकेस ते दिव हुलसी बति बाम ।

टूक टूक कंवुक भगी कर कमनीसी काम ॥

पं.गुं.पुं. १२५ ।



पहनी जाती है । बिहारी की नायिका यौवनवृद्धि की अभिवृद्धि के लिए कुंभुमी कुंभुकी पहनती है उसके सोन-बुही से जगमग जंग में कुंभुमी कुंभुकी सुरंगी ज्योति उत्पन्न करती है<sup>१</sup>। देव की नायिका गौरवर्ण पर कसी हुई उज्ज्वल-वर्ण की कुंभुकी पहन कर रूप में निहार जाती है<sup>२</sup>। केसर के रंग में रंगी हुई बगिया पहने नायिका को देख कर मतिराम का नायक भ्रम में पड़ जाता है कि वह बगिया भी पहने है बसवा नहीं क्योंकि तारीर से वस्त्र पूर्णरूपेण मेल खा रहा है<sup>३</sup>।

### बोड़नी:

३०- रीति काव्य में वस्त्रों के संदर्भ में बोड़नी, दुपट्टा तथा महीन चादर का उल्लेख आता है । बोड़नी का प्रयोग ऊपर के वस्त्र के रूप में होता था । चादरे आदि पर से होती हुई यह पीछे की ओर से सिर पर जाती थी, रीतिकाव्य में इसकी चर्चा प्रायः दो रूपों में आती है, हवा से उड़ती बोड़नी और हिन्दीसे आदि पर तहराती बोड़नी । दूसरे, नायिकात्व वर्ग की नायिकाएँ सज्जा की रक्षा के लिए बोड़नी के घूँट का व्यवहार करती थीं । बोड़नी के घूँट की मोट में रीति-काव्य की विभिन्न नायिकाएँ अपने भ्रम व्यापार साधन, हाव-भाव, कटाक्ष आदि के द्वारा इच्छित प्रभाव भी उत्पन्न करती थीं । डोरिया की चादर बोड़े बैनीप्रवीन की नायिका के पहुँचि कभी कभी दित जाते हैं वो नायक के लिए अत्यन्त कीतुकपूर्ण मदनोत्सव का

१- सोन-बुही-सी जगमगति जंग-जंग जीवन ज्योति ।

सुरंग-कुंभुमी - कुंभुकी सुरंग देह-दुति होति ॥

वि०र०दी० १९० ।

२- गोरे जंगम उज्जवाही कसी कुंभुकी बनाव के ।

दे०भा० वि० पु० १९३ ।

३- म०गु० पु० ५०३ ।

का दूरव उपस्थित करते हैं। रीतिकाल का कवि, ऐसे अवसरोंपर अपनी काव्य-प्रतिभा के बटक का सारा रस उड़ेल देने को जगु हो उठता है, उसकी सभी विलम्बितियाँ अपने तनाव डीले कर कामिनी के कमनीय बगों पर बिजाम करने लगती है। जोड़नियाँ गोटेदार, किनारीदार एवं नेत्रबूटेदार भी होती थीं किन्तु इनका भीना एवं महीन होना सर्वत्र वर्णित है। नायिका का चन्द्रमुख जालीदार चून्दी से भसक रहा है जिसे चांद समझ बकौर टकटकी लगाने हैं। बिहारी की नायिका का उज्ज्वल मुख नीले बाँस में इस प्रकार ललता है मानों काँसिदी में चन्द्र भित्तमिला रहा हो। चन्द्रतः भीने बूँट की ओट में प्रेम-व्यापार साधन अवेशाकृत सुगम हो जाता है। बाह्य मर्यादा का पालन करते हुए भी नायिका - नायक के रूप का पान करती है, कटाक्षों से नायक की प्रभावित करती है और बूँट को बरा - सा हटा कर वह नायक की बिजासा, कीतूला एवं ललक और भी बढ़ा देती है। भारत कलाभवन में संगृहीत अनेक विप्र केसव, बिहारी, देव, मतिराम आदि की कविता की ध्यान में रख कर बनाये गये हैं। देव की "विषी गिनी" का राजस्थानी शैली में अक्षिप्त अत्यन्त प्रसिद्ध विप्र जोड़नी के भीनेपन के कारण लहलहा सौन्दर्य में मादकता और आकर्षण की तीव्र अनुभूति कराता है।

११- भावुत सौन्दर्य अधिक आकर्षक रहस्यमय एवं कीतूला को बगाने वाला होता है। देव के कृष्ण प्रातःकाल वृषभानु के घर में भीने पट तने हुए

१- डोरिया की चादरि लीं भँपिपति पहुँचन लीं,  
ऐसी ततकाल कर कंवति विज्ञास हैं।

वि० प्र० न० र० त० पु० १८९।

२- जाल की चून्दी चीकनी मात बकौर बके मुख चन्द्र के पीछे।  
सु० ति० पु० २४०।

३- छिन्नी छावली मुख लीं नील बाँस पीर।  
मनी कलानिधि भलमली काँसिदी के नीर ॥

वि० र० दी० ५३८।

पलंग पर राधा को देखते हैं जिसकी एक बांह आलास में सीते हुए उभरी है ।  
छीने पट से बनावृत बांह की उस छवि को देखकर मनश्चाम ऐसे जाकुल हुए  
कि सम्पूर्ण कव-मंडल हाव मलते हुए मंडलाते रहे<sup>१</sup>। रीतिकान्य की नायिका  
सुन्दरी रमणी ही नहीं है उसका सौंदर्य वस्त्रांतकारों के प्रयोग से अनेकगुण  
बढ़ जाता है, वह सरल और शांति सौंदर्य की नहीं, भास्वर कांति की  
स्वामिनी है । वेशभूषा के आधार पर नायिकाभेद में वासकल्पना का एक  
पुष्क भेद ही स्वीकार किया गया है ।

३२- विभिन्न अवसरों पर पहने के लिए विभिन्न वस्त्र रहे होंगे,  
काव्य में इनका पूर्ण विवरण तो प्राप्त नहीं होता किन्तु यन्त्र-तन्त्र अवसरानुसृत  
अनेकविध वेशभूषा के दर्शन होते हैं । सावन की तीव्र के दिन सिन्धवा अनेक रंग  
की जोड़नियाँ जोड़े है<sup>२</sup>। होली के अवसर पर नायिका बरतारी की  
किनारदार साड़ी पहने तो सायक ने कास्मीर कीर धारण किया है<sup>३</sup>।  
होली के उत्सव पर खेत वस्त्र पहनना अधिक समीचीन प्रतीय होता है, क्योंकि  
उस पर अन्य सभी रंग स्पष्ट दिखायी देते हैं, संभवतः यही विचार कर मतिराम  
की नायिकाओं फाग पर खेत सारी पहनी है जिन पर गुलाब उड़ उड़ कर पड़  
रहा है मानों खेत सरसियों पर बालसूर्य फ्रीड़ा कर रहा हो<sup>४</sup>। अभिचार के

१- धीरहि-धीरहि वृक्षभान के, बायो अकेलहि केति भुजान्धी ।

के वू खोवत ही उत भावती, भीनों महा फलके पट तान्धी ।

बारस से उभरी एक बांह, भरी छवि हेरि हरी अकुलान्धी ।

भीड़त हाव फिर उमड़ी-सी, मड़ी कुव बीच फिर मड़रान्धी ॥

दे० री० मृ० पु० १०६ ।

२- गुलाब-री० मृ० पु० २१८ ।

३- सारी बरतारी की किनारी में गुलाब राजें,

तैसी छवि ताजें उस कास्मीर कीर की । दी० मृ० पु० २१ ।

४- सित बम्बर कुत तियनि में उड़ि उड़ि परत गुलाब ।

पुंडरीक पटलनि मनो विस्तृत जातय वात ॥

म० मृ० पु० ४९० ।

लिए सम्मिलित नायिका वस्त्रों के प्रति विशेष सतर्क रहती है जिससे वह बन-समाज के बीच आसानी से पहचानी न जा सके। रात की निकलते समय वह काले जयवा नीले वस्त्रों से युक्त होती है जिससे अन्यकार में मिल जाय और चांदनी रात में वह खिल वस्त्रों से आवृत होती है कि उज्ज्वल चांदनी में उसका आकृतिरूप अलग न दिखायी पड़े। घर के काम-काज वह साधारण स्वच्छ वस्त्र पहनती है। बिहार की नायिका स्वच्छ धुती पीती पहन कर रसीई में काम करती है<sup>१</sup>।

११- बरती के काम से युक्त भित्तमिताली जोड़नी तथा गोटेदार बांधे जैसे बहुमूल्य वस्त्रों की तोथा की बनावे रखने के लिए पैरों में सुन्दर नूतियाँ भी पहनी जाती है। ये की नायिका के पैरों में नूतियों में रंगबिरंगी फूँदने बंधे हैं, कभी वह "लात उपाहने" पहने होती है तो कभी जायक रचित पावों में बमकीली नूती पहन लेती है<sup>२</sup>। बीपति की नायिका मनोहर वस्त्रों के साथ पैरों में मखमल की नूतियों से तोषित होती है<sup>३</sup>। यवन स्त्रियाँ शिवाजी की बीरता से आतंकित होकर अपने समस्त सौन्दर्योपकरणों को त्याग कर "धाम" में विवर रही हैं, उन्हें पाँव की "यगनियाँ" का ध्यान भी नहीं है<sup>४</sup>।

१- वि०र० दी० ४७७ ।

२- हाथ हरी हरी राखीछरी बरबूती चढ़ी यम फूँद फुंदारी ।

दे० क० पु० ११७ ।

+ + +

नूती जोती जायक की जोती यम पाइ के ।

दे० भा० वि० पु० १२३ ।

३- पाँयन मखमल मखमल बरबोरे की ।

बीपति० दी० भू० पु० १४१ ।

४- तनियाँ न तिलक, सुयनियाँ यगनियाँ न,

पाँवे कुचरात छोड़ देविया सुवन की ।

भू० भू० पु० ११० ।

### पुरुषों का वस्त्र :

१४- रीतिकालीन पुरुष कवि की जीवन-दृष्टि और उसकी अभिरुचि कुछ ऐसी थी कि उसे नारी रूप में ही अधिक आनन्द और विश्राम मिलता था । वैभव प्रदर्शन के सहजतम माध्यम वस्त्र एवं अलंकार ही हैं । अपनी नायिकाओं की श्री संपन्न एवं शोभागार बनाने के लिए उनके स्थान-स्थान पर उसके वस्त्र-अलंकारों का उल्लेख मिल जाता है । किन्तु इसके विपरीत पुरुषवर्ग किन वस्त्रालंकारों का उपयोग करता इसकी चर्चा कुछ ही स्थानों पर हुई है । जहाँ राम और कृष्ण का उल्लेख है, पुरुष-वस्त्रों की चर्चा प्रायः वही आती है । इनमें भी परम्परागत वस्त्रादि के ही उल्लेख आये हैं, युग का प्रभाव तो पदाकदा ही सन्निहित होता है । इसके अतिरिक्त नायक-नायिकाओं की मिलन वेला में दोनों के रम्य रूपों का चित्र खड़ा करते समय कवि प्रियतम के वेशविन्यास का भी कुछ संकेत कर देता है ।

१५- पुरुषों के सिते और अनसिते वस्त्रों के नामोल्लेख तो अवश्य प्राप्त होते हैं किन्तु वे किस प्रकार के होते हैं, शरीर के किस भाग पर पहने जाते हैं आदि के विवरण जो स्त्रियों के वस्त्रों के संबंध में प्राप्त होते हैं वहाँ नहीं मिल पाते । काव्य में प्राप्त संदर्भों में सिर के वस्त्रों में पाग, तुरा, पगरी आदि हैं । केशव के श्रीरामचन्द्र गंगावत-वस्त्र के पाग से सुशोभित होते हैं<sup>१</sup>। शान कवि के नायक की छटा-“तुरा” के कारण और बढ़ जाती है<sup>२</sup>। पुरुष वेश धारण करके, सींगों की दृष्टि से बचकर अभिचार हेतु तत्पर बेनीपुत्रीणा की नायिका धरदार बामा, पावबामा, पगरी तथा एकैचा ।

१- क०कौ० १।११ ।

२- शान- सा०पु० पृ० ३१८ ।



से विभूषित है<sup>१</sup>। बोधा के विरहारीश का नायक भी सिर पर बर्दपाग एवं बरी का तुरा पारण करता है<sup>२</sup>। व्यक्तित्व को और भी प्रभावशाली बनाने के लिए पाग को ऐठ कर तथा पगड़ी के पेशों को उभेठ कर बांधा जाता है। बगरी की सुंदररीति से सवार कर नायक नायिका को मुग्ध कर देता है<sup>३</sup>।

रीतिकाव्य में कवियों ने नायक को सम्पूर्ण वस्त्र-सज्जा के साथ कम ही विभूषित किया है फिर भी कुछ वित्र मिल जाते हैं। बान कवि के "सात" अपनी सम्पूर्ण शोभा के साथ गोप और गुवालों सहित हाथ में नारंगी उछालते चले जा रहे हैं। वे गहरे कुसुमई रंग का चीरा पहने हैं जो सहता रहा है। उनके शीश पर तुरा की छटा बलम ही शोभित है, उनके बगरई बामे में "किरमिषी कीरदई एवं बरकसी" भूतक रहे हैं, गुलाबी दुपट्टे का फेंटा लो है और कानों में कुंडल एवं नाथे पर केशर का तिलक लत रहा है<sup>४</sup>। रीतिकाव्य के नायक भी वर्णशाम्य रखते हैं। केशव के नायक ने अपनी कमर में पीले वस्त्र की पिछोरी बांधी है और सिर पर पीली पाग रखी है साथ ही पावों में पीली पनहिया भी पहने हैं<sup>५</sup>। तीज की नायिका तो इस प्रकार से सवे नायक को देख कर

१- धरदार जामा पावजामा में पुजीन बेनी

वतिहि सकामा रमामा मुख बरुजात है।

कैल कल बगरी में बबरी बनाव बात

मुगल बने लो एक पेवा लो बात है ॥

वे०पु०न०र०त०पु० २६।

२- सिर बर्द पाग विलसत सवेश —————

† † †

हर सुमनहार तुरा बरीन —————। बो०वि०वा०पु० २२।

३- सु० ति०पु० ४६।

४- बान० सा०पु०पु० २१८।

५- पीरी पीरी पाट की पिछोरी कटि केशोदास

पीरी पीरा पामे कम पीरीमे पनहिया ॥

के०क०पु० पु० १४१।

छाी सी रह जाती है दृष्टि पावरी से होती हुई पाग तक जाती है और पाग से होकर पुनः पावरी पर लौट लौट जाती है।

१६- समाज में वर्णव्यवस्थानुसार वर्गों के विभाजन प्राप्त नहीं होते । एकाध स्वतः पर ब्राह्मण का उत्प्रेषण है पूजा आदि के समय विशिष्ट वैष्णभूषण धारण किये है । वीरसिंह देव चरित में दारपास ब्राह्मणों का विवरण देता है कि वे स्वच्छ पीसी पीती पहने हैं, ऊपर लुह उपरैना है, हृदयपर मणिकवीत शोभित है और कुंकुम का तिलक लगाये हैं। अन्य वर्गों का विशेष विवरण न मिलने के कारण कहा जा सकता है इनकी वैष्णभूषण सामान्य ही रही होगी । समुद्र एवं संपन्न वर्ग के व्यक्तियों पर दरबार वर्गों का प्रभाव स्पष्ट ज्ञात होता है ।

१७- शिशुओं एवं बालकों के लिए कुलही, भगा, भगुली, भंडुली आदि की चर्चा की गयी है । कानानन्द ने कुलही लगाये हुए कृष्ण की नन्द की गोद में बैठे चित्रित किया है। यशोदा मातुसुखम अभिज्ञाणा में शिशु कृष्ण को देख कर विचार करती है कि यह कब लाल पीत भगा पहन कर पैरों से चलेगी। ठाकुर के कृष्ण भूते में भूते हुए भौनी भगुली एवं भातरदार भंडुली

१- पावरी से बड़ि पाग लौं जाति,

जी पाग से पावरी लौं फिरि जावत ॥

टीका: दी०गु०पु० १६६ ।

२- पीत पीनती पहिरै गात । ऊपर उपरैना बढदात ।

लौ लह उर उपवीत सुकेस, गीर स्वाम वपु तरुन सुवैस ॥

के०वी०दे०व०-पु०११३ ।

३- कुलही से उसही स्वाम रूप शोभा बैठे कान्ह वृषपति की गोद ।

प०गु०पु० १६० ।

४- कपौं पहिरै पीरे भगा की लवंगी गात,

कपौं परनि पीर दैक पग राखिहै ।

दी०गु०, पु० ६ ।

धारण किये हैं। जातम के वासकृष्ण भी भीनी भंगूली पहने हैं<sup>१</sup>। सामान्यतः श्रेष्ठ एवं वात्स्यावस्था में वासक-वासिकाओं की वेश-भूषा एक-सी रही होगी क्योंकि रीतिकालीन काव्य में इनके वस्त्रों के वस्त्र उल्लेख नहीं पाये हैं। कृष्ण की वात्स्यावस्था के विषय के बहाने ही शिशुओं के वस्त्रों का ज्ञात प्राप्त होता है।

३८- वार्षिक विषमता के कारण, हारे-बवाहर एवं सीने-बाँदी से मुक्त वगमगाते वस्त्र धारण किये जाते हैं वहाँ दूसरी ओर गाढ़ा, छीवर, जिस तथा चौतर्फी बैसे मोटे, बुरदुरे एवं सस्ते वस्त्रों का प्रयोग भी होता था। मध्यम वर्ग उच्चवर्ग के समान ही वस्त्र पहनते थे, वर्ग का अन्तर इनके मूल्य में था। जन-सामान्य में प्रदर्शित नहीं था और सादे सूती वस्त्रों का प्रचलन था। मुगलकाल के चित्रों में उच्च एवं निम्न वर्ग के वस्त्रों का स्पष्ट अंतर दिखायी देता है। उच्च वर्ग के वस्त्रों में शान-वैभवं और वस्त्रों की पूर्णता है तो निम्न वर्ग के वस्त्र कभी-कभी शरीर की ढंक पाने में भी असमर्थ हैं। निम्नवर्ग वस्त्रों का प्रयोग प्रायः नहीं करता था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि वास्तव्यकालीन भारत में जन-साधारण के पास अपना शरीर ढंके भर के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। मोरलैण्ड ने प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रायः संपूर्ण मुगल सामान्य में, और विशेषकर जागरा से साहीर के मध्य के क्षेत्र में (और यह स्मरणीय है कि रीतिभूग के अधिकांश हिन्दी कवि इसी क्षेत्र से संबद्ध रहे हैं) जनसाधारण प्रायः अर्धनग्न अवस्था में रहते थे। एक और विषमता और सज्जन्य अर्धनग्नावस्था का यह वास्तविक लोकचित्र और दूसरी ओर कविों की नायिकाओं की महीन साड़ियों की किडमिताहट, रत्नबटित वस्त्रों की वगमगाहट, रीतिकालीन समाज का एक बहुधा अंतर्विरोधी चित्र प्रस्तुत करती है।

१- भीनी सीहे भंगूली बी भालर भंगूली लैं ।

ठाकुर-दी० पू० १९० ।

भीनी सी भंगूली बीच भीनों बग भलकन ।

जातम ० के पु० १ ।

## आवास और भवन-सज्जा

### आवास-निर्माण की मूल प्रेरक प्रवृत्ति एवं उद्देश्यः

१९- प्राणिमात्र में संकोच और प्रसार, आत्म को समेटने और उसके आवास विस्तृत करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये दोनों समानान्तर प्रवृत्तियाँ हैं और दोनों ही मनुष्य और प्राणिमात्र की स्वभाविक हैं। इनमें से किसी एक को सहज और दूसरी को कुत्रिम मताना एकांगी दृष्टिकोण का सूचक है। आत्म को समेटने के लिए ही सर्प बिल बनाता है, दीमक बल्मीक खड़ी करता है, बिड़िया पोसते बनाती है, सिंह जैसा अर्पाखू जैव बनराव कंदराओं में प्रवेश करता है, मनुष्य मकान-बाड़े बनाता है उसके आवास विस्तृत करने के लिए ही नागराव अपने बिल से बाहर प्रसरित होती है, दीमक-बिल छोड़ता है, पक्षी गगन की असीम व्याप्ति में चल फैलाते हैं, शेर माँद से बाहर निकल वन की वन्यभूमि में विचरण करता है और मानव अमानवीय पौखल्य और व्याप्ति के कार्य करता है। और आज तो गृहिणी, जिसके जीवन जीव की व्याप्ति पर की चारदीवारी में समझी जाती रही है, चंद्रलोक की यात्रा करती है।

४०- आत्म के संकोच के पीछे कई प्रेरणाएँ हो सकती हैं—यह स्वयं ही मूलगत है। भवन-निर्माण में सुरक्षा का भाव भी निहित रहता है। मानवजीवन की संपूर्ण कलात्मकता पहले आवश्यकता के रूप में अवतरित हुई है, वस्तुतः कला भी उसके लिए अनिवार्य ही है। मकान रक्षा के लिए बनाये जाते हैं, सुरक्षा के साथ धीरे-धीरे वे सौन्दर्य-सृष्टि भी करने लगे आवश्यकता आविष्कार की बनती ली है ही सौन्दर्य की पारिवारिकता भी है—कलतः मकान मजबूत ही नहीं सुंदर भी बनाये जाने लगे। साजसामान भी रहे गये।

४१- रीतिकाशीन हिन्दी कविता में जो चित्र मिलते हैं, उनके आधार पर हमें देखना यह है कि भवन-निर्माण में सुरक्षा-दृष्टि और सौन्दर्य-बोध-

वृत्ति में से कौन प्रयत्न की और किन्ती । यदि संतुलन या तो कहाँ तक समाज के विभिन्न वर्गों के जावासों व अन्य उपयोग के भवनों में कहाँ तक अंतर या, वह समाज के आर्थिक वैधान्य, कलात्मक और आध्यात्मिक कृष्टि के भेद की ओर क्या संकेत करता है और साहित्यकार का वह संसार तत्कालीन समाज का समग्र चित्र देता है या एकांगी, उसकी सहानुभूति और संवेदनशीलता का प्रसार कहाँ तक है, उसके विषय अन्य सूत्रों से ज्ञात तथ्यों से कहाँ तक मेल खाते हैं और कहाँ भिन्न है ? कौन अधिक विश्वसनीय है? इस प्रकार के अध्ययन - विश्लेषण तत्कालीन निर्मित और सावसन्धा का क्या समग्रतया बड़ा हो सकता है ? प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं संकेत सूत्रों के आधार पर जागे रहेंगे ।

### उच्चवर्ग के जावास:

४२- रीतिकालीन काव्य में जहाँ ज्ञानपान और वैराग्य उच्च और निम्न वर्ग के बीच गहरी खाई की ओर संकेत करते हैं वहाँ भवन और उसकी सज्जा के प्रसंग इनमें स्थिति जाकहा-पातास के अन्तर की ओर स्पष्ट अंगुलि-निर्देश करते हैं । केशव ने श्रीराम के अवध-प्रवेश के समय उसे अमरावती से भी सुन्दर कहा है । अवध के इन्द-गिरी गहरी खाई है, ऊँचा सीने का काट नगर को घेर है जिस पर कंगूर मणि रत्न की प्रभा से दीप्तिमान हैं । नगर की अनेक ऊँची बट्टासिकाओं पर पताकाएँ फहरा रही हैं । ऊँची बट्टारिवाँ पर स्त्रियाँ स्वागतार्थ खड़ी हैं । ये ऊँची बट्टासिकाओं, गगनचुम्बी पाताकाओं बाहे तब हीरे मणि मरकत की झुलिरहने वाले महल निश्चित

१- सिंगरे दल बीच घुरी तब देखी । अमरावति से अति सुन्दर देखी ।

✓ बहु और विरावति दीरघ खाई । सुभ देख तरंगिनि की फिरि आई ॥  
अति दीरघ ऊँच कोटि विरावे । मणि तास कंगूरन की रूपि रावे ॥

वि विष पताकासोभिषे ऊँचि केशवदास ।

जाति ऊँचि मंदिरन पर खड़ी सुंदरी साधु ॥

के०कौ०पू० २/१५, २६, २७ ।



रूप से मुगल शासकों के चमक-दमक और वैभव-विशाल मुक्त शाही जायासों की ओर संकेत करते हैं। केशव ने बीरसिंह के महल का वर्णन किया है। उनकी बैठक अत्यधिक सम्बी-चीड़ी और स्वच्छ है। भीतर की ओर पाँच सुन्दर चौक हैं एक में सभा बैठती है, दूसरे में गान होता है, तीसरे में सम्पूर्ण परिवार भोजन करता है और चौथे में विचार-विमर्श होता है। पाँचों चौक में चित्र बिंबे हुए हैं। चार चौक विशालपूर्ण हैं तथा मध्य चौक खेत रंग का है। महल में अनेक सीढ़ियाँ हैं प्रत्येक खण्ड में किङ्किनी और छत्र बने हैं। भू-भरियों और भरोखों पर चन्द्र सूर्य की किरणें पड़ती हैं भवन की बहारदीवारी में ही हथ-शाखा भी है<sup>१</sup>। भवन की छिड़कियाँ या तो भरोखेदार होती हैं या उन पर बासिया पड़ी होती हैं, इन्हीं भरोखों में से भाँक कर नायिका "पावक भर" सी छिप जाती है<sup>२</sup>। भरोखों में से भाँक कर नायिका बुधबाप मनभावन की देख लेती है<sup>३</sup>। महलों में कई खण्ड होते हैं। देव की नायिका महल के सातवें खण्ड में रहती थी जिसके चौबारे में विशाल ज्योति रहती थी तो बाहर जादनी छिटकी होती<sup>४</sup>। तीसरे खण्ड की रावटी में बैठी प्रिया की नायक देख देख कर प्रसन्न होता है<sup>५</sup>।

१- कै.वी.च.पु. २९१-२९५।

२- वि.र.दी. ५७०।

३- भाँक भरोखे रही कमकी दबकी दबकी तु मने मन भावे।

पद्माकर- सु.नि. पु. १५७।

४- मंगुल बखण्ड खण्ड सातवें महल महा,

मण्डल चौबारी मण्ड मंडल के चोटही।

भीतर हूँ सासन के बासन विशाल चौति,

बाहर बुन्हाई जगें जोतिन के चोटही ॥ देव-देवदास, पु. १२०।

५- प्यारी छंड तीसरे रखीसी रंग रावटी में,

तकि ताकी ओर छकि रह्या नद-नद है।

कासिदास प्रिदी, री.पु. ७९।

कभी रात्रि के समय तिमहले में बड़ी नायिका की मुख छवि को नायक देखता है<sup>१</sup>। महलों के ऊपर कंचन के क्लेश बने रहते थे जिनकी ऊँचाई और पीत आभा के कारण गगन पीला लगता था। महल के सबसे ऊपर दीपति वीणावेणु के साथ बिसास करते हैं<sup>२</sup>। भवन में दरौजी, तिवारी, दुवारी तथा अटारियाँ बनी होती थी<sup>३</sup>। नायक नायिका अटारी से परस्पर दृष्टि लगाये रहते थे। स्नेह के बशीभूत नायिका बार बार अटारी पर चढ़ते-उतरते नहीं सकती। भवन के भीतर चौबारा, बैठक, बरीठा आदि होते थे। बरीठा बाहर की ओर पीर में होता था। बहुत दिनों पर देस आया पति बरीठे में अपने मित्रों से मिलता रह गया है अन्दर बैठे पत्नी की ये चढ़िया उसके लिए ब्रह्मा की बड़ी हो गयी है<sup>४</sup>। अच्छे भवन में सुन्दर अटारी, चौबारे का बैठका, खेलने के ठौर तथा बाग बगीचे का होना आवश्यक माना गया था। बाग के पास खिड़कियों का होना और भी अच्छा समझा जाता था<sup>५</sup>। सम्पन्न व्यक्तियों के घर में बाग, ताल आदि बने होते थे जिनमें

१- रति तिमहले तिय बड़ी मुख छवि तब नद-नद । सुतह-कंक-पु० २६ ।

२- महलनि ऊपर बह बने कंचन-क्लेश अनुप ।

निय प्रमानि सौ करत है गगन पीत अनुत्प ॥ म०गु०पु० २६२ ।

+ + + +

वीणावेणु-निनाद मृग, मोहि बचल करि चंद

सौध कि ऊपर बहाँ दीपति करत अनंद ॥ म०गु०पु० २६३ ।

३-दरौजी तिवारी दुवारी अटारी लगी बाल ठारी ॥ सु०सु०च०पु० २३५ ।

४- फटकि चढ़ति उतरति अटा, मैकु न बाकति देह । वि०र०दो० १९४ ।

+ + + +

रहे बरीठे में मिलत पिठ प्राननु के संतु ।

बाबत बाबत की भई विधि की धरी धरीसु ॥ वि०र०दो० २२३ ।

५- जाछी अटारी चौबारे की बैठका मंदिर सुने बनेक नजी के ।

ज्यो बहा तपीछुरार तिहारैठ बाग बड़े ठिग है बिरकी के ॥

सु०ति०पु० १९४-१९५ ।

उत्सव के समय रौशनी की जाती है। उद्यान में सुन्दर फीवारी की कतारें होती हैं<sup>१</sup>। भवन में तहलाने तथा ससलाने जैसी सुविधा बनक वस्तुएं भी निर्मित थी<sup>२</sup>। कुछ ही दूर पर गजशाला, रथशाला, बामुष शाला, हथ शाला आदि होती थी<sup>३</sup>। कितसरिया या चित्रशालाएं भी भवन में होती थीं।

४३- अन्य अमीरों या मध्यम वर्ग के घर ईंट या पत्थर के बने होते थे। ये प्रायः दो मंजिले होते थे। इनमें चूने से पीताई की जाती थी<sup>४</sup>। कभी अन्य रंग भी प्रयुक्त होते थे। इनके अन्दर जोवरिया कपड़े तथा सन्दूक आदि रखने के लिए थीं। बरबार अथवा कोठे में नाज--रखा जाता था। केशव ने छप्पर से छाये हुए मकानों का वर्णन किया है। छप्पर पर माणिक के कलश हैं<sup>५</sup>। जोसारी में हाथी दांत के सम्भे हैं उसमें भालरों की पंक्तिवा है। निश्चित रूप से ये छप्पर के आवास अमीरों, राजा, रईमों के ही थे।

#### निम्नवर्ग के आवास:

४४- निम्न वर्ग के भवनों का उत्सव रीतिकाल में नहीं मिलता है। संभवतः ऊंची बट्टा लिकाओं और विशाल भवन के कारण उनकी दृष्टि

१- सेनापति- क० र० पृ० ६०-६१।

२- वही, पृ० ५७।

३- गजशाला, रथशाला, गुरु बामुषशाला अनूप।

हथशाला, बकुवरन है कोस सु कोठा गारे ।।

माब० रा० वि० पृ० ६२-६३।

४- ऊँचे-ऊँचे बटा से सुधा सुधारियत है।

से० क० र० पृ० ५७।

५- के० की० २। १३१।

नीची भोपड़ियों तक नहीं जा सकी । इतिहास के पृष्ठों एवं यात्रियों के वर्णनों में इसके भोपड़ों, मिट्टी की दीवारों तथा गोबर से लिपी हुई बर्तन का उल्लेख किया गया है । मनुजी ने घासफूस के भोपड़ों का वर्णन किया है<sup>१</sup> । बर्नियर भी मिट्टी की छोटी भोपड़ियों का उल्लेख करता<sup>२</sup> ।

### भजनसन्धा:

४५- मुगलकालीन उच्च-वर्ग के भजन तत्कालीन प्राच्य सभी सन्धा की वस्तुओं से सज्जित रहते थे । भजन के सभी दरवाजों पर सफेद और पीली मणियों के भूभरतीदार चमकीले पत्थर लगे थे । सफेद हीरों के बागान में ताज रंग का दिहोला लगा है<sup>३</sup> । कहीं ताज पीले खेत या कई रंगों के परदे हैं जिनपर कंचन के फूल बने हैं<sup>४</sup> । रंग विरंग बंदोबा में मोतियों की भाँवर लगी है । नीलम के पीछे तथा रुफटिक मणि मुक्त झिंझाड़े हैं<sup>५</sup> । कमरों के अंदर बदनवार और बितान हैं उनमें मुतमुती कालीन बिछी है और

१- मनुजी - स्टीरिया द मोगार - पृ० २११ ।

२- बर्नियर - ट्रेवल्स -----पृ० २४२ ।

३- सेत पीत मणियों के परदे रचे ल विहीन ।

शुभ हीरन की भाँजन है दिहोरा सु तात ॥

के०जी० २।११३ ।

४- कंचन सुमत सुमेत उदार । मोहन मनिमय चारु विचार ॥

रातो पियरी सेत सरुष । विदुष कि परदा बहुलुष ।

के०जी०च०पृ० २४८ ।

५- वर्ण वर्ण जहाँ तहाँ बहुता तने सुविधान ।

भाँवर मुक्तान की बरु भूमके निनमान ।

चौकट मणिनील की फटिकान के सुझाट ।

के०जी० २।११३ ।

मखतूब के पद हैं। जागन की भित्तियाँ निश्चित हैं पलंग तथा सिंहासन हीरे रत्न तथा जोड़े जैसी मोतियों से बड़े हैं। रीतिकासीन कवि को वर्ण-साम्य एवं वर्ण-वैषम्य से उत्पन्न होने वाले सौंदर्य का पूर्ण बोध था। जिस प्रकार नायिकाओं के वस्त्रों में उन्होंने वर्ण-साम्य या वर्णसंयोग और वर्णवैषम्य के माध्यम से सौन्दर्य सृष्टि की है, उसी प्रकार भजन की सजावट में भी इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। देव का एक चित्र देखिये जिसमें वर्ण-संयोग की अद्भुत छटा है। पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र चांदनी का शुभ्र प्रवाह है। खेत फफटिक से निर्मित सीप मंदिर का सामर ला जात हो रहा है, फाँसी भी खेत संगमरमर का है, उस पर शुभ्रसुवना गीरांगी-फौनोज्ज्वल तरु णियाँ और उनके मध्य में चन्द्रकांता राधा। परती की चंद्रिका राधा की ज्योत्स्ना के प्रकाश में बरबर का चांद प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है। एक बन्धु स्वान पर भी राधा का चित्र देखें हुए देव ने शुभ्र वर्ण के संयोग का सौंदर्य दर्शाया है। चांदनी मयल में, चांदनी के कौतुक

१- सुंदर मंदिर बंदर में बहु बंदनवार बितान बढीले ।

हैं परदा मखतूबन के तिहि मूख बिदी गिवमें गुलगीले ॥

बल्सभ-सुं.ति.पु. ४२२ ।

२- भीतिन जगन में सुख देति । अति प्रतिबिंबित हियरे हर लेति ॥

पलंग पलंगिया खेव समेत । हिं सन प्रति पर सुख देत ॥

के.बी.च.पु. २४८ ।

३-(क) लागे हीरा रतन बनौले । - - - -

मोती बनेक लाग बस मोला । - - - -

उ.नि.पु. ९ ।

(ख) -सा.र.पु. ११२ ।

४- फटिक सिलानि लो सुपार्यो सुधा-मंदिर,

उदधि दधि की-सी अधिकार उमगे बनंद,

बाहर तभीतर ली भीति न दिखाई देत,

छोर कै केन फौसी जागन करसबंद ।

तारा-सी तरुनि तामें देव जुगमन होति,

भीतिन की ज्योति पित्या मल्लिका की मकरंद ।

बारसी से बरबर मैया भा ली उज्जारी ठाढ़ी



के लिए, चंद्रवदनी राधा बैठी है। दासियाँ भी चन्द्रकला-सी प्रतीत होती हैं। महल में फव्वारे लगे हैं जिनसे सुगंधोष्ण जल निकल रहा है, चांदीवा और मणिमाणिक्य की भाभा के साथ, बरतारों, हीरों के हार की भाभा भी सौंदर्य में वृद्धि कर रही है।

### शयनगृह:

४६- रीतिकालीन काव्य में वैभवं एवं विभाल का सर्वाधिक प्रदर्शन शयन-कला के वर्णन में हुआ है। कवियों को केति-झीड़ा एवं वैभवं वर्णन के लिए शयनगृह ही उपयुक्त स्थान मिला था। श्रीराम के मलयगिरि के समान ऊँचे राजमहल की कोठरियों से मंडित कर दिया गया है। कमरे में केवल एक दीपक जलता है जिसके प्रकाश से दीवारों में बड़ी मणिवाँ प्रकाशित हो उठती हैं। मणिबद्धित वारों में सुगंध से भरे पात्र हैं। वही स्वच्छ खेत जाबदार मोतियों के चंदीवा के नीचे बड़ाऊँ पलंग बिछा है जिस पर लाल रंग की सुन्दर नर्म तौशक बिछी है। कहीं फातरदार बितान के लसे गुलगुली गलीचे बिछे हैं। छूटियों में फूलों के गवरे लटक रहे हैं। मस्त्र सुवासित करने वाले

१- चांदनी महल बैठी चांदनी के कीतुक की,

चांदनी-सी राधा-छवि चांदनी विभाल है,

चंद की कला-सी देव दासी संग फूलों फिरै,

फूल -से दुल्ल वैन्हीं फूलन की मातरै ।

छूटत फु हारे , वै विमल जल, फलक,

चमके चंदीवा मनि-मानिक महासरै,

बीच बरतारन की, हीरन के हारन की,

बगमगी मोतिन की, मोतिन की फातरै ॥ देवसुधा-पृ० १५ ।

२- के० की० २।१९४ ।

३- फातरदार झुकि झूमत बितान बिछे,

गह्व गलीचा बरु गुलगुली गिलमै ।

बगर बगर पद्माकर सु दीपन की,

फैलीयगाबोति केति मंदिर बखित मै ॥

वूर्ण भी हैं और पानदान में कस्तूरी कर्पूरादि से युक्त पान के बीड़े भी बने रहते हैं<sup>१</sup>। केसव ने सीता के सम्पा गृह की शोभा का चित्र दिया है। कमरे में फूलों का चंदौवा तथा है उसके नीचे सीने का रत्नजटित पलंग है। पलंग पर चन्द्रमा की तरह श्वेत वस्त्र पड़ा है। चंपई रंग के तक्षिण और गुलाबी रंग की गलसुई है<sup>२</sup>। कहीं हीरे के फरस पर चांदी और दूध की धार के समान श्वेत सेव पर श्वेत तोशक और मोती के भालर के चंदौवे लगे हैं<sup>३</sup>। सीने के स्थान की सुगंध एवं पुष्पी से सुसज्जित करना प्रत्येक रईस के लिए साधारण बात थी। कस्तूरी, केसर, करमीरा, कपूरकवरी, कुटकी, कलनी, आदि सुगंधित पदार्थ उपयोग में आते थे<sup>४</sup>। सम्पागृह की भूमि की जगर-चन्दन और कस्तूर से लीप कर उस पर गुलाबजल छिड़का जाता है। सेवों पर इत्र लगा कर और फूलों को बिछा कर उसकी शोभा बढ़ायी जाती

---

१- के० की० २।१२५।

२- के० की० २।१४२-१४३।

३- हीरा के फरस पर हीरा के फरसबंद,

श्वेत की सेव दूध धार नीकी छै रही।

सेत-सेत तोशक चंदौवा चहुं ओर लगे,

गुलाब कवि मोतिन की भालरें भितमिल ॥

गुलाब - २० पृ० १३।

४- सूदन- सु० च० पृ० १७५।

हैं। स्थान स्थान पर पावड़े पड़े रहते हैं। दिशाएँ जगल धूप से सुगंधित हैं, कस्तूरी, जगर, चौवा नीर घनसार की बहार है, ह्वारों दीपक बल्ले हैं, मधुर वाद्य बजते हैं<sup>१</sup>। घर को सुसज्जित करने के लिए चौवा, चांदनी, चंदौवा, चिक, चौक, चंपा, चमेली, लस, उसीर, लसबाने, कर्पूर नीर चंदन आदि का प्रयोग होता है<sup>२</sup>। काननन्द "राधागुणावली" की सेवा बनाने की कामना करते हैं। दूध के फेन को भी फीका करने वाले स्वच्छ वस्त्र विछाएँ, ताजे पुष्प से सेवा सजायी जाय, उस पर हत्ती के भाले नीर मुस्ताजी की फातर लगी हो। रात्रि मधुपान के पात्र भरे हो तथा द्वार एवं झरोखों पर वननिका ठसी हो नीर पात्र में मादक पेय पित्तान की सुविधा भी हो<sup>३</sup>।

१- (क) साथे से तियायी छिरकायी है गुलाब नीर जगर चितायी घनसार की सघन है।  
फूलनि सुहायी छवि छापी विछवायी सेवा बतर मधायी रवि केलि के सदन में।

--कुं०र०पु० ९४।

(ख) कहे पद्माकर सुधास ही गुलाब पास,  
बासे लस बास लस चंदन के डेरे हैं।  
त्यों गुलाब नीरन सों हीरन के हीन भरे,  
दम्पति मिलाप हित आरती उबरे हैं।  
चौबी चांदनीन घर चौरस चमेलिन के,  
चंदन की चौकी चालू चांदनी के चौर हैं ॥ पद्म०क०की०पु० ४४०।

२- पाव रनि से पावड़े पड़े हैं पुर पीरि लग,  
धाम धाम धूपन के धूम धुमिलत हैं।  
कस्तूरी जगर सार चौवा रस घनसार,  
दीपक ह्वार से बंधार सुनियत हैं। के० दर्शन, पु० ११९।

३- चौवा चौक, चांदनी, चंदौवा चिके चौकी चौक,  
चंपक चंपावली चमेली चालू चौब हैं,  
गवासे लस करस उसीर लसबानन में,  
पवन कर्पूर चंदानादि करि मीब हैं। पवनेश, सा०र०पु० ३१२।

४- प०गु० पु० ३१२।

ऋतुओं के अनुसृत व्यवस्था:

४७- सभी ऋतुओं में जमीनों के सामंतीय वैभव की भत्तक उसके शम्भा गृह में देखी जा सकती है। फर्श जबरन से तिया है। चौक में रखे चाँदनी बिछी है ऊपर शामियाना तना है जिसमें मोती की झालरें लटक रही हैं। वहाँ चौसर का प्रबन्ध है। सरद घुसु में सोने की जंगीठियाँ में जाग जिसमें मुगमद की सुगंध है, कहीं से ठण्डी हवा नहीं आ रही है और ताजगी देने के लिए मेवे तथा विभिन्न मसालों की डब्बियाँ हैं। सुन्दर स्त्रियाँ तास एवं खम में नाच गा रही हैं। पासा के दिनों में वहाँ पासा, दुशासा और प्यासा की बहार है। शीत ऋतु में मलमली सेब पर परमीना के चीहरे गलीचे और सुरा की शीशी भी सुसज्ज है, तब भी कोमल शरीर शीत से ठिठुरे जा रहे हैं। बाहे बैसी भी ठण्ड हो स्नान करने में कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि तैल लगाने के बाद मसमस कर नहाने के लिए गर्म ह्वाय है। धूप की धूप में भी बैठने की व्यवस्था है। शास-दुशासे तो अनेक रंग के हैं

- १-जाज जबरन से तियाय मंजु मंदिरानि,  
तरस सेत बिषत करी है चौक हद में ।  
ताने शामियाने बरीदार से वैव भरे,  
मोतिन की झालरें झलामल की सदधि ।  
गुवात कवि चौसर चमेसी के बीरन में,  
बुनभा चमेके चौर बादल विशद में ॥ गुवात-र०पु० ३४ ।
- २- सोने की जंगीठिन में जगिन धूम होय,  
होय धूम धारहु तो मुगमद जासा की  
पाँन की न गीन होय भरवर्षी सुमीन होय,  
मेवन की खीन होय डब्बियाँ मसासा की  
... पासा की बहार बी-दुशासा की बहार जाई  
पासा की बहार में बहार बड़ी प्यासा की ॥ गुवात-र०पु० ३८ ।
- ३- कर कर भावै बड़े दरदर भावै नाथ,  
तउ भावै घर घर कावत बसीसी जाय ।  
फेर फतमीनन के चीहरे गलीचन पर,  
सेब मलमली सारि सीता सरदी न जाय ।  
गुवात कवि कहे मुग मद के बुकाये धूम,  
बीड़ बीड़ छार भार जागहु छपी सी जाय ॥ गुवात-क०की०पु० ४९४ ।

ही । जगहन जाने पर बफाँसी खा भी कुछ नहीं बिगाड़ पाती क्योंकि "प्रभु लोगन" के पास ये सभी साधन मौजूद हैं। ग्रीष्म की तपन का ज्ञान भी न हो पाये मतः ग्रीष्म ऋतु में भी साधनों की कमी नहीं हो पायी । चारों ओर शीतल फाँव्वारे से फुवारे निकल रही है, बेलों की छटा के बीच बैठ की बत्तन पवेश नहीं कर पाती, बारहदरी में हर ओर बर्फ बिछा कर उस पर पाटी बिछायी हैं, उसी में जंगूर की टट्टी एवं जंगूर की शराब भी ग्रीष्म की दूर करने के लिए हैं। सुन्दर मंदिरों में उत्तीर की टाटी की बसंधों से सींचा जाता है जिससे शीतल, मंद, सुगंध समीर की सहर उठती है तन गुलाब एवं जंगरजा से सने हैं । इस सुविधा के बीच ग्रीष्म ऋतु में दीपति विहार करते हैं। भीष्म गर्मी में जब साधारण जन व्याकुल रहती है साँझ के समय राजमहलों में झट्झटु की शोभा बनी रहती है । फुवारे बफाँसी ऋतु की तरह लगते हैं । उसजाने हेमंत और शिशिर से भी ठंड है वहाँ काण भर में

१- प्रातः ठठ जाइये कीं, तेसहि लगाइये कीं,  
मति मति नहाइये की गरम ह्माम है ।  
बोड़ने की तास ने बिछात है जनेक रंग,  
बैठिये की सभा, बहाँ सुरज की घाम है ॥  
... जाये जगहन, हिम पवन चलन लागे,  
ऐसे प्रभु लोगन की होत बिसराम है ॥

से०क०र०पु० ६० ।

२- पद्माकर-पं०गु० पु० १६२-६३ ।

३- सुंदर बिराजे राजमंदिर सरस ताके,  
बीच सुखैनी सैनी सीरक उत्तीर की ।  
उहरे ससिल-बंन ह्वै विमल उठे,  
शीतल सुगंध मंद सहर समीर की ।  
भीने है गुलाब तन सने है जंगरजा कीं,  
छिटकी पटोर नीर टाटी तीर तीर की ।  
ऐसे बिहरत दिन ग्रीष्म के बितवत,  
सेनापति दीपति मया है रकुवीर की ॥

से०क०र०पु० ६१-६० ।



तपन मिट जाती है। फूलबारी में बिले फूल वसंत की शोभा पाते हैं<sup>१</sup>।  
वेठ, पास जाती ही तल्लाने, लसलाने तथा तल्लताह सुपारे जाने लगते हैं।  
विविध वसंतों की मरम्मत की जाती है। इन, गुलाब, जलगवा ले लेकर  
रक्खा जाता है। ग्रीष्म में ठण्डक रखने के लिए राबाजों के यहाँ पुवन्ध होने  
लगता है<sup>२</sup>। बर्फ की गिलाएँ, संदली सेव, लस और गुलाब, प्यास बुझाने  
वाली शरबत, हिमानी वाला। बिही के मुरम्बे, चांदी के बर्क पड़े केवड़े  
से सुगंधित बर्फ से ठंडे पेठे, और कमुली रुत्री द्वारा करक्यों से की गयी कंबल  
पंखी की हवा ग्रीष्म की ज्वाला और क्वाला को काट देते हैं फिर वेठ  
उन्हें पास कैसे दे सकता है<sup>३</sup>। चांदनी रात में, बटारी पर बिजकारी की  
बारहदरी में, कमलपुष्प युक्त बिछाने पर बड़ी वाता की सारी पनसार से भीग  
गयी है। गुलाब वसंतयुक्त सुगंधित वस के फौवारों के कारण हवा शीतल और

१- छूटत फु हारे सौह बरसा सरस रितु,

जौर सुबदाई है सरस छिरकाई की।

हेमंत शिशिर हूँ से सौरे लसलाने बहा

छिन रहै तपसि मिटत बब काह की।

फूलैतरवर फूलबारी फूल सौ भरत

सेनापति सौभा सौ वसंत के सुभाह की।

ग्रीष्म के समै साँभ राव महलन माँक

पैयति है सौभा जट्रितु समुदाय की। से० क० उ० पु० १०।

२- सेनापति- क० र० पु० ५७।

३- बरफ सिलान की बिछावत बनाय करि सेव संदली पै कंद वस पाटियतु है।

गासिब गुलाब वस वास के फु हारे छूटे बूब लसलाने पै गुलाब छांटियतु है ॥

गुलाब कवि सुंदर सुराही फेर सौर माँहि मोरा की बनाय रस प्यास ठाटि-  
यतु है।

हिमकर माननी हियाला सौ हिमे हैं लाय ग्रीष्म की ज्वाला के क्वाला  
काटियतु है ॥

-गुलाब- सा० पु० पु० ४१९

†

†

†

गुलाब- क० की० पु० ४१९।

सुगंधित हो जाती है फलतः ग्रीष्म की तपती भार का जाभास भी नहीं होता<sup>१</sup>। इस प्रकार कीमन्तों के यहाँ सभी वस्तुओं के उपयुक्त व्यवस्था है। साधारण वर्ग की प्रकृति की अतिशयता "दीरघ दाघ निदाघ" और शिशिर के पासे से बचने के लिए क्या क्या उपचार उपलब्ध थे, रीतिकालीन कवियों ने इसका उल्लेख नहीं किया। इतिहास के पृष्ठों पर उच्च एवं साधारण वर्ग के बीच गहरी खाई को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि जब प्रभुवर्ग गुलाब पास, खसबाने, गुलाब बस के हीनों चाँदी, चमेली और बीकी का उपयोग कर रहा होगा<sup>२</sup> साधारण वर्ग प्रकृति की दया पर किसी बुल की छाया की बोट में पड़ा रहता होगा।

४८- शीत वस्तु में गुलगुली गिल्लें गलीचें, चाँदी, बिक, चिरागों की माला, गवक, गिजा, सुरा और च्याला, तान, और दुशासे में जहाँ सामन्त वर्ग शीत की भक भी नहीं पाता, वही भर भर भाँपते, ठंड में ठिठुरते शरीर, और बबली बलीसी के बीच, जब बर्फ के तीर चल रहे हैं, निर्धन व्यक्ति बाग पर गिरे जा रहे हैं उनके नेत्रों से धुएँ के कारण आँसू बह रहे हैं, मानों शीत के भय से वह पावक हृदय की छाव में रस लेना चाहते हैं<sup>३</sup>।

१- जमल बटारी, बिजसारी बारी रावटी में,  
बारहे दुबारी में केवारी मयसार की।

बीपति गुलाब बारी छूटत फुहारे च्यारे,  
तपटें बसत तर-बसर बमार की।  
भूषन निबारी, धनसार भीषि सारी,  
भरि, तऊ न बुझानि नैक ग्रीष्म के भार की॥

बीपति-री०शु०पु० १३६।

२- बदमाकर - क० की०, पृ० ४४७।

३- शीत की प्रबल सेनापति कोषि बह्यो जल,  
निबल जनल, मयी सुर सियराइ के।  
हिम के समीर, तेई बरसैं बिजम तीर,  
रही है गरम भीम कोनन में जाइ के॥  
भूम नैन बहै, लोम बागि से गिरे रहै,  
हिए ली लमाइ रहै नैक सुलगाई के।  
मानो भीत बागि, महासीत से पसारि पागि,  
छतिया की छाँह राखी पाठक छिपाइ के॥  
हे०क०र०पु० ६७-६८।

बाड़े के प्रबल पातों में साधारण वन की बीने के भी ताते पड़ जाते हैं । वे जग बहाकर तापना चाहते हैं, पर ठिठुरे हुए हाव से वह तिनका भी नहीं हटा पाते<sup>१</sup> । एक जोर सोने के पतंग और मलमल के बिछाने है, हीरे बड़े पतंग के पाये हैं और बरी का वितान है<sup>२</sup> तो दूसरी जोर निम्न वर्ग के सप्पा गृह में मिट्टी के बूझ से कसत रहे है, एक छोट पर बादर पड़ी है । कहीं छोट पर केवल टाट भर ही पड़ा है । रात में बूँहों का उपद्रव होता है वह बलगनी पर पड़े कपड़े भी काट डेते हैं । वे बेचारे शीत कास में भी एक निहाली मान जोड़ कर ही सोते हैं । जिसमें उनके शरीर की गर्मी से ही सुख मिलता है<sup>३</sup> ।

४९- रीतिकालीन काव्य में घर में काम लाने वाली तथा अन्य सप्पा की वस्तुओं में बलदानी, पानदानी एवं पीक दानी<sup>४</sup> का उल्लेख आया

१- जायी जोर बड़कासी, परत प्रबल पासी,  
सोगन कीं तासी पर्या, जिसे कित बाद के ।  
ताप्या चाहे बारिकर, तिन न सकत टारि,  
माना है पराय ऐसे भी ठिठराह के ॥

से०क०र०पु० ७०-७१ ।

२- सोने के पतंग मलमल के बिछाने है ।

वेनी पु०न०र०त०पु० २४ ।

३- बैठे सुख सौ करि विग्राम । देखी अति विविध सौ वाम ॥  
कोटे कल्ल धरे बहु माट । बादरि सीरि तुहाई छोट ॥  
दीनी एक पुरानी टाट । ऊपरि जानि बिछाई छोट ।

ब०अ०क०पु० १४ ।

+ + +  
मानिक नारे के पत्ते, बांधी छाटि उवाटि ।  
धरी इबार बलगनी, मूछा से गयी काटि ॥ ब०अ०क०पु० १९ ।

+ + +  
वैसे नर सोवत शीत कास निहाली जोड़  
बापु ही तपति कर बापु सुख पाह है ॥ सु०गु० पु० ५८४ ।

४- कोठ बलदानी, पानदानी पीकदानी तिये

कोठ कर बीने से सुहाने नीत गावती ॥

हठी०बु०मा०सा०पु० २४० ।

### निष्कर्ष:

५०- इस प्रकार हम देखते हैं कि आवास एवं भ्रमसंज्ञा की दृष्टि से भी हमारा आलोच्यकाल और आर्थिक वैज्ञान्य का युग था । वस्तुतः मध्यवर्ग तो कहीं था ही नहीं । एक ओर मुगल सम्राट् के साथी मल्ल और अमीर-उमरावों की विज्ञात अट्टालिकाओं का वैभव है तो दूसरी ओर जन-साधारण की जीवनयापन के लिए अथर्थास्त, अस्वास्थ्यकर आवास व्यवस्था। राज-सामान की तो कहना ही क्या, उन लोगों के पास खाने के बर्तन और बिछाने के कपड़ों की भी कमी है । तत्कालीन साहित्यकार का मन संपन्न वर्ग के आसोक से झटना प्रभावित हो गया था कि इस ओर उसकी दृष्टि भूते भटके ही जाती थी । जीवन की सर्वजन सामान्य धारा से उसका नाता छूट-सा गया था, इसलिए उसका साहित्य एकवर्गीय है । मार्क्सवादी समीक्षक जीवन और साहित्य में वर्ग को बहुत महत्व देता है, उसमें अतिशयता भली ही हो किन्तु इतना सत्य अवरय है कि हमारे आलोच्य काल में वर्ग और वैभव ने साहित्य और कला को, सुजन और सौन्दर्य बोध को बहुत कुछ प्रभावित, नियमित और दिशानिर्दिष्ट किया है । यह दुर्भाग्य ही था कि हमारे कवि की जीवन का कठोर घरातल दुरवगम्य लगा, कि वह वैभव-विज्ञात की युग-मरीचिका से आवद्ध होने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा ।

### शृंगार - प्रसाधन

५१- रीति कवि सौन्दर्य के पुजारी रहे हैं । इन कवियों का संपर्क जिस वर्ग से था वह समाज सौन्दर्य एवं शृंगार के प्रति अत्यधिक संवेष्ट रहा है । स्वाभाविक सौन्दर्य को और भी आकर्षक बनाने के लिए ये विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग करने लगे थे । शृंगार के उपकरणों के बीच में नये प्रवास ली हुए प्राकृतिक सौन्दर्यवर्धक उपकरणों का भी गया संभव उपयोग किया गया । मुगल बादशाहों की कैमों और शहमादियाँ इस कौशल में विशेष

रूप में देता था। उनके पास शृंगार सामग्रियों पर व्यव करने के लिए पर्याप्त धन एवं समय था, फलस्वरूप नवीन केश-विन्यास नये अंगराग एवं नूतन प्रसाधनों की वृद्धि होती रही। स्वयं नूरजहाँ ने गुलाब के रस का आविष्कार किया था। शाही बेगमों एवं शहजादियों से बनाम शृंगार की सीधी धारणा रीतिकाव्य की नायिकाओं को मिलती रही होगी। मुगलों के कुलीन वर्ग की स्त्रियों के अनेक विषय मिलते हैं जिनमें वे स्नान के लिए फलतुल्य, स्नान करती हुई, बाहों को सुखाती बथवा हाथों में मेहदी लगाती विवशित हैं<sup>१</sup>। यद्यपि यह संभव प्रतीत नहीं होता कि हरम की स्त्रियों के ऐसे विषय बनाने की अनुमति कलाकारों को रही हो, तथापि कल्पना के बाजार पर इन विषयों में जीवन की आत्मा अंकित हो सकी है। इन विषयों के समानान्तर प्रवृत्ति रीति काव्य में स्पष्ट दिखाई देती है।

५२- रीतिकाव्यीन काव्य में सौन्दर्य प्रसाधनों के विभिन्न उपकरणों के संदर्भ प्राप्त होते हैं। "जोड़श शृंगार" की धारणा मध्ययुग में ही आरम्भ हुई। इसमें अन्तर्भूत होने वाले शृंगार-प्रसाधनों की संख्या समय-समय पर बढ़ती रही और उसमें नवीन शृंगारिक तत्वों का भी समा-  
 खर होता रहा। यहाँ में सौन्दर्य लाने के लिए पाँच रंगे बाने का उत्प्रेष प्रचीन काल से ही मिलता रहा है। इसके लिए प्रायः जावक, बलतस्तक बथवा महावर का प्रयोग होता था। आलोच्यकाल तक जाते-जाते मेहंदी शृंगार का अनवरक उपकरण बन गयी। इसका उत्प्रेष बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मिलता है। सम्भवतः यह विदेशी चीजा मुसलमानों के साथ भारत आया और धीरे धीरे शृंगार का प्रमुख उपकरण बन गया<sup>२</sup>। रीतिकाव्य में "जोड़श शृंगार" के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रायः सभी शृंगार प्रसाधनों

१- कुमारी कौमुदी के शीघ्र प्रबन्ध से उत्सृत।

२- डा० बन्कनसिंह- रीतिकाव्यीन कवियों की प्रेम व्यवस्था, पृ० १०९।



का वर्णन उपलब्ध होता है। केशवदास ने कविप्रिया में "सीतह सिंगारन"<sup>१</sup> का उल्लेख किया है। इसकी टीका करते हुए सरदार कवि ने उबटन, स्नान, बमलपट, जावक, बेणीगूबना, मांग में सिन्दूर भरना, ललाट में सौर लगाना, कपोलों में तिल बनाना, बग में केशर मलना, मेहदी, पुष्पाभूषण, स्वर्णाभूषण, सुव-सुवासित करना (लवंगादि भक्षण) का मंजन ताम्बूल एवं कज्जल की गणना की है<sup>२</sup>। तोष कवि ने भी सीतह सिंगार का उल्लेख करते हुए उसके विभिन्न उपकरणों का वर्णन किया है<sup>३</sup>।

### मज्जन एवं लेपः

५३- शरीर की बाह्य सज्जा करने के पूर्व यह आवश्यक है कि शरीर को भली भाँति स्वच्छ कर लिया जाय अतः मज्जन-स्नान की रीति काव्य में शृंगार का प्रथम उपकरण माना गया है। केशव ने स्पष्ट ही कहा है "प्रथम सकल सुवि मज्जन"<sup>४</sup>। तत्परवात् शृंगार के अन्य उपकरणों का प्रयोग होता है। स्नान के लिए रीतिकासीन रईसों के यहाँ स्फटिक के सरोवर बने होते थे। सुन्दर सरोवरों में चन्द्रमदनी रमणियाँ बतझड़ीयाँ किया करती थीं। नहाने के वत में गुताव बत, केड़ा आदि सुगंधित द्रव्यों

१- के०क० प्रिया, पृ० ४० ।

२- सरदार कवि- कविप्रिया की टीका, पृ० ५१ ।

३- करि मंजन पट पहिरि जावकादिक पट भूषण ।

बैदिय बंधि बेनी ललाट बनू विषु भूषण ।

सिर बंधन नुति बीर बिरी मुख नासा बैसर ।

झा कज्जल गल मुकुटमात कुव कुकुम केशरि ।

सावि बाबुन बनवट बंदर कानादिक कटि रसन कसि ।

कहि तोष सुमति पतिव्रत सहित यह सिंगार जोइस कस ।

तो०सु० नि०पृ० १०२ ।

४- के०क० प्रि०पृ० ४० ।

को पिलाने का उत्तेज भी मिलता है । नदी में भी स्नान किया जाता था ।  
 सोमनाथ की नायिका अपनी सखी सहेलियों के साथ केसर लगा कर नदी में  
 तैरने जाती है<sup>१</sup> । स्नान के समय शरीर के सभी अंगों को मलमल कर स्वच्छ  
 किया जाता था । विशेष रूप से पैरों की स्वच्छता एवं सुन्दरता के लिए  
 उन्हें कंवा, से रगड़ा जाता था जिससे महावर और भी सुन्दर एवं स्पष्ट  
 दिखाई दे सके । केशवदास ने पाँच कंवा से रगड़ने के बाद महावर लगाने का  
 उत्तेज किया है<sup>२</sup> । स्नान के उपरान्त विभिन्न सुगंधित मातेयों को शरीर  
 पर लगाया जाता था जो त्वचा की काँति एवं वर्ण में निहार लाते थे ।  
 केशव की नायिका प्रातः उठ कर, वाक्स त्पाग कर, दर्पण में मुख देखती हुई  
 धनसार पित कर लेप करती है । फिर अंगूठों को गुलाब जल से युक्त कर  
 अच्छी तरह शरीर को पोंछ कर भेद एवं जवा जादि का सेवन करती है<sup>३</sup> ।  
 इनकी राधा शृंगार के सामान्य नियमों के अनुसार पहले अच्छी तरह सारे शरीर  
 का मन्थन करती है फिर सुगंधित द्रव्य, जमलवास, जावक जादि का प्रयोग  
 करती है । इसके अनन्तर वह केशों को संवारती है, शरीर को अंगराग से

१- केशरि लाइ संवारि के जाड़ निहारि के नैह नदी तरिवो करै ।

सोमनाथ-ता०पु०पु० २७४ ।

+ + +  
 मुँह धोवति, पड़ी पसति, हसति, जमगवति नीर ।

पसति न इंदीवर नयनि काँतिदी के नीर ॥ वि०र०दी०६९७ ।

+ + +  
 मुँह पसारि, गुड़हल<sup>†</sup> भिँ<sup>†</sup> भिँ<sup>†</sup>, सीस सजत कर छाई ।

मील<sup>†</sup> उबै घूटने तै नारि सरीवर नहाइ ॥ वि०र०दी०६९६ ।

२- दीनों में पाँच कंवाइ महावर  
 जाँची नै जाँचन जाँच सुहाई । --के०र०पु०पु० १७५ ।

३- पहिले तबि बारस बारसी भेद  
 परीक पक्ष धनसारहि है ।

पुनि पोंछि गुलाब तिलोछि अंगौछनि....

कहि केशव भेद जवायिनी भाँचि जे पर जाँचन जाँचन है ।

--के०र०पु०पु० ६४ ।

लेपित कर विविध भूषण धारण करती है, मुख को सुवासित करके नाखों में कावस डालकर नेत्रों को सुन्दर बनाती है इस प्रकार के सौन्दर्य सुगारों से युक्त होकर चतुरता से खसती बोलती चलती, हुई पतिव्रत का पावन करती हुई विलास करती है<sup>१</sup>। केशव एवं बिहारी की नायिकाओं की ही भाँति ये की नायिका भी धनसार एवं केशर, चंदन पित्त कर अपने अंगों को संवहरती है। वह अपनी कंबुकी में चौवा चुपड़ना भी नहीं भूलती। इन सुगंधित बातों के कारण उसके पास-पास सुगंध फैली रहती है और जब कभी वह अभिचार के लिए जाते समय छिप कर छिमाटे बोलती है तो प्रतीत होता है कि अगर और चन्दन के खाने ही कुछ गये हों<sup>२</sup>। मतिराम की नायिका वहाँ भी बैठती है, उसके अंगों से सुगन्ध की झकीर फैल जाती है। बेला के इन और फुल्ल के सेवन से वह बेला की तरह लल्लहाती रहती है। वह अमल उसीर, इंदु चंदन, गुलाबनीर आदि अनेक संगंधिप्रदायक वदार्थों का प्रयोग करती है,

प्रथम सक्त सुवि मन्वन अमलवास

जावक सुदेश केश पावनि सुधारिबो ।

अगराम भूषण विविध मुखवास राग

कन्धस कलित बोल लौचन निहारिबो ॥

बोलनि छानि मुहु चातुरी चलनि चारु

पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिधारिबो ।

केशी दास सविलास करहु कुंवरि राधे ।

इहि विधि सीरही सिंगारन सिंगारिबो ॥ के०क०वि०पु० ४० ।

२- और बनी धनसार हो केशरि, चंदन मारि के अंग संहारि । दे०भा०वि०पु० १२८

+ + +

कंबुकि में चुपड़ी करि चौवा । दे०री०पु० १५ ।

+ + +

छिप के छबीली अभिचार को छिमार लोले,

सुसिगी खाने चारु चंदन अगर के ।

दे०क०पु० १५१ ।

कहाँ तक गिनाया जाय<sup>१</sup>। कभी वह जंगों में मृगमद और जंग राग लगाती है और कभी-कभी जंगों पर चंदन का लेप करके जब वह खेत सारी पहन लेती है तो अत्यन्त आभायुक्त लगती है<sup>२</sup>।

५४- अभिहार की सफलता के लिए वह सममानुकूल वस्त्रों के साथ उसी प्रकार का लेप भी करती है। कृष्णपत्त में अभिहार के समय वह रघुम रंग की साड़ी के साथ मृगमद का जंगराग लगाती है जो रघुम वर्ण होता है और शुक्ल पदा में अभिहार के समय वह समुद्र के फेन की उज्ज्वल साड़ी के साथ खेत चंदन एवं फनसार का उपयोग करती है अतः चांदनी में उसकी आभा मिल जाती है। अकबरसाहि की नायिका जावक एवं कुंकुम का प्रयोग करती है अपने मेचक वर्ण शरीर पर मृगमद लगाती है और जंगिमा की चीवा से रंगती है। उसके लिए गंधी अनेक सुगंधियों को लाता है और माती पुष्पमाला, जिनसे वह झुगार करती है<sup>३</sup>। प्रतापसाहि की नायिका भतीभाति सुवासित स्वच्छ जल से

१- कवि मतिराम तहाँ छवि सौ छबीली बैठी,

जागन तें फैलत सुगंध के झकोर है ॥

+ + +  
बैठा की फुलत फूली बैठा सी लल्लही ॥  
+ + +

जमल उसीर, ईदु चंदन, गुलाब-नीर,

कहाँ लमि और उपचारन गिनाइये ॥ म०गु०पु० २०५, २०८, २२८।

२- जगनि में कीनी मृगमद-जंगराग तैसी  
जानन बीड़ाव लीनों रघुम रंग सारी में ।

+ + +  
जगनि में चंदन चढ़ाय फनसार सेत  
सारी छीर-फेन की-सी आभा उकनति है । म०गु०पु० २१२ ।

३- मेचक रंग के जंग की रंग

रुंग मदक होम उज्ज्वारी  
चीवा के रंग रंगी जंगिमा

पहिरती तन नील अनुपम सारी ॥—अकबर गु०म०पु० १००।

गंधी से जावे सुगंध जंग में लगावे

माती के पुष्प भात पहिरि कल कल ॥—अकबर, गु०म०पु० ५२ ।

स्नान क्रिये हैं जिससे तन अधिक सुन्दर लगता है । फिर वह केशर, कपूर, कस्तूरी और हथ लेकर जंगों में जंगराग लगाती है<sup>१</sup> । कभी-कभी वह कपूर के चूर्ण को चंदन के साथ मिलाकर पिसकर भी अपने जंगों में जंगराग लगाती है । नायिका ने चोवा, चंदन, जंगवा तथा केशर जंगराग बनाने के लिए मंगाया है<sup>२</sup> ।

### केश-विन्यासः

५५- चित्रियों के शृंगार में केश-विन्यास का विशेष महत्व था । इस समय केशविन्यास की विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित थीं । काले घने चिकने एवं लम्बे सुन्दर केशों की बेणी बांधी जाती थी । बूढ़ा बांधने की प्रक्रिया बड़ी मनमोहक और सुभावनी है<sup>३</sup> । केशों के सौन्दर्य में वृद्धि के लिए सुवासित तेलों का प्रयोग किया जाता था । बालों को प्राचीन रीति के अनुसार जगल धूप से धूपायित करने का उल्लेख भी मिलता है "वारनि धूप जंगारन धूपि कै, धूप जंग्वारी पसारी महा है" परन्तु इसका और उल्लेख नहीं मिलता । ऐसा प्रतीत होता है कि वह तत्कालीन प्रसाधन प्रक्रिया नहीं थी और कवि परम्परा

१- है करि सुवास बारि विमल सुवासित के

मवन कियो है तन अधिक उमाहे है ।

केशर कपूर कस्तूरी जी अतर है के,

जंगराग, जंगन लगायाँ बित बाह है । --प्रतापसाहि-री०गु०पु० २२१।

२- चन्दन चूर, कपूर मिले, पिसि के जंगराग न जंग लगावे ।

+ + +

बहबहे चोवा चारु चंदन जंगवा जी,

जंगराग हेत कत केशर मंगाई हैं । प्रतापसाहि-री०गु०पु० २२०, २२२ ।

३- वैदी भात तमोल मुख बार सिवसिखे बार ।

+ + +

कर समेट, कब भुज ठसटि, बरै सीस-पट्ट टारि ।

काकी मनु बाधि न यह बूरा - बांधनि हारि ॥

वि०र०दी० ६७९, ६८० ।



निर्वाह के हेतु उसका उत्सव कर रहा है।

५६- केशों की मेल एवं धूप से बचाने तथा उनकी निरन्तर वृद्धि के लिए स्वच्छ सुगंधित जल से धोया जाता है। मुगल कालीन चित्रों में धोकर बात सुहाती हुई स्त्रियों के कई चित्र उपलब्ध हैं। रीति काव्य में भी इसका वर्णन मिलता है। बालों की चिकना और चमकदार रखने के लिए सुगंधित तेल डाल कर कंथा किया जाता है। सुन्दरी तिलक में बिताती की पिटारी का उत्सव आया है जिसमें कंधी, दर्पण आदि केश सज्जा की सामग्री है<sup>१</sup>। देव की नायिका के बाल संवार कर गुहे जाते हैं। मतिराम और पद्माकर के नामक कभी कभी स्वयं ही नायिका के बाल संवारने और बेणी गुहने लगते हैं। बालों की संवारी गई बेणी नागिन की तरह लोटती है<sup>२</sup>। केशों की बूझ बनाने का प्रचलन भी है। बनानन्द की नायिका स्नान के पश्चात् चौकी पर बैठी बूझ बांध रही है। बूझ बांधते समय नायिका की भुजाओं में बाल लिपट रहे हैं<sup>३</sup>। बालों के बीच से मांग निकाल कर पाटियाँ बनाने का विशेष प्रचलन है<sup>४</sup>।

१- हिंदू विज्ञापन की सब बीजे पेटारी सोहाग भरी सबसे है।

कंधी दर्पण प्याली सलाई सु गोली सुई ठिथिया हू बिबै है ॥

सु.सि.पु. २०५ ।

२- मोतिन मांग के बार गुहै बल हार गुहै बलि बाल संवार ।

दे.भा.वि.पु. १२८ ।

बापनी हाव सौ देत महादर बाप ही बार संवारत नीके ।

म.गु.पु. २०९ ।

बेनी गुहै सौ गुहै मनभाउते मोतिन मांग संभारि सवेरी ।

पद्.गु.पु. १२८ ।

नागलप काले जाछी बेनी सोहै बाल की ।

के.गु.पु. ४५८ ।

३- मंजन करि मंजन चौकी पर बैठी बांधति बूरी ।

प.गु.पु. ८२६ ।

परी हठीली हरि नवरि बूरी बांधति बाव ।

भि.गु.पु. २९ ।

४- सु.सि.पु. २९३, के.गु.पु. ४५७ ।

### सिन्दूरः

१७- भारतीय परम्परा में सुहाग चिन्ह के रूप में सिंदूर का स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। रीतिकान्य में भी सिंदूर के प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते हैं। बनानन्द की नायिका की मांग सिन्दूर से सुशोभित है। पाटियाँ संवार कर उसके बीच में सिन्दूर बख्वा इंगुर की रेखा सजाई जाती है। सुन्दरदास ने केश गूँथ कर मांग में अच्छी तरह सिन्दूर भरने का उल्लेख किया है<sup>१</sup>। सूफ़ी कवियों ने विवाह के प्रसंग में सुहाग-चिन्हों की चर्चा की है जिसमें सिन्दूर का नाम भी है<sup>२</sup>। हिन्दू स्त्रियों की भाँति मुस्लिम स्त्रियाँ सिन्दूर नहीं लगाती। भूषण ने जागरे और दिल्ली की मदन-स्त्रियों के मुख को सिन्दूर-रहित कहा है<sup>३</sup>।

### बिंदीः

१८- ललाट पर बिंदी या टीका लगाना स्त्रियों का प्रमुख शृंगार है। रीतिकान्य में विभिन्न प्रकार की बिंदियों के वर्णन प्राप्त होते हैं। बिहारी ने बिंदी को शोभाकारक उपकरण माना है। उनके अनुसार रूची के तिलार में बिंदी लगाने से उसकी शोभा अगणित बढ़ जाती है जबकि जंक में बिन्दु

१- लाल बटित कर भात सुबेदी कछु रह्यो फ बि मांग सिंदूरी ।

+ + सु०गु०पु० ८१६ ।

बेनी गुही गर मोतिल की भरी इंगुर मांग सनेहनि भोरी ।

+ + +

पाटिन बिब सिन्दूर की रेख पुरबी लखी यों उपमा जति बाढ़ी

+ + सु०ति०पु० २०७, २१२ ।

केश गुही मांगे भरी सिन्दूर केश । सु०गु०पु० ८१९ ।

२- का०हं०ब०पु० ९०, १०७ ।

३- तेरे रीज देखियत जागरे दिल्ली में,

बिन सिंदूर बुंद मुख जमनीन के ।

भू०गु० पु० ५३ ।

लगाने पर वह केवल वसुधा ही बढ़ता है<sup>१</sup>। बिहारी की नायिकाएं अनेक प्रकार की बिंदिया अपनी सखि के अनुसार लगाती है। पचरंगी बिंदी अग्नि के समान ज्योतिष मुख पर अति सुन्दर लगती है। कोई लाल बिन्दी लगाये हैं कोई पीली, सेत अथवा रसम वर्ण की। अक्षत, भौंठर, चन्दन, ऐपन, तथा सन की बिन्दी का उल्लेख भी बिहारी ने किया है<sup>२</sup>। रौरी की बिंदी भी अत्यन्त लोकप्रिय है<sup>३</sup>। मतिराम की नायिका के सखीने मुख मसूर की बिंदी इस प्रकार लीभा दे रही है मानो बंझमा में बीरबडूटी बैठी हो<sup>४</sup>। मुगमद की बिंदी का भी उल्लेख है<sup>५</sup>।

१- कहा सबै बिंदी दिवै जाकु वसुधनी होत ।

तिथ सितार बिंदी दिवै अगनितु बढ़तु उदीतु ॥

वि०र०दी० ३२७ ।

२- वि०र०दी० ६२६, २७१, ३४५, ६९०, ४४१, १८०, ९३, २४८ ।

३- बास के भास में लाल अनूपम रौरी की बिंदी बिस्तार लगी है ।

सु०ति० पु० २९२ ।

†

†

†

ललत बास के भास में रौरी बिन्द रसात ।

बो०वि०वा०पु० ६२ ।

४- बिंदी ललित मसूर की ललित सखीने भास ।

मनी इंदु के अंक में इंदु कामिनी बास ॥

म०गु०पु० २९७ ।

५- प्रतापसाहि- री०गु० २९२ ।

अंजनः

५९- नेत्रों के स्वाभाविक सौन्दर्य एवं आकर्षण को तीव्रतर करने के लिए प्रसाधनों का उपयोग किया जाता रहा है। नेत्रों का विशाल, कटाक्षपूर्ण, पानीदार एवं खाम होना सौन्दर्य का मान-दण्ड था। काव्य एवं अंजन के द्वारा नेत्रों में खामता, विशालता एवं प्रभावपूर्ण कटाक्ष उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। नेत्रों के सौन्दर्य-वर्णन के समय प्रायः सभी कवियों ने काव्यत अथवा अंजन का उल्लेख किया है। किसी ने आँखों में अंजन शोभित बताया है और तोल लीचनों का कव्यत कलित कहा है, किसी की शोभा के सम्मुख अंजनादि कहने को ही शोभा के अंग है<sup>१</sup>। कहीं नामक से वियुक्त होने पर नायिका ने सभी प्रसाधनों को तिलांजलि दे दी है यहाँ तक कि नयन भी अंजन रहित है<sup>२</sup>। अंजन के कारण बाला के नेत्रों की छवि बढ़ गई है मानों उसने कटाक्षपूर्ण नेत्रों में विष भर लिया हो। कोई अपने खंजन से नेत्रों में अंजन भरती है तो कोई अंजल लगाकर भी है बनाती है<sup>३</sup>। इनके अतिरिक्त अकबरशाह, तोषा, नागरीदास, सुन्दरदास, तथा सूफीकवियों ने भी नेत्रों में काव्य एवं अंजन लगाने

१- आँखी में अंजन आँख सुहाई ।

+ + के०र०प्रि०पु० १७५ ।

कव्यत कलित लोल लीचन निहारियो ।

+ + के०क०प्रि०पु० ४० ।

२- नयन किसी न तन, अंजन दियो न नैन । म०गु०पु० ३१७ ।

३- बाल अधिक छवि लाग निज नैनन अंजन देत ।

मैं जान्यो यों हनन को बाननि विष भर देत ॥ भि०गु०पु० ८८ ।

+ + +

अंजन लगायो मेरे खंजन से नैन की - दी०गु०पु० २१ ।

+ १- +

तेल लगाइ लगाइ के अंजन भी है बनाइ बनाइ दिठानहि ।

रसखान, पृ० १४ ।

की वर्ण की है।

तंबूल आदि:

६०- मुख की शोभा एवं सौन्दर्य के लिए होठों का लाल एवं मुख का सुवासित होना आवश्यक समझा जाता है, इसके लिये रीतिकान्ध में पान, बिरा, बीरा, बीड़ा एवं तमोल का उल्लेख आया है। केशव ने सौलह शृंगारों में "मुखरागवास" तथा तोष ने "बिरामुख" की वर्ण की है। पान कवि ने राजविलास में तरस्वती की स्तुति करते हुए उनके मुख में तंबूल की महक का वर्णन किया है। पान अथवा बीड़ा के उल्लेख विभिन्न प्रकार के संदर्भों में प्राप्त होते हैं। बिहारों की नायिका कपोलों पर पड़ती लालमणिओं की भलक को पान की लीक समझ कर त्योंरिया चढ़ा लेती है और बेचारे नायक को सफाई देनी पड़ती है<sup>१</sup>। प्रिय के वियोग में मतिराम की नायिका पान और तमोल के प्रति उदासीन हो जाती है<sup>२</sup>। संत सुन्दर दास ने जीभ-बिहीन के द्वारा बीड़ा खाने का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। सूफी कवि कासिमशाह की नायिका

१- म०गु०पु० ६९, तो०सु०नि०पु० ५४, ना०समु०पु० १५३, सु०गु०पु० ८५९ तथा ८७४, नू०ज०वा०पु० १४ एवं १७९।

२- के०क०पु० ४०, तो०सु०नि०पु० १०२।

३- तंबूल मुख महकत त्रिपुरा ब्रह्मरूप विचारिनी।

मा०रा०-वि०

४- तेइ तरेर्यो त्योंर करित कत करियत दूज लीत।

लीक नहीं यह पीक की श्रुति-मनि-भलक कपोल ॥

वि०र०दो० ११३।

५- म०गु०पु० २४, ३१८, ३५९।

६- सु०गु० पु० ८७४।



वधू-वेश में सुसज्जित है उसका मुख तमोल रंजित है<sup>१</sup>।

बूढ़ी:

६१- रीति काल में बूढ़ी पहनने का भी प्रचलन था यद्यपि क्लाइयो में पहने जाने वाले अन्ध अनेकों गहनों के बीच इसका उत्प्रेषण काव्य में कम ही आया है। भिलारी दास ने लाल और हरी बूढ़ी की चर्चा की है। दूती नायिका से लाल बूढ़ी उतार कर हरी बूढ़ी पहना देने का आग्रह करने के पक्ष बाकूवातुर्भ से अपना काम संपन्न करती है<sup>२</sup>। काव्य में कई स्थान चुरिहारिनों के उत्प्रेषण आये हैं, दूतियों में चुरिहारिन दूती भी है, इससे बूढ़ी पहनाने का पेशा व्यापक था, इस बात का स्पष्ट ज्ञान होता है। बूढ़ी सुहागविन्ध स्वरूप थी। स्त्रियां जयशाह की आशिर्वाद देती हैं क्योंकि उसने इनके पतिव्रतों की प्राण रक्षा करके उनकी चादर और बूढ़ी बचा ली है<sup>३</sup>।

पुष्पसज्जा:

६२- शृंगार-प्रसाधनों के अन्तर्गत फूल और गवरी का भी परिगणन किया गया है। विभिन्न प्रकार के फूलों का उपयोग स्त्री और पुरुष समान रूप से करते हैं। स्त्रियां अपनी देणी भी फूलों से सजाती हैं।

---

१- का० हं० ज० पु० ९०, १७९।

२- लाल चुरी तेरे बली लागी निपट मलीन।

हरिमारी कर देखंगी हीं तो हुकुम अघीन ॥

फि० ग० पु० २।४७।

३- कर-कर तुरकिनि हिंदुनी देति बलीस सराहि।

पतिन राखि चादर चुरी तै राखी बसताहि ॥

वि० र० पु० ७१२।

विहारी के काव्य में गेंदा, चंपा, कंदमूल, गुलाब, मौसमी तथा खोनजुही आदि पुष्पों के नाम आए हैं<sup>१</sup>। बंदकला सी दासियों के वर्णन में उन्हें "फूल फिरे फूल सी दुकूल पहिने फूलन की माला रे" कहा गया है। दूसरे कवि की नायिका मुख कमल-पुष्प की भांति सुन्दर है। उसने फूलों से निर्मित आभूषणों से अपने को सँवार रखा है, फूलों की सुगंध के कारण उसकी शोभा का प्रसार सौगुण अधिक हो गया है<sup>२</sup>।

### मैंहदी:

६३- मध्ययुग के काव्य में, विशेषकर रीतिकालीन काव्य में, ह्वेलियों एवं पांवों की सज्जा के लिए मैंहदी का उत्तेज मिलता है। मैंहदी को पीस कर उसका लेप ह्वेलियों और पैरों में सुन्दरता से किया जाता है, कुछ देर ठहर कर सूखने पर उसका रंग निखर जाता है। विहारी की नायिका नायक से कुछ देर शान्त बैठने की प्रार्थना करती है क्योंकि गीली होने के कारण मैंहदी उसके नाखूनों से छूटी जाती है<sup>३</sup>। मतिराम की नायिका के कमलकरों में अत्यन्त कलात्मक रीति से मैंहदी लगी है, ऐसा लगता है मानों लाल-पल्लवों पर और बिन्दु पड़ कर पिट गये हों। इनकी नायिका के हाथ और पैर दोनों में मैंहदी लगी है<sup>४</sup>। बनानन्द की नायिका के हाथ में मैंहदी

१- वि०र०दी० २०४, ४७७, ४१३, ४४४, ४३१, १३३, १९०।

२- फूलन के भूषण सरोजमुखी सावि बैठी,

फूलन सुवास शोभा सौगुनी पसारो है ॥ दू०क०क०प०पु० ६३।

३- नैक उतै ठठि बैठिये, कहा रहे गहि मेहु।

छुटी जाति नह-दी छिनु मैंहदी सूकन देहु ॥ वि०र०दी० ५००, ४४८।

४- लसत कोकनद करनि में यो मैंहदी के दाग।

जोस बिंदु पारि के पिट्यो मनो पल्लवनि राम ॥

म०गु०पु० ५००, ३८९।

रची है, पावों में रची मेंहदी देव कर सीतों के हृदय पर तलवार सी लगती है<sup>१</sup>। ठाकुर की नायिका सात मेंहदी लगाकर "सात" की बर मे कर लेती है<sup>२</sup>। कासिदास ज़िन्दगी की कृपाविग्धा बड़ी चातुरी से प्रिय का स्पर्श प्राप्त करना चाहती है। वह नंदसात से अपनी लट सुलभा देने की प्रार्थना करती है क्यों हाथों में मेंहदी लगी होने के कारण वह स्वयं ऐसा करने में असमर्थ है<sup>३</sup>। कासिमशाह ने कमल के फूल के समान हाथों में मेंहदी लगी होना बताया है<sup>४</sup>।

#### महावर:

६४- रीतिकालीन काव्य में पावों के नख और एड़ियों की रंगने के लिए जावक, अलक्तक तथा महावर आदि का उल्लेख मिलता है। केशव तथा बिहारी की नायिकाएँ एड़ियों को झंका से साफ करके महावर लगवती हैं<sup>५</sup>। घरों में सुन्दर रीति से महावर लगाने के लिए नाइने जाती हैं<sup>६</sup>।

१- पायनि तेरे रची मेंहदी लखि सीतनि के तरवारि सी लागति ।

च०गु०पु० १४६ ।

२- मेंहदी लपेटे सात सात बख कौने निब ।

ठाकुर-री०गु०पु० १९७ ।

३- मेरे कर मेंहदी लगी है नंदसात प्यारे,

लट उरझी है नकुसलरि संभारि दे । कासिदास-क०कौ०पु० २७६ ।

४- कबल फूल तब दोनों हाथा, जौ मेंहदी राखी रंगराता ।

का०हं०पु० ५४ ।

५- के०र०पु० १७५, बि०र०दो० ४८३ ।

६- पाँइ महाबल दिन कौ नाइनि बैठी जाइ ।

फिरि फिरि जानि महाबल एड़ी भीड़त जाय ॥

बि०र०दो० २५, ४४ ।

कभी-कभी प्रेमवश नायक स्वयं ही अपने हाथों से नायिका के पैरों में महावर लगाने लगता है। ऐसे प्रेमी नायक के प्रवासकात्त में नायिका जावक लगाना तयाग देती है<sup>१</sup>। नागरीदास के कृष्ण राधा के पगपंखों की शोभा एकटक निहारते रह जाते हैं और पाँव में महावर लगाना भूल कर उसे हाथ में ही लिए रह जाते हैं<sup>२</sup>। अकबरशाह एवं गुणमंजरीदास ने भी जावक की चर्चा की है<sup>३</sup>।

### गोदना:

६५- गोदने के प्रसंग साहित्य में कम प्राप्त होते हैं। सुंदरीतिलक में जाये हुए गोदने के प्रसंग से ज्ञात होता है कि गोदनहारियाँ इस कार्य को संपन्न करती हैं। गोदने अनेक रंग के बनते थे, इन्हें भुजाओं, कपोलों आदि पर विभिन्न रूप एवं आकारों में विभक्त किया जाता है, नाम भी लिखाये जाते हैं। नायिका गोदने वाली से आग्रह करती है कि मेरे बाहों में गजबराब कपोलों में "कुंजविहारी" तथा अंगों में "साँवरे" रूप गोद दे<sup>४</sup>। प्रातः कात्त ही नंद्याव से आई गोदने वाली बताती है कि वह मनसखन्द गोदने बना सकती है और उसमें मनवांछा रंग भी भर सकती है। गौरी-

१- जावक दिखी न पाइ रही मनु मारि कै ॥

म०गु०पु० ११७ ।

२- राधा पदपंख निरखि, इक टक तात्त सुभाय ।

लिए महावर हाथ में, रंग भरी नहिं जाय ॥ ना०स०पु० १५३ ।

३- अ०गु०म०पु० ६९, गु०गु०भा०सा०पु० २५६ ।

४- हे तिलि बिबाहल में बबराब तु गोस कपोलनि कुंज विहारी ।

+

-

+

साँवरें को अंग गोद दे गासन ए गोदनान की गोदनहारी ॥

पद्म०सु०ति०पु० १२३ ।

गोरी भुजाओं पर रम्य वर्ण का गोदना अत्यन्त सुन्दर लगेगा<sup>१</sup>।

पुरुषों के सौन्दर्य प्रसाधनः

रौतिकाव्य के नायक भी अपने रूप और सौन्दर्य वृद्धि के प्रति सजग है। स्नान के पश्चात् शरीर पर अंगराग, चंदन, केशर एवं धनसार आदि सुगंधित वस्तुओं का लेप पुरुषों में भी लोकप्रिय है<sup>२</sup>। भांति-भांति के पुष्पहारों का प्रयोग किया जाता है, उनके वक्ष पर सुशोभित माताओं से केशर की महक आती रहती है। कभी-कभी हाथों में कमल के गवरे भी लिए रहते हैं<sup>३</sup>। भात पर चन्दन, कुंकुम का तिलक तथा केशर की सीर बनाने के अनेकविध प्रसिद्ध हैं<sup>४</sup>। पुरुष वर्ग में पान का व्यापक प्रचार है सबसेंवर कर हर

१- भावति ही नदगाव ते भोरही सीधी बली में फिरी बहु कोदना ।

लीमें गोदाव कृपा करिके द्विज भावै सी दीवै बू लोद विनोद ना ॥

वानति ही में अनेकन रंग के को पनि बाहि गोदाव प्रमोद ना ॥

ये भू रावरी गोरी लसे सुभ सुन्दर रम्य अमूरव गोदना ॥

द्विज० सु०ति०पु० ३२४ ।

२- अंग राग रंजित लविर भूजन भूषित देह । के०कौ०पु० १।४२

३- सीधी बन्धी अतिचार चढ़ावन हार बन्धी हर भावत नीकी ।

के०र०पि०पु० १७५

+ + +

भात तिलक शोभावति भात में केशर गंध सुहाई ।

+ + +

बलसुत गजरा दीठ कर मांही । बी०वि०वा०पु० ३७, ३८ ।

४- के०बी०च०पु० ३१३, बी०वि०वा० पु० ३८,

वान० सा० पु० ३१८ ।



नायक बिरही, पान अथवा तमोल बाकर होठों को अवश्य रचाता है<sup>१</sup>। टेढ़ी पाग बांधना, मूँछ मरोड़ कर रक्कना, हाथ में फूल की छड़ी रखना अथवा गेद आदि उछालते हुए चलना इस युग के सामान्य दृश्य हैं, इसका वर्णन केशव, यान, बीषा, सुन्दरदास आदि ने स्थान स्थान पर किया है<sup>२</sup>।

### शिशुओं के सौन्दर्य प्रसाधन:

६६- जहाँ स्त्री एवं पुरुष अपने शृंगार के प्रति इतने सचेष्ट हैं वहाँ शिशुओं के सौन्दर्य का ध्यान भी रक्खा जाता है। इन्हें उबटन लगाने के बाद शरीर का मन्जन करके उन्हें फूलों से भी सजाया जाता है। माता शिशु को तेल लगा कर आँखों में मन्जन लगाती है, उसकी भीड़ी को सँवारने के उपरान्त शृंगार का पूरक एवं रसक ढिठाँना लगाना भी नहीं भूलती है<sup>३</sup>।

१- बीरही बन्धी मुख सात मनोहर मोहि शृंगार लगी सब फीकी ।

के०र०प्रि०पु० १७५ ।

२- यान कवि दुपटा दुदामी को गुलाबी फेटा

केशरि तिलक भुति कुँडल लसत है ।

बाके नवरंगी सास संगी गोप ग्वाहन के

हाथ में नारंगी की उछालत चलत है । यान ०सा०प्र०पु० ३१८ ।

+ + +

मूँछ मरोरे पान सँवारे, दर्पन से कर बदन निहारे ।

+ + +

टेढ़ी पाग बांधि बार बार ही मरोरे मूँछ । सु०गु०पु० ३२४, ४२२ ।

+ + +

सूही सबी सिर में पगरा लिए फूल छरी इत बीबक जाइगी ।

सु०ति०पु० १५६ ।

३- तेल लगाइ लगाइ के मन्जन

भीह बनाइ बनाइ ढिठाँनहिं ।

रसवान, र०फ०पु० १४ ।

शिशु को सवासंवार कर माता उसके सौन्दर्य को देख कर पुलकित होती है ।

६७- रीतिकालीन भारत, या हिन्दी कविता की क्रीड़ा - भूमि मध्यदेश, व्यापक रूप से शृंगार एवं अलंकरण का काल था; वह कहकर संभवतः अत्युक्त की जाती है । किन्तु यह अवश्य है कि रीतिकाव्य जिस वातावरण में लिखा जा रहा था वह शृंगार और अलंकरण प्रधान था । शृंगार और अलंकरण सहायी है । एक दूसरे में जोड़ी-दामन का संबंध है । दोनों के मूल में मनीवृत्ति एक ही है । रीतिकाव्य का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि उसका प्रेरक वातावरण अवश्य अलंकरण और विशास प्रधान था । सौंदर्यबोध तो प्रायः सभी कवियों और काव्यों में पाया जाता है, क्योंकि वह साहित्य का प्राण है, किन्तु रीतिकालीन कविता में सुंदर रमणीय की ओर उन्मुख है और रमणीयता में विशासीन्मुख शृंगार के दर्शन होते हैं । इसलिए रीतिकालीन कविता में शृंगारप्रसाधनों के लम्बे बीड़े वर्णन और परिगणन दिखना स्वाभाविक नहीं है ।

### वाभूषण

#### मानव-स्वभाव में अलंकरण की मनीवृत्ति:

६८- छायायुग का प्रकृति प्रेमी कवि भी, जो "तरल-तरंगों की तवकर", "बाते के बात-बात में अपने जीवन न उलझाये" की कामना करता है -- एक दिन "सुन्दर" हैं बिहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुंदरतम ।" की धारणा पर पहुँचता है । कारण स्पष्ट है । प्रकृति प्रकृत्या सुंदर है, मानव भी निश्चितः सुन्दर है, किन्तु इससे जागे, मानव स्वभाव में प्रकृत को परिष्कृत और संस्कृत करने की सहज मनीवृत्ति है । उसका सौंदर्य बोध प्रकृत को परिष्कृत और संस्कृत करने, अलंकृत करने की, प्रेरणा देता है । वारंभ में स्त्री और पुरुष दोनों में अलंकरण की समान प्रवृत्ति देखने को मिलती है । जीमती जमीला जबभूषण का तो विचार है कि अत्यधिकसित या

अविकसित समाज में पुरुषों में सौंदर्य और वलंकरण दोनों अधिक हैं। परमार्ग में भी उनके विचार से, नर मादा से कहीं अधिक सुन्दर है। भारतीय मनीषा की, सौंदर्य के देवता के रूप में कामदेव की रूपना के मूल में भी कदाचित् ऐसा ही कोई कारण हो।

### वालीकाल में वलंकरण की प्रवृत्ति:

६९- वालीकाल के लिए कुछ विद्वानों ने 'वलंकार-काल' का अभिप्रेत प्रस्तावित किया है। जीवन, और उसके फलस्वरूप काव्य में वलंकरण की प्रवृत्ति इस काल का एक ऐसा वैशिष्ट्य है जिसके कारण विभिन्न दृष्टियों से विचार करने वाले सभी विद्वान किसी न किसी रूप में रीति, वलंकार, शृंगार आदि विभिन्न संज्ञाओं के माध्यम से उसी मूल बात तक पहुँचते हैं। केशव ने इस प्रवृत्ति की चीन्हा स्पष्ट और निरिक्तार्थक शब्दों में की है। उनके अनुसार सुजात, सुतलानी, सुवर्ण, रसवती और सुंदर वृत्तों वाली होती हुए भी कविता और वनिता वाभरणों के अभाव में शोभा को नहीं प्राप्त करती<sup>१</sup>। तरुणी होवे हुए भी स्त्री बिना वाभूषणों के प्रियतम का हृदय हरने में समर्थ नहीं होती<sup>२</sup>। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि रीतिकाल की प्रायः सभी नायिकाएँ शिव से नर तक वाभूषणों से लदी हुई हैं और रीतिकाल की कविता भी अतिशय वलंकृत कविता है। केशव की नायिकाएँ मणिपों से इस प्रकार लदी हुई हैं कि कंटकों के कारण उनके वस्त्र फट जाने और वायु के झंकोरों से उड़ जाने पर भी उनके अंग नहीं दिखायी पड़ते<sup>३</sup>।

१- वदधि सुजात सुतलानी सुवरन सरस सुवृत्त ।

भूषण बिनु विराजई, कविता वनिता मित ॥ के० क० प्रि० पु० २४ ।

२- कु० म० र० र० पु० १०३ ।

३- कराटक बटक करी करीबात । उड़ि-उड़ि जात वसन वस गात ॥

तऊ न तिनके तन लधि परे । मनिगन अस-बस कन परे ॥

के० बी० दे० व० पु० २७९ ।

बिहारी की नायिका इसे घटकर नहीं । उसकी दीपशिखा वही देह में जंग-जंग पर नंगों की जगमगाहट के कारण दिया बुझाने पर भी भजन में उजाला बना रहता है<sup>१</sup>। देव की दृष्टि उनकी उपयोगितावादी तो नहीं, उन्हें भजन की आसक्ति करने के लिए दीपक की अपेक्षा रहती होगी, किन्तु केवल की किनारीवारी साड़ी और उस पर मोतियों की इकहरी फातर, सीसफूस, बेंदी, केशर और हीरों की भीड़ में उनकी भी नायिका का सौन्दर्य निखर उठता है<sup>२</sup>।

७०- अंतःकरण के लिए अंतःकार्य की जीवन सत्ता अनिवार्य है । प्राणवान को ही आभूषण पहनाये जा सकते हैं, आत्मवान में ही सौन्दर्य की सत्ता की कल्पना संभव है । रीतिभंग में आभूषणों का अध्ययन करते समय हमें इस प्रश्न को निरंतर अपने मस्तिष्क में रखना होगा- कहीं अंतःकार ही तो साध्य नहीं बन बैठा? जीवन की निर्गम कर्मपरायणता आरौपित विलासवृत्ति से अतिक्रमिष्ठ तो नहीं हो गया ? फिर अंतःकरण के साथ जीवन का प्रवृत्त रख भी उतना ही प्रचुर और उर्वर रहा है या नहीं ? सौन्दर्य बीच मानव-मात्र में पाया जाता है - सम्पन्न, विपन्न सभी में । हमारे कवि की दृष्टि किसी विशेष वर्ग में ही रमकर तो नहीं रह गयी ? किसी विशेष वर्ग की अंतर्लक्षित उत्कर्ष तो नहीं प्राप्त हो गया ?

आसौख्य काल का काव्य आभरणों एवं अंतःकारों के उत्तेज से भरा पड़ा है । सूदन ने सुजान चरित में गहनों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है जिसमें चौटी, बुटिया, सीसफूस, बैना, बेंदी, केशर, नय, बुलाक, भुसमुली, तखन, भुमका, कर्णफूस, बुटिया, बुभी, सोलक, सोंक, गुलीबंद, पंचमनियाँ, चीसर, तिसरी, पंचसरी, सतीसर, चपाकली, हुमेत, होसवर, उखवडी,

१- जंग-जंग - नग जगमगाति दीप शिखा ही देह ।

दिया बड़ाए हूँ रहे बड़ी उज्ज्वारी गेह ॥

वि०र०दी० ६९ ।

२- दे०क०पु० १५४ ।

मुक्तामाल, रतनवास, रसना, छुद्रपटिका, कुमारी, बाबूबंद, छन्ना, बंगुरी, बूरा, राठ, पछेली, किंकिरा, गूबरी, पड़ुबी, बनवट, छन्ना, बंगूठी, बारसी, बंजीर, पायल, पगपान, नू पुर, फूल, बनीट, भर्तृक आदि के नाम जाये हैं<sup>१</sup>। मानकवि ने राजवितास में, शिव से नव तक आभूषण-भूषित नायिका कह विप्र प्रस्तुत किया है। सरस्वती की बनवट एवं विष्णु पारण किये है बिनकी रत्नभुन मनोहारी है। भर्तृक कमक रही है, पग के पायल की रत्नभुन कर्णकुहरी को मधुपूरित कर रही है। शुद्रावलि एवं किंकिणी शोभित है। कटि मेखला स्वर्ण मण्डित है, विशाल भ्रूमूखों में सोने के कंकण, है, बाबूबंद एवं पड़ुबी छवि पा रहे है। ग्रीवा में गबरा है डंगली में मुक्तिका मंडित है। कंठ एवं उदर पर मुक्ता की मनोहर माला है। सोने की बीकी पर विराज रही हैं उर पर मणि बटित चंपाकली है। दमकती हुई हंसली, पीत की तिलारी एवं कंठगी गले की शोभा बढ़ा रही हैं। सोने की नय के बीच सात मोती बत्यन्त आकर्षक हैं<sup>२</sup>।

स्त्रियों के आभूषणः

७१- स्त्रियों के आभूषणों में शिव से नव की ओर चला जाय तो सर्व-प्रथम सिर पर पारण किये जाने वाले गहनों की ओर दृष्टि जाती है। इनमें सबसे पहले टीके का उल्लेख प्राप्त होता है। यह एक प्रकार का "बड़ाऊ" गोल आभूषण है जिसे स्त्रियाँ सत्ताट पर पारण करती है। बिहारी की नायिका के सत्ताट पर बड़ाऊ का टीका इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों चन्द्र मण्डल में जाकर सूर्य उसकी छवि बढ़ा रहा हो<sup>३</sup>। हंसवाहिनी में

१- सु०सु०च०पु० १७५ ।

२- मान० रा०वि०पु० २-२ ।

३- नीकी सखतु तिलार पर टीकी बरितु बराइ ।

छविहि बड़ावतु मनी रवि सखि मण्डल में जाइ ॥

वि०र०दी० १०५ ।



अनेक स्थलों पर टीके का उल्लेख आया है<sup>१</sup>। वैदा भी स्त्रियों के सलाह की सीमा बढ़ाता है। नायिका के सिर का शीशफूल और वैदा केशवदास की ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों सीभाग्य एवं सुहाग उसके सिर पर बास कर रहे हों<sup>२</sup>। यनानन्द ने भी वैदी का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। सुंदरी तिलक में बड़ाऊ वैदी के सलाह से छूट कर गिर जाने की बर्णना है<sup>४</sup>। स्त्रियाँ अपनी माँग सजाने के लिए मोतियों का प्रयोग करती हैं<sup>५</sup>। शिवनख वर्णन करते हुए केशव ने जाठ नग के बेणीफूल का उल्लेख किया है<sup>६</sup>। इसके अतिरिक्त शीशफूल धारण करने का वर्णन भी अनेक स्थलों पर आया है<sup>७</sup>।

### कान के गहने:

७२- कान के गहनों का उल्लेख अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। कर्णाभरणों में तर्पनीना (जिसको <sup>कर्णाभरण</sup> पर्ण तथा ताटक और तरकी भी कहते हैं) का व्यवहार संभवतः अधिक होता था। बिहारीदास कहते हैं कि आज तक तर्पनीना निरन्तर श्रुति का सेवन करता हुआ अधीवर्ती बर्षात् प्रमुख स्थान

१- कवसिम - हे. मं.पु. ९०, १७९, २२८ ।

२- सीस फूल बरु वैदा सौ । भाग सौहाग मनौ सिर सौ ॥

के.की. २।१६४।

३- यनानन्द- पं.गुं. पु. ७९ ।

४- सुंदरी तिलक, पु. १५ ।

५- कुंदन के माँग माँग मोतिन सवारो सारी । मं.गुं.पु. ४१९ ।

+ + +

मोतिन माँग के बार गुह,

बरु हार गुह नास नास सवारै ॥

दे.भा.वि.पु. १९८, जा.के.पु. ५ ।

६- के.की. २।१६४ ।

७- के.की. २।१६४-१६५, बी.वि.वा.पु. १४, जा.के.पु. ११ ।

पर स्थित रहा जबकि मुक्ताग्री के संग रहने के कारण बैसरि को नाक (स्वर्ग) का वास प्राप्त हुआ<sup>१</sup>। नारी रूप पर ऊपर से नीचे की ओर दृष्टि डालने पर कान दृष्टि की मात्रा में एक विराम बिन्दु का कार्य करता है। इसलए रीतिकवि की रमणीयता प्रिय और मधुर रस प्रिय रखना कान के गहनों से संबंधित प्रेषण और वर्णन में अधिक रुचि लेती रही है। रोमान्ती कवि प्रसाद ने सज्जा के अवतरण में कानों की साक्षिमा को विशेष अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। बिहारी की नायिका खेत साड़ी पहने है और उसके कानों में तर्बाना है जिसका तरस सौन्दर्य साड़ी की सित-भाभा में और भी बढ़ जाता है<sup>२</sup>। मतिराम, देव, सोमनाथ और आसम ने भी तर्बाना का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। कासिम और भूषण ने कर्णफूल का भी उल्लेख किया है<sup>४</sup>। कर्णभूषणों में बुटिया का भी वर्णन आया है<sup>५</sup>। कुंडल भी रीतिकालीन कवियों की प्रिय रहे है और वे बधावसर अपनी नायिकाओं को कुंडल पहना कर प्रस्तुत करते रहे है। सेनापति कुंडलों को "काम के सुभट" कहकर वर्णित किया है<sup>६</sup>। मुरासा नामक एक कर्णभूषण

१- नवी तर्बाना ही रह्यो भुति सेवत इकरंग ।

नाकवास बैसरि सह्यो वास मुक्तन के संग ॥

वि०र०दो० २० ।

२- लसत खेत सारी डप्पी तरस तर्बाना कान ।

वि०र०दो० १०६ ।

३- म०गुं०पु० ४१९। दे०द०पु० ११७। सोमनाथ सा०पु०पु० २७७ । आसम केसि० पु० १३ ।

४- का०हे०व०पु० ९० एवं १७९ । भू०गुं०पु० २५२ ।

५- के०वी०च०पु० २७९ । आसम के सि पु० २४ । उ०वि०पु० ७४ । कु०म०र०पु० पु० २५३ ।

६- करन छवत बीच ह्वै के जात कुंडल के

रंग मै करें कसौल काम के सुभट से ।

से०क०र०पु० ११ ।

का उत्प्रेष भी तत्कालीन काव्य में प्राप्त होता है। बिहारी की नायिका की सहेली नामक से मुरासे की शोभा का वर्णन करके नायिका के कपोलों का सौन्दर्य- एवं सुवस्पर्श व्यक्त करती है। उसके कान का मुरासा मणि मुक्ताज्यों की झुति पाकर विलसित हो रहा है<sup>१</sup>। बिहारी ने बुभी का भी वर्णन किया है। बिहारी सतसई टीका के अनुसार बुभी कान में पहनने का एक आभूषण है जो भाते के फल के आकार का होता है। बुभी पर रीफा हुआ नायक नायिका की किसी सखी या दूती से मिलन की उत्सुकता व्यक्त करते हुए कहता है कि उसके काम देव के भाते की नोक सी बुभी मेरे जी में घंसी हुई नटखान सी सासती है और किसी प्रकार नहीं निकलती<sup>२</sup>। बुभी का उत्प्रेष मूरमुहम्मद ने बहुत कुछ इस प्रकार से किया है<sup>३</sup>। कर्णाभरणों में भुसमुली का भी उत्प्रेष प्राप्त होता है। भुसमुली का वैशिष्ट्य उसकी चमक और उसके हिलने में है। उसके नाम और उसके गुण में बहुत कुछ साम्य है। केशव की नायिकाओं के कानों में भुसमुली की प्राप्ति इस प्रकार कहकर रही है जैसे पीतम्बरा पहना रही हो<sup>४</sup>। भौने पट में भुसमुली की आभा इस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रही है मानों सिन्धु सुरतरु की सपत्तन ढाल

१- लखे मुरासा तिय-खवन यों मुकुतनु दुति पाइ ।

मानहुं परस कपोल के रहे स्वेद कन छाइ ॥ बि०र०दी० ६७३ ।

२- सासति है नटखान सी क्यों हूँ निकलत नाहि ।

मनमय-मेवा-नोक सी बुभी बुभी बिय माहि ॥ बि०र०दी० ६ ।

३- नैन चढ़े बित बरुनी बुभी, बरुनी बुभत गई गढ़ बुभी ।

बुभी बुभत बंधीर गढ़ गई, बैसदि गड़त गलकु बन सई ॥

मू०मु०ब०बा०, पृ० ४८ ।

४- केशव- बी०सि०दे०ब०पृ० २७५ । के० र० नि० पृ० १९९ ।

सोभायमान हो<sup>१</sup>।

नाक के गहने:

७३- नाक के आभूषणों में केशरि रीतिकालीन कवियों की प्रायः सार्वभौम रूप से प्रिय रहा है। बिहारी की नायिका के तर्पनीना की तुलना में केशरि की उत्कृष्टता विश्वास ही है<sup>२</sup>। उनकी नायिका के केशरि के मोती की दीप्ति का प्रतिबिम्ब उसकी गीठों पर पड़ने से सौंदर्य बनेकृष्ण बढ़ जाता है<sup>३</sup>। उससे भी पहले, केशव ने बलकारी का रस के रूप में रूपक बाँधते हुए नाक में सोभित नक मोती को नहीं बताया है। एक स्थल पर उन्होंने मुक्ताफस मुक्त नासिका की ज्योति से जग को मोहित होते देखा है तो दूसरे पर कासे बालों की पाटियों के मध्य नक मोती की प्रति ऐसी प्रतीत हो रही है मानी अंधरे में दीपक रक्खा हो। नायिका की शुक के बीच की समान नासिका में मुक्ता सुसोभित हो रहा है<sup>४</sup>। मतिराम की दृष्टि में "नककेशरि" की "वनक" का मूल्य बाँका नहीं जा सकता। वह अवर्णनीय है<sup>५</sup>। उल्मान, मातम, कुमारमणि और बाब भड्डरी में भी केशरि

१- क्रीमे पट में भुतमुली भक्तमति गीय अपार ।

सुरतल की मनु सिंधु में लसति सपत्न्य डार ॥ वि०र०दी० १६ ।

२- बजो तर्पनीना ही रह्यो प्रति श्रेष्ठ इकरम ।

नाकवास केशरि तह्यो बसि मुक्तनु के संग ॥ वि०र०दी० २० ।

३- केशरि मोटी - दुति- भक्तक परी गीठ पर बाह ।

चूनी होइ न चतुर तिय न्यो पट- पीईवी बाह ॥ वि०र०दी० १७३ ।

४- केशव- बी०सि० दे०क० पृ० २७२ - ७३ ।

५- कासी बाह बरनि वनक नाक केशरि की ।

म०मृ० ४२० ।

का उत्तेज किया है<sup>१</sup>। नाक के आभूषणों में नव या नयुनी की भी तत्कालीन काव्य में चर्चा है। गवमुक्ताओं की नव पहन लेने के बाद मतिराम की नायिका के सुकुमार शरीर को अन्य आभरणाँ का भार धुँह हो जाता है<sup>२</sup>। विवाह के समय नव का होना आवश्यक माना गया है वतः नाक के दस गहने का विशेष महत्व रहा है<sup>३</sup>। सुहागिन स्त्रियों की आशीर्चन के रूप में "सैरे" नव और बूढ़ी बरकरार रहे<sup>४</sup> कहे की प्रथा-सा रही है। पनानन्द ने राधा के नव की प्रशंसा की है जिसमें पानीदार मोती बड़े हुए हैं। ये "नव के मुक्ता पानिप भरे" नायिका के सौन्दर्य को बढ़ाते रहते हैं। नायिका की नवेली नाक स्वाभाविक रूप से ही बति सुन्दर लगती है क्योंकि उसमें अलवेली नव पड़ी हुई है जो उसके सुहाग की सूचना देती है<sup>५</sup>। नाक में सौंठ और लौंग पहनने का भी चलन था। बिहारी की नायिका की नासिका तथा उसकी सौंठ की अपूर्व शोभा देखकर - नायक अभिभूत हो स्वतः कह उठता है - "आहा उसकी चित्ताकर्षक नाक में नीलम बड़ी हुई सौंठ (कैली) जगमगा रही है, मानों भ्रमर जेब की कली पर बैठकर रस से रहा हो<sup>६</sup>। किन्तु

१- उ०वि०पु० ७९ । आत०केति पु० १०, २१ एवं ३५ ।

धा-म०पु० ६१ । कु०म०र०र०पु० १४६ ।

२- नयुनी गव मुक्तान की लसत चालू झुगार ।

जिन पहिरे सुकुमारि तनु और आभरन भार ॥ मं०गु० पु० ३४६ ।

३- अमीला कुवभूषण- इटिमन बैवेलरी आदि - पु० ११ ।

४- सारंगी सुरंग सुही चुहचुही निपट पहिरे राधा गोरी,

नव के मुक्ता पानिप भरे, भात पे दिपति लाह बेदी ॥ घ०गु०पु० २७८ ।

५- और मं०गु०पु० १९ । ग्वात०र०पु० ६१ । घ०गु०पु० १३ ।

६- बटित नील मनि जगमगति सौंठ सुहाई नाक ।

मनीं बली चंपक कली कलि रसु लेतु निशिक ॥

-वि०र०दी० १४३ ।



विहारी लीग के प्रति अनुदार है । वे यह मानते हैं कि लीग बच्छी है किन्तु नायक - नायिका से उसे न पहनने का आग्रह करता है, क्योंकि इसके पहनने से उसकी भाँवर के कारण उसकी कोमल नाक बड़ी-सी रहती है और नायक के मन में उसके मान को हूँ होने का भय बना रहता है<sup>१</sup>।

### कण्ठाभरणः

७४- रीतिकाल का कवि संभवतः कासिदास से अधिक चैतन्यवान् था क्योंकि बरसात का पड़ना पानी पार्यती की क्री भीलों में गिरने के बाद बघरों की ताड़ित कर तत्काल पयोधरों पर पहुँच जाता है किन्तु वह अलंकार-प्रिय कवि नारी शरीर के प्रत्येक महत्वपूर्ण अंग और लीन्दर्वविन्दु का रख रखा हुआ बतता है । इसलिए कंठ तक पहुँचते-पहुँचते उसे अनेक आकर्षण-केन्द्र मिल जाते हैं । हार बारम्भ से ही हमारे वहाँ का प्रिय आभूषण रहा है । विहारी की नायिका के पयोधरों में उभार आ गया है जिसे वह निरन्तर देखा करती है किन्तु जातबोधना होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से नहीं, लीपियों का हार देखने के बहाने अपने बौधना-गम सूचक पयोधरों का जीन्मन्त्र देखती है<sup>२</sup>। भिवारीदास ने भी हार का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। सुन्दरीलोक में

१- बदलि लीग ललितौ, तल्लु तू न पहिरि हक नाँक ।

सदा साँक बड़िमे रहे, रहे बड़ी - ली नाँक ॥ वि०र०दी० ६८५ ।

२- भावकु उभरीही भरी, कल्लु पर्यो भरुबाद ।

लीप-हरा के निधि दिखी निधिदिन हेरति बाद ॥

+ + +

वि०र०दी० २५९ ।

पहुला हार दिखी ली, लन की बँदी भास ।

राखति केत ली ली ली- लीबनु बास ॥

वि०र०दी० २४८ ।

३- भिवारीदास - भिवारी प्र० १॥८५-९५ ।

संगृहीत सबैषों में अनेक स्थलों पर हार का वर्णन आया है<sup>१</sup>। मतिराम ने ललित हाव के उदाहरण में मोती के हार से हृदय विलसित होने का वर्णन किया है<sup>२</sup>। आलम की नायिका बकास्वत पर मोतियों का हार लहराये बिना ही अप्सरा-सी प्रतीत होती है<sup>३</sup>। इसके अतिरिक्त अनुराग-बांसुरी एवं ग्वाल रत्नावली में भी हार के उल्लेख आये हैं<sup>४</sup>। कण्ठ में पहने जाने वाले आभूषणों में उरबसी रीतिकालीन कवियों को विशेष रूप से प्रिय रही है। सेनापति ने नवयौवना बाला को फूल की माला के समतुल्य बताते हुए, पुष्पमाला की उरबसी से भी बढ़ कर बताया है<sup>५</sup>। तुलना उसी से की जाती है जो मानक के रूप में प्रतिष्ठित हो इसलिए उरबसी की श्रेष्ठता तो पुष्प-माला से पूर्व ही प्रतिपादित हो जाती है। बिहारी को उरबसी से विशेष प्रिय रही है। उनकी प्रवीण राधिका मोहन के उर में उरबसी के समान बसी

१- सुंदरी विलक पृ० २०७, २७५, २७७, २९८ ।

२- मत्त मयंद की बाल बसे कटि किंकिन नेवर की धुनि बाजे ।

मोती के हारिन सौ हियरी हरिजू के बिसास ह्लासनि साजे ॥

- - - - । म०गु०पृ० ३४९ ।

३- मोतिन की हार दिए हीस सौ पहिरे नहिं,

पोत ही के छरा अपछरा सी लगति है । आलम केति पृ० ८ ।

४- नू०भु०अनु०वा० पृ० ६० । ग्वाल र०पृ० ६९ ।

५- चाह्य सकल जाहि रति के भ्रमर है जो +

पुनवति हीस उरबसी की बिसास है । - - -

से०क०र० पृ० ७ ।

रखती है<sup>१</sup>। उनके नायक ने अन्य स्त्री से वस्त्र बदलकर उसके साथ विहार किया था। प्रातः उसने सब वस्त्र फिर से बदल लिये किन्तु उरवसी बदलना भूल गया और उसका सारा अपराध पकट हो गया<sup>२</sup>। गले के गहनों में गुलीबंद का भी उल्लेख प्राप्त होता है विहारी की नायिका की सभी नायिका के गौरवर्ण की भास्वरता की प्रशंसा करके नायक के मन में आकर्षण उत्पन्न करना चाहती है। इसलिए वह उसके गोरे गले में धंसती हुई पान की लीक को गुलबन्द के माणिक्य की भस्म की लाल रेखा बता कर उसका ध्यान नायिका के सौन्दर्य की ओर खींचती है<sup>३</sup>। कंठ में धारण की जाने वाली अनेक प्रकार की माताओं के उल्लेख भी यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। केशव ने स्त्रियों के कोकिल कण्ठों को दुसरी एवं कंठी से शोभित बताया है। वीरसिंह के चरित में भी स्त्रियों के कण्ठ एवं कंठमाता धारण करने के उल्लेख आये हैं<sup>४</sup>। भिवारीदास ने भी अपनी नायिका को मुक्ताओं की मंजुमाता पहना कर प्रस्तुत किया है<sup>५</sup>। ग्वाल रत्नावली में बरीदार मोतियों की माता का उल्लेख हुआ है<sup>६</sup>।

१- तो पर बारी उरवसी, सुनि, राधिके सुवान ।

तू मोहन के उरवसी, हूँ उरवसी - समान ॥ वि०र०दो०२५ ।

२- उर मानिक की उरवसी डटत घटत दुल- दागु ।

छलकु बाहिर भरि मनी तिय-दिय की- अनुरागु ॥ वि०र०दो० ३३९ ।

३- बरी लसति गोरे गरे धंसति पान की लीक ।

मनी गुलीबंद- लाल की, लाल, लाल दुति- लीक ॥ वि०र० ४४० ।

४- दुसरी कल कोकिल कंठ बनी । मुगलवन नवन शोभ बनी । के०कौ०पु० १८३ ।

+

+

+

कंठ माता कल कंठनि बनी, बनी कर्ण फूल दुति बनी ।

के०बी०दे०व०पु० २५२ ।

५- मि०गु० १।८५ ।

६- ग्वाल - र० पु० ६९ ।

### हाथ के गहने:

७५- रीति काल में हाथों में पहने जाने वाले भी अनेक प्रकार के आभूषण थे । मनुजी ने वेगमों के आभूषणों की वर्णन करते हुए भुजाओं में पहने जाने वाले गहनों विशेष कर "चामिट" तथा "सेसलेट" का वर्णन प्रस्तुत करता है । भुजाओं के आभूषणों में से चूड़ी, कंकन, बाजूबंद, बलय, पटुची, टाठ के उल्लेख तत्कालीन काव्य में प्राप्त होते हैं । यनानन्द ने चारू चूड़ियों का उल्लेख किया है<sup>१</sup>। विशावती और सुंदरी तिलक में भी चूड़ियों के संदर्भ प्राप्त होते हैं<sup>२</sup>। केसरि के साथ चूड़ी का उल्लेख प्रायः भट्टरी में भी प्राप्त होता है<sup>३</sup>। हाथ के गहनों में कंगन प्रारम्भ से ही अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित और लोकप्रिय रहा है । तुलसी के राम ने पुष्प वाटिका में कंकन और किंकिणी की ध्वनि सुन कर जनक-जनमा के आगमन की सूचना पायी थी । पद्माकर एवं कालिदास शिवेदी ने कंकन का उल्लेख किया है<sup>४</sup>। मान के राजविशाल में भी हाथ के अन्य गहनों के साथ कंकन का उल्लेख आता है<sup>५</sup>। पटुची के भी उल्लेख मिलते हैं । तोज की नायिका क्योंकि गणिका प्रवर्त्यपतिका है इसलिए उसकी मांग भी बड़ी है । मुस्ताजी की माता के साथ वह हीरों की पटुची चाहती है<sup>६</sup>। यनानन्द ने यन्नों/पटुची के व्यवहार

१- चारू चुरीन बिहै यन जानंद ॥ यं०गुं० पु० ३८ ।

२- उ०वि०पु० १०६ । सु० ति०पु० १३, २७६ ।

३- वा० भ० पु० ६१ ।

४- पद्०री०गुं०पु० २१२ । कालिदास- बी०गुं० पु० ८१ ।

५- मान० रा०वि० पु० ७६ । उ०वि०पु० १०६ । आत्म केसि पु० ३५ ।

६- यह दीविषे मात हूँ मुस्ताजि की,  
रावरे की बय ठानहिंगी ।

अरु दीविषे हीरन की पटुची,  
कर भूषण और न जानहिंगी ॥

तोज० सु०नि०पु० ६३ ।

का उत्सव किया है जबकि भिवारीदास की नायिका के करकमलों में सोने की चहुँची शोभायमान हो रही है<sup>१</sup> । बाबूबंद और टांड के उत्सव भी प्राप्त होते हैं । कासिम और बालम ने बाबूबन्द की चर्चा की है<sup>२</sup> । टांड का उत्सव बिनावली एवं बालमकेसि में है<sup>३</sup> ।

७६- हाथ की उंगली में गहने पहनने का चलन बहुत पुराना है । रीतिकालीन काव्य में प्रायः एक ही गहने को अंगूठी, मुद्रिका और मुंदरी के नाम से कहा गया है । केशव ने रामचन्द्रिका एवं कविप्रिया में मुंदरी अथवा मुद्रिका का उत्सव किया है । सेनापति ने अपनी नायिका को अंगूठी पहने दिखाया है । कौमलांगी, अमलकान्ति वाली, करकमलविलासिनी अथवा सम्पन्न कुंगारों के साथ उंगली में अंगूठी भी पहने हैं<sup>४</sup> । बिहारी की नायिकाएं अपनी विदग्धता के लिए विख्यात हैं । मध्या नायिका अपने हाथ की मुंदरी की बारसी में प्रियतम की छाया पड़ी हुई पाकर उनकी ओर

१- यन्नन की चहुँचीनि लखे, पुनि जाभा तरंगनि संग रचौ ।

क. गु. पु. २७

कर कंचन कंचन की चहुँची मुकुटानि को मंजुल हार गरै ।

वि. गु. १।८६

२- का. क. ब - पु. १०१ १७९ । बालम. के. पु. ५२

३- ड. वि. ७४।बालम. के. पु. ५२

४- केशव कुंडल मुद्रिका बलया बलम बरवति ।

के. क. प्रि. पु. ८०। के. की. २।१७२

५- कौमल, अमल, कर-कमल विलासिनी के

रवि पवि कीनी विधि सुंदर सुषारि है  
सोहति बराल अंगूरीन में अंगूठी, पुनि,  
है है छान राखे पौल सिंगारि है ॥

सो. क. र. पु. ४८



पीठ किए बैसटके प्रियतम की ओर देख रही है<sup>१</sup> । कासिम और शिबनाथ में भी उंगली में अंगूठी पहनने का उत्सव किया है<sup>२</sup> । चित्रावली में भी बड़ाऊ मुंदरी पहने हुए नायिका को प्रस्तुत किया गया है<sup>३</sup> । अंगूठी में बारसी लगवाने का भी रिवाज था । बिहारी की नायिका की बारसी का उत्सव किया जा चुका है । तोष की नायिका भी कुछ उसी प्रकार तात की छवि निरखने के लिए बारसी का प्रयोग करती है<sup>४</sup> । अंगूठी के वतिरिक्त स्त्रियाँ छत्ता भी पहना करती थीं । बिहारी की नायिका की गौरी छिन्नी में नीलम बद्धित छत्ते की शोभा देख कर नायक बाकुष्ट हो जाता है । नायिका ने अपने पति का छत्ता पड़ोसिन ही पहने देख कर बहाने से उसे से लिया है और शेष सूचक मुसकराहट के साथ पति को दिखाती है<sup>५</sup> । उस्मान ने भी छत्ता पहनने का वर्णन किया है<sup>६</sup> ।

१- वि० २० दी० १११

२- का- ह० ब० पृ० ९० एव० १७९ । रिक्त० सा० पृ० पृ० २७८

३- उ० वि० पृ० ७५

४- बात हुती गुरु लोगनि मैं कहूँ बाद गये हरि कृप गली सो ।

ताव सो सौह चित न सकी फिरि ठाढ़ी भई लागी जाती जाती सो ॥

बारसी ऊंची करी कर की कहि तोष सखी छवि भाति भली सो ।

चारुता चातुरता पर तात गयो बिकि श्री वृषभान लली सो ॥

तोष- सु० नि०- पृ० ३८

५- गौरी छिन्नी, नख, बरुनु, छत्ता खाम छवि देह ।

सख मुकुति-रति पसक यह नैन विषनी सेह ।

वि० २० दी० १३८

छत्ता परीसिन हाथ हैं, छत्तुकरि, लियो पिछानि ।

पियहि दिखायो लखि विलासि, रिस सूचक मुसकानि ॥

वि० २० दी० १७९ ।

६- अंगुरिन मुंदरी वरित की सौह छत्ता प्रति पौर ।

उ० वि० पृ० ७५ ।

## कटि के आभूषण

कटि प्रदेश के जलकारी में रसना, मेखला, कटिकिंकणी, करपनी छुद्रावलि अथवा छुद्रपटिका के संदर्भ रीति काशीन काव्य में मिलते हैं। ये आभूषण प्रायः सोने के होते थे और इनमें से अधिकतर विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य हीरे रत्नों तथा तास आदि से बड़े रहते थे। करपनी, मेखला अथवा रसना कमर के घेरे के नाप की सोने की लगभग दो अंगुल चौड़ी पट्टी की कहते थे जिसमें बड़ाऊ काम अथवा मीनाकारी होती थी। कटिकिंकणी, छुद्रावलि अथवा छुद्रपटिका में पट्टी के नीचे छोटे घुघर अथवा मोतियों के गुच्छे लगे होते थे। किंकणी का उत्सेव काव्य में अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। केसवदास सिंह वैसी लीला कटि वाली नायिकाएँ किंकणी धारण किये हैं<sup>१</sup>। बिहारी तास ने किंकणी के कोलाहल का उत्सेव किया है<sup>२</sup>। मतिराम की गजगमिनी नायिका के कटि प्रदेश की किंकणी और पर्वों के नूपुर बजते हैं<sup>३</sup>। ४- उस्मान तथा कुमारमणिदास ने भी अपनी नायिकाओं की किंकणी पहनायी है<sup>४</sup>। किंकणी को ही कही कही छुद्र पटिका नाम से भी वर्णित किया गया है। बीरसिंहदेव चरित में केसवदास ने छुद्र पटिका का उत्सेव किया है<sup>५</sup>।

१- के० की० १।१८३

२- पद्यों और विपरीत रति लक्ष्मी सुख-रत्न-वीर ।

करति कुलाब्ज किंकणी, गहमो मौनु मंजीर ॥

३- मत्तगर्भद की चाल बसै कटि किंकनि नेजर की धुनि बावै ।

म० गु० पु० ३४५

पग के धरतकल किंकनि नूपुर बसै ।

म० गु० पु० ३०७ ।

४- उ० वि० पु० ७६।कृ० म० र० र० पु० २५३।फि० गु० १।१६८

५- छुद्रपटिका कटि आभूषण सति अनन्त कै परिवेश ।

के० की० दे० च० पु० २७९ ।

### पाँव के गहने:

७८- शरीर के अन्य अंगों की भाँति पाँवों में भी आभूषण धारण किये जाते थे । रीतिकालीन काव्य में नूपुर, पायल या पैजनि, ज़ीर गूबरी आदि के नाम आये हैं । केशवदास ने किन्नरों के पैरों के नूपुर की ध्वनि की विषय की वाद्य-ध्वनि के समान कहा है<sup>१</sup> । सेनापति ने भी अपनी सर्वांग-अलंकृता नायिका को नूपुर की रत्नभुज के साथ, मंद-मंद चरण रखते हुए साँभ ही से सा लड़ा किया है<sup>२</sup> । बिहारी ने पायल की चर्चा की है । पायल में भी ही मूल्यवान मणिवाँ लगी हों किन्तु वह पाँवों में ही लगी रहती है जबकि अश्रु की बँदी भागिनी के हाथ पर शोभायमान होती है<sup>३</sup> । जीधर को किंकिनी, पायल, पैजनियाँ, बिछ्छा ज़ीर धुंवर - सभी की संमिश्रित ध्वनि सुनायी पड़ती है<sup>४</sup> । नूपुर एवं पायल के अतिरिक्त पाँवों के गहनों में छत्ता, बिछिया ज़ीर अंगूठा आदि का उल्लेख कर हुआ है । रसिकर ग्वाल दासान में बैठे हुए ही "ख़ान भरी" नायिका के पाँवों के छत्ते की छमक सुन लेती है<sup>५</sup> । नायिका के अलवट की प्रशंसा करते हुए

१- नूपुर मनिमय पाहन बने । मानी रूचिर विषय बाज ने ।

के०बी०दे०च०पु० २७९ ।

२- नूपुर को मनकाह, मंद ही चरति पाइ,  
ठाढ़ी भई बागन भई ही साँझी बार सी ।

से०क०र०पु० ३४ ।

३- पायल पाइ लगी रहै, लगी अमोक्षिक हाथ ।

मोडर हू की भाँतिहै बँदी भागिनि-भाँत ॥ बि०र०दी० ४४१ ।

४- किंकिनी पायल पैजनियाँ बिछ्छा धुंवर मित्रि गावन लगे । जीधर सु०ति०  
पु० १३ ।

५- बैठपी में ख़ान में ख़ान भरी आवतारी ।

पावन छत्तान की छमक कान में गई ।

ग्वाल- र०पु० ६७ ।

बिहारी के नायक कहते हैं: "इसके पैर का जंगूठा पाकर बड़ाव से बड़ा हुआ बकवट ऐसा शोभित हो रहा है मानों इसके ताटक की छुति ने सूर्य को जीत लिया है, इसलिए उल्ट कर वह इसके पैर पर पड़ा है।" सेनापति की "रागमाता सी वाता" गूबरी की भनक के मजबूत दिवायी पड़ती है तो भिखारीदास की नायिका के पदचिह्नों में भी बड़ाऊ गूबरी है<sup>१</sup>। सुदन और मतिराम बादि की सूचियों में भी गूबरी का नाम आया है। पैवनी के उत्सव भी प्राप्त होते हैं। मतिराम की नायिका की सख गति में पावों की पैवनी की भनक बत्पन्त प्यारी लगती है<sup>२</sup>। उल्मान की नायिका पावों में बनेक बाभूषण धारण किये है। उसके पावों में पावस की छवि, बड़ाऊ की बेहरी के साथ सुरनर के मन, मोहो वाली भाँक भी है<sup>३</sup>।

### पुस्तकों व शिल्पों के बाभूषण:

७९- रीतिकालीन काव्य के नायक भी नायिकाओं की भाँति विभिन्न प्रकार के बाभूषण धारण करते हैं। कुछ पुस्तकों के कर्णधारण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। केशव ने रामचन्द्र की मुखनी का वर्णन करते हुए मकराकृति कुँडलों से उनके मुखारविन्द को सजित बताया है<sup>४</sup>। बिहारी की

१- सोल्ल जंगूठा पाइके बकवट बर्वाँ बराह ।

जीतपी लोखन दुति, सुहरि चर्मी तरनि मनुषाह ॥

वि०र०दी०२०९ ।

२- गूबरी भनक माँक सुभा तनक दुम

देखी एक वाता रागमाता सी लगति है । वि०र०दी०२०९ ।

+ + + +

पंख से पावनि में गूबरी बरावन की । वि०गु० १।१४५ ।

३- सुदन-सु०च०पु० १७५।मति०गु०पु० ४५४।देव०र०पु०९५ ।

४- बसत सुभाव पाँव पैवननि की भनक । म०गु०पु० ४२९ ।

५- उल्मान-वि०पु० ७७-७८ ।

६- भवण मकर कुँडल लसत मुख सुजमा एकन । के०की०१।१०१।

नायिका की सखी नायक के पास से होकर जाती है, वह नायक की रूप-  
राशि का वर्णन करते हुए उसके मकराकृति कुण्डलों की कामदेव के अवतरण  
के पदविम्बों के रूप में वर्णित करती है<sup>१</sup>। मतिराम के "मोहन" के  
मुकराते मुख पर कानों में डोलते कुण्डलों की बनावी छटा है<sup>२</sup>। दीनदयाल  
गिरि नायिका नायक के कपोलों पर डोलते कुण्डलों की छाया देख कर ही  
मोहित है, वह छत कर बोलेगा तो जाने क्या होगा<sup>३</sup>। सूदन ने भी  
पुरुषों की कुण्डल धारण किसे हुए दिखाया है<sup>४</sup>। पुरुषों में छत्ते का भी  
उपहार था पूर्वानुरागिनी नायिका नये-नये स्नेह में छत्ते तास का छत्ता  
भूमती है, उसे प्रेम से देखती है, हृदय में धारण करती है और फिर भय से  
कि कोई देख न ले उसे उतार कर रख देती है<sup>५</sup>। बिहारी के नायक का  
छत्ता किसी नयन स्त्री के पास देख कर नायिका प्रियतम का अपराध समझ  
लेती है<sup>६</sup>। पुरुष हाथों में कड़े भी पहनते थे, यद्यपि धीरे-धीरे हाथ के  
गहनों का प्रचार पुरुषों में कम हो रहा था। भक्त सत्वरिहरण ने कुण्डल

१- मकराकृति गोपास हैं सोछा कुण्डल कान ।

पद्मी मनीं हिय-धर-समल द्वाही लखत निशान ॥ वि०र०दी० १०३ ।

२- मोहन की मुत्तकानि मनोहर, कुण्डल डोलनि में छवि छाई । म०गु०पु० २५५ ।

३- कुण्डल की डोलनि कपोलनि बनीत कहे

कौन कहे हास हंसि बोलनि रसास की । दी०गु०पु० १५ ।

४- सू०सु०च०पु० १७५ ।

५- छत्ता छत्तीसे तास की नयन नेह सहि नारि ।

चूँति, चाहति, लाइ डर यहिरति, धरति उतारि ॥

वि०र०दी० १९३ ।

६- वि०र०दी० १७९ ।



में लगी किंकिणिवाँ फिसलिया रही है। इसी प्रकार बुद्धत्व में आभूषणों से सजे हाथियों की किंकिणी बजती है, घंटे बजना रहे हैं। बीरसिंह देव होने से मढ़ी सींगों वाली सङ्क्रम गाय दान करते हैं।

निष्कर्ष:

८१- आलोच्यकाल के कवि की दृष्टि में आवश्यकता कहीं अधिक विलासिता की बीर, साध्या की अपेक्षा अंतर्करण की बीर अभिमुख रही है। समर्थ सृष्टाओं में जीवन की सख्ता का अभाव नहीं है, उनका सृजन प्राणवान है किन्तु कुल मिला कर ऐसे स्वतः सम्पूर्ण काव्य-कोष में स्वल्प ही है। जीवन और काव्य दोनों के बीचों बीचों में रीतिकालीन कवि के लिए अंतर्करण ही साध्य बन बैठा था। जिस पर्यावरण में अधिकांश रीतिकालीन काव्य लिखा जा रहा था वह लोक जीवन की हव्वा धार से कुछ दूर पड़ता था, इसलिए रीति-कालीन कवि की सौंदर्य-दृष्टि में सख्ता का अभाव सा रह गया है, उसका सौंदर्य बोध एकरस है और जीवन अपने प्रकृत रूप में कभी एक रस नहीं होता। अनेक विरोधी दिशाओं का संगम जीवन में अनिवार्य है और रीतिकाल के अधिकांश काव्य में एकरस रमणीयता है।

### मनोरंजन

मनोरंजन की उपयोगिता:

८२- विविधता ही जीवन - जगत का आधार है। सुख और दुःख, हर्ष तथा विषाद, कर्म एवं विनाश के युग्मों में से किसी एक की संस्थिति

१- अति दीरघ अति पीवर लाव दीक्ष, की जान्यो गजराज

+

-

+

अमल सुमिल मोतिन के हार तामह मनौ नीलमणि बार । के०बी०च०पु० ७४, ७६।

+

+

+

गज गावत दुति सुनि पर दल हले कुनित किंकिणी दुति अतमल ।

धुंकर कन घंटा बजनात अति मदमत भीर भन्नात । के०बी०दे०च०पु० १७४ ।

२- के०बी०च०पु० २६१ ।

प्राप्त नहीं है। संतुलन के लिए दोनों अपेक्षित हैं। कर्म की गंभीरता और गुरुता से मन और शरीर दोनों एक जाते हैं। इस यकान को कम करने, दूर करने और पुनः नवीन चेतना एवं उत्साह के सहित कर्मरत होने के लिए ही मनोरंजन की उपयोगिता है, यही इसका साम्य और प्रयोजन है, यह स्पष्ट है कि मनोरंजन अपने आप से पूर्ण नहीं है। रीतिकालीन काव्य में चित्रित सामाजिक वातावरण में भीतिक संपन्नता और उन्नति का अभाव नहीं है इसलिए मनोरंजन की व्यवस्था स्वभावतः सुकर और सुलभ हो जाती है। इस प्रकार राजकुल, सामंतवर्ग और पणिकों की लगभग सभी प्रकार की ऐहिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं। समाज में, विशेषकर उच्च वर्ग में, समृद्धि का प्राचुर्य वैभवं-वितास, विभिन्न प्रकार के मनोरंजन एवं क्रीड़ा कौतुकों को प्रोत्साहन देने के अनुकूल था। सामन्त सरदार तथा अन्य संपन्न वर्गों में ज्ञान-शौक की वृत्तिशयता थी और उसी के अनुरूप अनेक मनोरंजन के साधनों का प्रचलन हो गया था। इनके विन्न-विचित्र और सभी सुख-सुविधाओं से युक्त प्रासादों में दास-दासियाँ सदैव सेवा के लिए प्रस्तुत रहती थीं उनके मनोविनोद के लिए नट-नर्तक, क्रीड़ा विहार एवं विभिन्न रंगवृत्तियों की कमी नहीं थी। फैसल ने बीरसिंह देव चरित में दिल्ली के सुल्तान के विनोद के साधनों का वर्णन किया है। वस्तुतः यह सामग्री सुल्तान से लेकर सरदार, सामन्त एवं दरिद्र सभी को सुलभ थी। इन साधनों में हाथी, घोड़े बाजार, मणि, गुणी गायक, गंभीर नायक, राग, बाग, फलफूल, सुगंध, वासन, बसन, ठासन, आभूषण, भावन, भवन, वितान, सम्पत्ति, पशु-पक्षी, बौद्धा सेना विद्या, नगर गढ़ आदि की गणना की गयी है।

### मनोरंजन की साधनभूत कलाएँ:

८६- कलाएँ मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन थीं। इससे उनकी सर्वादा

नष्ट नहीं होती और उपयोगिता बढ़ जाती है। रीतिकालीन मनोरंजन के साधनों में संगीत बाज एवं नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान था। अन्य कलाओं की भाँति तत्कालीन क संगीत - कला की प्रभावान्विति भी प्रमुखतः शृंगार परक थी। समतकार प्रदर्शित और स्त्रैण तय उत्पन्न के लिए जबहीन शब्दों "ये, देना, प्रेम, तानी" का प्रयोग किया जाता था। स्वास, तलना, सरमम तथा झिट बादि लोकप्रिय शैलियाँ अपने इत्थेयन तथा चपलता के लिए प्रसिद्ध हैं। टप्पा और ठुमरी की शैलियाँ रीति काव्य की मूल स्त्रैण शृंगार चेतना के अनुरूप थीं। डा० रयामसुन्दर दास के शब्दों में "इस समय अकबर के समय की धूपद की गंभीर परिघाटी, मुहम्मदशाह द्वारा अनुमोदित स्वास की चपल शैली तथा उन्हीं के समय की नाविष्कृत टप्पे की कोमल रसमय गायकी, और बाबिद जहाँ शाह के समय की रंगीली ठुमरी अपने आत्मदाताओं की मनोवृत्ति की परिचायक ही नहीं लोक की प्रौढ़ स्त्रि में जिस युग का पतन हुआ उसका भी इतिहास है।"

८४- रीतिकाव्य में तत्कालीन शास्त्रीय संगीत के सभी रागों, मात्राओं और तालों के उल्लेख मिलते हैं। महाकवि केशव ने संगीत का वर्णन करते समय रामचंद्रचन्द्रिका में छत्तीस रागों का उल्लेख किया है। इसी प्रसंग में स्वर, नाद, ग्राम, सताल, मूच्छना, मान, बाति, ममक आदि संगीत की शास्त्रीय शब्दावलिओं का व्यवहार किया है<sup>१</sup>। बीरसिंह देव चरित में भी "नाद ग्राम स्वर" का उल्लेख है।

८५- संगीत की चर्चा के साथ अनेक वाद्यों का भी उल्लेख है। बीणा वगैरा

१- हिन्दी भाषा और साहित्य

रयामसुन्दर दास, पृ० २६१।

२- स्वर नाद ग्राम नृत्यत सताल। सुध वरन विविध आलाप कात।

बहु कला बाति मूच्छना मानि। बहु भाम ममक गुण चतत मानि॥

के०जी० १।१२५।

वीन प्रिय बाज या गौर लिखा इसी विशेषरूप से बजाया करती थीं ।  
 केशवदास की सीता वीन बजा कर अपने प्रिय का दुःख दूर करती हैं<sup>१</sup> । मान  
 के रावबिलास में डोल, निशान, मृदंग, रंग, वीन, नफरती, गहनाई,  
 भेरि, भत्तरती, सारंगी आदि बाजों के बजने का उल्लेख आया है<sup>२</sup> । सूदन ने  
 सुवान चरित में उस समय के बाज-यंत्रों की सूची दी है जिसमें दुधुभी, मृदंग,  
 डोलकी, डफ, तबला, भेर, खंजरी, बत्तरंग, गुडली, वीन, सारंगी,  
 रबाब, सितार, गहनाई, सुरही, बंशी, बसमोबा, कठताल तथा भ्रांफ  
 के नाम आये हैं<sup>३</sup> । संतकवि सुंदरदास ने यज्ञ-सत्र बाजों के जो उल्लेख किये हैं  
 उनमें निशान, मृदंग, डोल, भ्रांफ, डफ और वीन की चर्चा आयी है<sup>४</sup> ।  
 रीतिकालीन काव्य में नृत्य के भी वर्णन प्राप्त होते हैं । गणिकाएँ,  
 वारांगनाएँ तथा नटी आदि इस कला में प्रवीण होती थीं । केशवदास ने  
 नृत्य के वर्णन में मुखवालि, शब्दवालि, उठ्ठ, तिर्यगपति, पति, बडास,  
 लाग, घाउ, राठप, रंगास, उसवाटेकी, कासम, दिंड, पदपलटि, दुरमबी,  
 निरांक, बिंड, आदि सत्रह प्रकार के नृत्य का उल्लेख किया है । नृत्य के भावों  
 एवं हस्तकभेद की भी चर्चा मिलती है<sup>५</sup> । हम्मीरहठ ने राजा नटी का नाच  
 देखते रहे, उन्होंने शाह के वाकुमण की चिन्ता भी नहीं की<sup>६</sup> ।

१- जब जब धरि बीना पृकट प्रवीना, बहुनु सीना सुख सीता ।

प्रिय विमहिं रिफर्य दुखनि भ्रावे विविध बजावे मुनगीता ॥

के० की० १।१८३ ।

२- मान० रा० वि० पु० ५९-६१ ।

३- सु०सु०च०पु० १०३ ।

४- सु०गु० पु० ९१०, ९२० ।

५- के० की० २।१३०, १३९ ।

६- बहुर नटी जब निरतन लागी देखन लग्यो भूप अनुरागी ।

च०बा०ह०ह०पु० २८ ।

८६- चित्रकला का उपयोग मनोरंजन के लिए किये जाने के संदर्भ काव्य में प्राप्त होते हैं। स्थान-स्थान पर चित्रकारी चितसरिया अथवा चित्रशाळा के उल्लेख जाये हैं। केशव ने राम के राज महल में ऊपर के छह खण्डों में बनी सुन्दर चित्रकारी की प्रशंसा की है। उनकी रंगशाळा में रत्नश्री शाबाजों के चित्र वर्णित है जिन्हें देखकर सभी सिर नवाते हैं<sup>१</sup>। रहीम की नायिका चितसरिया में अपने प्रिय की छवि देख कर प्रमुग्ध होती है<sup>२</sup>। पद्माकर की नायिका छत्रों, करोंछों, और चित्रकारी में धूम-धूम कर अपना मनोरंजन करती है<sup>३</sup>। विरह वारीश की नायिका काम-कंदला अपनी सखियों, चित्रकारी सजाकर तथा चित्रों की रचना करके अपना मनोविनोद करती है<sup>४</sup>। कौलावती की चित्रकारी में पंक्ति-पंक्ति के चित्र लगे हुए हैं<sup>५</sup>। रीतिकालीन काव्य की नायिकाएं फूलों की विशेष शौकीन हैं। कुलीनों के घरों में सुन्दर उद्यान मोहक रंग-विरंग पुष्पों से भरे होते हैं जिनमें स्त्रियां क्रीड़ा करती हैं। केशव के राम सीता की अपना उद्यान दिखाने से जाती है, जहां बनार की कतियां बिटकी हैं, महुआ फूला है, बैल की कतियों पर भ्रमर गुंवार कर रहे हैं। केवड़े, मौलवी, मशक तथा मलाश फूलकर सबको अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं<sup>६</sup>।

१- चित्रों बहुत विप्रित परम विविधनि, रघुकुल वरित सुहाय ।

के०की० २।१३४ ।

२- पियसूरत चितसरिया चितवत बात ।

रहीम - के०की०पु० २९६ ।

३- प०प०पु० १९२ ।

४- यो०वि०वा०पु० १३८ ।

५- देता मंदिर एक बहु भांती, चित्र खंवाई पातिन्ह पांती ।

उ०वि०पु० ३३ ।

६- के०की० २।१८२-८३ ।



उस्मान की कौताबती समय-समयों के साथ उपवन में क्रीड़ा करती है, वे कभी हार बनाती हैं कभी फूलों की गैद बनाकर एक दूसरे को मारती हैं<sup>१</sup>।

८७- नृत्य-संगीत और विप्रकृता के अतिरिक्त कथान कहानी तथा नाटक के द्वारा मनोरंजन के उदाहरण भी रीतिमुगीन काव्य में मिलते हैं। मेसकाम के अनुसार सखान तथा विभिन्न प्रकार कथानों के द्वारा लोग मनोरंजन करते थे<sup>२</sup>। विजावती में कथा कहने तथा बातको द्वारा घर घर में कहानियाँ सुनने का उत्सव प्राप्त होता है<sup>३</sup>। पहेलियों की रचना करने तथा पहेलियाँ बुझाने का प्रसंग काश्मिर के खजवाहिर में है। नाट्यशास्त्र, पौराणिक वाक्यानों के प्रदर्शन तथा नृत्य आदि की व्यवस्था करने के कारण जनता के आकर्षण का केन्द्र थी<sup>४</sup>।

#### आयोजित मनोरंजन:

८८- आयोजित मनोरंजनों में नट, कठपुतली, बाजीगरों के तमाशे, जानवरों की लड़ाई, बंदर का नाच तथा सपेरों के खेल आदि आते हैं। नट नटनियाँ तथा नचनियाँ आदि पेशेवर नाचने वाले तथा विभिन्न प्रकार के तमाशे दिखाने वाले थे। इनके तमाशे के साथ सारंगी, ढोल, तबला, मजीरा आदि चलते थे। नट लोग विभिन्न प्रकार के वेश बनाकर तरह तरह के

१- कौताबती आई फुलवारी । फैति गई चंदुदिसि सब बारी ॥

+ + +

गूषहि हार गीब लै डारै । करहि गैद जापुस मँह मारै ॥ उ० वि० पु० १९२।

२- मत्काम - मेमार - बिल्द २, पृ० १९८।

३- कबक देताबहि कथा बखानी । घर घर बातक सुनहि कहानी ।

उ० वि० पु० १८१।

४- आवत केत उछाह भी बबलोकिने की निज नाटक साखा ।

प० गू०, पृ० १९९।

तमाशे दिखाते थे<sup>१</sup>। बांस को बांधकर नट<sup>उस</sup> पर अनेक प्रकार की कलाबाजी करता है<sup>२</sup>। नटों के द्वारा कंदुक क्रीड़ा भी होती थी जिसमें वह एक साथ कई गेंद उछासते थे नागरीदास ने इसी "नट के बटू" से संसार में भटकते मनुष्य की उपमा दी है<sup>३</sup>। नट विभिन्न प्रकार की विविध वेशभूषा धारण करके कौतुक दिखाकर मनोरंजन करते थे<sup>४</sup>। नटों के द्वारा कठपुतली के खेल का भी प्रदर्शन किया जाता था। इसमें तम्बू भर कर खेल दिखाने की व्यवस्था की जाती है। कठपुतली की रचना काठ एवं वस्त्र के संयोग से की जाती है। कठपुतली में सूत बांध कर खेल कर प्रदर्शन करने वाला सूत्रधार और लेकर, सूत्र की सहायता से अनेक घटनाएँ भावभंगिमाओं के साथ दिखाते हैं<sup>५</sup>। नटों की प्रशंसा जहाँगीर ने की है—

१- बहु प्रकार बनाय बाजी किमो रूप अनेक । सु०गु०पु० ८९० ।

२- कै कै कला अनेक नटवा बड़ि बांस फैला खतरातन तोछत ।

बो०वि०वा०पु० ६९

३- नगरिवा जगमे वै उछरत जैसे नट के बटू । ना०बु०मा०सा०पु० १९० ।

४- गोप एक नट बेजा सब जायो जीव बजार ।

तई सर भर सरकर पर्यो सौ जति रह्यो निहार ।

गुंजा मूनरम पब शिखी सीसे छट पग पाग

बंभ बांधिया विजित सु तन सति सब कौतुक जागि ।

रत्नकुंवरि- प्रे०र०पु० ० ।

५- तेरी है कछु गति नहीं काठ बीर को खेल ।

कई कपट पट जीट में वह नट सबही खेल ॥

दीप्ति०पु० २३४ ।

+

+

+

कब सगि नट ज्यो जायु छियावसि, इह जग पुतरी काठ नवावसि ।

जग भूला वह काठ के नाचा, जानि न जाय भूठ करु सांचा ।

उ०वि०पु० ४ ।

का पुन अपने साथ कुछ क्कटिकी नटों की सिखा लाया, उनमें से एक का गेदों के साथ खेलता था । बड़े छोटे गेद होने पर भी वह नहीं चूकता था । उसने इतने प्रकार के खेल दिखाये कि लोग बकित हो गये<sup>१</sup> । बाजीगर बंदर को घर लाकर, सिखाकर उसे सलाम करना भी सिखा देता है<sup>२</sup> । सुंदरदास के अनुसार यौवन में काम के बलीभूत व्यक्ति कामिनी के हाथों उसी प्रकार बिके रहते हैं जैसे मदारी का बंदर, जिसे मदारी जब जैसा चाहे नचाता है<sup>३</sup> । सहजों ने भी बंदर के नाचने का उत्तेज किया है<sup>४</sup> ।

८९- रीतिकान्ध में साँप के खेल का भी उत्तेज है । सपिरा पहले मधुर नाद की सुना कर साँप को बाहर निकालता है फिर खेल दिखाकर पुनः पकड़ कर उसे पिटारी में बंद कर देता है<sup>५</sup> । बाजीगर अत्यन्त आश्चर्यजनक खेल दिखाते हैं । कभी केवल एक पंख हाथ में लेकर उसे कूतर बना देते हैं, कभी घूँट से चावल बना देते हैं । आकाश की ओर गीटे उछालते हुए तास पीसे और काले रंग दिखाते हैं कभी आम का पेड़ उगाकर सामने उड़ा

१- सु० दा० - बाजीगर नामा, पृ० ११४ ।

२- बाजीगर घर से बाबा, कर सकुटि खेल उठावा ।

सब काहु के कर सलामु, कपि पैसा किया गुलामु ॥

सु०गु०, पृ० १११ ।

३- यौवन माह कामरस उपजी, कामिनी हाथ, बिकायी रे ।

जैसे बाजीगर की बनरा, घर घर नाच नचकयी रे ॥

सु०गु०पृ० ९०९ ।

४- स०स०पृ०पृ० ५९ ।

५- जब सर्व सुन्धी बहु नादा कहु सुवनहु पायी स्वादा ।

जब बहुर बारि लगि खेला तब पकड़ पिटारी भेला ।

सु०गु०, पृ० १४९ ।

कर देते हैं। कभी सिर बड़ से बलग कर देता है<sup>१</sup>। इसी प्रकार बाजीगर हाथ में कागज लेकर उससे भाँति भाँति के करतब दिखाता है। सबके नेत्रों को बश में करके वह मनमाना ब खेल करता है<sup>२</sup>। बर्निमर ने इन बाजीगरों के विषय में लिखा है कि बहुत से बादुर घूमते हैं। सर्वसाधारण का विश्वास है कि ये सोना बनाना जानते हैं और व्यक्ति के आन्तरिक भावों को बता देते हैं। पेड़ की डाल लगा कर एक घंटे में ही फलफूल उगा देते हैं<sup>३</sup>।

१०- मनोरंजन के साधनों में पशियों को पालना, उन्हें सिखाना-पढ़ाना, उड़ाना तथा उनकी लड़ाई देखना विशेष स्थान रखता था। हाकिम्व के मतानुसार बहागीर के पास अन्य पशियों के साथ छः सौ क्यूतर भी थे<sup>४</sup>। शुक, सारिका तथा मैना आदि तो परिवार के सदस्यों की तरह हो गये थे। पर ये पक्ष पशियों के कारण प्रायः नायिका को मुक्तियों के सम्मुख लज्जित होना पड़ता है जब प्रातः काल मैना सभी के सम्मुख उसके

१- कबहुँ तो पाँव की परेवा के दिखाने मन ।  
 कबहुँक पूरि के खंवर कर देत है ॥  
 कबहुँ तो गोठिका उछारत बाकाश बौर ।  
 कबहुँक रीते धीरे खाम रंग देत है ॥  
 कबहुँ तो बाम की उगाइ कर झड़ीरावे ।  
 कबहुँ तो शीस धर बुदा करि देत है ॥  
 बाजीगर की सी स्वास सुंदर करत मन ।  
 सदाइ प्रमत्त रहत ऐसी कोई प्रेत है ।

सु०गुं०, पृ० ४४९ ।

२- सु०गुं०, पृ० ७२७, ७९७ ।

३- बर्निमर की भारत यात्रा, पृ० १०९ ।

४- विशिष्य हाकिम्व- पृ० १०४ ।

प्रेमाताप की नकल करने लगती है<sup>१</sup>। कोकिल, कोर, छैन, मोर तथा क्योत पातने, उड़ाने तथा चुगाने के संदर्भ काव्य में उपलब्ध है<sup>२</sup>। नायक अपनी बटारी पर बड़ा गिरहवाव कबूतर उड़ा रहा है। नायिका उसे देखती है। कबूतर कलाबाजी खाता हुआ जाता है। नायिका के मन में नायक के प्रति स्थाविक भाव उत्पन्न होता है, नायक के प्रति अपना प्रेम छिपाने के लिए वह सखी से कबूतर की प्रशंसा करने लगती है<sup>३</sup>। पद्माकर ने अपने भावब्यक्ता राजाजी के द्वारा पाते गये सखा एवं तीतर की प्रशंसा की है। जी सवाई के सवा सड़ाई में चोट पर चोट करते हैं। वे लौटना या पीठ दिखाना नहीं जानते। चंचल, चुटीले और चटकीले हैं, बहुत से अधिक शक्तिशाली और मूर्तिमान सौन्दर्य की भाँति रमणीय हैं। उनके तीतर पंके पिबड़ों की खोलते ही खुल पड़ते हैं, उनके बोल विषय की दुंदुभी से प्रतीत होते हैं। बोंब की चोट करने में ऊँची चूकते नहीं<sup>४</sup>। रीतिकालीन काव्य में पशुओं की सड़ाई और उनके प्रदर्शन द्वारा मनोरंजन की चर्चा आयी है। केशव ने कविप्रिया में सबे सजाये हाथियों के भव्यस्वरूप तथा अच्छे घोड़ों का वैशिष्ट्य बताया है<sup>५</sup>।

१- रति विलास सुक सारिकनि, कहि गुरुनि मैं प्रात ।

साव ललित गुन गौरि के दूरे गात मैं गात ॥ म० गु० पु० ५०३ ।

२- पाते भले दिन के छित सौं पिबरान तें कोकिल कीर उड़ावत ।

जी मन रंजन छैन और क्योत के लोत नहीं मन लावत ।

जी बरजो तो न माने कहूँ मन आपन लावत मोहि सबावत ।

कीन सुभाव परो पिय की जब बिन मोरन छोड़ चकोर चुगावत ॥

सु० ति० पु० २३५ ।

३- ऊँचै किं सारा हियत, गिरह कबूतर लेतु ।

भलकति दुग, मुलकति बदन, तन पुलकति केहि छेत् । वि० र० दो० २७४

४- म० गु० पु० १०७-१०८ ।

५- तरत सताई तेव गति मुख सुख सब दिन तेव ।

देश सुवेश सुलक्षणाँ वर्णहु नावि विशेष ॥ के० क० पि० पु० १२६ ।

+

+

+

मत्त महावत हाथ में मन्द चलति चल कर्ण

मुत्तामय जब कुंभ शुभ सुन्दर सूर सुवर्ण ॥

के० क० पि० पु० १२८ ।



अवधपुरी में कहीं बैल और भैंसों की लड़ाई, कहीं भेड़ों की तो कहीं मस्त हाथी आपस में गुमे हुए हैं ।

### जीड़ाएँ:

९१- घर के बाहर बैसे जाने वाले बेलों में रीतिकालीन काव्य में जीगान नामक बेल की चर्चा कई स्थानों पर आयी है । जीगान राजाजी या जाभिवात्य वर्ग का ही बेल था । केसव ने राम के जीगान बेलने का वर्णन किया है । इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि यह पोखी की भाँति ही बेलता जाता था । रामचन्द्र के साथ जीगान देखने के लिए लोग विभिन्न सवारियों तथा घोड़ों आदि पर चढ़ कर चले । राम विस्तृत चौरस भूमि पर गये एक जोर भरत तथा दूसरी जोर राम खड़े हुए हैं । गैद भूमि पर हाल दी गई बेल प्रारम्भ हो गया । गैद जहाँ जाती है उसपर ही सब खिलाड़ी इकट्ठे हो जाते हैं । घोड़े पर सवार भरत और राम तथा अन्य खिलाड़ी काली पीली लाल तथा हरी छड़ियाँ लिये हैं जिनसे गैद को अपने पास की ओर ले जाना चाहते हैं । जब जब बाजी जीती जाती है तब तब बाजे बजते हैं और भूषणादि दान दिये जाते हैं<sup>१</sup> । कवि गोरे लाल ने भी जीगान के बेल का वर्णन छन्दकाश में किया है<sup>२</sup> । सुन्दरदास ने कर्मों के बश में पड़े धाँका लाते चयक्ति की उपमा अस्थिर रहने वाले जीगान के कंदुक से दी है<sup>३</sup> । महाकवि बिहारी ने प्रेम का रूपक जीगान के बेल के साथ बाँपा है ।

१- कहुँ बैल भैसा भिरे भीम मारे कहुँ एण एणान के बेल मारे  
कहुँ बोल बकि कहुँ भेष सूर कहुँ मस दन्तो लरै लीह पुरे ।  
के० को० १।८७

२- + + +  
महिष, भेष, मुग, वृषभ कहुँ मिस मत्स गबरान,  
लरत कहुँ पायक सुभट कहुँ निरत नट राज । के० को० १।२७

३- के० को० २।११६-१२०

४- जीगाननि बेलत छवि छवि । गोरे० छ० पृ० पृ० ६७

५- धिरता न लहे बैसे कंदुक जीगान माहि ।  
कर्मनि के बस भार्या की धक्का बड्डा है । सु० गृ० ४६४ ।

बिजलरूपी घोंड़े की जगमगाहट उठाने करके, छिपाकर निर्वाह करने के परवाह ही उस प्रेम रूपी जागमगाहट के डोल की जीतना चाहिए<sup>१</sup>।

१२- सर्वसाधारण में पतंग उड़ाने का प्रचलन था । नायक वहाँ मनोरंजन के लिए पतंग बंधवा गुड़ी उड़ावा करते थे वहाँ नायिका प्रियतम के डोल की देखकर ही मनोरंजन करती थी । बिहारी की नायिका अपने प्रेमी के द्वारा उड़ाई पतंग की छाया को छूने के लिए बावली होकर पूरे बागन में दौड़ती फिरती है । बिछड़ जाने पर भी प्रेमी-प्रेमिका को अपने प्रेम घर भरोसा है, पतंग कहीं भी उड़ कर चली जाय डोर तो उड़ाने वाले के पास ही रहती है<sup>२</sup>। दीनदयालुगिरि की जन्मोत्सि पतंग उड़ाने की सावधानियों का ज्ञान कराती है, इसमें कच्चा डोरा नहीं होना चाहिए जन्मवा डोर टूट कर हाथ से छूट जायेगी और पतंग दूर चली जायेगी फिर कच्चे उसे सूट लेगी<sup>३</sup>। तीज की नायिका तिमहले पर बैठ कर उड़ती हुई पतंग के तमाशे देखती है<sup>४</sup>।

१- वि०र०दी० १७८ ।

२- उड़ति गुड़ी लखि लाल की जगना जगना माह ।

बाँरी लीं दौड़ी फिरति छुलति छबीली छाह ॥ वि०र०दी० १७९ ।

† † †

कहा भयो वो बीछुरे तो मन मो मन लाम ।

उड़ी जाति किहू गुड़ी लख उड़ावक हाथ ॥ वि०र०दी० १८० ।

३- कवि गुन छोड़े न तू बरे उड़ावक कूर ।

बैहै कर ते, छूटि के उड़ि गुड़ी कहूँ दूर ।

उड़ी गुड़ी कहूँ दूर लूटि लरिका सब बैहै,

तो की जान गंवार लोी करतारी बैहै । दी०गु०पु० ११० ।

४- रावटी तिमहले की बैठि छविबारी बाल ।

देखति तमासी गुड़ी बखानि उड़ावी है ।

तो०सु०नि०पु० १७४ ।

९४- रीतिकालीन काव्य में बलक्रीड़ा मनोविनोद के साधनों में विशिष्ट स्थान रखती है। बड़े-बड़े रईसों एवं सामन्तों के यहाँ सुन्दर स्फुटिक के सरोवर बने होते थे। वनसाधारण भी ताल सरोवरों में स्नान एवं क्रीड़ा करते थे। बलाश्रम के पास जाते समय दूर से ही बहिराम की कमत की सुगंध मिलती इसके निर्मल जल में बाग का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था<sup>१</sup>। सरोवर में स्निग्धा क्रीड़ा करती हैं कोई स्त्रियों को पकड़ती है, कोई कमतमूल निकाल कर द्वार की भाँति गले में पहनती है। कोई भूषण गिर जाने पर जल में डुबकी लगाकर तट के बीच में पकड़ लेती है। कोई देर तक डुबकी लगाने की होड़ करती है। इस प्रकार जल में केलि करती हुई सुंदरियाँ प्रस्फुटितपद्मपुष्पों के समान सुशोभित हैं<sup>२</sup>। कभी-कभी अपने प्रेमी के साथ भी वे बल-क्रीड़ा में निमग्न दिखाई देती हैं। केवल ने राम को स्निग्धों के साथ सरोवर से निकलते देखकर उत्प्रेषा की है मानो सूर्यदेव अपनी सब किरणें समेट करके निकले हों<sup>३</sup>। बिहारी की सलज्बा, स्मिन्त, जानना नाविका सरोवर में स्नान करके बला एवं बल्ल के मध्य बाँह दिये भीगे वस्त्रों से तट की ओर जाती है<sup>४</sup>। नागरी दास ने यमुना में क्रीड़ा का वर्णन किया है<sup>५</sup>। दीनदयाल के नामक अपनी प्रिया के साथ जल में विभिन्न क्रीड़ाएँ करते विवश है<sup>६</sup>। जकरशाह की गुमारबंदरी में भी बल-क्रीड़ा की चर्चा जाती है<sup>७</sup>।

१- के०जी० १।१९९।

२- एक दमवती छौं हँसि छल बंश,  
एक हँसिनी सी बिसहार हिये रीहियो।  
भूषण गिरल एकै छेती बूढ़ि कीचि बीच,  
मीन गति लीन हीन उपमान बौहियो।  
एकै मत के के कंठ लागि लागि बूढ़ि बात,  
बलदेवता सी देखि देवता विभोहियो।  
केशोदास बासपास भंर भंर जल-

केलि में जलमयुकी बलवती बौहियो॥ के०जी० २।१९४।

३- के०जी० २।१९५।

४- वि०र०दी० ६९३, ६९७, ७००।

५- ना०स०पु० १६७।

६- दी०गु०पु० १२।

७- म०गु०पु०, पु० ११९।

उस्मान की विजयवाली सखियों के साथ बल-श्रीड़ा करती हुई गई सगाती है कि सरोवर में छिप जाने पर उसे जो सखी जीव लेगी उसे हार मिलेगा<sup>१</sup>।

१४- मनोरंजन के अन्य साधनों में मत्स्यमुद्र, जानवरों की लड़ाई, बादविवाद आदि आते हैं । केशवदास ने मत्स्यमुद्र का उल्लेख किया है<sup>२</sup>। दीनदयालगिरि ने मत्स्य मुद्र का पूर्ण चित्र वर्णित किया है —बसाड़े में तास धेनु हुए पल्लवान खड़े हैं । भूमि को स्पर्श करके वह नास उठाते हैं और पैर लगाकर अपने प्रतिद्वन्द्वी को भूमि पर गिरा देते हैं<sup>३</sup>। मनुजी ने शाहजहाँ के संबंध में बताया है कि वह दरबार में पल्लवानों को रतने का शौकीन था और मत्स्यमुद्र देखा करता था<sup>४</sup>। केशवदास ने रामचन्द्रिका में मगर के खेल का उल्लेख किया है जो संभवतः प्राच्यनिक कबड्डी की तरह होता था<sup>५</sup>।

१५- रीतिरिवाज काव्य में, समाज में शिकार की लोकप्रियता के अनेक संदर्भ मिलते हैं । केशवदास ने बुर्रा, बहरी, बाज तथा खान की सहायता से कानर, बाघ, बराह, तथा मृग के शिकार का वर्णन किया है<sup>६</sup>। अपनी

१- हौ छिपाउं एहि सरवर माँही, तुम खोजहु कोउ पाव की नाही ।

मौहि खोजत जो माइ उवाये, हारत बचा भाग सो पाये ॥

उ०वि०पु० ४७ ।

२- के०की० १।२७ ।

३- देखे बिन्हैं ठाढ़े झूँ बसाड़े बीच के तास,

नास को उठाये है उतास भूमि भूमि के ।

दी०गु०पु० १४४ ।

४- मनुजी -स्टोरिया द मीमार - पृ० १९१।

५- काटे जो सोस काटत फेरे पाव,

मगर के खेल क्यों सुभट पद पावही ।

के०की० १।१९७ ।

६- के०क०प्रिड पु० १२० ।

कवि प्रिया में ही केशवदास ने तीतर, कपोत, पिक, केकी, केक, कुररी तथा कल्लूत आदि पक्षियों तथा शरभ, रवाझोस, सिंह तथा शूकर आदि का शिकार करके खाने का उल्लेख भी किया है<sup>१</sup>। जाखेट के लिए प्रस्थान करते समय विभिन्न बाजों एवं निशान के साथ सासक निकला करते हैं<sup>२</sup>। स्त्रियाँ भी शिकार करने और उसे देखने में अभिरुचि रखती थीं। हुम्मीर रातों में बेगमें सुल्तान से जंगल में हिरन का शिकार के समय साथ जाने का आग्रह करती हैं। सुल्तान की आज्ञा पाकर बेगमें सभी छात्र के साथ तैयार होती हैं। जंगल में पहुँच कर वे मृगमयनी राखवनिताएं जिस ओर जाती हैं वन-बीधियों में से खींच खींच कर मृगों का शिकार करती हैं<sup>३</sup>। कासिमशाह ने भी शिकार का वर्णन किया है मनोरंजन के लिए पहले खेतों में फिर बांस डांस कर मछलियाँ मारी जाती हैं फिर वन्य शिकार होते हैं। कहीं बड़े दाँड़ते हैं कहीं वान से शिकार होता है<sup>४</sup>।

१- के०क०पि० पृ० १२१ ।

२- बसे शाह जाखेट वन्य निशान ।

बो०ह०रा०पृ० १६ ।

३- जाती जा एक बार हम सब की ते साथ मे  
जंगल हरिन शिकार खेती, यह बरवै करें ।

+ + +

सबे नाम सुल्तान संभारी सभी बेगमें छात्र सिंगारी ।

+ + +

बीनी ओर जाती वनबीधिन में तीनी ओर,

हेरि हेरि मारत मृगन मृगनेनी है । बो०ह०रा०पृ० २-४ ।

४- पिरधम खेता खेत निवारत, बांस डांस मछली बहु मारा ।  
केहर बाव रवान जी बाना सब ऊपर वासिन के ताना ॥

+ + +

कहीं सुपुल्लुख तुरी दाँरावै, कहीं सौ कोई वान बलावै ।

क०ह०ब०पृ० ७५-७६ ।



१६- स्त्रियों के द्वारा विशेष रूप से खेले जाने वाले खेलों में धमारी तथा माँझ मिचौली अथवा चोर-मिहीवनी के उत्तम काम्य में प्राप्त होते हैं। धमारी की चर्चा उत्तमान के काम्य में नाई है। विज्ञानती अपनी सहेलियों के साथ चित्तारों में धमारी का खेल खेल करती हैं। माँझ-मिचौली का खेल प्रायः स्त्रियों ही खेलती हैं किन्तु कभी कभी नायक अथवा प्रेमी भी इसमें अपना सहयोग देता है। केशवदास ने रसिकप्रिया में रयाम के साथ चोरमिहीवनी खेलने का उत्तम किया है। रहीम ने टोसियों में खेलने का वर्णन किया है, इनके नन्दकिशोर वृषभानुकुमारी को छू कर चोर बना छोड़े हैं। मतिराम की नायिका सबी से पिछले दिनों की भाँति आज भी चोर मिहीवनी खेलने जाने की चर्चा करती हैं। इनकी अज्ञात याँवना नायिका नायक द्वारा माँझ मूँदी जाने पर सात्विक भाव के कारण बहने वाले जल, का वास्तविक कारण न समझ पाने के कारण माँझमिचौली खेलने को मना करती है। उसका विचार है कि नायक शरारत करने के लिए हाथों में कपूर लगाकर माँझ बन्द करता है। कान्हू कवि की राधा के दीर्घायित्त सुग्री का

१- चारी यह जो है चित्तारों, तहं विज्ञानति खेलि धमारी । उ० वि० पु० ५१ ।

२- जानि के अगिर आज रवनी में खनी री,

संजी कीन्हों रयाम चोरमिहीवनी खेलि कै । के० र० प्रि० पु० ५९ ।

३- खेलत जानिहि टोलवा, नन्दकिशोर ।

छुड वृषभानु कुमरिया, होइ गइ चोर ।

रहीम - क० की० पु० २९६ ।

४- खेलत चोर मिहीवनी - जानु गई छुती पाछे छोड़े की नाई ।

म० गृ० पु० २०६ ।

५- लाल, तिहारे संग मैं खेल खेल बताइ ।

मूँदत मेरे नयन ही करन कपूर लागी ।

म० गृ० पु० २०६ ।

का विस्तार उसके कानों को छूता है जिसके कारण कभी कभी साव डेलने वाली चीक जाती है, छोटी होती में राधा की बड़ी बड़ी बातें जा ही नहीं पाती<sup>१</sup>। बकवरसाह ने भी बात मिचीनी के खेल का उत्प्रेत किया है<sup>२</sup>।

१७- स्त्रियाँ सममानुसार हिंडोले बबबा भूले से भी बबना मनो-रंजन करती हैं। परों के बतिरित्त बाग और उद्यानों में पड़े भूलों की चर्चा बातोब्यक्त में प्राप्त होती है। बिहारी की नायिका मना करने पर और भी हठ करती है। भूतले समय न वह डरती है न संकुचित होती है। भूले पर पैगु बड़ाते समय उसकी कमर तबक-तबक जाती है और टूटने से बच जाती है। नवोढ़ा नायिका प्रियतम को देखकर हिंडोले - रूपी बाकाश से परी सी टूट पड़ी। प्रियतम ने उसे बीच ही में लोकर पूरवी पर सड़ा कर दिया<sup>३</sup>। दीनदयाल गिरि ने बहुत सेवी से भूतले हिंडोले का वर्णन किया है। हिंडोला भौका बाकर ऊपर पैड़ की ठालों से मिल जाता है। भूतली स्त्रियों के बांचल की मुक्ताएं हिलती हैं, पैग बड़ाने की क्रिया में भुजाओं का उभरना और भकोर खाना नहीं भूतता<sup>४</sup>। विरह वारीस में

१- कानन ली बंविबा के तिहारी,

होती छारी कहाँ लगि फैलि है।

राधे की मानी भली कि नुरी,

बलि मूलों संग तिहारे न सेतिहै ॥ कान्होसा०पु०पृ० १२२।

२- ब०गु०मं०पृ० ११९-१२१।

३- बरबे दुनी हठ बड़े, न सकुचै, न सकाह।

दूटत कटि दुमबी मवक लवकि लवकि बनि जाइ ॥ वि०र०दी० ६८६।

हेरि हिंडोरे गगन ली परी परी सी टूटि।

परी-बाइ पिय बीचहीं करी करी रस बूटि ॥ किर०दी० ९९।

४- दी०गु०पृ० १३।

जाजाड़ के दिनों में दंपति मिल कर हिंडोला झूलते हैं और विरहिणी नायिका उन्हें देख देख कर संतप्त होती है<sup>१</sup>।

### अंतर्द्वार कीड़ाएँ:

९८- घर के भीतर खेले जाने वाले खेलों में शतरंज, चौपड़, विस्तार तथा जुआ आदि खेलों के संदर्भ ऐतिहासिक काल में प्राप्त होते हैं। केशव की नायिका अपनी सहेलियों के साथ शतरंज खेल रही थी तभी वहाँ नायक भी आ गया<sup>२</sup>। रसिकप्रिया में भी केशव ने शतरंज की बाबी का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। सेनापति के अनुसार शतरंज की बाबी अभी जीती जा सकती है जब ध्यान मुहरे पर ही रहता था<sup>४</sup>। हंस-बनाविह में कासिमशाह ने दो पृष्ठों में शतरंज के खेल का विस्तृत वर्णन किया है<sup>५</sup>। चौपड़ का खेल मासोव्यकास में बहुत लोकप्रिय था। सेनापति ने रतेज द्वारा चौपड़ का वर्णन किया है जिसमें पासे, हाथी दात की सीलह गोटो, रंगीन विस्तार, गोट गिन कर चलने, गोट पीटने तथा हार-बीत का उल्लेख है<sup>६</sup>। चौपड़ को ही पासा भी कहा गया है। यद्माकर ने पासा खेलने की चर्चा की है<sup>७</sup>। दीनदयाल

१- दंपति मिलहि हिंडोरा झूलहि, मोहि विरह की झूल न झूलहि ।

चौ०वि०वा०पु० १३८ ।

२- खेलत ही शतरंज बल्लिन में नापक्षी

तहाँ हरि जाए कियौ काहु के बुलाए री ।

के०क०प्रि०पु० १३९ ।

३- के०र०प्रि०पु० १११ ।

४- से०क०र०पु० १२३ ।

५- का०हं०व०पु० १८२-१८३ ।

६- से०क०र०पु० ८ ।

७- पासा सारि खेलि कित कौन मनुहारि सौ,

बित मनहरि मनि हारि हरि जाए ही ।

य०गु०पु० ११६ ।

ने जीपड़ का प्रयोग अपनी अभ्योक्ति में किया है<sup>१</sup>। सुंदरदास ने दो व्यक्तियों के जीपड़ खेलने का वर्णन किया है जिसमें जीतने वाला प्रसन्न होता है और हारने वाला उसासि भरता है<sup>२</sup>। जुवा खेलने के उल्लेख भी मिलते हैं। बोधा ने कार्तिक मास में जुवा खेलने जाने की बर्षा की है<sup>३</sup>। जुवा व्यसन के रूप में भी प्रचलित था। अतः संत सुंदरदास ने इसकी निन्दा की है<sup>४</sup>।

### बालकों के खेल:

१९- बालकों के द्वारा खेलने वाले खेलों में लकड़ी के पीड़े, फिरकी, चकई, पुनपुना, लट्टू, गेंद, गिल्लीडण्डा, तथा डुडुरवा के उल्लेख मिलते हैं। सुंदरदास ने छोटे बालक द्वारा लकड़ी के जरब पर बैठ कर खेलने - कूदने की बर्षा की है<sup>५</sup>। प्रेम और लज्जा के द्वन्द्व में पड़ी नायिका व्याकुल होकर दोनों ओर खिंची रहती है अतः उसका दिन फिरकी<sup>६</sup> और बालक खेलता है<sup>७</sup>। सखी बाई के अनुसार गुल की शिखा तभी भली सिद्ध हो सकती है जब वह चकई और डोर की भांति हो। जैसे बिघर से डोर खींच दी जाय चकई उधर ही नाचती है वही प्रकार अपनी जान छोड़कर गुल के कंधे

१- दी०गु०पु० १०९।

२- दोह जने भिलि जीपर खेलत सारि डरे पुनि डारत पासत।

जीतत है सु सुखी मन में बति हारति हैं सु भरे उसासा ॥

सु०गु०पु० ६०४।

३- बी०बि०वा०पु० १४२।

४- सु०गु०पु० ८४२।

५- ज्यों लकड़ी के जरब चढ़ कूत डोले पास। सु०गु० पु० ७७३।

६- नई लगनि कुल की सकुच विकल भई बकुलाह।

दुई ओर ऐसी फिरति, फिरकी ली दिन जाह ॥

बि०र०दो० २०५।

पर ही चलना चाहिए<sup>१</sup>। चर्क सीधे हुए बासक की चर्क दीनदयाल गिरि ने भी की है। दीनदयाल गिरि ने चर्क के अतिरिक्त बाल कृष्ण द्वारा सडामों के साथ धुनधुना और कंवन के तड्डू डेतने जाने का उत्तेज किया है<sup>२</sup>। कहीं कृष्ण भगता पहले हुए धुनधुना बजाते विज्ञित है। वस्तु: छतराजसिंह ने बालकृष्ण की समझाती यशोदा का विषय किया है जिसमें कई डेतों का उत्तेज हुआ है। वह कृष्ण की डेतों के स्थान पर गेद डेतने की कहती है और डूढ़ा देकर डुडुरवा डेतने तथा गिली डंडा डेतने की वह मना करती है<sup>३</sup>।

#### निष्कर्ष:

१००- रीतिकालीन काव्य में विज्ञित समाज के विभिन्न पाशवों का अध्ययन करते समय, सामान्यतः मनोरंजन, शृंगार-प्रसाधन आदि को डेतने के परचातु, विशेष रूप से, यह प्रश्न स्वतः उठता है कि क्या इनका वही और उतना ही मूल्य आलोच्यकाल में या जो संतुलित जीवन में होना चाहिए ? क्या तत्कालीन सामाजिक इन कार्यों में उतना ही समय, श्रम एवं

१- सखी चिब ऐसी भली वैसे चर्क-डोर ।

मुल धरे त्योंही फिर तयागे अपनी डोर ॥

सखी-सं.पु.पु. २५ ।

२- दी० गु० पु० ८, ३२ ।

३- सुनी सांवरे डेत डुडुरवा डूढ़ा दे नहिं डेतौ ।

+ + +

विन डेतौ तुम डंड सांवरे रुखन धे नु बिलैया ।

+ + +

गेहन गिलीडंड नहिं डेतौ वही सिखावन मेरी ।

छतराज-सा०पु० पु० २६३ ।



एन का व्यय करता था जो एक प्रबुद्ध राष्ट्र के सामान्य नागरिक के लिए काव्य एवं उचित है ? तत्कालीन राष्ट्रीय जीवन व्यापक रूप से ऐसा था या नहीं यह और बात है किन्तु रीतिकाल के प्रतिनिधि काव्य के आधार पर समाज का जो चित्र बनता है उसमें बांझ संतुलन नहीं है । समाज का वह वर्ग जिस पर समाज की शांति, सुरक्षा एवं सुखवस्था का दायित्व है, जो अपेक्षाकृत संस्कृत और सभ्य समझा जाता है, प्रयोजनहीन कार्यों में अपना समय बिताता है । मनोरंजन की आवश्यकता तो तब होती है जब मन और शरीर में थकान हो, किन्तु रीतिकाल का कवि अपने सामाजिक को (यह स्मरणीय है कि उसके नायक प्रायः उच्चवर्गीय हैं) मनोरंजन में ही रमाये रहता है । कर्म से विरत हो विनाश के लिए वे मनोरंजन नहीं करते, मनोरंजन ने प्रायः कर्म का स्थान ले लिया है । समकालीन इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि वह वर्ग अकर्मण्य एवं विलासी था । रीतिकालीन काव्य के मनोरंजन संबंधी वे ही प्रकरण सदा और सजीव हैं जहाँ कवि पूर्वाग्रह मुक्त होकर लोकजीवन में प्रवेश करता है, किसी गवारिन को भूला भूतले देख लेता है अथवा किसी नाचक को धुड़ुका देखते पा जाता है ।

-----

अध्याय ५

संस्कार - पर्वदि

## बिष्णुवाच ५

### संस्कार पर्वदि

#### वाधार सामग्री

समकालीन समाज के संस्कार, पर्व और उत्सवों आदि से संबद्ध वाधारभूत सामग्री हमें प्रचुरता के क्रम से रीति कवियों, चरित काव्य लेखकों, सन्तों, सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों से प्राप्त होती है। रीति कवियों में बनारस (१७४६-९३) का कोका इस संबंध में विशेष रूप से सहायक होता है। उनके अतिरिक्त कालक्रम से केशव (१६१२-१६७४) सेनापति (१६४६) बिहारी (१६६७-१७२०) मतिराम (१६७४-१७५८) देव (१७३०-१८०२) और पद्माकर (१८१०-१८९०) की रचनाओं से हमें वाधार-सामग्री प्राप्त होती है। चरित-कवियों में इस दृष्टि से सुदन (१८२०) का काव्य सर्वाधिक संपन्न है। उनके अतिरिक्त मान (१७१७) गोरेलाल (१७६४) और जोषराज (१८७५) के चरित काव्य इस संबंध में हमारी सहायता करते हैं। सूफी कवियों विशेष रूप से उस्मान (१६७०) और बीषा (१८०४) के काव्यों से प्रचुर सामग्री प्राप्त होना भी बतलाने में रोचक है, इस दृष्टि से कि ये कवि या तो स्वयं मुसलमान थे या सूफी धर्मानुयायी होने के कारण उस सांस्कृतिक परंपरा के अधिक निकट थे। संतों में उत्सव और त्योहारों के प्रति सामान्य रूप से उदासीनता ही मिलती है किन्तु सुन्दर (१६५३-१७४६) दरिया साहब (१६९१) और बसटू साहब का काव्य भी इस संबंध में हमें सामग्री प्रदान करता है। सहस्री बार्ड (१८१५), जिनमें लोक-जीवन के अन्य उपकरणों का प्रचुर उल्लेख मिलता है, वह प्रकरण क्यों अनुपस्थित है कहा नहीं जा सकता। कृष्ण भक्त कवियों में से नागरीदास को छोड़कर और किसी से उल्लेख्य सहायता नहीं मिलती।

#### वातीय सांस्कृतिक परंपरा में संस्कार:

१- संस्कार हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था और काल-प्रवाह के साथ अनेक परिवर्तनों सहित वे आज भी जीवित हैं। हिन्दू संस्कारों का विवरण वैदिक सूक्तों, कतिपय ब्राह्मण ग्रंथों, गृह्य तथा धर्म

सूत्रों, स्मृतिवर्गों तथा परवर्ती निबन्ध ग्रंथोंमें पाया जाता है। शनिः शनिः संस्कारों के धार्मिक वृत्त में अनेक सामाजिक तत्त्व प्रवेश करते गये। संस्कार शब्द का उपयुक्त अंग्रेजी पर्याय "सेक्रामेन्ट" ( Sacrament ) शब्द है जिसका तात्पर्य धार्मिक विधि विधान या कृत्य से है जो जातिरिक्त तथा जातिमय सौंदर्य का वाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है। डा० राजवती पाण्डेय के अनुसार "सब प्रकार यह (शब्द) अन्य धार्मिक चीजों को भी व्याप्त कर लेता है जो संस्कृत साहित्य में मुदि, प्रावरिक्त, वृत आदि शब्दों के अन्तर्गत आ जाते हैं।"

विभिन्न सूत्रों एवं स्मृतिवर्गों में संस्कारों की विभिन्न संख्याएँ दी गयी है, तथापि सर्वाधिक लोकमान्य संस्कार सोलह ही रहे हैं। नायनिक्रम पद्धतियों में भी निम्नलिखित सोलह संस्कार स्वीकृत किये गये हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, ब्रूहा-करण, कणविध, विधारंभ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह एवं अंत्येष्टि। इनमें से कुछ ही संस्कार ऐसे रहे गये हैं जो आज भी यथाविधि संपन्न किये जाते हैं। नामकरण, अन्नप्राशन, ब्रूहाकरण (मुण्डन) कणविध (छेदन) विवाह और अंत्येष्टि ऐसे ही महत्वपूर्ण संस्कार हैं जिन्हें सर्वगात्री काल कबलित नहीं कर सका।

१- रीतिकालीन काव्य में भी हमें सोलह संस्कारों में से प्रत्येक का सविस्तर उल्लेख नहीं प्राप्त होता। कवियों ने संस्कारों के उल्लेख वहीं किये हैं जहाँ उनका स्मरण उनके वर्ण्य विषय के लिए आवश्यक और उनकी रूचि के अनुकूल था। स्वतंत्र रूप से संस्कारों का विवरण रीतिकालीन काव्य में नहीं प्राप्त होता। रीतिकाव्य में रचे गये प्रबन्ध काव्यों में यथास्थान संस्कारों के कुछ उल्लेख मिलते हैं पर इनमें भी विवाह संस्कार के अतिरिक्त अन्य संस्कारों के

पद्धतियों सहित वर्णन नहीं किये गये हैं ।

### सौमंतः

४- सौमंत संस्कार प्राग्वन्म संस्कारों में से एक है । इसमें गर्भिणी के केशों को ऊपर की ओर उठाया जाता है एवं मातृत्व की गरिमा से संपन्न होने के लिए उसे बपाइयाँ एवं आशीर्वाद दिये जाते हैं । मतिराम ने एक स्थान पर "सौमंत" की वर्णन की है । सौमंत विधि संपन्न करने के लिए नायिका पति के साथ गाँठ बंध कर चौक पर बैठी है और पड़ोसी को देख कर मन ही मन घूँट में मुस्काती है । वस्तुतः इस संस्कार को संपन्न करवाने का नियम पड़ोसी को ही है नायिका के पति को नहीं<sup>१</sup> । संभवतः यह संस्कार इस समय तक बहुत महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय नहीं रह गया था और कुछ विशिष्ट लोगो के बीच साधारण रूप से संपन्न हो जाता था ।

### वातकर्मः

५- यह संस्कार पुत्र के समय एवं उसके बाद की विविध आवश्यकताओं से संबंधित है । स्मृतियों में इसी समय नादी-बाद करने का अनुमोदन किया गया है । केसव ने वात कर्म संस्कार वैदानुसार संपन्न होने का उल्लेख किया है<sup>२</sup> । काव्य में पुत्र-जन्म के समय होने वाले विविध उत्सवों, जन्मपत्री लिखने एवं छठी-बरही के वर्णन इसी संस्कार से संबंधित माने जा सकते हैं ।

६- वादि काल से पुत्री की अपेक्षा पुत्र का महत्त्व अधिक रहा है । ज्यों समयानुसार धार्मिक, वैश्वार्थिक एवं सामाजिक कारणों ने योग दिया । पुत्र

१- कंत चौक सौमंत की बैठी गाँठ बुराव ।

देखि पटीतिनि की प्रिया घूँट में मुस्काव ॥ म०गु०पु० २८५ ।

२- पुत्र है जो एक की कुल क्षुरी सब जानि ।

वातकर्महि वादि है सब किए वेद बजानि ॥

जन्म से पितृ-व्रण चुकाया जा सकता है और श्राद्ध-सर्पण आदि के द्वारा वही परलोक में भी शान्ति एवं सुख की प्राप्ति कर सकता है। पुंसवन संस्कार का आचार पुत्रेष्पणा ही है। पुंसवन वह कर्म है जिसके अनुष्ठान और संपादन से पुत्र-संतान का जन्म हो। आलोच्यकाल में भी पुत्र का महत्व स्वीकार किया गया है। कासिमशाह ने कहा है विधि ने राजा को सभी सुख-भोग प्रदान किये हैं परन्तु केवल एक वंश के चलाने वाले के बिना सभी व्यर्थ है। सभी सुख एवं धन का भण्डार तभी सार्थक है जब पर की उमाता पुत्र हो<sup>१</sup>। उस्मान ने भी अनन्त स्वर्ण-सखी एवं अपार सैन्य होने पर भी एक संतान दीप के बिना सम्पूर्ण राजभवन अधिवारा कहा है<sup>२</sup>। पुत्र की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के धार्मिक कृत्य सम्पादित किये जाते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है<sup>३</sup>। बती सन्धासियों का आदर - सत्कार कर, उनके पाँव पतार हाथ जोड़, बिनती करके उनकी आज्ञा का पालन किया जाता है<sup>४</sup>। निःसन्देह इतने कष्ट से प्राप्त पुत्र के लिए क्या नहीं किया जा सकता। राजा सोना सपा, नम, गाय, भूमि एवं वस्त्र आदि का

१- बति सुख भोग दीन विधि राजा एक वंश बिन सब अकाज ।

सब सुख नेक जी बर्थ भंडारा जी पर होय दीप उजियारा ॥

का० ई० व० पु० ९ ।

२- अनघन ह्येन जी सखी सैन अनैक अपार ।

एक दीप संतति बिना राजभवन अधिवार ॥ उ० वि० पु० १५ ।

३- पूत निमित्त परम अब कीये, परमसाह के भोजन दीये ॥ उ० वि० पु० १६ ।

४- बती सन्धासी जी कोठ आवै, सुनत नाई राजा उठि पावे ।

अपने नगर बोलाइ के जान पतारे पाँव ।

कर बोरे बिनती करे जाग्या होत चढ़ाय ॥

उ० वि० पु० १७ ।



भण्डार सब के लिए खोल देता है<sup>१</sup>। हर्ष का पारावार मंगलवार का रूप ले लेता है और माँठी दिशाएँ विभिन्न वाद्य यन्त्रों की ध्वनि से गूँब उठती हैं। पुत्र जन्म की घड़ी धन्य मानी जाती है<sup>२</sup>। पीले सुन्दर वस्त्र धारण किये स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं और नौबत आदि के गंभीर नाद से गगन गूँब उठता है<sup>३</sup>। डोल भँभ और शहनाई के साथ घर-घर बघाई बजती रहती है, भंडार से मोतियों के बाल भर भर लुटाये जाते हैं<sup>४</sup>। मागध, सूद एवं बादीगण बिरुद्धावली गाते हैं और हर्षित होकर नेम के लिए लड़ते हैं<sup>५</sup>। फरी के द्वार कलश और पतका से सुसज्जित किये जाते हैं<sup>६</sup>। दही, दूध एवं हल्दी से भरे घास लेकर बालाएँ गाती हैं। हल्दी और दही के कारण फाग-सी मच जाती है<sup>७</sup>।

७- हर्ष एवं उत्साह के मध्य धार्मिक क्रियाओं में कोई व्यवधान नहीं पड़ता। जन्म के उपरान्त शीघ्र ही ज्योतिषी बुलाये जाते हैं। विप्रगण आशीर्ष देते हैं, और उचित आसन ग्रहण करके जन्म-पत्री लिखना प्रारम्भ करते

१- सोन रूपन्या गाह भुँड, पाँटवर मच धोर ।

राजा खोलि भंडार सब, धेत न लायै भोर । उ० वि० पृ० २२ तथा

बोधराज-ह० रा० पृ० ३४ ।

२- गोरेताल- उ० पृ० पृ० २३ ।

३- मानकवि - रा० वि० पृ० ३९ ।

४- घर घर बाँधे बंद बघावा । मंगलवार लोग सब गावा ॥

खोल भंडार सोन बरसावा । मोती भर भर बार लुटावा ॥

का० हं० व० पृ० १२ ।

५- ध० गं० पृ० २३१ ।

६- बोधराज- ह० रा० पृ० ३४ ।

७- दधि दूध हल्दी की कनक घास । बहु गान करत प्रसिद्ध बाल ॥

जी० ह० रा० पृ० ३४ ।

हैं। देश-देश के पंडित धर्म-ग्रंथों एवं नवग्रहों पर विचार करके, गृहदशाओं को देखते हुए लग्न के अनुसार कुंडली लिखते हैं। जन्म के छठे दिन छठ्ठी जयन्ता छठी नामक समारोह होता है। बाबों के साथ नृत्य होते हैं और सोहर गाये जाते हैं। तत्पश्चात् "सोहिले" गान्न रतजगा करती है। सूदन, मानकवि तथा गोरिलाल ने भी छठी के उत्सव का वर्णन किया है। इस दिन हाथ में कुश एवं बल लेकर ग्राह्मणों को दान दिया जाता है। उस्मान ने इस अवसर पर

१- वसुधात बैगि जोइसि बुझाइ । आसीत विप्र दीनी सु जाइ ॥

दिनी समान बैठक दीन । पढ़ि लिखत जन्म पत्र प्रवीन ॥

मान०रा०वि० पृ० ३९ ।

२- देश देश के पंडित जाये । पीबी काढ़ जन्म दरसाये ॥ का०हं०पृ० १२ ।

३-(क) आधी राति भरी जाँतारा, तल निन्ह रवा मंगलाचारा ।

पंडितन्ह बैठि नचत करि साखी, उदै विचार लगन गनि राखी ।

भोर होत जाए बीतणी, पाटा गरह कुंडली लिखी ।

उ०वि०पृ० २०, २१ ।

(ख) जन्म तें रयनि छठी जगाय । श्रीकृत तपोर दीने सुभाय ॥

मा०रा०वि०पृ० ४१ ।

+ + +

लिखी छठी में सत्त्व सवाई । दान बूझ बल बूझ बढ़ाई ॥

गोरे० छ०प्र०पृ० २४

+ + +

छठी रति बाजन गह गहे, बावे बी सब गावत रहे ।

पुरजन्ह इन्द्र सभा अनु सारा, तल निन्ह गाइ कीन भित्तारा ॥

उ०वि०पृ० २१ ।

(ग) बीसा बुधक डोल डमकारति । इत नट नचनि पुसकि क्लिकारति ।

गायक विविध सोहिले गावत । अपनी मन बाँछित फल पावत ॥

ध०गु०पृ० २३१ ।

राजा के द्वारा गाय, स्वर्ण, नगजटित बंगूठी तथा बरकली वस्त्र दक्षिणा में देने का उत्सव किया है<sup>१</sup>। पुत्र-जन्म के अवसर पर इस प्रकार किये गये बात-कर्म संस्कार को देख कर परसोक-वाली पितृगण के हृदय फूले नहीं समाते<sup>२</sup>।

### नामकरण संस्कार:

८- बालक का नामकरण संस्कार भी अनेक विधि-विधानों के द्वारा संपन्न किया जाता है। सभी विद्वान् पंडितगण एकत्र होकर विचार विमर्श के पश्चात् बालक का नाम रखते हैं<sup>३</sup>। नामकरण करने के पूर्व लग्नों, राशियों एवं "होड़ाचक्र" आदि पर विचार करके तभी संस्कार संपन्न होता है। जन्म-पत्री का विचार भी नाम रखने के लिए किया जाता है। संस्कार संपन्न होने के साथ ही शिशु के मस्तक पर हल्दी एवं जावत छिड़क कर शुभ नक्षत्रों का बतान करने का उत्सव भी प्राप्त है<sup>४</sup>।

१- नृप कर कुछ पानी तब लीन्हा, दछिना सकल विप्रु कहं दीन्हा ॥

गाय सोन मुंदरी नग बरी । पाटंबर बरकली पावरी ॥ उ०वि०पु० २१।

२- बात कर्म कीन्हे सुख मूले, अमर पितर नर उर बति फूले ।

गोरे - उ०पु० पु० २४ ।

३-की रावकुमार सुनाम सब बमनहु सु तुमहि मिति मान बच ।

--कहे तब नाम रावकुमार । प्रमोदित वित सब परिवार ॥

मान०रा०वि०पु० ४२ ।

४- मनि माये हरदे नखत, गुनि-गुनि कीन्हे बतान ।

होडा चक्र विचारि के, राजी नाउ सुबान ॥

उ०वि०पु० २१ ।

† † †

ईस नखत अनुरूप बल बरब पंत परिनाम ।

जन्म पत्र तावे लिखी हे छक्कात यह नाम ॥

गोरे० छत्र प्रकाश - पु० २४ ।

### निष्क्रमण संस्कारः

९- निष्क्रमण संस्कार प्रसूति-गृह से बाहर जाने के विधि-विधानों एवं क्रियाओं से संबंधित है। माता एवं शिशु एक निश्चित दिन स्नान एवं पूजा आदि से निवृत्त होकर सौरगृह के बाहर निकलते हैं। मान में शिशु जन्म के दस दिनों के परचात् सूतक निवारण के लिए बननी द्वारा स्नान किये जाने की रीति की है। इस अवसर पर स्वर्ण एवं अन्य वस्तुओं का दान दिया जाता है और परिवार में हर्ष मनाया जाता है।

### जन्म प्रासनः

१०- जन्म प्रासन संस्कार शिशु को प्रथम बार जन्म दिये जाने से संबंधित है। साधारणतः यह संस्कार शिशु के दस मास के होने जाने के बाद और बारह माह के होने तक में किसी भी समय सम्पन्न किया जाता है। इस समय तक शिशु के दांत निकल जाते हैं और वह जन्म को ग्रहण करने के योग्य हो जाता है। जन्म प्रासन को बाबकल पसनी बयवा पासनी भी कहा जाता है। गौरे तास छप्पास की "पासनी" किये जाने का उल्लेख किया है पर इसकी पद्धति का वर्णन नहीं मिलता।

### चूडाकर्मः

११- चूडा-कर्म संस्कारको मुंडन संस्कार भी कहा जाता है। इसमें शिशु के केशों को कटवाने की क्रिया होती है। चूडाकर्म संस्कार के पूर्व नासक के सिर पर गर्भ के बाल होते हैं। रीतिकान्ध में चूडाकर्म संस्कार का उल्लेख केशव ने एक

१- बहु करत कूड का दिसस वित । बकसत हेम हय गव सुवित ॥

सूतक निवारि किम बननि स्नान । सुव निरधि निरधि हरपात सुवान ॥

मान०रा० वि०पु० ४१ ।

२- एकट पासनी में छवि छाई ।

गौरे तास - छप्पास पु० २४ ।

स्वान पर किया है। वीरसिंहदेव के सुख-शांति से सम्पन्न राज्य में वालों का नाश केवल बूढ़ाकर्म संस्कार सम्पन्न होते समय ही होता है<sup>१</sup>। इस संस्कार के साथ ही नृत्यगीत आदि के आयोजन एवं उत्सव होते हैं।

#### कणविषः

१२- कणविष संस्कार का संबंध कानवेधने की क्रिया से है। रीति काव्य में कणविष संस्कार का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त है यह सत्य ही कहा जा सकता है कि उस समय कान एवं नाक में आभूषण धारण करने के लिए कानों में छिद्र कराये जाते थे। कानों में पहने जाने वाले अधिकृत गहने वालों, कुण्डल, कर्णफूल आदि कान के छिद्रों में ही पहने जाते हैं। नाक की कील तथा लौंग आदि भी नाक के छिद्र की सहायता से ही धारण की जाती हैं। बिहारी ने नाक के छिद्र का स्पष्ट उल्लेख किया है<sup>२</sup>। साथ ही यह संस्कार अधिकतर मुंडन संस्कार के साथ सम्पन्न कर लिया जाता है। रीतिकाव्य में कणविष संस्कार का स्पष्ट एवं जलग उल्लेख न जाने का एक कारण यह भी हो सकता है।

#### विचारम्भ संस्कारः

१३- बालक की मेधा एवं वाक्शक्ति के समुचित विकसित हो जाने पर उसे विद्या अध्ययन के लिए तैयार होना पड़ता है। विद्या के क्षेत्र में बालक का प्रथम वरण विचारम्भ संस्कार के साथ पड़ता है। यह संस्कार बालक की आयु के पाँचवें वर्ष में सम्पन्न किया जाता है। किसी शुभ दिन

१- बाल नाश है बूढ़ाकर्म, तीछनता आयुष के धर्म ।

के०गु०पु० १७० ।

२- बरबट वैधतु भी हिवी ली नासा की वेध ॥

वि०र०दी०२७ ।

पंडित जबवा गुरु को बुला कर ब्याविधि पूजन करके वातक को गुरु के पाससीप दिया जाता है। उस्मान ने कुमार के पाँच वर्ष के हो जाने पर उसे गुरु के पास सीप देने की चर्चा की है। पाँच वर्ष के कुमार की बुद्धि एवं वाणी के उच्चारण ठीक हो जाने पर पंडित को बुलाकर रत्नों एवं मोतियों से भरे वात को राजा ने सामने रखा। कुंवर की भुजा पकड़ कर उसे गुरु के चरणों में ठाक कर कहा कि तुम गुरु क हो जीर यह चेला है।

#### उपनयन संस्कारः

१४- विद्यारम्भ के बाद कम में उपनयन संस्कार का स्थान है। "उपनयन" अर्थात् समीप ले जाना यह संस्कार वस्तुतः सवर्ण हिन्दुओं के वातकों कोवेदाध्ययन के लिए गुरु के पास ले जाने की दृष्टि से सम्पन्न किया जाता था। सोलह संस्कारों के मध्य उपनयन संस्कार का महत्त्व यह है कि यह वातक के एक सन्धे प्रशिक्षण काल का आरम्भ प्रोत्ति करता है। गृह्य सूत्रों में प्रतिपादित तथा बन्ध बाबायों द्वारा अनुमोदित सामान्य नियम यह था कि ब्राह्मण के पुत्र का उपनयन संस्कार बाठवें वर्ष में, क्षत्रिय वातक का ग्यारहवें वर्ष में जीर वैश्य की गुरु ञ-सन्तान का बारहवें वर्ष में होना चाहिए। भारत की वर्ण-व्यवस्था का विकास कुछ ऐसा रहा है जिसके कारण ब्राह्मण वर्ग को ऐसा कार्यक्षेत्र उपलब्ध हुआ जिससे उसकी संतान स्वभावतः बल्पवय में ही उन विद्याओं का अध्ययन करने योग्य हो हो सकती थी जिनका अध्ययन बन्ध वर्ग में अपेक्षाकृत अधिक वय में संभव था।

---

१- —पाँच बरिस की भवो कुमारा, बुद्धि बचन सब मुख उच्चार।  
तब विद्याधर पंडित हुंकारा, जाया बस सुर गुरु मनिबारा।  
मानिक रतन बार एक भरा। राजा गुरु के जागे घरा।  
गहि भुंज कुंवर पाँच तर मेला। कहेसि कि तुम गुरु यह तुव चेला॥



कदाचित् अन्य वर्णों में अधिक आयु में यह संस्कार संपन्न होने के पीछे वही कारण रहा होगा । इसके सम्पादन में बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था । यज्ञोपवीत या बनेऊ मंत्र-सिद्ध धागा होता था जो अब भी प्रचलित है, इसे बालक अपने दाएं स्कंध से डाल कर बाईं जोड़ कमर पर छोड़ता था । यद्यपि रीतिकालीन काव्य में यत्किंचित् कारणों से उपनयन संस्कार का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं होता, कदाचित् इसलिए कि प्रबन्ध-लेखन प्रवृत्ति का अभाव होने के कारण हमारा कवि जीवन को, उसकी संपूर्ण व्याप्ति के साथ, काव्य में अवतारणा करने का प्रयत्न नहीं करता था । केशव के काव्य में, केशव के स्वयं ब्राह्मण होने और ब्राह्मणत्व के प्रति एक प्रकार का लगाव और आत्मभिमान होने के कारण प्रायः कर्म काण्ड के उत्प्रेषण यथावसर आते रहते हैं, किन्तु उपनयन या यज्ञोपवीत का उनमें भी विशद वर्णन का अभाव है । राम के राज्य की सुव्यवस्था और जनसाधारण की धन-धान्य सम्पन्नता का तथा निर्धनता और विपन्नता के सर्वथा अभाव का उल्लेख करते हुए केशव ने बताया है कि लोग भिक्षादान एक धार्मिक औपचारिकता का निर्वह करने के लिए केवल यज्ञोपवीत या बनेऊ के समय ही लेते हैं<sup>१</sup> । इससे यह विदित होता है कि यज्ञोपवीत के समय धार्मिक उमचाराई भिक्षा मांगने की परम्परा, जो प्राचीन काल से चली आ रही थी, और जो पर्याप्त सीमा तक आज भी ब्राह्मण परिवारों में रक्षित है, वह आलोच्य-काल में भी वर्तमान है ।

१५- उपनयन संस्कार के पश्चात् छात्र वेदारम्भ करता है । तत्पश्चात् सोलह वर्ष की वय में शास्त्रों में केशान्त संस्कार की व्यवस्था की गयी है । गुरु-कुल में रहकर एक सम्प्री अवधि तक सांसारिक सुखों से दूर ब्रह्मचारी के संयम और अनुशासन का अनुवर्तन करते हुए छात्र के लिए तत्कालीन उपलब्ध ज्ञान-सामग्री के वर्जन की व्यवस्था थी । विद्याभ्यसन समाप्त होने पर बटुक के गुरु-कुल छोड़ने पर भी समावर्तन का संस्कार भी संपन्न होता था यह विद्यार्थी

जीवन की समाप्ति का सूचक था । इनके उत्प्रेष रीतिकान्ध की बात सीमाओं में उपलब्ध नहीं होते । इसके अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु एक सर्वप्रधान कारण है कि आरम्भ में इन संस्कारों के सम्पादन बितनी कठोरता और नियमबद्धता से होते थे वह व्यवस्था धीरे-धीरे बहुत कुछ ढीली होने लगी थी । इनके विभाजन के वैज्ञानिक मूलाधार प्रायः छूट गये थे, स्थूल नीपचारिकता शेष रह गयी थी और व्यवस्थाप्य और निर्वहक नीपचारिकता का अधिक दिनों तक निर्वाह प्रायः संभव नहीं होता । इसके भी प्रमाण नहीं मिलते कि तत्कालीन भारत में, गुरुकुलों और विद्यालयों की संख्या इतनी रही हो कि विद्यारम्भ से समावर्तन तक के संस्कारों, का उनकी पूर्ण सास्त्र-सम्मत व्यवस्था और सार्वकता के साथ सम्पादन किया जा सकता । इसलिए वह निष्कर्ष निकालना निराधार नहीं होगा कि किसी बड़ी पैमाने पर या कम से कम सार्वभौम रूप से इन सभी संस्कारों का विधिवत निर्वाह नहीं होता था ।

### विवाहः

१६- भारत की सामाजिक रचना की प्राथमिक इकाई परिवार है। विले सम्राज्य में परिवार का स्थान इतना महत्वपूर्ण और सर्वग्राही होता है, जहाँ जन्म से मृत्युपर्यन्त जीवन के सारे उच्चावच, सुखदुःख, उपलब्धि और अभाव परिवार की सीमाओं में ही मिलते हैं, जहाँ परिवार के कारणभूत व्यवस्था का स्थान किस्मिदह अथेकाकृत अधिक महत्व ग्रहण कर लेता है । भारत की पारिवारिक रचना बहुत सुसंगठित एवं बलित रही है । भारतीयों के जातीय चरित्र के बहुत-से गुण सहिष्णुता, उदारता, क्षमाशीलता, सेवाभाव आदि के पाठ परिवार की पाठशाळा में ही पड़े - बढ़ाये जाते रहे हैं ।

विवाह - स्त्रीपुरुष का एक दूसरे के सहकर बन कर जीवन आरम्भ की नीपचारिक व्यवस्था-परिवार की आधारशिला है । हमारे देश के समाज में सामाजिक उपचारों की उर्ध्व मुख कर उन्हें प्रायः धर्म की सीमा का संस्पर्श कराने की प्रवृत्ति रही है । इसीलिए हिन्दू विवाह <sup>२९</sup> एवं सामाजिक समकीता

मान न होकर एक धार्मिक कृत्य एवं संस्कार के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। विवाह को जीवन की महान्तम उपलब्धियों का राजमार्ग माना जाता है। विवाह न करने वाले व्यक्ति का हमारे शास्त्रों ने 'अवज्ञितो वा एष यो यत्नीकः' कहकर यत्नहीन घोषित किया है। वस्तुतः विवाह का महत्व अनेकमुखी है। व्यक्ति के स्तर पर यह मानव-स्वभाव की मूलभूत वृत्ति "काम" की उपलब्धि का माध्यम है। सामाजिक स्तर पर यह पारिवारिक व्यवस्था को अधिक संगठित कर उसका आधार दृढ़ करता है। मानव की एक <sup>बहुत</sup> बड़ी ऐन्द्रिय बुभुक्षा, अथवा योनि-पिपासा को संयमित और सीमित कर, बड़े पैमाने पर, समाज में दुराचरण एवं भ्रष्टाचार की संभावनाओं को कम करता है। स्त्री और पुरुष के संबंधों को स्वतः ऐन्द्रिय परातप से ऊपर उठाकर उन्हें एक स्थायी मानसिक राग और पारस्परिक आत्मसमर्पण का गौरव प्रदान करता है। स्त्री और पुरुष मिली ऐन्द्रिय भूत को मिटाने के लिए ही सहसर नहीं बनते, अपितु मानव जीवन के महान्तम उद्देश्यों की प्राप्ति में सहभागी होते हैं। धार्मिक स्तर पर विवाह को स्वयं एक यज्ञ माना गया है। स्त्री और पुरुष यानी प्रकृति-और पुरुष सृष्टि के ये दो तत्व मिल कर इस जीवन यज्ञ को सम्पन्न करते हैं, सृष्टि का क्रम नामें बढ़ता है, मनुष्य की भावी पीढ़ियाँ, जिनके अवतारणा का कारण यह विवाह ही है। मनुष्य जीवन के साध्य की सिद्धि में सतत प्रयत्नशील रहने का अवसर पाता है। इस प्रकार विवाह के संबंध में भारतीय धारणा उसे केवल एक सामाजिक साधक दारी न मान कर जगन्निबन्ता परमात्मा के सृष्टि-बीजना का एक अविच्छेद पुनीत अंग मानती है।

१७-

विवाह के इस संस्कार को सम्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार कि विधायें प्रचलित रही हैं। हमारे यहाँ वैशाख, राक्षस, गान्धर्व, असुर, प्राजापत्य, ब्राह्म, वैश्व एवं ग्राह्य विवाह के आठ प्रकार प्रचलित रहे हैं। वस्तुतः भारतीयकाव्य में इन सभी विवाहों के अलग-अलग सीमा-रेखा-बद्ध विवरण प्राप्त नहीं होते और कदाचित् यह संभव भी नहीं है, क्योंकि कोई भी शास्त्रीय व्यवस्था जब मानव जीवन के व्यवहारिक धरातल का संस्पर्श करती है तो उसकी शास्त्रीय अपेक्षाएँ बहुत कुछ ढीली होने लगती हैं।

रीतिकान्ध में प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए विन्ताकृत है। विभावली की माता उसके विवाह के लिए विन्तित है बेटी सयानी हो गयी है कृत यथादा की रक्षा के लिए यह अपेक्षित है कि राजा उसके लिए योग्य वर ढूँढे ताकि वंश का दीपक प्रज्वलित रह सके। हस्त-जवाहर में भी इसी प्रकार का प्रसंग आया है। रानी राजा की उद्बोधित करती है कि तुम अपने सुख-ऐश्वर्यों के उपभोग में लिप्त हो पर मैं क्या हूँ योग्य सयानी पुत्री के विवाह की विन्ता नहीं कर रही हूँ। रानी अपने जीते जी अपनी बेटी का विवाह देखने की प्रसन्नता प्राप्त कर लेना चाहती है। वस्तुतः हमारे देश का सामाजिक संगठन ऐसा है जिसमें बेटी अनेक आर्थिक एवं सामाजिक कारणों से पिता के लिए बड़ी विम्बेदारी होती है। कण्व जैसे महर्षि और वीतराग के लिए भी पुण्य-परिणामोपरान्त शकुन्तला का खसुर गृहगमन, उस दायित्व से मुक्तिवन्धु सुख और पुत्री से विछोह के उत्तेज का अनोखा संयोग प्रस्तुत करता है। विवाह का महत्व अधिक होने के कारण ही, स्वभावतः, विवाह का संपादन मन्त्री प्रसन्नता का कार्य समझा जाता रहा है। लड़की बालों का दर्जा निरिक्त रूप से नीचा रहता था और वे वस्त्र-पेश का विनम्रतापूर्वक स्वागत स्तुकार करते थे, उनके उचित-अनुचित सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का भरसक प्रयत्न करना, और उनके अनर्गल आरोग्यों को विनम्रता पूर्वक सहन करना वधू पक्ष का कर्तव्य था। नृपति भी पुत्री के विवाह में अकिञ्चन जन की भांति हाथ जोड़ कर विनती करते हैं। पुनः पुनः

१- रानी कहा सुनहु नर नाहो, मोहिं पुनि सरक उठी मन माँहा ।  
विभावलि संयोग सयानी, कीबे सोई रहै कृत पानी ॥  
बोधिअ किहुं एहि लागि बीरा, बेहि दीपक कृत होई बबीरा ॥  
उ० वि०पु० १८४ ।

२- कस तुम भूत रह्यो सुख भोगा ।  
पर मा बारी क्या हन भोगा ॥  
जियत हुआस देखि सो लीये ।  
वेगि विवाह वारि कर लीये ॥ का० क०पु० १९ ।

वर पदा वालों का वरण-स्पर्श करते हैं। अपने अवगुणों को छिपाने का अनुरोध करते हैं<sup>१</sup>। भारत में वासोन्मकाल में गान्धर्व या छिे अन्य असंयोजित प्रेम-विवाहों की परम्परा नहीं रही। लड़की का पिता प्रायः विवाह के प्रस्ताव को ले जाता है। लड़के वाले उसे स्वेच्छया स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। कुल-पंक्ति आदि का विचार करने के उपरान्त यदि दोनों पक्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं तो वाग्दान होता है। वधू-पक्ष से स्वीकृति के उपरान्त नारियल भेज कर वाग्दान की औपचारिकता की पूर्ति की जाती है। नारियल स्वीकार कर वर-पक्ष विवाह की निश्चित कर देता है और वर का तिसक पुरोहित के द्वारा सम्पन्न होता है<sup>२</sup>। इसे सगाई भी कहते हैं। सगाई बहुत अल्प-वय में ही हो जाती थी। "वनारसी सास" की वर्य के हुए तभी उनकी सगाई हो गयी<sup>३</sup> और दो वर्ष बाद लगन निश्चित होने पर गम्हारह वर्य की वामु में उनके ब्याह का ठाठ रवाया गया<sup>४</sup>। छत्तास की भी सगाई पहले ही गयी थी तदुपरान्त विवाह की औपचारिक लगन भेजी गयी<sup>५</sup>। लगन शोधन का कार्य पुरोहितों द्वारा गृह-नदाजी के विचार के आधार पर शुभ पड़ी की उद्देश्य में रख कर निश्चित किया जाता था।

१- नृप कर जोरे विनती करई, फिरि फिरि महत पाठ ते परइ ।

तुम सब आपनि जानि बड़ाई, मों नौगुन सब तेव छिपाई ॥

उ०वि०पु० १०० ।

२- मन हरजत सु पठ्यौ, नासिके नर राव ।

तपनिव साकति वर सुरग भूषन कनक सुभाष ॥

नासिके नाच्यौ नृपति सदा सवाई सव्य ।

प्रोहित राजकुमार के तिसक कठिठ निबह्य ॥ मान०रा०वि०पु० ४८-४९।

३- वनारसीदास- वधू क्या - पृ० १९ ।

४- त्योंही लगन ब्याह की जाई । पछि ते ली रही सगाई ।

सास०उ०पु०पु० ७० ।



के बाजे डंका, शहनाई, भेरी, दमामा आदि बजते जा रहे हैं। कन्या के घर में बारात पहुंचने पर द्वारद्वार की रस्म पूरी की जाती है। विजावली के घर बारात पहुंची है। अम्बरानों की भांति दो युवतियां कनक-कलश लिये खड़ी हैं। द्वार पर दूल्हे को टीका लगाया जाता है, अनेक नेम दिये जाते हैं। मणिमालाओं से युक्त कलश सजाये जाते हैं। उस्मान ने विजावली के द्वार पर वर एवं वरमाया की अगवानी का वर्णन किया है। उनकासे से बारात द्वार पर जाती है स्थान-स्थान पर चम्पा, बूही, जाग वैसन्दर, चन्द्रवोति, मेहताव आदि फुलफड़ियां एवं आतिशबाजियां छूट रही हैं।

१९- द्वारद्वार के उपरान्त विवाह के मुख्य नाचोवन आरम्भ होते हैं। दूल्हा सिर पर स्वर्णमणि बद्धि सेहरा धारण करता है। कन्या के घर

१- सोहि सुधरी मधुरति मला, साधि बराति मछा सै बला ।

बहि बंडोत कुंवर अभिलखा, माये मुकुट बराबक रावा ।

चमकहि चुन्नी कुंदन रली, भूखहि भाकर मुकुता छली ।

पुनि नैननि मंह काबर कीन्हा, इष्टि नेवार चौबड़ा दीन्हा ।

हार हमैत फूल पहिराए, नौ मुसयान कपूर सवाए ।

डंका दमामा कन्हारा शहनाई नौ भेर ।

पहुमी रहेत नकुल होइ, सात कोस के फेर ॥ड० वि० पु० १९०॥

२- कनक कलस बल भरि दुख बनी, नई वन अमरुता बनी ।

नैन मीन मुख दधि सब सारा, कुंवरहि सवाहि समुन बैसारा ॥

ड० वि० पु० १९० ।

३- महाराज विक्रम तिहि वारी । कलस कंठ माता मणि डारी ॥

कुलह उतर द्वार जब जावा । नैनन की सब मीम लगावा ॥

टीका किये बहू रव जावा । शिमिका कनक बार गजरावा ॥बो० वि० बा० पु० १५३॥

४- पुनि अगवानहि सै चल्पा, जहां जावा जनबाई ।

+ + +

जगिनिबहु बहु कीन्ही केरा, पूरन सधि वन विरहित केरा ॥ड० वि० पु० १९८॥

५- मान० रा० वि० पु० ७५-७७ ।



में सवे मंडप की शोभा का वर्णन करने में उस्मान की रचना असमर्थ हो जाती है। अत्यन्त अपूर्व मण्डप सजाया गया है। एक सतम्भों पर दृष्टि नीधिया जाती है। जामुन मंदरियों के वन्दनवार सजाये गये हैं। सन्धे के नीचे कलश पर चतुर्मुख दीपक जल रहे हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण जाकर मन्त्रीञ्चार के साथ जगिन को जागृत करते हैं। शुभ मुहूर्त-पर विजावली को मण्डप में लाया जाता है। कर्मकाण्ड पारंगत ब्राह्मण वेद मन्त्रीञ्चार के साथ गठ-बन्धन कराते हैं। शोभा का मण्डप वर्णन अधिक सुस्पष्ट और विशद् है। जगिन को क्षीप पीत कर संपूर्ण गृह को वरकल से सजा दिया गया है। मण्डप हरित वस्त्राढों से तैयार किया गया है उस पर जामुन की टहनियाँ बिछायी गयी हैं। मंडप के नीचे कपड़े का पर्दा लगा कर मणि मुस्ताबों की शोभा का विशद् जाबोजन है। सोने के सन्धे यहाँ भी हैं, मध्यस्थ पंचम त्तम्भ, हीरे जवाहिरातों से बड़ा गया है। मंडप में पिता या परिवार का अन्य कोई वरीय सदस्य कन्या-दान करता है। विजावली के विवाह में "कुत्तपानी" लेकर विष्णोत्तन अपनी पुत्री के दान का संकल्प करते हैं। कौतावली को वर के वरणाँ में हातकर विष्णोत्तन हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं "इसे आप अपनी दासी समझ कर

१- ड०चि० पृ० २०१-२०२ ।

२- जगिन तियाय द्वातल पुताई । वरकल में बसरी सब छाई ॥  
जात रूप मय कलश संवारी । विभ संहित बहुधा छवि वारी ॥  
हरित वास मंडप शुभ साबा । जामुन पल्लव छाया विराबा ॥  
नीचे वर बंकर तनवाये । मणि मोतिन गुच्छा छवि छाए ॥  
सुवरनमय अपार छवि छावक । सुवरन मय मूनी सब लावक ॥  
पंचम संभ जवाहिर बड़े । मंडप मध्य सड़े सी करें ॥

बो०वि०बा० पृ० १५९ ।

३- विष्णोत्तन पुत्री है कुत्तपानी, संकल्पी विभ सब वग जानी ॥

ड०चि०पृ० २०२ ।

स्वीकार करें, मैं विधि विहित रीति से इसे आपकी देता हूँ ।" उसी राण ब्राह्मण वेद मन्त्रों का उच्चारण कर वर-वधू को विर दाम्पत्य बंधन में बाबंद करते हैं । सुनतिवा अपने मधुर स्वरों में प्यार भरी गातिवा सुनाती हैं<sup>१</sup>। गठबधन के समय विष्णु के वेदपाठ और स्नान का वर्णन राजविलास में भी उपलब्ध होता है<sup>२</sup>। मंडप में बहुविध गाती गाये जाने के उत्सव मिलते हैं । नीपति की दृष्टि में ससुरपुर की गातिवा का विशेष माधुर्य एवं महत्त्व है<sup>३</sup>। समय विचार कर कही गयी फीकी बात की तरह विववाह के समय गाती सबका मन हर्षित करती है<sup>४</sup>।

२०- हिन्दुओं का वैदिक विवाह व्यवस्था की विधि इतनी विशद एवं बटित है कि काव्य में उसके सभी विस्तारों के संदर्भ पाने की आशा कदाचित् नहीं की जाती बाविए फिर भी कन्यादान के परचात् पाणिगृहण अग्नि प्रदक्षिणा, सप्तपदी आदि के उत्सव मिलते हैं । भगवान् राम के विवाह में ऋषि वशिष्ठ कृतज्ञ-पूजन करा रहे हैं और महर्षि सतानन्द आदि सम्मिलित रूप से सरस शाबोज्वार कर रहे हैं<sup>५</sup>। सेनापति दूतह वसन्त का

१- कुँवर पाह तर मेलि किहोरी, बाबुन ठाढ़ भए कर जोरी ॥  
कहिहि सेहु बेहि बेरी बानी, मैं संकषपी दे कुशपानी ॥  
ततछन जानि कीन्ह मँठ जोरा, वेद पढ़हि बाभन बहु जोरा ॥  
तरु निन्ह पुनि कतकँठ सुनावा, कीतहि साह सुजानहि गावा ॥  
उत्पान-वि०पु० १५३-१५४ ।

२- मान०रा०वि०पु० ८८ ।

३- जोरी नीकी जोर की सुकवि की सवारी नीकी ।  
गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की ॥नीपति० क०कौ०पु० ३९० ।

४- फीकी ये नीकी समे कहिए समय विचारि ।  
सब की मन हर्षित करे ज्यो विवाह में गारि ॥दुन्द०क०कौ०पु० ३९३ ।  
निरस बात सोई सरस बहाँ होय हित हो ॥

गारी हूँ प्यारी लगत ज्यों ज्यों समधिनि हो ॥दुन्द०सा०पु०पु० १९३ ।

५- सब भाँति पुतिष्ठत निष्ठभति, तहँ वशिष्ठ पूजत कृतज्ञ ।  
सतानन्द नन्द भित्ति-उच्चारत शाबोज्वार सब सरस ॥

के०पु० २५४ ।

रूपक बनाते हुए भी दिव्यजन से शाहीज्वार की व्यवस्था कराते हैं ।  
 लीलावती के व्याह में भी गजपोतिन की बीक पुराकर कवन कलश धराया गया  
 है । रतिनाथ लीलावती के साथ बैठे हैं उनके सिर पर मणि लक्ष्मि मीर है  
 विष्णु शाहीज्वार कर रहे हैं । गणपति अग्नि की पूजा के बाद समिधा,  
 सुपारी आदि अर्घ्योक्त वस्तुओं के सहित अन्न कृत्यों का संपादन कर रतिनाथ  
 और लीलावती की भाँवर पढ़ती हैं । शास्त्रीय दृष्टि से सप्तपदी अत्यन्त  
 महत्वपूर्ण है इससे ऐश्वर्य, सुख, भूति, सुख पशु, इतु और सत्य इन सात  
 फलों की प्राप्ति होती है । इसी के परचात् विवाह वैध सम्पन्न जाता है ।  
 कभी-कभी सात के स्थान स्थान पर पाँच भाँवरे पढ़ने के उल्लेख भी मिलते हैं ।  
 पतट्ट ने राम-सीता के विवाह का रूपक वापते हुए पाँच भाँवरे पढ़ने की  
 बात कही है । भाँवर पढ़ने का उल्लेख फुलगात् सछिराम ने भी किया है ।  
 भाँवर के बाद पलकाचार की व्यवस्था की जाती है । लीलावती के व्याह में  
 रतिनाथ अन्न राजाओं के साथ सहर्ष भोजन करके सबको सम्यक् पान का  
 बीड़ा छेते हैं तत्परचात् रघुदत्त ने सभी नारातियों को बुलवाया और सभी  
 लोग पलकाचार के निमित्त मंडप में गये । देशम के विद्यावन पर तने बितान  
 की छाया में सब लोग अत्यन्त सुखपूर्वक प्रतिष्ठित है विन्न-विन्न "पलका"  
 बना हुआ है और उस पर अन्न विद्या है जहाँ लीलावती और माधव बैठे

१- से०क०र०पु० ५७ ।

२- गणपति पावक पूजिते समिध सुपारी ज्ञान ।

परि भाँवर रतिनाथ की बहुविधि वी नितान ॥

बो० दि०वा०पु० १५४ ।

३- सुरति और सबद मिल पाँच भाँवरी फिर ।

पतट्ट बानी पु० ५४ ।

४- सछिराम-सा०पु०पु० १७३ ।

हैं ।

११- पलकाचार के उपरान्त दहेज देने के लिए बधूपत्र वाहे जनवासे जाते हैं । दहेज में बधू के पिता की स्थिति के अनुरूप भिन्न-भिन्न वस्तुएं होती हैं । राम के विवाह में विदेहराज ने गज-बाघि के समूह स्वर्ण और हीरों के हार, वस्त्र, वित्तम वस्त्र-स्त्र नादि अनेक वस्तुएं दीं । राजा का दहेज होने के कारण उसमें असंख्य दास दासियां भी थीं । लीलावती के विवाह में रघुदास भी कुलजनों एवं स्वमानों को बुला कर दहेज देने जाते हैं । उनके दहेज में गज-बाघि, रथ, शिविका, मुक्ता, मणि और भांति भांति के वस्त्र आदि सम्मिलित हैं ।

१२- विवाह के अन्य उपचारों में तैल चढ़ाने, साज-होम, फलदान गणेश-पूजन, अर्घ्यदान आदि के भी उल्लेख पाये हैं । विरह वारीश में बीषा में मंगल गान के साथ तैल चढ़ाने, गणेश-पूजन और अर्घ्यदान का भी उल्लेख किया है<sup>४</sup> । सेनापति ने बलुराज को दुल्ह का रूप धेरे हुए साज-होम

१- भीवन कर भूषन सज्जि हरषि चले रतिनाथ ।

समधिनि को बीड़ा दिखी बड़ी प्रीति के साथ ॥

सब बरात रघुदास ने बुलवाई तिहि बात ।

सवि सवि सब मंडप गये करिये पत्तिकाचार ॥

बी० वि० बा० पृ० १५४-५५

२- के० गृ० पृ० १६१

१- कुल स्वमान सब को बुलाय । गयी देन दास्यो सबको सिवाय ॥

गज बाघि, रथ, शिविका विशाल । मणिमन अनेक मुक्तामाल ॥

बी० वि० बा० पृ० १५५ ।

४- मंगलगान नारि सब गाये । पंक्ति लोग अचार कराये ॥

पूजि गणेश लगन कर वारी । भई पुसन्म शिवान कुमारी ॥

अर्घदीन दुल्ह घर गाये । धन समूह बिलुप्ताने पाये ॥

बी० वि० बा० पृ० १५१-१५२

अगवानी, तेस बड़ाने और शाखोज्वार के नाम लिये हैं । हिन्दू विवाह बहुत व्यापक समारोह के साथ मनाया जाता रहा है । परबन-परिबन के खाने-खिलाने के अतिरिक्त एक सर्वव्यापी उत्साह का जो वातावरण होता है उस मनोवैज्ञानिक कारण की पृष्ठभूमि में वार्षिक पुरन गीण हो जाती है । संपन्न और विपन्न, धनी और निर्धन सभी समान उत्साह से विवाह का आयोजन करते हैं । कुटुंबियों के घर कड़ाहे बढ़ते हैं और आतिथ्याची घर पानी की तरह धन व्यय किया जाता है<sup>१</sup> ।

२३- वाराणस बधू के घर प्रायः तीन दिन ठहर कर चली जाती थी । प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि बधू को कहीं-कहीं तो घर के साथ ही विदा कर देने का चक्कर रहा होगा, किंतु बन्धन द्विरामन की

१- धर्मो है रसास और सरस सिरस लुचि,  
 ऊँचे सब कुल मिले गनत न बत है ।  
 सुचि है अवनि बारी भवो सावहीम तहां,  
 भीरी देखि होत बलि आनंद अनंत है ।  
 नीकी अगवानी होत सुख कमवासी सब,  
 सबी तेसताई पैन-पैन यवमंत है ।  
 सेनापति धुनि जिय साखा-इज्वरत देखी,  
 बनी दुतहित बनी दुतह वसंत है ।

दे० क० र० पृ० ५७ ।

२- सिंगरे नगर और सब माँही । आतिथ्याची पुरन बड़ही ।

† † †

और प्रभात नगर सब माँही कुटुंब के घर बढ़ी बड़ाही ।

बी० वि० भा० पृ० १७३ ।

औपचारिक आयोजना के परचाते ही वधू स्वसुरगृह जाती होगी । उम्मान ने कीर्तावती के स्वसुरगृह गमन के पूर्व मायके में ही पति के संग मिलन का वर्णन किया है<sup>१</sup> । बारात लौट कर वधू वर के घर पहुँचती है तो वहाँ भी वर-वधू (यदि वधू साथ आयी हो तो) की बाराती उतारी जाती है, टीका और न्यौछावर किया जाता है<sup>२</sup> । वधू के वर के साथ विदा न होने की स्थिति में औपचारिक रूप से विरागमन की आयोजना की जाती थी जो अपने आप में वैवाहिक उपचारों की एक प्रकार से पुनरावृत्ति होती थी । पंडित से गीने के मुहूर्त-शोषन के लिए कहा जाता था । तिवि, बार, शकुनापशकुन, दिशा, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की स्थिति के विचार के उपरान्त वैदविद् पंडित सग्न का विचार करते थे<sup>३</sup> । बात विवाह की प्रथा

१- उ० वि० पृ० १५६

२- मुहवावन टीका सु करि गौरि गणेश मनाय ।

पुतहुस्त निज पूत को माता बली तियाय ॥

पूत सखि पुतहु पर जाई । परी बार तक बजी बपाई ॥

दान बहुत मंगलन्ह कहँदीनी । निवता सकल नगु कहँ कीनी ॥

बो० वि० बा० पृ० १५५

१- ऐति पंडितक वैद विचारी । आश्लि सुक पञ्चिम दिशि भारी ॥

मंगल बुद्ध उत्तर दिशि गाढ़ा । समूह कास कटक हो बड़ा ।

का० हे० व० पृ० १९६ ।

बाजा दीनी गीन की करो साथ तिहि योग ।

बनेहिमा दीक न लगे भला कहे सब लोग ।

धुनि धनि गीन जल चिऊ केरा । गह तनु सुखि काम भुषेरा

का० हे० व० पृ० १९५ ।



होने के कारण गीने का व्यापक रूप से चलन होना बहुत कुछ स्वाभाविक था । जाठ या नौ वर्ष की वय में बालक बालिकाएँ वस्तुतः इस योग्य नहीं होती थे कि वे दाम्पत्य जीवन के सभी विहितार्थ समझ सकें और उनका व्यावहारिक निर्वाह कर सकें । इसलिए गीना विवाह के तीन, पाँच या सात वर्ष जबवा सुविधानुसार अन्य कालावधियों के व्यवधान के परवात् करने का चलन था जैसा कि आज भी बहुत कुछ देखने को मिलता है । गीने का समय जाते-जाते बधू सवानी हो जाती थी । उसमें दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करने की समझ आ जाती थी । पद्माकर की नायिका दुरागमन का समाचार सुनकर अपने हर्षातिरेक को छिपाने के लिए मुँह टंक कर बैठ जाती है<sup>१</sup> । मतिराम की नायिका भी गीने की वय चलने पर प्रसन्नता के आतिशय में अर्धोन्मीलित नेत्रों से, गूँधी हुई मासों को फिर से गूँधने लगती है<sup>२</sup> । बधू जब विदा होने लगती है तो उसके परिवार की सवानी स्त्रियाँ, सवानी सहेलियाँ समस्तकारण सभी अपनी अपनी भूमिका का निर्वाह करती हैं । उस्मान की नायिका जब विदा होने लगती है तो उसे अपने सवानों से विविध प्रकार के उपदेश मिलते हैं जिसमें नव-परिणीता बधू की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । उसे दिन भर कौठरी में रहना चाहिए आँगन में केवल रात में निकलना चाहिए, किसी की दुष्टि के सामने न जाना चाहिए, मुसबनी से डरते रहना चाहिए । किसी की बात का घृतपुसर नहीं देना चाहिए । यही नहीं सत्पत्न्यता बधू की

१- जावत सैन दुरागमन रमन सुन्नत यह वानि ।

हरष छियावन हितभद रही पीढ़ि पट तानि ।

पं० गृ० पृ० ११७

२- गीने की बरवा बतें, दिए तहाँ कि बाल ।

जयमूदी अखियान ली मूदी मूदतिमात ॥

पं० गृ० पृ० ४१३

ननद की भी जती कटी सुनकर चुप रह जाना चाहिए। रीतिकालीन कवि की ऐन्द्रिय प्रवृत्ति को गीने से संबंधित चित्र बनाने में अधिक विवश और रसानुभूति होती है। कहीं-कहीं तो गीने के चित्र इतने रसमिग्न है कि कवि की अपनी ऐन्द्रिय साक्ष्या के पुट के कारण पाठक का मन भी उनके डूबने-उठराने लगता है। गीने के दिन रसवन्ती बधू और रसिक्कर दोनों चौक पर बैठे हैं सखियों ने बर बधू की गाँठ बंध कर उन्हें स्नेह के नित्य नवीन पुष्प खिलाने का मधुमिश्रित आशीर्ष दिया। मतिराम की नायिका का गीना हो रहा है। सयानी और सपवक्ता सखियाँ आयी हैं। नवबधू को आभूषण पहनाते हुए प्रियम्बदा सखी, उपहास में यह आशीर्ष देती है कि उसके पाँवों का बिछुआ प्रियतम के कानों में सदैव मधुर ध्वनि से बजता रहे। सयानी सखियाँ अनुभव के आधार पर बधू को शीत और आचरण का उपदेश देती है। नवबधू के मन को रस भीनी कल्पना के पंख देकर अनदेखे आनन्द लोक में पहुँचा देती हैं। नवोढ़ा को बेही बातें कहनी चाहिए जो

१- अब जो घरि दुइ माँह पिठ, तै गीनहिं गहि बाँहि ।

बजन दी एक उपदेश हित, कहाँ परब बिस माँहि ॥

-- ओबरी माँह रहव दिन गोई, आंगन होवु रात बव होइ ।

बैसब सदा बार दे पीठी, परै न सौँह जान की दीठी ॥

-- पुनि उर मानव गुरबन केरी, सन्मुख करहु न देखव हेरी ।

उतर न देवु कहे जो कोई, साजन रहव चरण तर जोई ।

ननदी औबर जो कहै, रिसि राखव बिस मारि ।

परिधि सोस पर लेव नित सामिनि देइ जो मारि ॥

उ० वि० पु० २२३ ।

२- गीने के घोस सिंगारनि की मतिराम सहेलिन की गनु आयी ।

पावन के बिछुआ पहिरावत प्यारी सखी परिहास बढ़ायी ॥

"पीतम सुन समीप सदा बबै" यों कहिके पहिले पहिरायी,

कामिनि कौल चला बन कीकर ऊँचों कियौ पै चल्पाँ न चलायी ॥

म० गु० पु० २२५ ।

पति की अच्छी लगे और अपने कथ्य को कहने के लिए उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो मनभावन के मन को रुचे । उस अननुभूत सुख की कल्पना से नायिका के जोड़े उरोजों पर अनुराग के बँकुर उठ जाते हैं<sup>१</sup> । गीने के समय की शिवाजी में सास-ससुर की सेवा, बिठानी के प्रति सहिष्णुता, ननद के प्रति सहनशीलता, पति से प्रेम और भक्ति नौकर-चाकरों के प्रति सद्भाव आदि अनिवार्यतः सम्प्लित किये जाते हैं<sup>२</sup> । बारात जब बधू को लेकर घर के घर पहुँचती है तो वहाँ हर्षातिरेक, विजासा और आशंका का अनौठा वातावरण तैयार हो जाता है । माँ को अपने पुत्र के लिए जीवन-संगिनी प्राप्त हो जाती है जो उसके कुल की दीपशिखा की भविष्य में भी जलाये रखेगी । बिठानी को दीदी कहने वाली माता-कारिणी देवरानी मिल जाती है । ननद को हँसने खेलने और लड़ने के लिए समयमक भाभी प्राप्त हो जाती है । मुँह दिखाई की रीति पूरी करने के लिए परिजन-पुरजनों की स्त्रियाँ जाती हैं<sup>३</sup> ।

२४- मातृव्यकास के काव्य के आधार पर विवाह के संबंध में हम जो चित्र बनाते हैं उसकी रंग-रेखाएँ हमारी परम्परागत हिन्दू-विवाह पद्धति से बहुत भिन्न नहीं हैं । तत्संबंधी कर्मकाण्ड, विवाह के पीछे निहित

- १- गीने के चार बली दुलही, गुरुत्तीगन भूषन भेष बनाये ।  
सील समान सखीन सिखायो, सब सुख सासुरे ही के सुनाये ।  
बोतिमे बोल सदा हसि कोमल, जो मनभावन के मन भाये ।  
यों सुनि जोड़े उरोजनि पै अनुराग के बँकुर से उठि जाये ॥ दे० द० पृ० ८७ ॥
- २- नैह्र जानि न जाइ कछु गुन जौगुन एक मान ।  
सोइ सुहागिन भामिनी जाकर ससुरे मान ॥ उ० वि० पृ० २२१ ॥
- ३- मानहुँ मुँह-दिखरावनी दुलहिहिँ करि अनुरागु ।  
सासु सदन पनु ललन हूँ, सीतिनु दिखी सुहागु ॥

मूल भूतधारणा, पति-पत्नी के संबंध एवं भारतीय समाज में विवाह के स्थान आदि के संबंध में जो प्रश्न उठते हैं और उनके जो उत्तर प्राप्त होते हैं वे हमारी सनातन मान्यताओं के अनुरूप ही हैं किन्तु यह अवश्य है कि अतीत में नारी के कर्तव्यों के साथ - साथ उसके अधिकारों पर भी समान रूप से और दिया जाता था। उसकी स्वाधीनता और उन्मुक्ति पर अत्यल्प प्रतिबन्ध होते थे। वहाँ आलोच्यकाल में नारी की स्थिति प्रायः गौण होने लगी थी। "सहधर्मिणी" नाम उसका अब भी नहीं छूटा किन्तु हमारी कवि की रस सीतुपरसना उसके रमणीयत्व पर अधिक रमने लगी थी। विदा होते समय वधू को दो जाने वाली सीख की सूची में भी सहिष्णुता के स्थान पर सहनशीलता, उदारता के स्थान पर अधिकारों का सर्वथा त्याग, सच्चा और संयम के स्थान पर पर्दा और नाटक का प्रवेश हो गया था। यद्यपि समीक्ष्य काव्य में विवाह सम्बन्धी सभी उपचारों के विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं होते किन्तु इतना आधार तो है ही कि कोई भी सार्थक और महत्वपूर्ण उपचार पूर्णतः विलुप्त नहीं हुआ था उसका कायाकल्प भले ही हो गया हो। विवाह हमारी सामाजिक रचना की महत्वपूर्ण व्यवस्था है, परिवार का तो वह मूलधार है ही। विवाह के परचात् हिन्दू गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करता है, अपनी सहचरी के साथ जीवन के विविध उत्थान-पतन देखता अपनी जीवन-यात्रा पर गतिशील रहता है। जिस परिवार में वह जन्मा था उसका आधार विवाह था और जिस परिवार में वह अंतिम सांस लेगा उसमें भी विवाह के माध्यम से भावी पीढ़ियों के दीप ज्योतिषित करता हुआ स्वयं बुझ जाता है।

### जन्मोद्दिष्ट संस्कारः

१५- हिन्दू का जन्म ही नहीं, उसके जन्म से पूर्व और मरण के बाद के उपचार भी शास्त्रीय विधि से नियमित होते रहे हैं। शास्त्र सीक्रीवन के परातल पर पहुँच कर व्यवहारिकता का उपहार पाता रहा है और सीक्रीवन की मान्यताएँ कालान्तर में शास्त्रीय गरिमा से अभिहित होती रही हैं। जन्म-पूर्व से लेकर मरण तक का काल हिन्दू के जीवन में संस्कार व्यवस्था से अनुशासित होता रहा है। इसलिये स्वभावतः हमारे शास्त्रों में मृतक की

अन्त्येष्टि क्रिया की भी विधिवत् व्यवस्था की गयी है। हिन्दू सामान्यतः पुनर्जन्म पर विश्वास रखता है इसलिए परलोक में उसके भावी सुख और कल्याण के हेतु और नवीन जन्मों में सम्बन्ध अवतारणा के लिए मृतप्राय और मृत व्यक्ति के जीवित संबंधी उसके लिए विभिन्न उपचारों का आयोजन करते हैं। पुनर्जन्म पर विश्वास के कारण हमारी आस्था कर्मफल पर भी टिकती है। कर्मफल पर आस्था होने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि हम इसलोक में सत्कार्य करने का प्रयत्न करते हैं ताकि परलोक सुखे और नवीन जीवन में हम अधिकाधिक सुखी हों।

२६- जब कोई व्यक्ति मरणासन्न हो जाता है तो हमारे यहाँ गोदान और स्वर्णदान कराने की प्रथा है। यह विश्वास किया जाता है कि जीवात्मा को स्वर्ग लोक में पहुँचने के लिए वैतरिणी नामक नदी पार करनी पड़ती है। दान दी गयी गाय की पूछ पकड़ कर संवर्षित जीवन) वैतरिणी को पार करता है। प्राणांत के पश्चात् मृतक को शय्या में लिटाया जाता है। उसके विभिन्न सम्बन्धी और पास-पड़ोस या गाँव के लोग एकत्र होते हैं। स्त्रियाँ मृतक के विधौग में और-और से विलाप करती हैं। पुरजन-परिजन मृतक के संबंधियों को सात्त्वना देते हैं। मृतक का शरीर श्वेत नवीन वस्त्र में लपेट दिया जाता है। ये परम्पराएँ बहुत कुछ राज भीषणों की तथों बनी हुई हैं। प्रायः तत्कालीन सभी यात्रियों ने विशेष कर मनुची ने, मृतक के दाह संस्कार एवं जन्म अन्त्येष्टि क्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया है। पर से मृतक का शरीर उस विशेष प्रयोजन से निर्मित शय्या में ले जाया जाता है। कहीं-कहीं मृतक के पीछे बाजे आदि बजने के उत्सव भी माये हैं। अर्थों में कन्या देने की प्रथा थी। मृतक के संबंधी या उससे संबद्ध अन्य लोग उस की अर्थों में कथा देते हैं। हिन्दुओं में मृतक

---

१- चले निशान बजाइ बकेले तहँ कौठ संग न साथी ।

को जलाने की प्रथा बहुत पुरानी है। आलोच्यकाल में भी यह प्रथा चलती रही। मृतक को जलाने का स्थान, वहाँ नदिया होती हैं वहाँ प्रायः नदियों के किनारे, अन्यथा किसी निश्चित सार्वजनिक स्थान में होता है। जलाने के पहले मृतक का शरीर के मार्जन और दौरेकर्म के साक्ष्य भी तत्कालीन यात्रियों ने दिये हैं। जिता के लिए सकड़ी गाँव के लोग और मृतक के सम्बन्धी आदि सभी थोड़ी-थोड़ी करके धोते हैं। अर्थात् के साथ जाने वाले सभी व्यक्तियों के लिए थोड़ी सकड़ी से जाने का उत्सव भी मनुष्य ने किया है। जिता निर्मित हो जाने के बाद मृतक का श्वेत वस्त्रावृत शरीर जिता पर लिटा दिया जाता है। अग्नि सगाने का कार्य पुत्र या मृतक का कोई निकट सम्बन्धी सम्पन्न करता है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर भस्मीभूत हो जाता है। सभी स्नेह सम्बन्धी रुदन करते हैं। बेटा कपाल किया करता है, शरीर राख हो जाता है। शमशानघाट जाये हुए लोग नहा धोकर मृतक संपर्क का छूत उतारते हैं। नागरीदास ने कपाल किया करने का उत्सव किया है। मृत शरीर जल जाने के बाद सब लोग नहा धोकर घर वापस आते हैं। मृत्यु के अधिकांश चित्र हमें आलोच्यकाल के संत कवियों से ही मिलते हैं। वे जीवन की कष्ट भंगुरता को प्रतिपादित करने के लिए मानव-शरीर की नश्वरता का सहारा लेते थे और इसके लिए मृत्यु या मृत्यु से सम्बन्धित अवसर सर्वाधिक

१- तुरुक से मुर्दा को क्यू में गाड़ते ।

हिन्दू से आग के बीच जारै ।। पलटू - पृ० ४६ ।

२- है मज्जान में जायो जबही कोये काठ इकट्ठे तबही ।

अग्नि सगाय दिमो तन बारी । जइया मानुष बूझ तिहारो ।

लिकारो सो राखे ठाढ़े किरिया कहे अबे हूँ ठाढ़े ।

बेटा रोखे ठोके भुई कपारी ----- ।।

भूम भयो जब दागो दागा पेत पेत कहि सब भागा ।

नहाइ धोइ कर छूत उतारी ----- ।। सु०गु०पु० १।३२८ ।

३- लिये हाथ में लट्ठा ताकौ कूट मित्र कपाल ।।

नागरी दास- प्रब०मा०सा०पृ० १९४ ।



उपयुक्त होता है। चरणादास कहते हैं वह बोलने वाला जीव देखते-देखते काया-रूपी नगरी को छोड़ कर "पयान" कर जाता है। नगरी यानी काया के दसों द्वार अर्थात् इन्द्रिया ज्यों की त्यों रहती है किन्तु जीव के चले जाने से पुर सूना हो जाता है। शरीर गत-प्राण हो जाता है। स्वजन छूट जाते हैं शरीर भस्मीभूत हो जाता है सब कुछ राख में मिल जाता है और एक अर्निर्वच शून्यता का वातावरण व्याप्त हो जाता है।

२७- दाह संस्कार के पश्चात् शास्त्रीय व्यवस्था है कि ब्राह्मण का घर दस दिन में, क्षत्रिय का बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में, तथा शूद्र का घर एक माह में शुद्ध होता है<sup>१</sup>। तेरहवीं और बार्षिकी के भी विधिवत् आयोजन की व्यवस्था थी। तत्कालीन यात्री उस समय बड़े पैमाने पर होने वाले भोज आदि के उत्सव करते हैं। वर्ष में पितृपक्षा पर स्वाधी रूप से तर्पण भी किया जाता है। तर्पण का आधार है कि हम समझते हैं कि हमारे परलोकस्थित पितरों को इन सब वस्तुओं की अपेक्षा है और उनके बंश के रूप में हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन्हें तर्पण आदि के माध्यम से ये वस्तुएं पहुंचाएं। तर्पण करके सभी पितृवनों को हर्षित किया जाता है<sup>२</sup>।

२८- हिन्दू संस्कारों में हमें भारतीय संस्कृति और जीवन का एक अनोखा किन्तु प्रतिनिधि चित्र देखने की मिलता है। हमारे यहाँ संस्कृति के सर्वोत्तम गुण्य उन्हीं अवसरों पर मिले हैं जहाँ लोकमानस के विश्वासों और धार्मिक प्रत्ययों का नीर-दीर संयोग हुआ है, जहाँ धर्म में इतनी नमनीयता आ गयी है कि जनसामान्य के सरल जीवन के निकट पहुंच कर वह अपने संयम

१- चरणादास बानी - भाग १, पृ० १०८ ।

२- कल्याण ब्रह्मपुराणिक, पृ० ४४४ ।

३- कौं तिहि पितृन तर्पन नीर ।

अथ सब हर्षित पितृ तथीर ॥

बौ०द०रा०पृ० ७।

कुछ ढीले कर दें और वहाँ लोक-मानस में इतनी उर्ध्वगामी-वृत्ति आ गयी है कि वह धर्म के इस लचीलेपन को अपने अज्ञान या कुतर्क से पाण्डु के गर्त में न गिराये । संस्कार इसके अनेक उदाहरण हैं । गर्भाधान से लेकर, जन्म और विवाह की मनोरम उपत्यकाओं को पार करता हुआ जीव लोकजीवन के कर्मक्षेत्र में प्रवेश करता है, मानव जीवन के साध्य को सिद्ध करने के हेतु अपनी सामर्थ्य भर प्रयास करता है और अंततः उसकी शक्तियाँ स जीणा होने लगती हैं, मृत्यु निकट आ जाती है, प्राण शरीर रूपी आवास छोड़ कर चल देते हैं । इस प्रकार जीव-वपन से लेकर पल्लवित -पुष्पित होने के साथ ही साथ अंतिम अवस्था तक की यात्रा के सभी महत्वपूर्ण मार्ग-चिह्नों पर हिन्दू मनीषा ने जीवन के संस्करण की व्यवस्था की है । लोक ने संस्कारों के वैज्ञानिक मापदण्ड को न समझते हुए भी उन्हें इस रूप में अपनाया कि वे संस्करण के स्थान पर दूषण के कारण नहीं बने, पुष्टि के स्थान पर वन्धन के हेतु नहीं बने । संस्कार व्यवस्था का प्रभाव भारत के लोक चिन्तन पर बहुत व्यापक और स्वास्थ्यकारक रहा है । विशेष रूप से, विवाह के माध्यम से मनुष्य की एक अविद्यमान समस्या को हल करने की दिशा में हिन्दू विन्तकों ने समाधान प्रस्तुत किया है और लोकजीवन में व्याप्त नैतिकता के लिए, पति-पत्नी में विवाह से उत्पन्न होने वाली निष्ठा बहुत कुछ उत्तरदायी है ।

### भारतीय पर्वोत्सवों की परंपरा:

१९- मानव संस्कृति का विकास क्रमशः अव्यवस्था से व्यवस्था, सृजना से अटिष्ठता और असंयम से संयम एवं नियमन की ओर हुआ है । यह प्रवृत्ति हमें सभी जातियों के इतिहास में देखने को मिलती है । मनुष्य क्रमशः अपने सुख-दुःख सभी की अनुभूति में संस्करण और अभिव्यक्ति में परिष्करण करता गया है । आरंभ में प्रकृत मानव के दर्श और आह्लाद, विषाद एवं अवसाद, की अनुभूति में एक नैसर्गिकता और अभिव्यक्ति में सहज सजुता रही

होगी । स्वभावतः उसमें उन्मुक्ति और संभव की मात्रा अधिक रही होगी और व्यवस्था का एकान्त अभाव रहा होगा । धीरे-धीरे उसमें अपने हर्ष-विषाद की अभिव्यक्ति में परिष्कार किया जो आज कहीं-कहीं बीपचारि-कता की सीमा का स्पर्श करता है । उत्सव और पर्व इस सहज आह्लाद की अभिव्यक्ति की व्यवस्था के परिणाम है । भारतीय पर्वों की व्यवस्था में मनुष्य प्रकृति को भी साथ लेता जाता है अथवा यह कहें कि प्रकृति ने भी उसका साथ दिया है । यह इसलिए भी स्वाभाविक और संभव हुआ कि भारत मूलतः और प्रमुखतः कृषि प्रधान देश रहा है । कुछ भारतीय पर्व तो प्राकृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप प्रकृति में व्यक्त होने वाले व उत्साह और आह्लाद से संबद्ध हैं, जैसे वसन्तोत्सव आदि और कुछ ऐसे समय पर पड़ते हैं जब भारतीय कृषिक अपने कृषि-कार्य से मुक्त होकर समृद्धि की प्राप्ति और विषम जन्य सुख का अनुभव करता है । भारतीय पर्वों की संख्या अनन्त है, इससे भारतीय लोकजीवन में व्याप्त विरतन उत्फुल्लता का भान होता है । तयोहार अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है कोई धार्मिक दृष्टि से संबद्ध होने के कारण तो कोई प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण, किन्तु उसके मूल में कार्य की एकरसता से लोकजीवन में उत्पन्न होने वाली नीरसता को दूर करने का प्रयोजन निहित होता है । इस दृष्टि से भारतीय त्योहारों का क्रम और उनकी व्यवस्था उत्पन्न संगत एवं सार्थक है ।

१०- आलोच्यकाल के काव्य में जीवन की सम्पूर्ण व्यापकता को स्पर्श करने की शक्ति नहीं थी, कवि प्रायः उन्हीं त्योहारों का आर्थिक वर्णन और उत्सव करते हैं जो उनकी रसिक दृष्टि को तृप्त कर सकते हैं, इसलिए परिभाषा का दृष्टि से, रीति काव्य में होली की उन्मुक्ति और वसन्तोत्सव के रसरंग का वर्णन अधिक है ।

वसंत और होली:

११- वर्ष क्रम में प्रथम और अंत में जाने वाले वसंत और होली के त्योहार भारतीय लोकजीवन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं । वर्णव्यवस्था

के आधार पर होली को शूद्रों के साथ संबद्ध किया जाता है किंतु व्यावहारिक दृष्टि से यह सभी के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। "होली एक पर्व, उत्सव और जीत-स्मार्त कर्मों का समूह है, जिसमें कालक्रम से रूपान्तर होते-होते भिन्न-भिन्न कर्मों के कुछ बिन्दु-मात्र शेष रह गये हैं। वे सभी कर्म शूद्रों से ही सम्बन्ध नहीं रखते किन्तु अनेक का मुख्य संबंध द्विजातियों से ही है।" यह उन्मुक्ति का पर्व है जिसमें सभी सामाजिक पर्यादाएँ मिथित हो जाती हैं - छोटे-बड़े का भेद मिट जाता है + सभी एक से हो जाते हैं। वसन्तऋतु स्वभावतः उन्मादक है। शीतकाल में प्रकृति सबको बल देती है। शक्ति संक्रांति होने पर उसका प्रेम रूप से प्रस्फुटित होना स्वाभाविक है। हमारे शास्त्रों में वसन्त को कामदेव का मित्र इसी आधार पर कहा गया है। कवि-कुल-गुरु ने वसन्त का प्राकृतिक चित्र खींचते हुए ऋग, यजु, सूक्त, तता, वन आदि का भी इस ऋतु में प्रेमपाश में बद्ध होना विवक्षित किया है। इसे प्रेमोन्माद को पूर्ण चरितार्थ करने का हिन्दू जाति में एक विशेष दिन नियत है - वैत्र कृष्ण प्रतिपदा। वसन्तोत्सव और कामदेव-पूजा की भी प्रतिपदा के दिन शास्त्र में विधि है। दक्षिण देश में यह उत्सव "मदन-महोत्सव" के नाम से ही प्रसिद्ध है। स्वच्छ वस्त्र पहन कर स्वच्छ स्थान में सबका बैठना, चन्दन, रौली और गुलाब आदि सगाना और बाम्ना - मंजरी का आस्वादन करना इस विधान की मुख्यता है। यह चन्दन-गुलाब ही अशिक्षा के कारण कीचड़ उछालने तक पहुँच गया। होलिका की भ्रम का चन्दन करना भी शास्त्र में विहित है। इस विधि ने भी रास-धूल उछालने की प्रथा में सहायता पहुँचायी है।

३२- रीतिकालीन काव्य में फाल्गुनीोत्सव अथवा होली का जितना विशद एवं जीवंत चित्रण हुआ, अन्यत्र कदाचित् नहीं मिलेगा। होली

१- गिरिधर शर्मा जसुर्वेदी - वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति,

पृ० २२८।

२- वही, पृ० २२८।

इस समय केवल सामाजिक उत्सव के रूप में न होकर राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाया जाने लगा था और जहाँ मुस्लिम शासक तथा मुस्लिम जनता भी भाग लिया करती थी<sup>१</sup>। इस उन्मुक्ति के त्योहार में कुछ समय के लिए छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, और ऊँच-नीच का अन्तर नहीं रह जाता, आनन्द उत्साह के मध्य सभी एक समान होकर हिलोरि लेने लगते थे। सामाजिक पर्यादा एवं शील-संकोच की उतने समय तक छूट मिल जाती। फागुन को ही निरस्य करार दे दिया गया है<sup>२</sup> और इस उच्छ्वस्तता में व्यक्ति का दोष नहीं माना जाता। फाग खेल कर नशे में मस्त कोई फागुहार कीचड़ में पड़ा रहता तो कोई रंग की नदी में<sup>३</sup>।

२२- स्त्री-पुरुष सभी एकसाथ रससिक्त होकर फाग खेलते हैं। प्रकृत्या रसिक रीतिकासीन कवियों ने नायक - नायिकाओं की फागकुड़ी के अनेक विचित्र अंकित किये हैं। नायक द्वारा मारी पिवकारी की बल-धारा से नवोढ़ा भीग जाती है<sup>४</sup>। उसकी आँखों में पति के ने, फाग खेलते हुए, तक कर जो गुलाब डाला था, वह नाँव में पीड़ा होने पर भी उससे निकालते नहीं बनता<sup>५</sup>। देव का नायक फाग खेलते हुए बड़ी

१- अली - मुसलमान विद्द १, पृ० २८७-८८ ।

२- फागुही लोग निरस्य जानिये । के०बी०दे०ब०पृ० २४० ।

३- खेलि फागु मानों फागुहार ।

सोइ रहे मद मस्त गवार ॥

एक बूझि भूत घर परे ।

एक बूझि सरिता मँह मरे ॥ के०बी०दे०ब०पृ० ११०

४- छिरके नाह नवोढ़-दग, कर - पिवकी- बल बीर ।

रोचन-रंग-लासी भई, विच-तिय - लौचन-कोर ॥ वि०र०दो० १५१ ।

५- दिखी बु पिय लखि बचनु मैं खेलत फाग-खियाल ।

बाढ़त हूँ बति पीर सु न काढ़त बनतु गुलाब ॥

वि०र०दो० २८० ।

कतुराई से एक ही समय में दोनों नायिकाओं को प्रसन्न कर लेता है । एक ही भजन में दोनों को एक साथ देखकर वह गुलाल से अपनी मुट्ठी भर कर एक की ओर चलाता है, अक्षि बन्द कर जब तक वह दूसरी ओर देखती है तब तक में वह दूसरी को भेंट लेता है<sup>१</sup> । होली के रागरंग में मन्त, सेनापति की नायिका पर नायक केशर का रंग पीसकर, पिचरकारी भर कर चलाते हैं । इस भाग दौड़ में उसका अक्षि उधर जाता है<sup>२</sup> । वस्तुतः होली रागरंग का त्योहार है जिसमें गुलाल की आँधी से बादल सात हो जाते हैं । खेत बन्धन पहले हुए स्त्रियों पर उड़-उड़ कर यह गुलाल पड़ता है, मानों पुंडरीक की पंखड़ियों पर बाल-सूर्य शोभित हो रहा है<sup>३</sup> । फागुन में अनुराग में पगी नवेली नागरियों मतवाली हो गयी है, उनके कोमल हाथों में मेंहदी रची है और वे ठफ़ बजा रही हैं<sup>४</sup> । होली की इस छेड़छाड़ में बालाएँ भी पीछे नहीं हैं । पद्माकर की नायिका आमीरों की भीड़ से कृष्ण को पकड़ लाती है, वह उनका पीताम्बर तो छीन ही लेती है, अमीर और गुलाल

१- लेलत फाग बिलार बरे, अनुराग भरे बड़ भाग कन्हवाई ।

एक ही भोजन में दोउन देखिके, देस करी एक चातुरताई ।

लाल गुलाल सौ लोनी मुठी भर, बाल के भात की ओर चलाई ।

बा झग मूंद उतै चित्तवाँ, इन भेटी हतै वृष्णभान की बाई ॥

दे०भा०वि०पु० ११७ ।

२- दौरी वे-संभार, उर-अक्षर उषीरि गयी,

उज्ज कुब कुंभ मनु, चाँचरि मवाई है ।

लालनि गुपाल, पीरि केशरि की रंग लाल,

भरि पिचकारी मूँह ओर की चलाई है ॥ से०क०र०पु० ७२ ।

३- सित अंबर जुत तियनि में उड़ि-उड़ि परत गुलाल ।

पुंडरीक पटलन मनौ विलसत जातप बाल ॥ म०गुपु० ४९० ।

४- बैस नई, अनुराग भई, सु, भई, फिरै फागुन की मतवारी ।

कोंबरे हाथ रची मेंहदी, ठफ़ नीकै बजाव हरै हिमरा री ॥

प०गु० पु० २०८ ।



मुख पर मल कर उनकी दुर्दशा भी बनाती है और रोज की छेड़छाड़ का पूरा बदला निकाल लेती है। फिर, नेत्रों को नचा कर, किंकि मुस्करा कर कृष्ण को बिड़ाती है<sup>१</sup>। अनुराग से भरे हुए, मृदंग की ताल के साथ तरंग में गाते-बजाते कृष्ण पर तोष की नायिका ने पिचकारी बलाकर भाग जाने की चेष्टा की। पर कृष्ण ने दौड़ कर उसे पकड़ लिया, फिर क्या था अच्छी तरह मुख में जबीर गुलाब मलकर ही छोड़ा<sup>२</sup>। जब में तो होली की उमंग-तरंग के कारण ऊपम-सा मचा रहता है<sup>३</sup>। रंग के वर्तन इन से सुगंधित कर दिये जाते हैं। इसलिए होली खेल कर रंग में डूबी गोरी के जाने पर सुगंध की झकोरे उठ रही हैं<sup>४</sup>।

३४- सुंदरीतिलक में कवि ने होली का हुड़दंग का सजीव वर्णन किया है। फागुन के पूरे महीने भर बड़ा ही उत्पात रहता है फलतः रात-दिन नींद नहीं आ पाती। नर-नारी सभी परस्पर फाग के नशे में चूर रहते हैं। यदि कोई कुसनारी सज्जावश इस उत्पात से छिपकर दूर रहना चाहे

- १- फाग के भीर, जमीरन में गहिगोबिंद से गई भीतर गोरी ।  
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई जबीर की झोरी ॥  
छेनि पितंबर कम्मर तें सुविदा दई मीढ़ि क्योसनि रोरी ।  
नैन नचाइ कह्यो मुसुकाइ"सला फिर आइयो खेलन होरी ॥ प० गृ० पु० १७९ ।
- २- गावत तान तरंगन तोष बजावत, ताल मृदंग सुहायो ।  
मारि बली पिचकी हरि दीरि गही मुख खेद जबीर लगायो ॥  
तो० सु० नि० पु० १०१ ।
- ३- ऊपम फिरो मची कुज मे  
सबै रंग तरंग उमंगनि सीचै। प० गृ० पु० ९८ ।
- ४- जाई खेलि होरी, बरै नवलखि होरी कहूँ  
बोरी गई रंग में सुगंधन झकोरे हे ॥

तो उसे भी नहीं छोड़ा जाता । जब में यह "रीति" बुरी है कि लोग घर में फुल कर मित्रियों को पकड़ लाते हैं। दीनदयालगिरि की नायिका की बर-तारी की किनारीदार सारी पर गुलाब सोभित होता है उपर नायक के कश्मीरी चीर की बहार है<sup>१</sup>। ग्वाल-बातों की टोसियां अबीर गुलाब से भरी भरी सिया लिये होती-होती बिल्लाती गलियों में धूमती हैं<sup>२</sup>। सुंदरदास ने फाग का वर्णन किया है । फाग का सुहावना मौसम आते ही सब शृंगार करने लगे । इन दिनों बोवा, बंदन, केसर, कुंकुम और अबीर गुलाब की ही बहार होती है<sup>३</sup>। सभी अपने-अपने प्रियतम के साथ बोवा, बंदन, अबीर, गुलाब और कुंकुम से फाग खेल रहे हैं । फागुन में मधुपान का भी उत्सव सुंदरदास ने किया है । होती खेलने बातों के शीश पर लटपटी पाग बंधी है, शरीर के पीछे बस्त्रों पर अबीर लगा है । हर्षविभोर हो कर लोग परस्पर गले मिल रहे हैं, गुलाब उड़-उड़ कर बादल की तरह छाया है । भवन की अटारियों पर सुंदरियां रंग भरे कलश लिये खड़ी हैं । ऊपर से रंगीन जल गिर रहा है और बस्त्र की जोड़ करके गाती गायी जा रही है<sup>४</sup>।

१- फागुन मास बड़ी उत्पन्न रहै निशि वासर नींद न आवै ।

आपस मांझ सबै नर नारि निरंतर चौगुन फाग रवावै ।

जो कुल नारि कहूं सरमाय, दुरैं तबहु गुरुनारि बतावै ।

या जब में यह रीति बुरी, घर में धंसि लोग सुगादन लावै ॥

सु० ति० पु० २६८

२- सारी बरतारी की किनारी में गुलाब रावै ।

छवि छावै उत काश्मीर चीर की ॥ दी० गु० पु० २३ ।

३- होरी होरी करत अबीर भरी भरी सिए,

खोरी खोरी फिरै ग्वालबात समुदाई है ।

दी० गु० पु० २२ ।

४- आगो फागु सुहावनों ही सब कोड करत सिंगार ।

बोवा बंदन केसर कुंकुम उड़त अबीर गुलाब ॥ सु० गु० पु० ११९ ।

५- लटपटी सीस पगिया सुहात तन पीरेपट फेटनि अबीर ।

क्लिक्करि मारि मिले दीरि दीरि उड़ि उड़ि गुलाब मय परी रौर ॥

बिच गाव अटारिन बड़ी बात भरि रंग कलश डारत गुलाब ।

दरदात नीर भरदात नीर गावत गाती है जोड़ चीर ॥ न० सं० पु० १०३ ।

गुवाल कवि ने भी केशर के रंग से भवन की छत और छप्पों को सरोवर बताया है<sup>१</sup>।

३५-क होली की इस उमंग और भीड़ भाड़ में किसी को भकभोर कर मुखपर रोसी मल देना, किसी के अंग-प्रत्यंग को केशर से तर कर देना, अथवा किसी को अंक में भर लेना कुछ अवाभाविक और अनुचित न था। इसमें न तो कोई कलंक की बात होती और न किसी प्रकार का दोष ही लगता है क्योंकि होली तो "बरबोरी" का त्योहार है ही<sup>२</sup>। गुवाल और सेवक ने होली के अवसर पर वारंगनाओं के नृत्य का उत्तेज भी किया है। बीणा ने विरह बारीश में होली के उत्सव का विस्तृत वर्णन किया है। बीणा, मृदंग और भ्रमर भनक रहे हैं। नाच-गाकर सभी लोग प्रसन्न हो रहे हैं। केशर नीर और अरगजा की बर्षा हो रही है, नर-नारी गुलाब में सने हर्षित हो रहे हैं। कोई होलिका जलाकर जा रहा है, कोई भांति-भांति के स्वांग बना कर है, कोई गप्पे पर चढ़ा है तो कोई हड्डियों की मासा पहने है, कोई धूल उड़ाता हुआ मनमाना गीत गा रहा है। कोई नशे में गोबर और कीचड़ पर पड़ा है, कोई हाथ में लड्डू लिये है और उसकी लटे बिखरी हैं। कूड़ों के ढेर पर पड़े लोट-तपट-तपट कर गीत गाते हैं - यह

१- केशर के रंग बहे छप्पन औ छत पर ।

गुवाल- रत्नावली पृ० ४१ ।

२- डारयो जो गुलाब रंग केशर के अंग - अंग ।

जान भकभोरयों मीड़ो दार मुख रोरी में ॥

अंक भरि लीनी तो कलंक की न संक कीबै ।

जान बरबोरी को न दोष होत होरी में ॥

ठाकुर-लोक पृ० २१ ।

है फागुन मास का घूम-पड़का ।

१६- फागुन में फगुना मांगने की प्रथा प्रचलित है । नंद के घास पर फाल्गुनीत्सव हो रहा है, बृषभान की गालियाँ गापी जा रही हैं । एक और बरसाने के लोग सड़े हैं । नंदगाँव की सभी नारियों ने मिलकर फाग बेला फिर फाग देने की रीति समाप्त होने पर गोपराज की पान बाँदि देकर सम्मान के साथ बिदा किया गया और वह दुंदुभी बजाते हुए अपने भजन की ओर चले गये ।

१- बीणा मृदा भँका<sup>२५</sup> घुमकावे । नाच गाय सब लोग रिफा<sup>२५</sup>वे ॥  
 केशर नीर अरगवा बरसे । सने गुलाल नारि नार हरवे ॥  
 एकै फूँक होलिका जावे । भाँति भाँति के स्वांग बनावे ॥  
 गधा चढ़े जारा रि बाधि । हाड़न की माला बारावे ॥  
 घूर डड़ावत गावत सोई । मनहोनी जो जग में होई ।  
 गोबर कीच सनैये बने मल कीन्हें कुंभि सराव के नत्सा ।  
 हाथ में सड्डू सटे बिखरी उन्माती सीना करे दसमत्सा ॥  
 घूरन पर लपटे भपटे सने इत्तत गावे बासर फरसा ।  
 को बरने जो लगे इन जाँखिन फागुनमास को घूसर फरसा ॥

बो० वि० वा पु० १४४ ।

२- बृषभानहि गारी देत गाय है रहे कुसुख नदधाम ।  
 इत ठाढ़े बरसानियाँ समधी लोग निहार ।  
 धाई एकहि बेर घूर नंद गाय की नारि ।  
 पुनि किसी बिदा जो गोपराज सम्मान पान दे दे सवान ॥

नागरी गु० -- पु० १०५

छल छबीली गुवा लिन फगुवा मांगने जा रही है । उसकी जोड़नी केसर के रंग से सराबोर है, कानों में पूल लगे हैं, मस्तक पर गुलाब है, देखने वालों को अपने इस अनुपम अस्तव्यस्त सौंदर्य से प्रभावित करती, छलती चली जा रही है । कवि पूछता है फाग में मनमोहन कृष्ण का मन ले चुकी, अब फगुवा में क्या लेना शेष रह गया है जिसे मांगने जा रही हो<sup>१</sup> । भानन्द ने कवयाम की होली की सरसता का वर्णन करते हुए दिखाया है कि गुलाब वधुएं पशोदा के घर फगुवा मांगने जा रही हैं, सभी उफ बजाकर गालियां गा रही हैं<sup>२</sup> ।

३७- वसन्त का उत्सव एवं उत्साह होली से मिलता जुलता है । हिन्दू तो वसन्त की अत्यन्त धूम धाम से मनाते ही थीं, मुस्लिम जदालतों में भी वसन्त के त्यौहार पर आनन्द एवं उत्साह जा जाता था । आलोच्य काशीन काव्य में वसन्तोत्सव के अनेक सरस प्रसंग उपलब्ध होते हैं । मतिराम ने वसन्त के उत्सव का वर्णन किया है । ललित वसंत का

१- केसर रंग रंगी छिर जोड़नी काननि कीन्है गुलाब कली है ।  
भास गुलाबभर्यो पद्माकर अंगनि भूषित भातै भली है ॥  
जौरन की छलती छिन में तुम बाती जौरन सो बु छली है ।  
फाग में मोहन को मन ले फगुवा में कहा अब लैन चली है ।

ध० गृ० पु० १३२

२- बीस नागरी फगुवा मांगन आई बसोमति घाम ।  
गावत गारी दे दे तारी गति सो उफहि बयाव ॥

ध० गृ० पु० ४५४

३- अली- मुसलमान्स- जिल्द २ पु० २८७ ।

उत्सव सभी रुचि पूर्वक मनाते हैं। आसमान में गुलाब उड़ रहा है, दिशाएँ मृगमन्द, और फुलेल से पूरित है, कुंकुम, गुलाब, फनसार तथा जबीर के घने बादल से छाए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राजाभाव सिंह का प्रताप एवं मग ही विभिन्न प्रकार के रंग-रूप रख कर दशों दिशाओं में फैला हुआ है। वसन्त के आगमन पर वस्तु-परिवर्तन के साथ ही प्रकृति में नवीन सौन्दर्य आने लगता है, व्यक्त का हृदय भी प्रकृति की तरह नवीन उमंगों से भर जाता है। वन उपवन में वर्ण-वर्ण के तरु-पुष्प खिल उठते हैं, पुष्पों के गन्ध से कहीं शीतल मंद, सुगंध वायु चलने लगती है, कोयल बूँदें लगती हैं और भ्रमर गुंजार करने लगते हैं। ये सभी आयोजन सत्पराय के स्वागतार्थ होते हैं।

विविध पुष्पों के साथ ही मन में काम भी पुष्पित होने लगता है। सुरनर मुनि सभी तरुणी के संग की कामना करने लगते हैं। जीवन एवं शोभा संपन्न की-कामिनी भी मनोव के बशीभूत हो जाती हैं।

१- आसव की राजे रुचि ललित बसंत खेत,  
खिलत दिवान बसंतपु सुस्तान में ।  
कहे मतिराम कवि मृगमन्द पंक छवि  
छावत फुलेल मी गुलाब जयगान में ।  
कुंकुम गुलाब फनसार मी जबीर उड़े,  
छाये रहे सफ़्त जवानि आसमान में ।  
मेरे जानि रख भावसिंह की प्रताप बस,  
रूप परे फैलि रहे कसहु दिवान में ।

मं० गु० पु० ३८९ ।

२- से० क- र- पु० ५५

३-तरु नीके फले विविध, देखि मए मचर्मत ।  
परे बिरह बस कान के, लागे सरस बसंत ॥  
तबे सकुच के भाउ, भाउ तबि मान मनी के ।  
सुर, नर, मुनि, सुख संग रंग राजे तरुनी के ॥  
जीवन सोभाबस की कामिनी मनोव बस ।  
सेनापति मधुवास, देखि बिलसत प्रमोद रस ॥

सं० क० र० पु० ५७ ।



देव ने भी वसंत ऋतु के आगमन के साथ ही काम के प्रभाव का वर्णन किया है<sup>१</sup> । हृदय के इस हर्ष और उन्माद की अभिव्यक्ति गायन, वाद्य एवं विविध क्रीड़ाओं के माध्यम से होती है । वसंत पंचमी के आते ही रसियाँ एक दूसरी को वसंत के स्वागतार्थ मिलकर गाने बजाने को प्रार्थना करने लगती हैं<sup>२</sup> । सरस वसंत के आगमन पर लोग रंग रसियाँ कर रहे हैं, घर घर मंगलगीत गाये जा रहे हैं, मृदंग आदि वाद्यों की ध्वनि से वातावरण गुंजरित हो रहा है<sup>३</sup> । इस प्रकार सभी वसन्त के आगमन पर हर्ष एवं उत्साह मनाते हैं ।

३- दीपावली- होली के उपरान्त दूसरा महत्व पूर्ण त्योहार दीपावली है । कार्तिक मास की अमावस्या को दीवाली का उत्सव बड़े समारोह से मनाया जाता है । दीपावली उन विशेष पर्व-उत्सवों में एक है (सर्वश्रेष्ठ कहने पर भी अत्युक्ति न होगी), जो भारतवासियों में मुख्य, एवं प्राणशक्ति के संचारक कहे जाते हैं । वर्णक्रान्तिकार वैश्यों का यह प्रधान उत्सव है । वैश्य वर्ग के साथ मिल कर सब वर्ण-जाति के लोग इस दिन भावती कृपा की उपासना के आनन्द में मग्न हो जाते हैं । मनुष्यों की मुक्तिकान्ति पर, उनके बन्धामुच्यतादि पर और उनके निवास-भवनों में बिपर देखी उपर सखी माता अपना प्रभाव प्रकट करती हैं । सब दुःख व इन्ध भुला कर, सब प्रकार की चिन्ता बाधाओं को दूर कर, इस दिन भारतवासी सखी माता के

१- देवसुधा पु० ५७

२- आबोरी मिलित गावो बजानो वसंत पंचमी है जाई ।

ध० गृ० पु० ४६६

३- सुंदर कोइ रसियाँ करे जावो सरस वसंत ।

घर घर मंगल होत है बाजे तास मृदंग ॥

सु० गृ० पु० ६८४

स्वागत के लिए एकप्राण होकर रहते हैं<sup>१</sup> । रीति-कासीन काव्य में दीपावली का उल्लेख आया है किंतु इसका पूर्ण एवं विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं होता । चानंद की नायिका दीवाली जाने पर जीतने के लिए दाँव लगा कर जुआ खेलती है<sup>२</sup> । दीवाली के दिन जगमगाती दीपमालिकाओं के प्रकाश पूर्व से अभावस्था की कासी राति प्रकाशित हो उठती है । देव ने माशी-रत्नों की आभा से प्रकाशित नायिका की उपमा दीवाली से दी है । नायिका के चन्द्र-मुख के पास जगमग करती बड़ाऊ मणि-मोतियों ने चन्द्रमंडल-सा बना दिया है । बेंदी, बड़े पानी तथा हीरा के नगों के प्रकाश में, आभूषणों की भ्रमक के साथ ज्योति की बड़ी भीड़-सी दिवाली पड़ती है । अंग-अंग पर नव यौवन का ऐसा उजाला मानो चांदनी रह ही न गयी हो । ऐसी नायिका राह-राह में अंगों की जगमगाहट आगे फैलाती हुई स्वयं वह दीवाली सी चमकती हुई चली जा रही है<sup>३</sup> । सुंदरदास ने दीवाली की रात में जागकर मंत्र जाप

१- गिरिधर शर्मा- वै. वि. बीर भा. सं. पृ. १२३

२- भाई है दिवारी जीते काबनि दिवारी प्यारी,  
 खेलै भित्ति जुआ पैव घूरे दाँव आवही ।  
 हारहि उतारि जीते पीत पन लच्छन सौ,  
 चौप चढ़े नैन नैन चुहल मवावही ॥  
 पं. गृ. पृ. १६

३- जगमगी जीतिन बड़ाऊ मनि-मोतिन की  
 चंद्र-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी,  
 बेंदी कर बीरन गहीर नग हीरन की  
 देव भ्रमकनि में भ्रमक भीर भारी-सी ।  
 अंग-अंग उमह्यो परत रूप रंग नव-  
 जीवन अनुपम उज्ज्वास न उज्ज्वासी-सी,  
 डगर-डगर बगरावति अंगर अंग,  
 बगरमगर आपु आवति दिवारी-सी ॥  
 देवसुभा पृ. ११ ।

करने का वर्णन किया है<sup>१</sup> । दीपावली पर जहाँ तहाँ दीप जल रहे, उनकी दीप्ति को देख कर लगता है मानों संजीवन बूटी के पीछे लगा दिये गये हैं<sup>२</sup> । वीणा के काव्य में कार्तिक मास में होने वाले त्योहारों में दीपावली तथा अन्नकूट का उल्लेख आया है । दीवाली में घर में दिये जला कर सजाये जाते हैं, बाताएँ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर दीपक राग गाती हैं । मिस्रकर जुआ भी खेला जाता है<sup>३</sup> । नायिकाएँ बटारी पर चढ़ कर दीवाली की शोभा देखती हैं ।

### गोवर्धनपूजा-

४०- दीपोत्सव के दूसरे दिन अर्थात् कार्तिक शुक्लपक्ष की पुतिपदा को अन्नकूट अथवा गोवर्धन पूजा का उत्सव मनाया जाता है । सामान्यतः इस त्योहार का प्रचलन समस्त भारतवर्ष में है, किन्तु वृज में, विशेष करके गोवर्धन-ग्राम में यह बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है । इसी कार्तिक शुक्लपक्ष की पुतिपदा को श्रीकृष्ण ने गोप एवं ग्वाल्-वालों से गोवर्धन की पूजा करायी थी । इसमें स्त्रियाँ गोबर से गोवर्धन की मूर्ति बना कर उसकी पूजा करती हैं । आलोच्यकालीन काव्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस समय भी गोवर्धन पूजा का पर्याप्त प्रचार था । क्योंकि रीतिकालीन काव्य में स्त्रियों द्वारा गोपन अथवा गोवर्धन की पूजा के विविध प्रसंग आये हैं । अनन्द के अनुसार गोपन पूजा के दिन वृजवासी अति प्रसन्न होते हैं और सपरिवार गोवर्धन की पूजा करते हैं ।

१- दीवाली की रात जागी मंज्जादी मंत्र जाप ।

सु० गु० पृ० ६१०

२- जहाँ तहाँ दीपन की दीपति दिपति दूनी ।

ज्यों जरी संजीवन के पीछा लगाए हैं ॥

ना० स० ३१६

३- देखी दिया जाकास को गुह वार दीपक बूर ।

गावें सुवाला राग दीपक सब भूषण भूर ॥

बो-वि० बा० पृ० १४९ ।

इस दिन दीपदान भी किया जाता है, इन दीपमाताओं की दीप्ति सत्नी होती है<sup>१</sup> । दीपावली के उपरान्त गोवर्धन की मूर्ति की पूजा अथवा अन्नकूट का उत्सव मनाने का वर्णन बोधा ने किया है । इस दिन जाई बनाने के बाद गोवर्धन की मूर्ति के पास ग्वालिमें हजोत्फुत्स हो नाचती है, अन्नकूट देव की विशाल प्रतिमा बनाकर नर-नारी उठाते है । गणागौरी को मनाकर विवाह और गाने के साथ सजाये जाते हैं<sup>२</sup> । गोवर्धन पूजन का उत्सव सुंदरी तिलक में भी है<sup>३</sup> ।

१- गिरि गोपन पूजन को दिन आयो,  
ब्रजवासिन को मन बति भायो ॥  
घर घरनी सुतवित कुसरात,  
गोपन पूज सख सुख सात ॥  
दीपदान जौसर की दीपति,  
सब दिसि को दीपति सौ लीपति ॥

पं० गं० पु० २४७ ।

२- तेले जुगा जाई बनावे देव गोपन धार ।  
मदमल नाचै ग्वालिषा हंकरत सकत चार ।  
करि अन्नकूट विशाल देव उठाव नर नारीय ।  
सावै सुगौन विवाह मंगल गाव गनगौरीय ॥

बो० वि० वा० पु० १४२ ।

३- बति गोपन पूजन को उमझो ब्रजमाहि चढ़ी तप सोगन तै ।

बेनी- सुं० ति० पु० ७४ ।

### विजयादशमी:

४१- विजयादशमी जयवा दशहरा को हिंदू - परंपरा में अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना गया है। प्रथमतः वर्षा की फसल जाखिन महीने में एक कर तैयार होती है। संपूर्ण देश जनमान्य एवं समृद्धि से पूर्ण हो जाता है। साथ ही जाखिन मास में व्याधियों की भी प्रधानता रहती है। इस प्रकार एक ओर संपन्नताजन्य सुख की अभिव्यक्ति, एवं दूसरी ओर जाधि-व्याधियों के प्रकोप से बचने के लिए महार्क की उपासना की दृष्टि से विजयादशमी के पर्व की प्रतिष्ठा की गयी। इसके अतिरिक्त चातुर्वर्त्य में (कात्रियों की) विजय-यात्रा स्वर्गित रहती थी, वे घर पर विग्राम करते थे। जाखिन मास जाते ही "वर्षा विगत शरद ऋतु जाई" होते ही वह शक्ति की उपासना करके फिर विजय-यात्रा का आरम्भ कर देते थे, इसलिए जाखिन मास का नवरात्र शक्ति की उपासना के लिए सबसे प्रधान है और इसके पूर्ण होते ही विजय-यात्रा (विजयादशमी) का दिन जाता है। शक्ति के भी सौम्य-रूढ़ आदि नाना रूप हैं और अपने - अपने अधिकारानुसार सिद्धि भी विभिन्न प्रकार की प्रत्येक मनुष्य चाहता है। अपनी-अपनी इच्छा और अधिकार के अनुसार ही रूपों की उपासना होती है। "सत्व, रज और तम के श्वेत, रक्त और कृष्ण (काळा) रूप शास्त्र में माने गये हैं। स्वच्छता, संयम और जावरण का बोधन कराने के लिए ही इन रूपों की कल्पना है। उन्हीं गुणों के रूप में यहाँ भी महाकाळी, महासुष्मी, महासरस्वती की उपासना होती है। गुणों के अनुकूल ही उनके हाथों में बाणध या बिन्दु भी रहे जाते हैं। इनकी उपासना से अपने-अपने कार्य में सबकी विजय प्राप्त होती है, यही

विजयादशमी का लक्ष्य है<sup>१</sup>। आलोच्यकास के काव्य में शक्ति अथवा दुर्गा, काली आदि की स्तुति मिलती है इनकी पूजा के भी उल्लेख है किन्तु रीति-कालीन काव्य में विजयादशमी के त्योहार का नाम अधिक नहीं आया है। मान ने राजविलास में दशमी का दिन शुभ विचार कर सरोवर की प्रतिष्ठा करने का वर्णन किया है<sup>२</sup>।

### रक्षाबन्धन-

४२- श्रावण मास की पूर्णिमा को श्रवणी पूर्णिमा या रक्षाबन्धन का त्योहार मनाया जाता है। यों तो सभी हिन्दू इसमें भाग लेते हैं और महत्व की दृष्टि से देखते हैं किन्तु मुख्य रूप से यह ब्राह्मणों का त्योहार कहा जाता है। प्राचीन काल में इस अवसर पर कार्य पुरोहित तथा ऋषिगण अपने-अपने जाग्रम में यज्ञ किया करते थे, जिसमें उनके यजमान तथा देश के नृपति भी भाग लिया करते थे। मन्त्र पढ़कर ब्राह्मण लोग अपने-अपने यजमानों के हाथ में रक्षा (रंगीन सूत) बांधते थे, जिसका तात्पर्य यह था कि जिन्होंने महाबली दानवेन्द्र बलि राखा को बांधा वही तुम्हारी रक्षा करें। कास चक्र ने पलटा काया जिससे देश के कतिपय प्रान्तों में रक्षाबन्धन लड़कियों का मुख्य त्योहार माना जाने लगा<sup>३</sup>। वर्तमान समय में राखी भाई-बहन का मुख्य त्योहार है। रक्षा बन्धन का प्रसंग भी रीति कालीन काव्य में अत्यल्प है। ठाकुर<sup>४</sup> तथा बनारस<sup>५</sup> के काव्य में इनका नामोल्लेख हुआ है। रक्षाबन्धन के प्रचलन के साक्ष्य इतिहास में मिलते हैं।

१- गिरिधरशर्मा क्षुर्वेदी - वैदिक विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति - पृ० २२३

२- दशमी रविवार विचारि विजयदिन सर प्रतिष्ठयी ह्य सुख ।  
रवि कनक तुला रावन मन रंगहि दूरि करन दारिद्र्य दुरत ॥

मा० रा० वि० पृ० ९८

३- हिन्दू पर्व प्रकाश - पृ० २५

४- ठाकुर ठाक - पृ० १२५, १२६ ।

५- दुषद सुता की लाव राखी महाराज तुम ।  
ऐसी यही राखी मैं तिहारे हाथ राखी है ।

ब गृ० पृ० ३२६



### मुसलमानी त्योहार-

४३- जनता मुसलमानी त्योहारों - ईद, शबिरात आदि की भी उपेक्षा नहीं करती थी। सांस्कृतिक संगम की प्रक्रिया में एक दूसरे के त्योहारों में भाग लेना बहुत ही महत्वपूर्ण था। महाद्वी तथा उसके अन्य सरदार ताजिमा में मुहर्रम के दिनों में भाग लेते थे<sup>१</sup>। इसी प्रकार मुगल सम्राट बिजयादशमी पर हाथी घोड़ों का प्रदर्शन देखते थे। रक्षा-बंधन के दिन हिन्दू सरदार और ब्राह्मण सम्राट की क्लाई में राखी बाँधते थे। शिवरात्रि का पर्व भी सम्मिश्रित रूप से होता था<sup>२</sup>। इस प्रकार के संपर्क के कारण हिन्दू और मुसलमान परस्पर निकट आ रहे थे। ब्राटन के मत से हिन्दुत्व के प्रभाव से भारतीय मुसलमान संसार के अन्य देशों के मुसलमानों से प्रेरित हो गये थे<sup>३</sup>। जो भी हो आलोच्यकालीन काल में इस प्रकार के संस्कार नहीं के बराबर हैं।

### तीज-

४४- ऐतिहासिक काल में उल्लिखित पर्वों में तीज के उपरान्त सबसे अधिक बर्ण तीज की जाती है। यह त्योहार मुख्य रूप से स्त्रियों के द्वारा मनाया जाता रहा है। काव्य में इसका वर्णन स्त्रियों के द्वारा सबने-संवरने अथवा धार्मिक पूजन के प्रसंग में किया गया है। तीज के पर्व पर सभी सौते सुन्दर वस्त्राभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित करती हैं परन्तु बिहारी की नायिका अपनी गिबमिनी साड़ी में ही, स्वाभाविक सौन्दर्य के कारण सबको हतप्रभ कर देती हैं<sup>४</sup>। कदाचित् के

१- (जी रज्जुशी के शोध प्रबन्ध से)

२- हिन्दूी आफ बहागीर पृ० १००

३- ब्राटन- सेटर्स पृ० २०५

४- तीज पक्ष सौतिन सबे भूषण बसन सरीर ।

सबे परगवे- मुँह करी इही परगवे चीर ॥

वि० र दोहा २१५ ।

बृका के नीचे कवन जाभा देखकर पद्माकर सख ही कह धेतो है कि कोई स्त्री तीज की तैयारी करके गयी है<sup>१</sup> । ग्वास कवि ने सावन की तीज का वर्णन किया है । सावन की तीज के दिन नन्हीं-नन्हीं फुहारों में प्रियतम भीग रहे है । नायिका ने जंग पर सुन्दर रंग की बूनरी बौड़ रखी है । ऊँचे स्वर में मल्हार गाया जा रहा है जिसमें भित्सी की भनकार और भी प्रभाव उत्पन्न करती है<sup>२</sup> । ठाकुर ने अक्षय-तृतीया का उल्लेख किया है । बैसाख मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया का पर्व मनाया जाता है । इन दिनों ग्रीष्म का प्रकोप बढ़ने लगता है अतः पूजन के साथ ग्रीष्म में सुख देने वाली वस्तुएं दान की जाती है । अक्षय तृतीया के दिन मनभावते को घर कर सभी सहेलियाँ बट के निकट एकत्र है<sup>३</sup> । मानकवि ने राज बिलास में सभी स्त्रियों के द्वार चैतसुदी तीज के दिन शृंगार करने की चर्चा की है<sup>४</sup> ।

१- कवन खंभ <sup>न. ३०४</sup> भदक तरे करि, कौऊ गई करि तीज तयारी ।

प गु० पृ० १८९

२- सामन करि तीजे पिय भीजे बारि-बूदन सी,

जंग-जंग बौड़नी सुरंग-रंग बोरे की ।

गावन मलारै सुनि मुख की पुकारे बोर,

भित्सी भनकारे मन करे सहोर की ॥

ग्वास-री० पृ० पृ० २२८

३- जासती की तीज तबबीज के सहेली बूरी,

बट के निकट ठाड़ी भावते की घर के ॥ ठाकुर ठाक पृ० १७

४- चैत सुदी तीज नौदीह सी चारुय ।

सकल सुख तिवा करिय सिंगारय ॥

भा० रा० वि० पृ० १७

### गनगौर-

४५- "गणगौर" पूजन प्राचीन समय से होता चला आया है और अब भी प्रत्येक हिन्दू-परिवार में अत्यन्त बड़ा और भक्ति के साथ गौरी तथा गणेश की पूजा विधिपूर्वक की जाती है। यह त्योहार प्रमुखतः स्त्रियों का है। "गनगौर" के दिन गिरिजा गोसाइन की पूजा के लिए अत्यन्त आनन्द के साथ स्त्रियाँ जाती हैं। कुमारमणि के रासिक रसाल तथा सुंदरी तिलक में भी हर्ष के साथ गणगौर के पूजन का प्रसंग है। तौष की नायिका गनगौर पूजन के लिए पुष्प चयन हेतु बाटिका में जाती है। पद्माकर की नायिका बहुत सवेरे ही स्नान करके बस भर लाती है, फूलों को चुन चुन कर उनकी डेरियाँ बना कर जगदम्बा की स्तुति हेतु मंत्रों का जाप करते हुए प्रार्थना करती है कि उसने सदा से अपने त्वरि मन में जिस गोविंद को बसा रखा है गौरी माता उसे उसी के चरणों की चैरी बना दे।

### अन्य त्योहार-

४६- यत्र-तत्र अन्य पर्वों के नामोल्लेख भी उपलब्ध होते हैं। नागरीदास के काव्य में सत्तौनी, सांझी तथा गोपाष्टमी के पूजन एवं

१- सनवन-क बीस गनगौर के स गिरिजा गोसाइन की,  
जावत रवाई अति आनंद इसे रहे।

पं गू० पृ० २००

२- प्रातर्हि गनपति पूजिही निशा अकेली जाय

कु० म० २० २० पृ० ५

३- + + +

पूजन जाव कहै गनगौर की-- सु० ति० छन्द ११७४

४- जावु गई गनगौर के काव ।

तहाँ तरु फूलन के भल है गो ॥ तौ० सु० नि० पृ० ७८

५- रवाई बड़े तड़के भरि के बस पूसनि की चुनिके पुनि टैरी ।

त्यो पद्माकर मन्त्र मनीहर वै जगदंब अदंब अह री ।

या डर पारि कुमार पने भरि पवन पूजा करी बहु तेरी ।

चैरी गुविंद के पावन की करिप गनगौरि गोसाइन मोरी ॥

प- गू० पृ० ३२५

उत्सव का प्रारंभ है। सत्तौनी की तिथि पर सभी सहेलियाँ मिलकर प्रेम पूर्वक सरोवर की ओर जाती हैं<sup>१</sup>। साँझ के समय फूल चुनते समय सभी परस्पर जाने वाली साँझी की बर्बाद कर रही हैं<sup>२</sup>। गोपाष्टमी का उत्सव देखने के लिए स्त्रियाँ घूँघट डालते गीत गाती हुई जा रही हैं, इनसे गली में इतनी भीड़ हो गयी है कि कहीं निकलने का रास्ता नहीं है<sup>३</sup>। बिहारी लाल ने एक पर्व के उपलक्ष्य में अर्घ्य देने का उल्लेख किया है। सम्भवतः यह त्योहार गणेशचौथ (सकट) का है जिसमें चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है। नायिका की सहेलियाँ उसे समझती हैं कि अर्घ्य दिया जा चुका है, अब नीचे चली। वहाँ चलकर सकट का वृत्त तोड़े, जिससे अन्य स्त्रियाँ भी दुविधा को छोड़ कर चन्द्रमा का दर्शन कर सकें क्योंकि तुम्हारे ऊपर जटा पर रहने के कारण उन्हें दो चन्द्रमा का भ्रम हो सकता है। इसी प्रकार अर्घ्य दान के निमित्त चन्द्रमा को देखने जाने की भी उसे मना किया जाता है। सभी उसे वर्णित करती हुई कहती हैं तू जटा पर मत चढ़। मैं ही चन्द्रमा देख जाऊँगी क्योंकि तेरे जटा पर चढ़ने से बिना चन्द्र के उदय हुए भी, तेरे मुख को चन्द्रमा समझ कर स्त्रियाँ अर्घ्य दे देगी<sup>४</sup>।

१- जब भई सत्तौनी तिथि सत्तौन । कियो प्रेम सरोवर सबन गीन ॥

ना० स० पृ० ९४

२- वह फूलनि बिनन समय साँझ । इहि साँझी की सब कहत बात ॥

ना० स० पृ० ९८

३- बलि गान करत सब बचन संग लिये बदन अर्थ घूँघट सुरंग ।

अति भीर गली निकरयो न जात, छकि छूट छाक भा में अपार ॥

ना० स० पृ० १००

४-(क) दिमी जरबु नीचै चली, संकट भानै जाइ ।

सुखिती है जोरी सब ससिहि बिताकै जाइ ॥

वि० र० दी० २६९

(ख) घूँ रहि, होही, ससि सबी, बहि न जटा, बलि, बात ।

सबहिनु बिनुही ससि उछै, दीबतु जरबु अकारनै ।

वि० र० दी० २६८

## गृहण-

४७- भारतीय सामाजिक क्रांति में धर्म की व्याप्ति इतनी प्रबल है कि लोकजीवन की हर प्रक्रिया का मूल उत्स उसमें डूबा जा सकता है। किसी भी धार्मिक पर्व अथवा त्योहार के दिन गंगा, यमुना अथवा किसी अन्य नदी में स्नान-दान करने की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। समीक्षकाल में भी यह प्रथा थी और गंगा-यमुना तथा त्रिवेणी की स्तुति प्रायः सभी कवियों ने की है। इन्हें सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली, पापों को नष्ट करने वाली तथा स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करने वाली कहा गया है। गृहण के दिनों में इन इन नदियों के किनारे विशेष भीड़ होती थी। गृहण के दिन स्नान सभी के लिए अत्यावश्यक कृत्य होता था। कभी-कभी तो घर के

१(क) राम पद संगिनी, तरंगिनी है गंगा ताते,

याही पकरे तै पाइ राम के पकरियै ॥

से० क० र० पृ० ११३

(ख) दुरित दावागन दूर करने की जाती पावन पानी ।

हरिपद रति गति मति अति दादनि कीरत विशद बखानी ॥

ब० गृ० पृ० ४६९

(ग) तैसे दीनदयाल गंग महिमा विसाल आप,

पाप के क्षाप पै प्रताप ही प्रबल है ॥

दी० गृ० पृ० १२७

(घ) पापन को तापन को ऐनी अति पैनी बनी,

सुरग नैनी सुख पैनी यह त्रिवेनी है ॥

मवात० र० पृ० १८

सभीस लोग नहाने चले जाते हैं, अकेली नारिका घर में रह जाती है, फलस्वरूप उसे नायक से मिलने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो जाता है<sup>१</sup> । वस्तुतः रीतिकाल के कवि की दृष्टि इस प्रेमालाप और लुकाछिपी पर इतनी अधिक केन्द्रित हो गयी थी, इन्द्रियों का आकर्षण इतना प्रबल था कि सूरदास के बहाव के पंखों की भाँति इनके मन का पंखी भी लौट-लौट कर इन्द्रिय सिप्सा के आस्पद में ही शरण लेता है ।

४८- गृहण के समय दान देने का बहुत महत्व माना गया है । बर्नियर के समय पड़े गृहण के भेलों का वर्णन उसकी यात्रा में विस्तार के साथ मिलता है । "गृहण के समय यमुना में हिन्दू कमर तक पानी में डूबे रहते थे कि ज्योंही गृहण शुरू हो वे बटपट स्नान कर लें । अमीर सरदार आदि सपरिवार यमुना के दूसरे पार चले जाते थे और स्त्रियों सहित नहाने, पूजा पाठ करने के लिए कनाते लगा दी जाती थी<sup>२</sup> । बहुतों से नर नारियों द्वारा गृहण के समय कुल क्षेत्र के पावन जन में स्नान के लिए जाने का उत्सव रत्नकुंवरि ने प्रेम रत्न में किया है<sup>३</sup> ।

### भेलें

४९- रीतिकासीन काव्य में विभिन्न भेलों का विशद वर्णन नहीं प्राप्त होता । वन-तन बाजार-हाट के उत्सव मिलते हैं जिनमें अनेक प्रकार के सिले और बिना सिले वस्तु, आभूषण, बर्तन, हाथ-सामग्री तथा दैनिक आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ विक्रयी हैं । विशेष पर्व-उत्सवों पर इनमें भीड़ हो जाना स्वाभाविक है और इस भीड़-भाड़ के मध्य नायक

१- सु० ति० पु० ७४ तथा १११

२- बर्नियर की भारत यात्रा - पृ० ९२

३- एक दिन गृहण भयी जब, बहु नरनारी जात चले तब ।

जानि परम कुल क्षेत्रहि पावन, सकल चले तह गृहण महावन ॥



## निष्कर्ष

५०- इस प्रकार रीतिकालीन काव्य में वर्णित उत्सवों, पर्वों और मेलों का वर्णन देखने से ज्ञात होता है कि रावनीतिक पराजय और सांस्कृतिक पराभव ने भी भारत के लोकजीवन की परम्पराओं को विभ्रंशित नहीं किया था यद्यपि कवि की दृष्टि एकांगी थी और वह विशेषतः ऐसे त्योहारों के वर्णन में रमता था जहाँ उसके रसिक मन को विराम मिल सके। मेलों के वर्णन में भी कवि जीवन के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व और सार्वभौम उत्साह पर दृष्टि नहीं डालता उसकी दृष्टि प्रायः रमणियों के साथ-भंगार और हाव-भाव पर ही जाती थी। किंतु यह स्पष्ट है कि लोक जीवन में त्योहारों और मेलों का अत्यन्त व्यापक महत्व था और वे जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र का स्पर्श करते थे। होती केवल इसीलिए महत्व पूर्ण नहीं है कि उस समय कुछ मनचले लोगों को सुंदरियों के साथ क जबीर गुलाब का खेलने का अवसर मिल जाता था। या, कोई गौरी स्त्री "लला" को फगुहारों की भीड़ से बीच कर भीतर ले जाकर मनमानी कर लेती थी वरन् इसलिए अधिक महत्वपूर्ण था कि वह त्योहार स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े होन और समर्थ सभी प्रकार के कृत्रिम भेदों को मिटा कर समानता और उन्मुक्ति का वातावरण प्रस्तुत करता था। उसमें कृत्रिम वर्जनाओं और नियमों-विनियमों का अस्तित्व समाप्त हो जाता था। इसी प्रकार वसन्तोत्सव नायक-नायिका के काम की अभिव्यक्ति का ही अवसर नहीं था, उस समय समस्त प्रकृति वर्णा-शीर्ण और पुरातन को त्याग कर नया जीवन धारण करती थी। चैत की फसल कटकर घर पहुँचती थी, लोक में समृद्धि और सम्पन्नता का उत्साह रहता था। रक्षाबन्धन या ईद और शिवरात जैसे त्योहार हिंदू-मुसलमानों को एक दूसरे के त्योहारों में भाग लेने का अवसर प्रदान कर सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया में ठोस योगदान भी करते थे।

अध्याय ६

नारी

## आधार सामग्री

नारी चित्रण की दृष्टि से रीतिकाल अत्यन्त समृद्ध है। रीतिकालीन काव्य में नारी चित्रण संबंधी आधार सामग्री हमें रीति कवियों में प्रचुरता के क्रम से केशव (१६१२-१६७४) बिहारी (१६६०-१७१०) मतिराम (१६७४-१७५८) के काव्यों में से प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त रीतिकवियों में सेनापति (१६४६) बिहारीदास (१७५५) पद्माकर (१८१०-१८९०) बेनीपुरी (१८७४) गूना (१८८९) के काव्यों से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। यह तथ्य भी रीतिक ही है कि जिन रीतिमुक्त एवं रीतिमुक्त कवियों से नारी संबंधी सामग्री मिलती है उसमें (उपलब्ध सामग्री में) देश से अपेक्षाकृत कम सहायता मिलती है। सूफ़ी कवियों में इस संबंध में सर्वाधिक सामग्री उल्मान (१६७०) के काव्य से प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त नूरमुहम्मद (१८०१) और बीर (१८०४) के काव्यों से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। संत कवियों में मल्लूदास (१६३१) सुंदरदास (१६५३) दरिया साहब (१६९१) तथा दादू से सहायता प्राप्त होती है। बीर कवियों में मानकवि (१७१७) और बीरराव (१८७५) के काव्यों में भी उत्तेजनीय सामग्री प्राप्त होती है। नीतिमुक्त कवियों में बाघ (१९५३) और दीनदयाल (१८८८) की लोकोक्ति या बीर सूक्तियां आधार भूत सामग्री देती हैं। कृष्णभक्त कवियों में केवल नागरीदास ही उत्तेजनीय सामग्री देती है। रीतिकवियों के अधिकांश काव्य में नारी को कामिनी रूप में चित्रित किया गया है। इस संबंध में सर्वाधिक व्यापक क्षेत्र में चित्रण करने की शक्ति का परिचय केशव के काव्य से मिलता है। सूफ़ी कवियों की नारी संबंधी दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक उदार और सूक्ष्मदर्शी है। संत कवि नारी को योगसाधन के लिए वाचक रूप में ही प्रायः देखते रहे हैं। बाघ का काव्य प्रायः लोक दृष्टि से परिचलित है।

### हिंदू समाज में नारी-

२- कहा जाता है कि सृष्टि के आरंभ में परमात्मा ने अपने को दो रूपों में विभक्त किया, जाये से वे पुलक और जाये से नारी हो गये<sup>१</sup> । भारतीय चिन्तन परम्परा में अर्ध-नारीश्वर के रूप में भावान् की कल्पना भी इस तथ्य की ओर संकेत करती है । इसीलिए जब यह कहा जाता है कि नारी प्रकृति तत्व है और नर पुलक तत्व, तो उसका तात्पर्य यह होता है कि नर और नारी दोनों मिलकर मानव सृष्टि को पूर्ण बनाते हैं । इसलिए मनुष्य में विशेष कर पुलक ने जितना चिन्तन किया है उसमें नारी का स्थान और नारी संबंधी विषयों का महत्व इतना है कि कभी कभी वह आवश्यकता से अधिक प्रतीत होने लगता है । भारतीय चिन्तन में नारी के प्रति दो परस्पर नितान्त विरोधी और पूरवर्ती विचारधाराएँ देखने को मिलती रहीं हैं । एक ओर यदि यह समझा गया है कि वहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं<sup>२</sup> या यह समझा गया है कि नारी अपने विविध रूपों के द्वारा लोक, समाज एवं राष्ट्र को जीवन देती है, विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर रखती है और पूर्ण मानव जीवन की पूर्णता के साध्य शिखर तक पहुँचाने की परिस्थितियों का सुजन करती है, जीवन का सारा सजापन और संवर्धन उसकी छाया पड़ती ही सरस और सह्य हो जाता है, तो दूसरी ओर उतने ही विश्वास और दुःखता के साथ नारी को नरक का द्वार<sup>३</sup> बताया गया है<sup>३</sup> ।

१- स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधा रूपो बभूव ह ।

रुत्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ॥

२- यत्र नार्यस्त पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतान्तु न पूज्यन्ते सर्वस्तित्राफसाः क्रियाः ॥

मनु २।४४-४०

३- बीजं भस्म, नरक मार्गद्वारस्य दीपिका ।

शुचा कंदः क्लृप्तं दुःखानां सनिरंगना ॥

समझी गयी है। वह सभी कल्पनीय दूषणों से मुक्त, विषयगमन की प्रेरणादात्री, कर्मपथ की अवरोधिका और अपवित्र समझी गयी है। भावान् बुद्ध जैसे जनतांत्रिक चेतना युक्त धर्म के व्यवस्थापक ने भी बहुत कठिनाई के बाद नारी को अपने धर्म की अधिकारिणी माना था, वह भी इस भविष्यवाणी के साथ कि यदि मेरा धर्म स्त्री की अनुपस्थिति में ६००० वर्षों तक अस्तुष्ट रहता तो अब ५०० वर्षों में ही नीच पथ पर प्रवृत्त हो जायेगा। वस्तुतः नारी-रचना ऐसे रहस्य का विषय रही है जिसे कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी अपने अपने दृष्टि कोण से अनावृत करते का प्रयत्न करते रहे हैं। इसकी प्रेरणा, इसे उठाड़ कर देख लेने की इच्छा सनातन ही नहीं, विरन्तन भी है।

१- कवि के साथ एक विशेष कठिनाई यह और है कि वह अनुभूतियों का उद्गाता होता है और अनुभूति का संबंध इंद्रिय एवं मन से है। उसमें बौद्धिक अनुशासन और विवेक अन्य संयम की अधिकता नहीं है। फलतः यह अन्तर्विरोध उसकी बाणी और चिंतन में सबसे अधिक मुखर हो उठता है। कवि एक और यदि उसे शुक्तिता, मधुरिमा और सर्वमंगलविधायिनी शक्ति की प्रतिमा समझ उसका प्रशस्ति-गान करता है तो दूसरी ओर किसी तात्कालिक अनुभूति के आधार पर उसे संयम, अनुशासन और साधना के मार्ग में बाधक कह कर उसका तिरस्कार करता है। अपनी मानसिक विवशता और दुर्बलता के लिए उसे उत्तरदायी ठहराता है। यही नहीं, कवि के भाव लोक में नारी का सबसे अवांछनीय और गतिरूप तब देखने मिलता है जब वह नर-नारी (पुरुष-पुंस्त्व) के नैसर्गिक आकर्षण का आधार छोड़कर नारी को केवल इंद्रिय उपभोग का माध्यम समझ लेता है। उस समय, उसकी दृष्टि में नारी का बही पक्ष महत्वपूर्ण रह जाता है जो उसके इस लक्ष्य को सिद्ध करता है। उसके उन्हीं कार्यों और चेष्टाओं में कवि का मन रमता है जो उसकी उपभोग वृत्ति को अधिक से अधिक तृप्ति देती है। आलोच्यकाक्ष के साथ यह कठिनाई विशेष रूप से है।

४- रीतिकाव्य में नारी का बितना अधिक विवश हुआ है उतना संसार के किसी एक साहित्यिक युग की कविता में होने वाला है या नहीं, यह संदिग्ध है। किन्तु रीतिकाव्य की नारी की एक बहुत बड़ी सीमा है और वह यह कि उसमें नारी के प्रमदा या रमणी रूप का विवश ही अधिक है। रीतिकाव्य कवि नारी के लिए जिन उपमानों का प्रयोग करता है वे उसकी मनोवृत्ति के साक्षी हैं। सेनापति ने नारी को रावमाला, मेंहदी, मोहर, बाटिका, लतवार, शमादान, बमरावती, चौपड़, महाभारत की सेना, लौंग, काम की पाग कहा है। अतः रीतिकाव्य के आधार पर नारी की प्रतिनिधि प्रतिमा निर्मित करने पर वह इन सीमाओं से बाधक होगी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नारी के अन्य रूपों की सर्वथा उपेक्षा की गयी है किन्तु यह अवश्य है कि नारी की रीतिकाव्य कवि ने जिस दृष्टि से देखा है वह पूर्ण और समग्र तो है ही नहीं, रसाध्य भी नहीं है।

नारी के प्रति तत्कालीन समाज का दृष्टिकोण:

५- भारतीय समाज की जीवन दृष्टि में नारी संबंधी दृष्टिकोण के मूल तत्व सभी कालों में प्रायः एक से ही रहे हैं किन्तु तत्सम्बन्धी धारणा में बालिकान्ति परिवर्तन होता रहा है। मित्र सभा सहचर के रूप में नारी वैदिक युग में पुरुष की समतुल्य रही है। कुछ प्राकृतिक वैशिष्ट्यों के कारण नारी का जीवन पुरुष से कुछ न कुछ भिन्न सदैव रहा है किन्तु आरम्भ में स्त्री की भी जीवन की व्यापक भूमि में जाने के और सक्रिय होने के लिए पुरुष के समान अवसर थे। किसी बड़े सामाजिक पैमाने पर उन्हें हीन ठहरा कर उनका शोषण नहीं किया जाता था किन्तु यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह सकी और बौद्ध कात्त तक जाते जाते नारी की द्वासीन्मुखी स्थिति के असंदिग्ध प्रमाण मिलने लगते हैं। उसे साधना के मार्ग में बाधक और जीवन के व्यापक क्षेत्र के लिए बलान्वय समझा जाने लगा था। तथामत ने अपने धर्म में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध कर रखा था और आनन्द के पर्याप्त प्रयत्न



करने के बाद ही इस नियम में छूट दी जा सकती। स्मृतियों आदि में तो जो भी विधि और आचार संछिता निर्धारित की गई है वह मान्य जाति में पुरुषों को और पुरुष जाति में ब्राह्मणों को अतिशय महत्व प्रदान करती है। शुद्ध और स्त्री विरोधी कथन तो प्रायः मिल जाते हैं। नारी के प्रति इस प्रकार के दृष्टिकोण का विकास आरंभ में उसे कोमल, जीवन की मधुर पुरुष भूमि में अवतरण के लिए अक्षम प्रकृत्या अशक्त आदि मान्यताओं के रूप में सामने आया होगा। धीरे-धीरे उसका मार्मिक और उसकी सुकुमारता, अवलम्ब का रूप धारण करने लगी होगी। उसका सौन्दर्य क्रमशः रमणीय और अन्ततः उपभोग्य बन गया होगा। उसकी क्षमाशीलता और सहिष्णुता को उदात्त नैतिक न समझकर विवशता का बोधक मान लिया गया होगा। इस प्रकार नारी अपने ही सुजन में सीमित और निर्माण में बाध हो गयी होगी। आलोच्यकाल अनेक दृष्टियों से जीवन-दृष्टि की व्यापकता और उसके स्वास्थ्य के अभाव का युग है इसलिए तत्कालीन समाज का विशेष रूप से तत्कालीन काव्य में अभिव्यक्त समाज का नारी संबंधी दृष्टिकोण संकीर्ण और अस्वस्थ है। व्यक्ति की दृष्टि में वह उपभोग्य हो गयी है। उसका अस्तित्व पुरुष की सत्ता के लिए खड़ी है। इसलिए आदर्श नारी के गुणों में प्रायः वे ही तत्व सम्मिलित किये जाते हैं जिनसे वह पुरुष के संदर्भ में सुशील सत्त्व, सरस और आलाकारिणी सिद्ध हो। बलदेव कवि के अनुसार शी<sup>ल</sup>, सौ<sup>न्दर्य</sup> और सु<sup>ख</sup>णों से युक्त लज्जावती न मयुरभाषिणी, पति-प्रेम से यु<sup>क्त</sup>, चतुर किंतु अचंचल युवतियाँ ही संसार में सुखदायक होती हैं<sup>१</sup>। उस्मान के विचार से

१- सीत सुख सुलक्षण साज में शुद्ध सुधावच है मन भावक,

प्रेम पतिव्रतसौ परिपूरण, संपति साज सबे सब सायक।

चातुरि चंचलताकी तबे गति, मंद निरासल श्रीगुण सायक।

भाग्यभी पतिभाव सराहा तें युवती जग में सुखदायक।

स्त्री तत्त्व स्थिरता का विधायक और प्रतीक है। वे उसकी देहरी से उपमा देते हैं<sup>१</sup>।

६- भारतीय समाज में स्त्री की अवस्था, अतएव रक्षाणीय सम्भ्रम जाता रहा है। शास्त्रकार का वचन है कि स्त्री की रक्षा करने वाला पुरुष अपने संतान की, सदाचार की, कुल की, तथा धर्म की भी रक्षा कर लेता है<sup>२</sup>। भारतीयकाल का इतिहास इसका साक्ष्य है कि भारतीय और विशेषकर शिवाजी अपने शत्रुओं तक की स्त्रियों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की भावना रखते थे, उनकी मर्यादा के विपरीत आचरण नहीं करते थे। मुसलमान इतिहासकारों ने भी इसकी साक्ष्य दी है। अवस्था की सभी परिस्थितियों में अवध्य सम्भ्रम जाता था<sup>३</sup>। सेनापति के अवधपुरी की स्त्रियाँ स्वयं अपने अवध्य होने के संबंध में आश्वस्त हैं<sup>४</sup>। हम्मीर रास्ते में जहाँ एक स्थान पर शेर के स्वामी की पत्नी उससे प्रणाम पावना करती है और शेर उसकी याचना को अगवीकार कर देता है वहाँ स्त्री यह बताती है कि स्त्री की माँग को ठुकराना पुरुष की शोभा नहीं देता। उसका यह धर्म है कि वह अवस्था की हर इच्छा की पूर्ति करे<sup>५</sup>। रूप नगर की राजकुमारी ने

१- कहै सुजान मनहु बर नारी, तुम समानि नौ बूझनि हारी ।  
मेहरिन्ह कहै लोग सब देहरी, परै असन अस्खिरसोइ मेहरी ॥

उ० बि० पृ० १७९ ।

२- स्वां प्रसूति वरिष्ठं च कुलमात्मानमेव च ।  
स्व च धर्मं प्रयत्नेन जार्या रक्षन् हि रक्षति ॥

३- बान तनि राम पै, नारि जानि छाड़ि दई ।  
के० धृ० पृ० २३९ ।

४- बीती है अवधि, हम अवस्था अवध, ताहि  
वधि कहा है ही, दया कीये जीवजंत की ॥

से- क० रा० पृ० ५९

५- पुरुष धर्म यह मूर न होई ।  
तिथ जाक्त की नाटत कोई ॥

बी० उ० रा० पृ० ५२

दिल्लीशहर के वैवाहिक पुस्तक को ठुकराकर राजसिंह से विवाह के लिए उसे पत्र भेजते हुए अपने अवसात्व की रक्षा की याचना की थी<sup>१</sup> ।

### मादर्शनारी की धारणा

१- भारतीय चिन्ता-धारा में स्त्री के लिए सज्जा और मर्यादा आदि गुण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । बृहद्दर्श पुराण के अनुसार वर की शोभा कन्या से होती है, सम्पत्ति की शोभा पंडितों से होती है, पुरुष का भूषण सद्बुद्धि है और स्त्री का भूषण सज्जा<sup>२</sup> । कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री के लिए सद्बुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं और पुरुष के लिए निर्लज्ज होना कुछ आवश्यक-सा है । जालोज्ज्वल-काल में भी यह दृष्टि विकसित होती रही और उसे अपेक्षाकृत अधिक व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ । सज्जा सौन्दर्यवर्धक ही नहीं, अपने आपमें सौन्दर्य बन गयी जिसकी चरम परिणति आधुनिक युग में प्रसाद की, "रति की प्रतिकृति" के रूप में दिखायी पड़ती है । नूर मुहम्मद के विचार से सज्जा के बिना सौन्दर्य निरर्थक है<sup>३</sup> । गंजन कवि कुतबू के सङ्काओं में सज्जा को

१- लहि और सुन्दर पत्र लिखे, बिना कोट यनी अवलुख रहे ।

हरि ज्यों सु लक्ष्मनि लाबरही, अवला यों राखहु नास-मुखी ।

मान० रा० वि० पृ० १०७ ।

२- गृहेषु तनया भूषा, भूषा सम्पत्सु पंडिताः

पूर्वा भूषा तु सद्बुद्धि, स्त्रीणां भूषा सत्सज्जता ॥

बृहद्दर्शपुराण

३- सुंदर मुख की आखिन बाही लाव ।

लाव बिना सुंदरता कौन काव ॥

नूर मुहम्मद- अनु बां पृ० ७२

अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उसे किसी ने बोलते हुए नहीं सुना, गुरुजनों की ओर देखती नहीं, मन सदैव पति की कामना में रत रहता है, नम्रमुखी सदैव अपना मुँह घूँघट से ढके रहती है, हृदय में सज्जा का वास होता है, घर के आँगन में भी कभी बहो जाती सूर्य को उसका दर्शन कभी न मिलता होगा, शिख से नख तक वह वस्त्र से आवृत है, यदि बोड़े से भी पैर छुल जाते ही चिंतित हो जाती है। तोष की नायिका को देहरी तक दौड़ कर जाने को मना किया जाता है क्योंकि ऐसा होने से "कुल की कानि" बली जायेगी<sup>१</sup>। यह ताव भी ऐसी है कि विदेश से आये हुए प्रियतम से भी भरकर मिलने भी नहीं देती। मतिराम की नायिका के प्रियतम विदेश से आकर घर के आँगन में परिवरों के बीच बैठे हैं, नायिका भीतर द्वार पर खड़ी है, उसका शरीर प्रेमातिरेक से कम्पित हो रहा है रामे-रोम प्रियतम से मिलने के लिए जातुर हो रहा है, वह घूँघट के घट की जोट से प्रियतम का दर्शन करती जाती है<sup>२</sup>

१- बोलत न सुनै कोऊ, देखती न गुरु जन,  
मन पति ही को सदा लिये मन तरसै ।  
नीचिये रहित मुख घूँघट सहति महा,  
कहा कहाँ बैसी ताव हिय बिच तरसै ।  
गजन सुकवि कहे ऐसे निबहै, घर  
आँगन न आवै नैन सूरज न दरानै  
पग उबरत पीर नखशिख बीर सोई,  
परपति मान हियो मीनहुँ न परसै ।  
गजन० सा० पु० पृ० २६०

२- पीरि लौ दीरि न जाहि भट्ट सुनतै सिगरी कुल कानि टरैगी ॥  
तोष- सु० नि० पु० १०५

३- जाय विदेश तै प्रानपिया, मतिराम अनंद बढ़ाय जासेबै,  
सोगन सो मिति आँगन बैठि, चरी-ही-चरी सिगरी घर जेबै ।  
भीतर भीन के द्वार खड़ी, सुकुमार तिया तन कंप बिसेखी<sup>३</sup>  
घूँघट की घट जोट दिये घट जोट किए पिय को मुख देखै ॥

म- गृ० पु० ३१८ ।

बेनी पुर्वीन की नायिका की भी वही स्थिति है। प्रियतम विदेश से आकर आंगन में बड़े अंगना का मन मोह रहे हैं नायिका अन्तःपुर में है और कुटुंबियों का संकोच उसे मनभावन से मिलने से रोक देता है<sup>१</sup>। और यह तन्जा विदेश से आये प्रियतम से मिलने में ही कठिनाई नहीं प्रस्तुत करती, अधिक सामाजिक कठिनाइयाँ तो तब आती हैं जब किसी "राधा" का किसी "गोपाल" से मन लग जाता है। जब की स्थिति तो विनिम्व ही है आनन्दकन्द को देख-देख गोपिकाएँ तन मन और जीवन न्योछावर करती हैं। कन्हैया की कितनी उनके मन में ऐसी गड़ी है कि निकसती ही नहीं। वस्तुतः वे गोपियाँ धन्य हैं जो ज्वराज को देखने, घर के काम काज संभालने, और तन्जा की रक्षा का काम एक साथ कर लेती हैं<sup>२</sup>। अतिशय प्रेमातिरेक के क्षणों में भी गुरुजनों से तन्जा करना भारतीय नारी के लिए आवश्यक-सा है। मतिराम की छबीली नायिका गुरुजनों की भीड़ में संकोचवश मनमोहन को नहीं देखपाती, देखती भी है तो भयवश औरों की दृष्टि बचा कर वह प्रियतम से मिलने के लिए अटारी में बहती है किंतु गुरुजनों की तन्जावश यह प्रयत्न

- १- आयो विदेस ते बेनी पुर्वीन करे अंगना अंगना मन मोहै ।  
भीतर मीन ते प्रानप्रिया सुकिते बहे पै न परै न अयोहै ।  
सोच विमोचन सोहै भये पै संकोचन सोचन होत न सोहै ।

बेनी पुर्वीन- न० श० त० पृ० १९ ।

- २- बाला कितौनि बुभी मतिराम दिए मति की० गहि ताहि निकारै ।

† † †  
ते धनि जे ज्वराज सबै गृह काज करें बरु साज सभारि ॥

गु० पृ० १९८

- ३- बैठे हुो साज मनमोहन छबीली बाल,  
छिनक संकोच राखो गुरुजन भीर की,  
कवि मतिराम दीठि और की बचाव देखै  
देखत ही भीरे भयेराखत जब घोर की ।

म- गु० - पृ० ३४९

करती है कि किसी प्रकार की आवाज न हो<sup>१</sup> । देव की नायिका के सामने भी दुरन्त समस्या है । उसके आभूषण कहीं बज न उठे और देवर सोते से जग न जाँच<sup>२</sup> इसलिए वह धीमे-धीमे चलती है फिर ननद का भी तो डर है वह इन सब के संबंध में अधिक सजग और सतर्क है<sup>३</sup> । यह समस्या मायके में अधिक बढ़ि हो जाती है, वहाँ तो गुरु सौगों की लज्जा और भी बढ़ी होती है । उनकी उपस्थिति में प्रियतम से मिलना अधिक अव्याजनीय है इसलिए नायिका दबे पाँव केलि मंदिर की ओर जाती है । मायके में मनभावन से मिलना अमृत से आचमन करने के समान कठिन है<sup>४</sup> । इस लज्जा संबंधी चारणा, ने पर्दा प्रथा की प्रोत्साहन दिया है । वैदिक साहित्य में पर्दा का कोई उल्लेख नहीं मिलता और स्त्री के लिए लज्जा को भी व इतना महत्व नहीं दिया गया । पुराणकाल में इसका आरंभ होता है कालिदास के काव्यों लज्जा का स्थान महत्वपूर्ण तो है परन्तु पर्दे का अभाव सा है । विक्रम

१- बहुत बटारी गुरु सौगन की लाव प्यारी

रसना रसन दाँव रसना भनक ते ।

म० गु० पु० २१३

२- नेवर के बजत कलेवर कंपत देव,

देखरु जगै न लग सोवत तनक ते ।

ननद न छोछी तपोरी तोरत तिरौछी सखि,

कीछी कैसी बिष्णु बगरावैगी भनक ते ॥

दे० द० पु० १४२

३- लाव बड़ी गुरु सौगन की पदा<sup>५</sup> चापि के केलि के मंदिर जैवो ।

माइके में मनभावन को मिलिबो सखी साँव अभी को अचैवो ।

मतिराम सु० ति० पु० २४२



का तीसरी शताब्दी तक पदा प्रथा लोक प्रिय नहीं थी । डा० राधाकृष्णन के अनुसार आरम्भ में स्त्रियों का विलगात और पदा प्रथा: अज्ञात था । तरुणियाँ उन्मुक्त जीवन बिताती थीं । पर्यादि के अवसर पर युवतियाँ सम्पूर्ण सज्जा और अलंकरण के साथ उपस्थित होती थीं<sup>१</sup> । मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् पदाप्रथा का सर्वांगीण और व्यापक प्रचार हुआ और आलोच्यकाल तक आते-जाते वह प्रायः सविधीम बन चुकी थी जिसके संबंध में अन्यत्र विचार किया जायेगा ।

८- स्त्री पुरुष की सब प्रकार से सहचरी होती है । वह अर्धांगिनी है, सहधर्मिणी भी है । आरम्भ में धार्मिक जायोजनों में और उनके फलाफल में स्त्री पुरुष दोनों का समान समान भाग रहता था किंतु कालांतर में यह स्थिति बदलने लगी थी । निर्णयामत के आदेशानुसार पत्नी को पति का व्रत करना चाहिए और पति को पत्नी का<sup>२</sup> । किंतु धर्मशास्त्र में यह कहा गया है कि स्त्रियों का कोई पुण्य कर्म नहीं होता और उन्हें किसी प्रकार के व्रतादि की आवश्यकता नहीं है । केवल पति-परायणता द्वारा ही वह उत्तम गति प्राप्त कर सकती है<sup>३</sup> । इस प्रकार पति ही स्त्री का धर्म और इष्ट बन गया । स्त्री के लिए पति की सेवा ही परमसाध्य समझा जाने लगा किंतु हिंदू परिवार में बिना स्त्री के, विवाहित पुरुष के धार्मिक अनुष्ठान अपूरे और निष्फल समझे जाते हैं<sup>४</sup> ।

१- राधाकृष्णन, रिस्तीवन एण्ड सोसाइटी पृ० १४२

२- भार्या पतयुक्तं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।

(निर्णयामत) ।

३- नास्ति स्त्रीणां पुण्यमश्ली, न वर्त नाप्नुयोजितम् ।

पतिं सुकृत्यते येन तेन स्वर्गं महीयते ॥

(धर्मशास्त्र)

४- धर्म कर्म कष्टकीर्षी, सफल तरुणि के साथ ।

ता दिन बी कष्ट कीर्षी, निष्फल सोई नाथ ॥

९- वात्सीयकाव्य में परस्त्री प्रेम और बहुविवाह किसी व्यापक रूप में प्रचलित थे ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किंतु तत्कालीन काव्य में इनके पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं जो कवि की रसिक मनोवृत्ति के साक्षी हैं। कहीं कहीं तो इसकी संस्थिति एक साथ मिल जाती है। बिहारी की नायिका ने नायक को सीत की धारी में परस्त्री विहार करते सुना है जिसके कारण उसके मन में विभिन्न विरोधी भाव उठते हैं<sup>१</sup>। वैनी प्रवीण की परिणीता नायिका के प्रियतम किसी अविवर्हिता परस्त्री के प्रेम में पड़े हैं अपनी परिणीता पत्नी की ओर ध्यान नहीं देते और वह उसाहना देती है<sup>२</sup>। बिहारी दास की नायिका को अपनी सीतों से उतनी ईर्ष्या और अपने सम्मान का उतना ध्यान नहीं है जितना उसमें पति प्रेम है। वह अपनी सखी से कहती है कि अब तो यही जी में आता है कि सीतों के भी घर जाना पड़ेगा, मान घटने से क्या बटेगा, प्रियतम को देखने का अवसर तो मिल जायेगा। उनके प्रियतम की परकीया संभवतः घर की सपत्नी नहीं बाहर की कोई स्त्री है जिससे उनका मन लग गया है<sup>३</sup>। नन्दकुमार घर जाकर अपना प्यार प्रदर्शित करने के लिए नायिका के पैर छूते हैं किंतु उनके मस्तक पर लगी लौक अपना दीप अपने बाप प्रकट क्रोध दे रही है<sup>४</sup>।

१- वात्सल्यु वारें सीति के सुनि पर नारि-बिहार ।

भी रसु अनरसु, रिस रसी, रीझ सीझ इक वार ॥

वि० २० दो० १८७

२- हम एक क्या ही अनव्याहिरि है प्रेम करे ।

धन्य नैम उनके है धन्य-धन्य नारी है ॥

वैनी० न० २० त० पु० २०

३- आवै यही अब जी में विचार सखी बसि सीतिहुं के गुह बैसे ।

मान घटे तें कहा बटिहै, नुपै प्रानपियारे कीं देखन पैसे ॥

बि० गु० पु० ३१

४- पाइन प्रेम जनाइ जन परिवै नंदकुमार ।

अनस तास पग लसत है जावक लौक तिलार ॥

म० गु० पु० ४८

ताके पग लागी निस जागि जाके डर लागे,

मेरे पग लगि डर बार्गिन लगाइए ॥

म० गु० पु० ३२६

१०- नारी के जन्म रूप महत्वपूर्ण है अवश्य किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी समस्त जीवन यात्रा मातृत्व के शिखर पर पहुंच कर अपना गन्तव्य प्राप्त कर लेती मानों वह इसी की तैयारी में रहती है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में माता के महत्व का भूरिशः वर्णन किया गया है। वह अपने मातृत्व के द्वारा सुजन की परंपरा को अक्षिप्त बनाये रखती है। वह सृष्टि के संचलन में योग देती है। हम अपने अस्तित्व के लिए उसके ऋणी हैं और यदि मानव जीवन का मूल्य है तो उसमें माँ का स्थान अविश्वीय है। इसीलिए हमारे यहाँ "कुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" की परंपरा रही है। वीषायन धर्म सूत्र में पति और दुराचारी पिता को त्याग देने की अनुमति दी गयी है किंतु माँ दुराचारिणी भी हो तो परित्याग्य नहीं<sup>१</sup>। माता के समान स्नेहांचल की शीतल छाया के समान कब जन्मत्र दुर्लभ है, माता के समान गति भी जन्मत्र नहीं है और न उसके समान प्राणदाता और प्रिय ही अन्य कोई है<sup>२</sup>। नारी के जन्म रूपों का महत्व कालानुसार घटता बढ़ता रहा है किंतु उसका मातृत्व सदैव गरिमावान् रहा है। पुत्र के लिए माँ का आदेश पिता के आदेश से बड़ा है। तुलसी जैसे आदर्श और मर्यादापूर्ण कवि के राम की माँ कौशल्या तो विमाता की भी इतना महत्वपूर्ण स्थान देती है कि उनके आदेश के बिना पिता का आदेश अपूरा और अमान्य है<sup>३</sup>। आलोच्यकाल में भी माता का महत्व

१- पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ।

वीषायन धर्मसूत्र - १३-४७

२- नास्ति मातृसमा छायाः नास्ति मातृसमा गतिः ।

नास्ति मातृसमं प्राणं, नास्ति मातृसमा प्रिया ॥

शक्ति० २६७-३१

३- जीं ज्येष्ठ पितुं वाक्नु ताता । तौ वनि बाहु वनि बाहिमाता ॥

जीं पितुं मातुं कहेहुं वन जाना । तौ वानन रत अवध समाना ॥

रामचरितमानस - (गुटका) पृ० २३३

१०- नारी के अन्य रूप महत्वपूर्ण है अवश्य किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी समस्त जीवन यात्रा मातृत्व के शिखर पर पहुंच कर अपना गन्तव्य प्राप्त कर लेती मानों वह इसी की तैयारी में रहती है । हिन्दू धर्म शास्त्रों में माता के महत्व का भूरिशः वर्णन किया गया है । वह अपने मातृत्व के द्वारा सुवन की परंपरा को अक्षिप्त बनाये रखती है । वह सृष्टि के संचलन में योग देती है । हम अपने अस्तित्व के लिए उसके ऋणी हैं और यदि मानव जीवन का मूल्य है तो उसमें माँ का स्थान अद्वितीय है । इसीलिए हमारे यहां "कुत्रो जायेत ऋचिदपि कुमाता न भवति" की परंपरा रही है । वीषायन धर्म सूत्र में पति और दुराचारी पिता को त्याग देने की अनुमति दी गयी है किंतु माँ दुराचारिणी भी हो तो परित्याग्य नहीं<sup>१</sup> । माता के समान स्नेहांचल की सीतल छाया के समान कब अन्यत्र दुर्लभ है, माता के समान गति भी अन्यत्र नहीं है और न उसके समान प्राणदाता और प्रिय ही अन्य कोई है<sup>२</sup> । नारी के अन्य रूपों का महत्व काष्ठानुसार घटता बढ़ता रहा है किंतु उसका मातृत्व सदैव गरिमावान् रहा है । पुत्र के लिए माँ का आदेश पिता के आदेश से बड़ा है । तुलसी जैसे आदर्श और मर्यादापूर्ण कवि के राम की माँ कीर्तना तो विमाता की भी इतना महत्वपूर्ण स्थान देती है कि उनके आदेश के बिना पिता का आदेश अपूरा और अमान्य है<sup>३</sup> । आलोच्यकाल में भी माता का महत्व

१- पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ।

वीषायन धर्मसूत्र - १३-४७

२- नास्ति मातृसमा छायाः नास्ति मातृसमा गतिः ।

नास्ति मातृसमं प्राणं, नास्ति मातृसमा प्रिया ॥

शक्ति० २६७-२१

३- जी केवल पितु आक्षु ताता । तौ बनि बाहु बनि अहिमाता ॥

जी पितु मातु कहहु बन जाना । तौ बानन रत्न अवध समाना ॥

रामचरितमानस - (गुटका) पु० २३३

अपुष्पा है। छक्कास की माता को पुण्य की मूर्ति कहा गया है<sup>१</sup>। माता अपना स्तन्यपान करा कर, हमें वपुष्पा बसवान बनाती है। उसकी ममता हमें आत्मिक बल प्रदान करती है। सेनापति ने सुत को स्तन्यपान कराने का सुंदर वर्णन किया है। मयकुम्भी अपने बत्स की गोद में लेकर उसके मुँह की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखती जाती है और बधि हाथ से पुत्र का शीश पकड़े दाहिने हाथ से स्तन्यपान करा रही है<sup>२</sup>। यही नहीं माँ पुत्री को अपने गार्हस्थ्य जीवन के अनुभव से और पुत्र को लौकिक ज्ञान से कर्मक्षेत्र में मार्गदर्शन भी करती है। छत्रपुकाश में चंपन की माता द्वारा पुत्र को उत्ति ससाह देने का उत्तेजनाया है<sup>३</sup>। यह विशेष रूप से उत्तेजनीय होगा कि और जहाँ, पति के संदर्भ में अनेक पत्नियों और प्रेमिकाओं के होने के कारण सौंदर्य से संबद्ध विवरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं जहाँ विमाताओं के चित्र प्रायः नहीं हैं। रीतिकाल का रसिक कवि रस-सृष्टि में तीव्रता लाने के लिए बहुविवाह का अस्तित्व लोक जीवन में व्यापक न होने पर भी, आयोजित कर लेता है किन्तु उस स्थिति को मुक्तसंगत परिणाम तक नहीं पहुँचाता। कदाचित् इसलिए कि उसके रसिक मन को उसमें शांति नहीं मिलती और अकारण ही द्वेष या क्रोध की सृष्टि वह काव्य में अनावश्यक समझता है। केशवदास की विज्ञान गीता में विमाताओं के परम्परागत वैर का उत्तेजक अवश्य मिलता है<sup>४</sup>, संभवतः इसका कारण केशव का रावकुल के

-----  
१- त्योंही छक्कास की माता जग में एक पुण्य की माता ।

गोरे-छ० पृ० ६०

२- कीने नत नैन, देखे मुख-बंद नंदन की,

अक से मयक-मुखी ताहि मल्हावति है ।

बाएँ कर हीरित की सीस रहि दाएँ कर,

गहे कुच प्यारी पमपान करावति है ॥

छे० क० २० पृ० ५१

३- यह सुन के चंपति की माता । दानविधान ज्ञान गुन दाता ।

निकट आपने पुत्र सुलाए । सुखद मंत्र के बचन सुनाए ॥

गोरे- छ० पृ० पृ० ३७ ।

४- वैर विमातानि में बलि आयो । आजु नयी हमही न उपायो ॥

के० गु० पृ० ६५१

अधिक निकट होना और राजकुल में उत्तराधिकार के लिए राजमाताओं का अधिक मुखर होना हो, किंतु यह सत्य है कि रीति काव्य में विमाताओं का उत्सव किसी बड़े पैमाने पर नहीं है।

### कामिनी रूप -

११- रीति कालीन काव्य में नारी की अवतारणा अनेक रूपों में हुई है किंतु रीति कवि का रसिक मन नारी के रमणी और प्रमदा रूपों पर स्वभावतः अधिक रमता था। गुहिणी और पत्नी आदि रूपों में भी रीतिकवि के लिए प्रमदात्व और रमणीत्व का ही आकर्षण अधिक प्रबल था। केशवदास भामिनी की भोगों का परम आरूप मानते हैं रूत्री के बिना संसार छूट जाता है और संसार छूट जाने पर सुखों का योग समाप्त हो जाता है<sup>१</sup>। विज्ञान गीता में ही केशवदास एक अन्य स्थान पर काम के मुख से रूत्री को काम के सत्त्व के रूप में संबोधित कराते हैं। उसके देखते ही पैरुप छूट जाता है, नियम और संयम टूट जाते हैं, संसार के सारे ज्ञान-विज्ञान और समस्त विवेक शक्ति उससे पराजित हो जाती है। समस्त संसार को जीतने के लिए काम ने अपने युवती रूपी सत्त्व का निर्माण किया है<sup>२</sup>। राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचने पर उनकी स्थिति को देखकर विहारी लाल को उद्बोधन में जो दीहा लिखकर भेजना पड़ा था वह तत्कालीन उच्च वर्ग में व्याप्त कामपरक्ता का प्रतीक है। कवि स्वयं तो नारी के प्रति

१- जहाँ भामिनी भोग तह भामिनि बिन कह भोग ।

भामिनि छूटे जग छूटे जग छूटे सुख जोग ॥

के. वि. गी. पु. १५४ ।

२- शील बिलात सब सुमिरे अवलोकत छूटत धीरज भारी ।

हासहि केशवदास उदास सब ब्रत संजय नेम निहारो ।

भाषण ज्ञान विज्ञान छिरी धिरी को बपुरा जो विवेक बिचारो ।

या सिंगरे जग जीतन को युवतीमय ब्रह्म सत्त्व हमारी ॥

के. गु. पु. ६५०



आकृष्ट रहता ही था, कामी स्वता परवर्ति के अनुसार नारी की मनोवृत्ति में भी काम का गहरा रंग भर देता है। सुखदेव मिश्र की नायिका किसी नन्द के कन्हैया से अपनी गैया दुहने का आग्रह इसलिए नहीं करती कि उसे वस्तुतः गाय दुहाने की जरूरत है। वह तो अत्यन्त अर्थगर्भ आत्मन्त्रण है। नायक को बुलाने के साथ वह सूनेपन और एकान्त का विज्ञापन करना भी नहीं भुलती। उसकी भाभी भगड़ा करके बाहर चली गयी है, जिसके बिना उसे अपना घर बिल्कुल नहीं अच्छा लगता (अर्थात् बहुत अच्छा लगता है)। पड़ोसिन अन्धी तो है ही, पुकारने पर सुनती भी नहीं, माँ मायके गयी है भैया भी बाबू घर में नहीं है। किसी कन्हैया की आत्मन्त्रणा देने के लिए इससे उपयुक्त और कौन सा अवसर हो सकता है?। किसी नायिका के घर के सब लोग तीर्थ स्नान के लिए चल पड़े हैं और सास (जनवाने ही) बहू पर कुपालु हो जाती है, घर में कोई रहने के लिए तैयार नहीं है इसलिए वह बहू को घर में ही रहने का आदेश देती है। सुंदरी इस अवस्थिति अनुकम्पा से जानकी हो जाती है। उसे नन्दोई के साथ रहने का मनबाहा अवसर मिल जाता है<sup>३</sup>।

१- न्याारी है रही है दिन ढैक ही ते भाभी सरि,  
ता बिन न भावै भौन कहा कहा कीबिये ।  
नेकहु न सुने बैर से कहूँ बौ टेरियत,  
भाँषरी परीसिन यह दुख कैसे जीबिये ।

-। + +  
गैया गई माइके सु भैया घर नहिं जावु,  
नन्द के कन्हैया मेरी गैया दुहि दीबिए ॥

सुखदेव मिश्र- सा० प्रभा० पृ० १५९ ।

२- हे दिन के पय तीखा-हान को लोग जले मिल के सिंगरीई ।  
सास बहू से कह्यो कि रही तुम और रहे नहिं राखत जोई ।  
सुंदरी जानद सो ठगगी हिय चाहत ही सो भई जब सोई ।  
प्रेम से पूरन दोऊ जने घर जाय रही कि रह्यो ननदीई ॥

रघुनाथ सु० ति० पृ० १११-१२

१२- विहारी को समालोचकों ने गागर में सागर भरने का नैय दिया है । उन्हें लोक जीवन का अत्यन्त व्यापक और गहन अध्ययन था । जीव के अन्ध क्षेत्रों की भाँति, अपितु उनसे कहीं अधिक, उनकी इस सामर्थ्य का परिचय वहाँ मिलता है वहाँ वे नारी को कामिनी रूप में प्रस्तुत करते हैं । संभव है, जैसा कि विहारी ने लिखा है, किसी परम सुंदरी का सजावट वदस्ता हुआ रूप चित्रकार की सामर्थ्य के बाहर हो गया हो किंतु विहारी का कलाकार इतना सबग है, उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि भुंगार और काम के क्षेत्र में मानवमन के प्रत्येक उत्थान-पतन को उनकी तूतिका एक ही झुके से स्पर्श से मूर्त कर देती है । वहाँ उनके समकालीन कवित्व और सदैवा लिखने वाले कवियों को एक चित्र देने के लिए अनेक बार और कहीं-कहीं बनावश्यक रूप से अपनी कूची का प्रयोग करना पड़ता था, इतने रंग भरने पड़ते थे कि सङ्कट उन रंगों में ही हो जाय और प्रकृत विषय उसके हाथ बहुत कम जाये वहाँ विहारी की एक रेखा भाव को मूर्त करने और बिंब को मुखर करने के लिए पर्याप्त होती है । उनकी नायिका के नेत्र रूपी तुरंग सज्वा रूपी लगाम को नहीं मानते । विविक्षिता तो यह है कि पीढ़े की लगाम खींची ही नहीं जानी चाहिए । बरना वह और तेज चलने लगता है वहाँ भी नेत्र रूपी तुरंग सज्जारूपी लगाम के कड़ी करने पर और भी तीव्र गति से अपने गन्तव्य बर्बात प्रिय की ओर प्रयाण करते हैं । एक अन्ध स्थान पर प्रियतम के ध्याय में मग्न नायिका दर्पण देखती है और अपने ही रूप पर रीझती और खीझती है ।

१- साज-लगाम न मानहीं मैना मीं कस नाहिं ।

ए मुखोर तुरंग ज्यो, ऐकत हूँ बलि बहिं ॥

वि० र० ६१०

प्रिय के ध्यान गही गही रही बही है नारि ।

जापु जाप ही मारसी लखि रीझति रिझारि ॥

वि० र० ५८३

क्रामड ने काम की मानव स्वभाव की मूलवृत्ति माना है । भारतीय चिंतन परम्परा के संदर्भ में यदि काम शब्द की व्याख्या की जाय तो अपने व्यापक अर्थ में वह कदाचित् क्रामड की मान्यता का समर्थन करेगा । संभवतः इसीलिए क्रामड को बिना जाने ही बिहारी क्रामडीय परम्परा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । उनकी नायिका प्रियतम के द्वारा वृक्षित शिशु मुख की इसलिये चूमती है कि उसे प्रियमुख के वृक्ष का सुख प्राप्त होता है<sup>१</sup> । मतिराम में ऐन्द्रिय व्यास और तृप्ति का अभाव अवैकाङ्क्ष अधिक मिलता है और उनकी सौन्दर्य दृष्टि भी अवैकाङ्क्ष अधिक रसस्नात है । प्रियतम के नेत्र मयंकमुखी की मुद्ग मुक्कान का पान करते रहती है किन्तु उनकी व्यास रंजनाय नहीं बुझती । उनकी नायिका के मुक्काने पर सौन्दर्य-शशि बिखर पड़ती है, ऐसा प्रतीत होता है मानों वृष्णित चम्पक लता में से चमेसी के पुष्प भङ्गने लगे हों<sup>२</sup> । मतिराम के इस दूरय में बहुरिन्द्रिय की प्रधानता है, बिब का संबंध उसी से है किन्तु बिहारी में रसना की ललक है । जब तक उनकी नायिका नहीं बोलती तभी तक पीयूष आदि में माधुर्य रहता है उसके बोल इतने मीठे हैं, उसकी बातें इतनी सरस हैं कि उसे सुनने के बाद "बल-मदूख-पियूष" की भूख नहीं रह जाती<sup>३</sup> । पावक शिखा की भाँति वह

१- बिहारी बुझाई, बिसौकि उस और तिया रसबूमि ।

पुसकि पसोजति, पूत की पिय-चूमवी मुँह बूमि ॥

बि० र० ६१७

२- पियत रहत पियनैन यह तेरी मुद्गमुक्कानि ।

तऊ न होत मयंकमुखि सनिक व्यास की हानि ॥

↑                    ↑                    ↑

ललत बाल के बदन में यों छवि कलू बतल ।

फूली चम्पक बेलि तैं भरत चमेसी- फूल ॥

म- गू० पृ० ४०४-४०३

३- छिनकु, छबीले लाल, वह नहिं बी लमि बतराति ।

बल, मदूख, पियूष की ती ली भूख न जाति ॥ बि० र० ४०४

ज्यों ज्यों पावक-लपट सी तिय हिय सी लपटाति ।

त्यों त्यों छुही गुलाब से छतिमा अति सियराति ॥

बि० र० दी० ३४४

प्रियतम के हृदय से लिपट जाती है (पावक शिखा में सौन्दर्य के साथ साथ आभा के सुवन की समता और मनोभावों की ऊष्मा भी है) किंतु वैचित्र्य यह है कि पावक शिखा से जलन के स्थान पर वन्तस् को अनिवार्य शीतलता की अनुभूति होती है। सेनापति की नायिका के तिरछे कटाकों की वेध शक्ति प्रबल है। वे उद्दिष्ट व्यक्ति की छाती में गड़ कर ही रह जाते हैं। काननन्द की नायिका का गौरवर्ण और सुंदर भाव ऐसा प्रतीत होता है मानों श्री का आवास स्थल हो। उसकी पीठी मृदु मुक्तान से रस सुवित होता है<sup>१</sup>। मतिराम की नायिका अपने पड़ोसी के घर-आग लेने गयी। इस प्रक्रिया में जाते पिताकर मुखमोड़ो हुए होकर, किंचित स्नेह व्यक्त कर आग लेने के साथ उसने पड़ोसी की हृदय में आग लगा दी और बली गयी<sup>२</sup>। रीतिकाल का भृंगारी कवि आग लग जाने पर उसे बुझानी ठीक नहीं समझता। रमणी रूप की प्यास उसे बनी ही रहती है।

१- सेनापति प्यारी तैरे तम से तरल तारे  
तिरछे कटाछ गड़ि छाती में रहत है ॥

से० क० र० पृ० ३३

२- छवि को सदन गौरी बदन लखिर मात ।  
रस निबुरत पीठी मृदु मुक्तान है ।

प० ग० पृ० १८५

३- नैन जोरि, मुख मोरि, हंसि, नैसुक नैह जनाय ।  
जा गितेन जाई, हिये मेरे गई लगाय ॥

प० ग० पृ० ३२५

असत् पक्ष-

१३- रीतिकाल के रसिक कवियों ने नारी के कामिनी रूप का चित्रण करने में अपनी अधिकश काव्य शक्ति का नियोजन किया। स्त्री के संबंध में अतिशय प्रशस्ति और आकर्षण तथा अत्यन्तिक निन्दा और विकर्षण दोनों ही पुरुष मन की अस्वस्थ प्रवृत्तियाँ हैं। पहली मनीवृत्ति का व्यक्ति उसके आकर्षण में जीवन की व्यापकता को समग्र रूप से देखने में असमर्थ रहता है तो दूसरा स्त्री को नरक का द्वार समझ कर उसके प्रसूति एक अस्वाभाविक विरक्ति और आक्रोश प्राप्त होता है, जीवन की नैसर्गिक योजना के प्रतिकूल आवरण करता है। इसलिए रीतिकाल में कामिनी की कामकला की अतिशयता के साथ साथ उसके संबंध में गर्हित और कुत्सित दृष्टि भी देखने में आती है। संत नागरीदास के अनुसार नी, का बंध की होने के साथ ही स्त्री को कामकला रुचिकर लगने लगती है। सुंदरदास कामिनी की देह सखन बन की भाँति बताते हैं, जहाँ जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति भ्रमित हो जाता है। उसकी गति कुंवर के समान है, कटि में केहरि का भय है, बेणी नागिन के फन की तरह है, उसके अस्वस्थ पर्वत शिखरों की भाँति दुर्लभ है जहाँ काम रूपी चोर बैठे हुए कटाव रूपी बाण ताने प्राण-हरण को उद्यत हैं। दरिया साहब के विचार से एक

१- नी दास बरस निकट जब आवै, का<sup>न</sup>क्या तबही ते भावै ।

नागरी- पृ० ४५

२- कामिनी की देह जति कहिए सखन बन,  
जहाँ सु ती जाइ कोठ भूति के परत है ।  
कुंवर है गति कटि के हरि की भय नामे,  
बेनी कारी नागिन सी फन की परत है ।  
कुच है पहार जहाँ काम चोर बैठौ तहाँ,  
साधिके कटाव बना प्राण को हरत है ।

सुंदरदास कविता- कौमुदी पृ० ३३१-३३२

श्रीर कामिनी के फन्द में पड़कर सातवीं मन माता-पिता, सुत और बान्धवों सभी को विलसता छोड़ देता है<sup>१</sup> । कनक श्रीर कामिनी बटमार की तरह है । इन्होंने सारे संसार में "टंटा" बड़ा कर रखा है<sup>२</sup> । दरिया साहब एक अन्य स्थान पर कहते हैं कि नारी के साथ जेस रस-भोग संभव है भक्ति, योग आदि में उससे बाधा पड़ती है । नारी विकार का स्वरूप है उसकी ओर जाना जानबूझकर जग में पाव रखना है<sup>३</sup> । दीनदयाल की दृष्टि में नारी एक शिकारी की भाँति है<sup>४</sup> । पुरुष जिस दिन से वासनारूपी व्यभिचारिणी के हाथ में फँस जाता है उसका विवेक और उसकी सदबुद्धि समाप्त हो जाती है । माता-पिता और बन्धु बान्धवों का निरादर-तिरस्कारादि कर पुरुष ने वैर का अंकुर बढ़ा लिया है इसलिए कविवर दीनदयाल के अनुसार अन्यकार रूपी स्त्री को छोड़ देना चाहिए

१- कनक कामिनी के फन्द में सातवीं मन लपटाय ।

मात पिता सुत बाँधवा सब मिलि करे पुकार ॥

दरिया गुं० पु० २५

२- एक कनक श्रीर कामिनी यह दोनों बटमार

कनक कामिनी कहत का भँटा इन ठानिन सारा जग टंटा ।

मल्लूक बानी - पु० १२-१७

३- नारी संग होवे रसभोगा, भक्ति भाव होवै नहिं जोगा ।

नारी रूप है संग विकारा, जानि के पाव जगनि में डारा ॥

दरिया० गुं० पु० २५५

४- दीन० क० गुं० पु० १४९ (पुनदा दूखणा)



क्योंकि उसके संसर्ग में कोई सुख नहीं प्राप्त होता।

१४- रीतियुग का सामान्य कवि नारी के प्रति जितना ही तीव्र आकर्षण का अनुभव करता था रीति युग का सन्त कवि उसके प्रति उतनी ही गहरी और तीखी विरक्ति रखता है। न तो रीति कास के रसिक कवि का स्त्री के प्रति आकर्षण ही स्वाभाविक और सख्त है न संत कवि की विरक्ति ही। ये दोनों ही अतिवादी और अवास्तविक हैं। रसिक कवि में प्रेम की उस भाव का अभाव है जो सुवन और निर्माणा का कारण बनती है जो, सृष्टि के प्रकृति और पुरुष तत्त्व में एक दूसरे के प्रति सहज रूप से उत्पन्न होती है और संतकवि जीवन की सामाजिकता से भागता है, उसकी यथार्थ भूमि छोड़ देता है वह वैयक्तिक स्तर पर सत्य का संधान करता है। सामाजिक समाधान की अपेक्षा उससे नहीं की जा सकती वह किसी भी समस्या का इस सामाजिक स्तर से हल ही नहीं। किंतु स्त्री के कामिनी रूप के साथ साथ उसके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों की निन्दा हमारे यहाँ परम्परागत रूप से चली आयी है। योगशास्त्र में स्त्री के आठ स्वभावक दोष बताये गये हैं जिन्हें आगे चल कर महाकवि तुलसी ने भी मान्यता दी थी। इनमें अनृत, साक्ष (अपने पुराने कर्म में जबकि उसका भाव दुःसाक्ष से था) माया, मूर्खत्व, अमति, लोभ, अशीच, निर्दयता नामक

१- जा दिन ते वासना कुकरि विभिवारिन को  
जानि देखेहु बीच बित को सुभायो है  
ता दिन ते सति श्री विवेक मात पित दू को  
तौहि ते निरादर विद्याम बिलगायो है  
संजमादि प्राप्त बड़े तोषा सदा ते अनूप  
तिन सौ ते तैर रूप अकुर बढ़ायो है  
ताते तबि दीनबाख तमा तिय को उताव  
देखिये कुपत संग कौन सुख पायो है ॥६९॥

दोषों को गिनाया गया है<sup>१</sup> । मनु महाराज के अनुसार भी पुरुषों को विकार ग्रस्त कर देना स्त्रियों का स्वभाव है इसलिए उससे बचना चाहिए । महात्मा सुंदरदास के अनुसार कामिनी का जंग-जंग मलिन और रोम रोम अशुद्ध होता है । वह हाड़ मांस मज्जा और रक्त आदि का भंडार स्वरूप है, उसमें मूत्र पुरीष आदि विविध व विकार है, इसलिए उनके विचार से, ऐसी नारी के शिष-नख की जो प्रशस्ति करता है वह अत्यन्त गंवार है<sup>२</sup> । संत सुंदरदास के इस कथन में भु मनुहरि के विचारों की समानता दिखाई पड़ती है । श्रीगारुडशतक में नारी शरीर के प्रत्येक अवयव की अत्यन्त नग्न और वासना जनक चर्चा करने के पश्चात् मनुहरि अपने वैराग्यशतक में संभवतः उस अति की प्रतिक्रिया स्वरूप ही दूसरे छोर पर जा पहुँचते हैं । दादू दयाल की दृष्टि में नारी और पुरुष दोनों एक दूसरे के वैरी हैं<sup>३</sup> । संत नागरीदास भी स्त्री की छोटी काया, छोटी और खोटी बुद्धि, महाअशुद्ध तन मन, के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं । स्त्री ने सेना ही सीखा है, देना नहीं । दानकुबेर की संपत्ति भी स्त्रियों को तृप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं

१- अतुल साहस माया मूर्खत्वमतिमोहिता ।

अशी चित्त निर्दयत्वं स्मीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

योगशास्त्र

† † †  
अौगुन जाठ सदा उर रहहीं नारि सुभाव सत्य कवि बहई ।

मानस (पृ०) २-५१५

२- कामिनी को जंग अति मलिन महाअशुद्ध

रोम रोम मलिन मलिन सब द्वार है ।

हाड, मांस, मज्जा, भेद बर्म सु लपेट राखे,

ठौर ठौर रक्त के भोहु भंडार है ।

मूत्र हू पुरीष जात एकमेक मिल रही,

और हू उदर भाँहि विविध विकार है ।

सुंदर कहत नारी नखसिख निंदा रूप,

ताहि जो सराहै, सो तो बड़ो हि गंवार है ॥ क० की पृ० ३३१-३३

३- नारी वैरागी पुरुष की पुरुषा वैरी नारि ।

अन्त कात दून्धू पवि भुए कछु न आया हाय ॥

दादू-बानी पृ० १७२

हैं<sup>१</sup> । स्त्रियाँ बुद्धिहीन होती हैं, उनमें सूझ-बूझ नहीं होती<sup>२</sup>।  
इसलिए उनकी सलाह मानने वाले का कल्याण नहीं होता । जिस घर  
में साता सारथी हो, स्त्री की सीख मानी जाय, और सावन में जो  
बिना हल रहे, वे तीनों भीख मांगते हैं । इसी प्रकार दूसरे के घर  
में रहने वाला, स्त्री की सीख मानने वाला और दूर देश में ईश्वर जाने  
वाला तीनों ही हानि उठाते हैं<sup>३</sup>। स्त्रियाँ बुद्धिहीन ही नहीं कामर  
भी होती हैं<sup>४</sup>। किंतु इस जवला जाति में विनाश की प्रवृत्ति सामर्थ्य होती

१- छोटी काया छोटी बुद्धि छोटी तनमन महा बहुल ।  
सौभी महा सौभ कित मही लैते ही की पाटी पटी ।  
धन कुबेर की जो धन भरै तऊ तियन का त्रित न करे ।

नागरी- पृ० ४४

२- तुम कामिनी मतिहीनी, भोग सुपावहु भौंहि ।  
प्रेम खीच है मीकई, सूझ बूझ नहिं तोहि ॥

नूर-इन्दा० (हिन्दी के कवि - काव्य पृ० ८७)

३- जिहि घर साता सारथी तिरिया की हो सीख ।  
सावन में बिन हल रहे तीनों मागि भीख ॥ पृ० ६७

† †  
घर बिराने जो रहे भाने तिरिया सीख ।  
तीनों ही यों जायेगे पाही बोवै ईश ॥

पाप- भ० पृ० ७९

४- कामर जाति तिया हम बानी, तातै यह हम प्रबमहिठानी ॥

हम्मीर रासी- पृ० ४८

है । कवि जोधराज एक स्थान पर कहते हैं कि जबला क्या नहीं कर सकती?  
जिस प्रकार अग्नि में हर वस्तु भस्म हो जाती है, सिंधु में सभी कुछ समा  
जाता है और कास समस्त संसार को बा लेता है उसी प्रकार स्त्री भी  
तन्त्रंगी होती हुए भी पुरुष के लिए सर्वग्राहिणी सिद्ध होती है । तावों  
कवियों ने स्त्री को जबला कहा है किंतु कवि जोधराज उसे जबला कहने  
के पक्ष में हैं स्त्री का चरित्र ऐसा कि सारा संसार मुह हो जाता है,  
वह पानी में जाग लगाने और सूखे में नाव बसाने जैसे असंभव कार्य संपन्न  
कर लेती है<sup>१</sup> । स्त्री पुरुष के पैर की बूती के समान है इसलिए पुरुष  
को अपनी राह बसाना चाहिए "पनही" तो पाव में रखनी ही<sup>२</sup> । इस  
प्रकार जब स्त्री का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है तो उसे किसी प्रकार  
की स्वतंत्रता भी नहीं दी जानी चाहिए । नारी को पराधीन रखने  
का दृष्टिकोण हमारी प्राचीन संस्कृति में और बाहर भी बहुत प्राचीन  
है । कामिनी जबला, मतिहीन, और दुराचारिणी समझी जाने के  
नाते, उसे जाकबर्ण का केन्द्र, रक्षणीय और दण्डनीय माना गया है ।

१- का नहिं पावक जर सके, का नहिं सिंधु समाय ।

का न करै जबला प्रबल किहि जग कास न बाय ।

कवि लाखन जबला कहत, सबला जोध कहत ।

दुबला तन मैं प्रगट बिहि, मोहत संत असंत ॥

जो० हम्मीर रा०- पु० १२

२- तिरिया चरित न कीन्ह विचारा । तिरिया मते बूढ़ संसारा ॥

तिरिया बल मंह जाग लगानै । तिरिया सूखे नाव बसानै ॥

का० ६

३- जैसे पनही पाव की, तैसे तिया सुभाउ ।

पुरुष संघ बसु जापने, पनही तबै न पाउ ॥

उ० वि० पु० १७९

तुलसीदास ने भी डोस गवार शुद्ध एवं पशु के साथ स्त्रियों को भी ताड़ना का अधिकारी समझा था । कवि बोधा के अनुसार भी स्त्रियों को भय दिखाकर और समझाकर कैद रक्खा जाना चाहिए ।

१५- जिस प्रकार भारतीय किंतु ने पारिवारिक परिवेश में स्त्री का अद्वितीय महत्व बताया है, उसे पतिव्रता, सद्गुहिणी, सुलक्षणा, ममतामयी माँ और भाभी, बहन आदि अनेक रूपों में देखा और उसका गुण गान किया है, उसी प्रकार पारिवारिक संदर्भ में ही स्त्री में अनेक प्रकार के दोषों का भी वर्णन किया है । वह सास को देखने पर सिंहनी की भाँति बम्हाई लेती है, ससुर को देखकर बाफिन की तरह मुँह फँसाती है, ननद को देखकर नागिन की भाँति फुफकारती है और देवर को डाकनी की तरह डराती है । ऐसी कर्कशा, क्ताइन, कुबुद्धि और कुलक्षिणी स्त्री उसी के घर पहुँचती है जिसका भाग्य फूटा होता है<sup>१</sup> । संत नागरीदास एक ऐसी स्त्री का चित्र खींचते हैं जो माता पिता की सेवा नहीं करती, सास ससुर का कहना नहीं मानती, सुत, पिता माता भाई और बहन में कलह कराती है और पति से भी भगड़ती है<sup>२</sup> । कवि जगन्नाथ की धूर्त नारी प्रियतम की सदैव नये-नये

-----  
१-राखी कैद नारीन को भय दिखाय समुझाय ।

बो० वि० वा० पृ० ३९

२- सास के बिलीके सिंहनी सी बम्हाई लेह,  
ससुर के देखे बाफिनी सी मुँह बावती ।  
ननद के देखे नागिनी सी फुफकारे बैठी,  
देवर के देखे डाकनी सी डरबावती ।  
भक्त प्रधान मोछ जारती, परीसिन की,  
ससम के देखे साई-बाई कर भावती,  
करकशा क्ताइन कुबुद्धिनी कुलक्षणी ये,  
करम के फूटे घर ऐसी नार बावती ॥

प्रधान- सा० २० पृ० ३२१

३- मातु पिता की टहल न करे, सास ससुर को अनुहरे ।  
करे कलहयुत पति बल मात, करे कलह भगिनी और भ्रात ।  
नागरी - पृ० ४७

तुलसीदास ने भी डोल गंवार शुद्र एवं पशु के साथ स्त्रियों को भी ताड़ना का अधिकारी समझा था । कवि बीपा के अनुसार भी स्त्रियों को भय दिखाकर और समझाकर कैद रखा जाना चाहिए ।

१५- जिस प्रकार भारतीय स्त्रियों ने पारिवारिक परिवेश में स्त्री का अद्वितीय महत्व बताया है, उसे पतिव्रता, सद्गुहिणी, सुलक्षणा, ममतामयी माँ और भाभी, बहन आदि अनेक रूपों में देखा और उसका गुण गान किया है, उसी प्रकार पारिवारिक संदर्भ में ही स्त्री में अनेक प्रकार के दोषों का भी वर्णन किया है । वह सास को देखने पर सिंहनी की भाँति बम्हाई लेती है, ससुर को देखकर बाँझ की तरह मुँह फँसाती है, ननद को देखकर नागिन की भाँति फुँफकारती है और देवर को डाकनी की तरह डराती है । ऐसी कर्कशा, क्साइन, कुबुद्धि और कुलक्षिणी स्त्री उसी के घर पहुँचती है जिसका भाग्य फूटा होता है<sup>१</sup> । संत नागरीदास एक ऐसी स्त्री का चित्र खींचते हैं जो माता पिता की सेवा नहीं करती, सास ससुर का कहना नहीं मानती, सुत, पिता माता भाई और बहन में कलह कराती है और पति से भी भगड़ती है<sup>२</sup> । कवि जगन्नाथ की धूर्त नारी प्रियतम की सदैव नये-नये

-----  
१-राखी कैद नारीन को भय दिखाय समुभाय ।

बो० वि० बा० पृ० ३९

२- सासु के बिलीके सिंहनी सी बम्हाई लेह,  
ससुर के देखे बाँझी सी मुँह बावती ।  
ननद के देखे नागिनी सी फुँफकारे बैठी,  
देवर के देखे डाकनी सी डरबावती ।  
भक्त प्रपन्न मोछ बारती, परोसिन की,  
खसम के देखे बाँड-बाँड कर भावती,  
करकशा क्साइन कुबुद्धिनी कुलक्षिणी मे,  
करम के फूटे घर ऐसी नार बावती ॥

प्रधान- सा० र० पृ० ३२१

३- मातु पिता की टहल न करै, सास ससुर को अनुहरै ।  
करै कलहसुत पति बल मात, करै कलह भगिनी और भ्रात ।  
नागरी - पृ० ४७



आदेश देती रहती है। अन्न, धन, भूषण, वस्त्र अग्नि, शाक आदि लाने के नये-नये हुक्म पतिदेव को मिलते रहते हैं। कभी लड़के को बिलाने का आदेश होता है तो कभी अपने ही लिए अगिया सिला लाने का फरमान। जैसे बाजीगर बंदर को नचाता है वैसे ही वह स्त्री निशिवासर अपने पति को नाच नचाती है<sup>१</sup>। घाघ सौक जीवन के और भी निकट पहुँच है, उनके विचार से जो स्त्री साँझ होते ही बाट पर पड़ रहती है "भरी-भड़ेहर" को "बारह बाट" कर देती है। सारा घर आंगन दुर्गन्धित रहता है, ऐसी स्त्री परिवार को रसातल पहुँचा देती है<sup>२</sup>।

१६- नारी के कामिनी रूप पर अतिशय बल देने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रीतिकालीन कवि उसके प्रति एक अवांछित दुर्बलता का अनुभव करने लगा। पारिवारिक परिवेश में, जहाँ धन की आचारशिला ही मर्यादा पर रखी गयी थी, रीति कवि अमर्यादित संबंधों की कल्पना करने लगा। देवर-भाभी, ससुर-पतीजू के और पड़ोसी-पड़ोसिन के अवांछनीय संबंधों के उदाहरण रीतिकालीन काव्य में मिल जाते हैं। बिहारी की नायिका के देवर का ब्याह हो रहा है। घर के सभी लोग प्रसन्न हैं। विविध प्रकार के संगीत-गायन आदि का आयोजन हो रहा है किन्तु वह इससे दुखी है। उसे यह सब भला नहीं लग रहा है।

१- अन्न लाठ, धन लाठ, भूषन वसन लाठ ।  
आग लाठ, साग लाठ, लाठएँ बड़ी रहे ॥  
सरिका छेलाय लाठ, अगिया सिलाय लाठ ।  
लाठ लाठ करिये मैं लूप न घटी रहे ॥  
बाजीगर बंदर को जाविधि नचावत है ।  
लिए सकड़ी निशिवासर लड़ी रहे ॥

जगन्नाथ- सा० २० पृ० १८८

२- साँझ से परि रहे जो बाट, भरी भड़ेहर बारह बाट ।  
घर आंगन सब धिन धिन होय क्वा गहिरे देव दुबोय ॥

घा० क० पृ० ६२

क्योंकि देवर से उसका अनुचित संबंध है और विवाह हो जाने के बाद देवर अपनी बधू के स्नेह में पड़ जावेगा, उसका स्मरण नहीं करेगी<sup>१</sup> । कवि ठाकुर की नायिका पातिव्रत भी के कारण कुत्पात हो चुकी है इसलिए अब तो उसे और भी कोई डर नहीं रह गया<sup>२</sup> ।

१७- स्त्रियों की सामान्य चरित्र होनता के साथ गणिकाओं के भी उत्सेह रीति काव्य में मिलते हैं । परम्परानुसार गणिका का दर्शन भांगलिक और स्पर्श पापमय समझा जाता रहा है । गणिका या वैश्यावृत्ति के माध्यम से जीविकोपार्जन, पूँजीवादी व्यवस्था और गणिका या वैश्या से मनोरंजन आभिजात्य संस्कृति के अभिशाप है । आलोच्यकाल में राजनीति और प्रशासन की अवस्था कुछ ऐसी थी जिसमें संपत्ति और शक्ति दोनों एक ही स्थान पर केन्द्रित थे । जन और राजशक्ति की साझेदारी बहुत भयावह परिस्थिति उत्पन्न करती है । एक और जन-शक्ति एवं राजशक्ति संघर्ष की अपने वैध-अवैध इच्छाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए शोषण करता है और विविध प्रकार के साधन जुटाता है दूसरी ओर इन दोनों शक्तियों से रहित सामान्य वर्ग विवश होकर उन परिस्थितियों को स्वीकार कर लेता है और अपना तन, मन सब कुछ शक्ति संघर्ष वर्ग के हवाले करने को तैयार हो जाता है । वैश्या-प्रथा का चलन बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में संभव होता है । आचरण अर्थात् गति तो मनुष्य का स्वभाव है । पतन और उत्थान, सदाचरण और दुराचरण दोनों ही स्थितियाँ उसके लिए सत्त्व हैं इसलिए कामिनी और कंचन जैसे आकषणियों के प्रति उसका स्वतन्त्र अस्वाभाविक नहीं किंतु उन्हें एक व्यवस्थित प्रथा का रूप देना

१- और सबै हरबनी छैति गावति भरी उछाह ।

सुहो, बहू, बिलखी फिरे क्यौं देवर के ज्याह ॥

वि० २० दी० ६०२

२ - अबका समुझावति की समझे बदनमि की बीज तो वो चुकी री ।

कवि ठाकुर को रसरीति रंगी, सब बातें पतिव्रत हो चुकी री ।

ठाकुर० सा० २० पृ० २२४ ।

प्रायः ऐसे ही समय में संभव होता है जब साधनों के बंटवारे में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। ग्वाल कवि एक गणिका का वर्णन करते हैं। रति का रूप धारण किमे हुए वह पीली कुर्ती और धरदार इजार पहने कुर्सी पर बैठी है<sup>१</sup>। उसकी वेशभूषा पर मुसलमानी प्रभाव है। ग्वाल कवि एक अन्य स्थान पर गणिका वर्णन करते हुए उसकी प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं वह किसी एक से बात करती है दूसरे की बातों के इशारे से अपना मस्तक्य समझा देती है। इस प्रकार मन को फंसा कर धन का अपहरण करती है<sup>२</sup>। तोष की सामान्या अपने नायक से मुस्तानों की माता और हीरों की पड़ुवी मांगती है<sup>३</sup>। मतिराम की गूजरों स्वयं तो उज्ज्वल है साथ में सात इजार और गले में हार पहने हुए बाजार में बैठी हजारों के रुदय हरती है<sup>४</sup>। वैरमावृत्ति

१- सात सात पायन में कौते जरकसी है ।

धरदार पायवे इजार मलमली तापे ।

पैन्दि पीत कुरती रती को रूप लीवे है ।

बंद की चिरी ली दीसी बैठी कुर्सी पे है ॥

ग्वाल र० पु० ५८

२- मेन कहे का हू ली जवल करे का हू ली ।

मेन करे का हू ली जतावे सेन सेवे से ।

का हू जो इजार आँखियान को इशारे करे ।

फाँसि लेत मन धन हाँसि के मने से ।

ग्वाल र० पु० ५९

३- तोष सु० नि० पु० ६३

४- लसन<sup>त</sup> गूजरी<sup>अ</sup> कूजरी<sup>त</sup> बिलसन<sup>त</sup> सात इजार ।

हिप हजारनि के हरे बैठी सात कजार ॥

म० गु० पु० २९२ ।

इस स्थिति तक प्रवृत्ति हो गयी होगी कि ग्वाल् कवि को उससे होने वाली हानियों का विशद् उत्तेज करना पड़ा । उनके अनुसार गणिका-प्रसंग से रूप, धन, काम, उत्तम कर्म और कुलधर्म की हानि होती है । गुरुजनों की सज्जा वित्त से निवृत्त जाती है, ईश्वर के प्रति स्नेह और भक्ति नहीं रह जाती, मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्ति की आशा नहीं रह जाती, हृदय से भक्ति भावना विरोधित हो जाती है और सभी प्रकार के पुण्यों का नाश हो जाता है<sup>१</sup> । उसके लिए गहने गढ़ा लाने वाला ही सब कुछ है, धन संपादित होने पर वह अकारण ही रुष्ट हो जाती है<sup>२</sup> ।

### नारी की दिनचर्या-

१८- भारतीय समाज में नारी का कार्यक्षेत्र और सीताभूमि प्रायः घर ही रहा है चाहे वह पिता का हो या पति का । केशवदास की नायिका प्रातः कात उठ कर दातीन करती है तत्परचात् सौन्दर्य प्रसाधन की अन्य प्रक्रियाएँ भी संपन्न की जाती है और इनके संपादन के समय वह अत्यन्त मनोहारिणी प्रतीत होती है । नागरीदास ने भी प्रातः उठने के पश्चात् क्षेमबन करने, बेणी गूँधने, अंबन लगाने और अन्य प्रकार के विविध अंगार करने का वर्णन किया है<sup>३</sup> । बीया ने विरह वारीश में स्त्रियों की दिनचर्या का वर्णन करते समय किसी की

- १- काया सो काम बात गाँठहु सो दाम बात ।  
मित्रन सो प्रीत बात रूप बात अंग ते ।  
उत्तम कर्म बात कुल के धरम बात ।  
गुरु की सरम बात निव वित भा से ।  
रागरंग रीति बात ईश्वर से प्रीति बात ।  
पुण्यन को नाश बात गणिका प्रसंग से ॥

ग्वाल्, रत्नावली पृ० ८०

२- म० गु० पृ० १४९-१४९

३- दाति बंधन करत लगी नैसुक दी पतिवा--  
गठर पीठिठ अभिराम स्याम गहि गूँधन बेनी  
तिथ फिर बंधन धेस कमल नैनति मुग नैनी ।

ना० स० पृ० २६०

जाल में जवन लगाते दिखाया गया है तो दूसरी को पाव में महावर  
 धेती । कोई उत्साहपूर्वक स्नान करने के लिए गई है और सीटने पर उसके  
 बस्त्रों से पानी चूर रहा है, कोई पान का बीड़ा लिये है किन्तु उससे  
 खाया नहीं जा रहा है । विरह बारीश के नायक का जाकड़ना  
 इतना प्रबल है कि उसके बावें की आवाज सुनकर स्त्रियाँ अपने विविध  
 गृह कार्य छोड़ देती हैं । किसी का तीस खुला रह जाता है, कोई  
 हाथ में मथानी लिये खड़ी रह जाती है, तो कोई सनी हुई मिट्टी  
 छोड़ कर चल देती है । एक हाथ में लोई लिये हुए चली जाती है तो  
 दूसरी के हाथ गोबर से भीगे हुए हैं, जो सूत्री नदी में नहाने गयी थी  
 वह निर्वसना हो उठ जाती है । इस चित्र में कवि ने भारतीय नारी के  
 विभिन्न कार्यों का उल्लेख किया है । भारतीय नारी की घर में  
 विविध प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं । अपने शरीर के साव-भूंगार,  
 सातन-पातन, घर की सफाई और तिपाई के पोताई, खाना बनाना,  
 कण्डे पाथना, और मकान के ध्वस्त भागों की मरम्मत का काम उसके  
 जिम्मे रहता है । रीतिकाल के कवि प्रधानतः नगर-संस्कृति और  
 सामन्तवर्ग के जीवन के निकट थे इसलिए ग्रामीण वातावरण अपने  
 यथार्थ कठोर धरातल पर उन्हें उतना नहीं रुकता रहा होगा किन्तु  
 अपनी रसिक मनोवृत्ति के कारण उन्हें गृह कार्य में लगी ग्राम-युवतियों  
 के सरल सौन्दर्य में एक विशेष प्रकार की मनोहारिता दिखायी पड़ती

१- दुग एक जवन जाल के एक महावर धेत बिसरे ।

एके जन्हात उमाह बाढ़ी चली बसन चुवात ।

एके लिए कर में विरी तेहू बने नहिं जात ।

† † †

एके कर में लिए मथानी एकन छोड़े पाटी खानी ।

एके लोई कर में लीने एकन के कर गोबर भीने ।

एके नदी तीर जो नारी बसन त्याग उठ चली उषारी ।

रही होगी । इसी का परिणाम है कि रीति कालीन कविता में जहाँ एक ओर उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों में लिप्त दिखायी देती हैं, दिन के चौबीस घंटे साज-सिंघार और ऐश-जारा में लगी रहती हैं वहाँ ग्राम्य युवतियाँ सहज और निरछल रूप से अपने घरेलू काम-धन्धों में रत रहती हैं । रीति-काल के कवि पर सामंतीय जीवन का प्रभाव इतना गहरा है कि ग्राम्य वातावरण की सहज रमणीयता में भी वह नागरिक जीवन की कृत्रिमता और भास्वरता का आरोप करता है । किंतु उतना बौद्धिक विकास देने पर रीति काल का कवि नारी के गृह कार्य का जो चित्र देता है वे उसके जीवन की समग्रता को न समेटते हुए भी मधुर और मनमोहक हैं, उनमें रस है, वे मन पर एक प्रकार का स्निग्ध एवं तरल प्रभाव डालते हैं । बिहारी की नायिका तत्काल धोई धोती पहने है उसके मुख में ज्योति और दीप्ति है किंतु वह सौन्दर्य किसी प्रदर्शनी के सिद्ध नहीं, वह घरेलू स्त्री है और रखोई से बाहर जाते जाते उसकी एक भलक ही मिल पाती है । धोती के तत्काल धुले होने में हिंदू स्त्री की स्वच्छता की दृष्टि, चटकीली मुख-ज्योति में उसकी सौन्दर्याभा और रसोई में होने में उसका सहज वस्तुपन साकार हो गया है<sup>१</sup> । सच्चा भारतीय नारी के व्यक्तित्व के साथ इस प्रकार तदाकार हो गयी है (प्रसाद तक जाते-जाते भी भारतीय कवि उसका मोह नहीं छोड़ पाया) कि वह गलत ही नहीं सही काम करने में भी लजाती है । पद्माकर की नायिका घर के काम करने में भी सच्चा का अनुभव करती है<sup>२</sup> । देव की नायिका के प्रियतम विदेश चले गये हैं वह विरह की अग्नि में बल रही है फिर भी सत्सच्चा बिना किसी से कहे घुने घर के काम काज में लगी

१- टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-ज्योति ।

ससति रसोई के बगर, जगर-मगर दुति होति ॥

वि० र० दी० ४७७



हैं। रसखान के कन्हैया तो गोपियों का गृह-कार्य ही बंद करा देते हैं। उनकी बंशी की पुन सुनते ही गोपियाँ घर के काम काब छोड़ कर बाहर निकल पड़ती हैं, किसी ने दूध दुहा कर राख़ा था और वह रखे रखे ही ठंडा हो गया वह उसे बमा नहीं पायी, यदि किसी में इतनी संज्ञा और जेतना शेष भी थी कि वह बामन दे सकी तो बामन राख़ा-का-राख़ा रह गया और दूध रखे-रखे ही बट्टा हो गया।

१९- इन गृह-कार्यों के विवरण से यह तो प्रायः स्पष्ट है कि रीति कालीन काव्य में चित्रित समाज में नारी की झोड़ा भूमि घर, कुटुंब, पड़ोस और घर के छत की छलियानों तक ही सीमित थी। उसके कार्यक्षेत्र में पहले वैसी व्यापकता नहीं है। किंतु तत्कालीन परिस्थितियों में, समसामयिक कवि से इसकी अपेक्षा करना दुराशा मात्र है क्योंकि भारतीय नारी के जीवन की परिधि आरंभ में व्यापक अवश्य थी पर उसका विकास सीमासंकोच की ओर ही हुआ है। पुनर्जागरण के आवेश में इस सीमारेखा को संकीर्णता बताने का एक फैशन-सा चल गया है किंतु "घर के बाहर पुरुष" और घर के भीतर स्त्री" का यह समझौता ठीस चित्रण पर आधारित था। नारी और पुरुष की शारीरिक एवं मानसिक रचना के वैषम्य को ध्यान में रख कर संभवतः यह विभाजन किया गया था। यह अनुभव है कि यह विभाजन रूढ़ होने के परचात् संकीर्णता और गतिरोध के कारण अव्याज्य ही गया किंतु यह दोष तो मनुष्य-कृत प्रत्येक जीवना में आ जाता है। वस्तुतः भारतीय नारी के संघर्ष में मूल प्रश्न उसके जीवन की व्यापकता और पूर्णता के संघर्ष का है और इनमें से हमें एक का चुनाव करना है। रीतिकालीन कवि ने नारी की दिनचर्या का जो चित्र दिया है उसका अभाव यह नहीं है कि उसमें संकीर्णता या भुंगार है, अपितु उसका अभाव है कवि की रसिक एवं जलंकरणाश्रित्य मनोवृत्ति जो उस चित्रण में सर्वत्र सज्जता नहीं रहने देती।

१- ताज विधेय सु नासक्य, बहुभांति वरी विरहानस ही मे ।

ताज भरी गृहकाज करै, कहि देख परें न कहूँ कल ही मे ।

दे० भा० वि० प० ८९ ।

बनता है। वाचभट्टद्वारी की कहावतों में कन्या जन्म और तत्संबंधी फलाफल पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। रवि, गुरु और मंगल के एक ही रेखा पर होने, कुत्रिका, भरणी और आश्लेषा में, द्वितीया, सप्तमी और अष्टमी तिथियों में पुत्री उत्पन्न होने पर नितान्त अमंगलकारिणी होती है। या तो उसी की मृत्यु हो जाती है या वह अपनी माता की मृत्यु का कारण बनती है। पराधे घर जाकर वह वहाँ भी सम्पत्ति के लोभ का कारण बनती है। जो चमारिन उसकी नास काटने जाती है उसके ज्येष्ठपुत्र की मृत्यु हो जाती है और के कार्य सम्पन्न करने वाली नाइन सात भर के भीतर अपनी रोजी खो देती है, इसके अतिरिक्त भावरे पड़ने के साथ साथ ही उसके पति का मरण भी अवश्यम्भावी होता है। तथापि कन्या के सातन पालन में कोई कौर-क्षर नहीं रहनी जाती। माता पिता का पुत्री के प्रति अगाध प्रेम होता है। विशेषरूप से 'अर्थात् हि कन्या परकीय एव' की परंपरा वाले इस देश में अर्थात् त होते हुए भी धीरे धीरे पुत्री स्नेहभाजन बन जाती है। शकुन्तला के विदा होते समय कन्य का विलाप काशिदास जैसे समर्थ दृष्टा की लेखनी का आश्रय या अमर

१- बेटी क्या ह जोग घर माही जी भूखे सब कि सौ छाहीं

सहस्री- स० पृ० पृ० ५१

२- रवि गुरु मंगल एक रेखा कुत्रिका भरणी जी अल लेखा ।

दूध सप्तमी आठे विद्या तामें भई विष काकर तिया ।

आप मरे कि मातै लाय, धन छीजे जो पर घर जाय ।

जीन चमारिन नर कटिया करै बैठपुत्र बाहू के मरे ।

जीने नाइन और कमाय जरिह बिना रोजी से जाय ।

गृहमा विष्णु उतर जो जावै भौरि देत विषवा ही जाय ॥

वाच- ५० पृ० ७५

हो गया किंतु इसी प्रकार का विताप तो हर हिन्दू पिता का है। कन्या ज्यों बढ़ने लगती है, माता-पिता उसके प्रति अधिक स्नेह-शील एवं चिंतित होने लगते हैं। उस्मान ने विवाहसौ में माता-पिता के प्रेम का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। पुत्री की विदा के समय राजा और रानी की आँखों में स्नेह के आँसू आ जाते हैं<sup>१</sup>। मातृगृह में वह अनेक प्रकार की झीझारों एवं नामोद-प्रमोदी में स्वच्छन्दता पूर्वक भाग लेती है। अनुशासन और नियम डींसे रहते हैं। ससुराल के अवशिष्ट भावी संयम की प्रतीक्षा में वह स्वतंत्रता और भी मधुर हो जाती है<sup>२</sup>। यही नहीं माता मायके चली गयी और भैया की घर जाने में देर हो गयी तो वह निःसंकोच किसी "नन्द के कन्हैया" से "गैया दुहने" का भी आग्रह कर लेती है<sup>३</sup>। मातृ-गृह की स्वच्छन्दता और वहाँ का स्नेह ससुराल जाने पर भी कन्या को स्मरण रहता है। उसके मन का पछी बार बार मायके रूपी बहाव पर ही पड़ता है। यहाँ उसके लाड़ प्यार के दिन बीत गये हैं, भोर होते ही कोई उठकर क्लेश देने वाला भी नहीं रहा। माता-पिता से पाये सुख स्वप्न बन गए हैं और वह कर्तव्य एवं दायित्व के सागर में डूब-उतरा रही है<sup>४</sup>।

-----

१- बिनती की राठ और रानी बरबहि नैन सेवाती पानी ।

उ० वि०- पृ० २२५ ।

२- बिसहू कूदहु आबुहि प्यारी, पुनि यह बेल कहाँ तुमका री ।

झोम मसी- पुष्पावली

३- भैया गई मायके तो भैया घर नहीं जाये ।

नन्द के कन्हैया मेरी गैया दुहि दीजिये ।

सुखदेव- सा० पृ० १५९

४- माता बिना की लाड़ तड़ेई की ठठ भोर क्लेश देई ।

मात पिता दीन्हें सुख जैसे ते बीते सुख सपने जैसे ॥

सात- छत्र प्रकाश पृ० ६९

मायके में तो यह स्वतंत्रता है कि स्वसुरगृह से जाने वाले लोगें या पति के सामने भी वह बिना पर्दा किये रह सकती है, केवल सायबह माँ के पीछे छिप जाती है<sup>१</sup>।

२१- ससुराल में स्त्री को सारे सुख उपलब्ध हों, घर का सम्मान्य और प्रियतम के हृदय-देश का राज्य भी, किंतु वह मायके के लिए न्यग्न हो उठती है। पद्माकर की नायिका की माँ उसके अभाव में खाती नहीं, भाभी भी संज्ञा-रुन्ध है, भइया लेने जाये है पर प्रियतम उसे भेजने की तैयार नहीं। सब सुख उपलब्ध है किंतु दुःख केवल यह कि प्रियतम उसे मायके जाने की अनुमति नहीं देते<sup>२</sup>। मतिराम की नायिका निद्रा का त्याग किये योगिनी सी बनी रहती है पूछने पर कहती है कि उसे मायके की याद आ रही है<sup>३</sup>। ससुराल जाने के बाद भी आपत्काल में कन्या माँ का स्मरण करती है। अर्थक्या के एक प्रसंग में जब पुत्री की पति के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ती है तो वह जाकर अपनी माँ से माँगती है। माँ के पास दो-सी रूपये हैं इसलिए वह पुत्री से उदासी दूर कर प्रसन्नचित्त रहने की कहती है। वह माँ है, अतः पुत्री की लज्जा की रक्षा भी करेगी, किसी से बतायेगी भी नहीं और दो-सी रूपये भी दे देगी<sup>४</sup>। कन्या माँ के साथ साथ गृहकार्य में सहायक सिद्ध

१- पं० गुरु० पृ० १३

२- माँ बिना माह न खाइ कछु पद्माकर त्यों भई भावी अकेल है ।  
बीरन जाए सिवाइये कीं तिनकी मूख्य बानिहुं मानि न लेत है ।  
प्रीतम कीं समुझावति क्यों नहिं ए सखी तू जु पैरावति छै है ।  
और तो मोहि सब सुख री दुखरी यह माइके जान न देत है ॥

पद- गुरु० पृ० १०८

३- सोवत न रैन-दिन होवति रहति बात,  
बूझै तै कहत मायके की सुधि जाई है ॥

मं० गुरु० पृ० ११६

४- कहि माई बिनि होइ उदास है तै मुद्रा मेरे पास ।  
गुपुत देहु तेरे कर माहि । जो वै बहुरि जागरे बाहि ।  
पुत्री कहि पन्थ तू माह । मे उनको निशि बूझत जाइ ।

ब० अ० क० पृ० ४९

होती है। दिन इकते समय नायिका अपनी माँ से पूछती है कि और क्या क्या काम रह गये हैं? उन्हें पूरा करते त्यों कि सूर्यास्त हो रहा है और घर के काम पड़े रह जायेंगे। सयानी होती ही वह माता-पिता के लिए विन्ता का कारण भी बन जाती है। माँ उसके विवाह के लिए विशेष चिन्तित हो जाती है। रानी अपनी बेटी चित्रावली के विवाह के लिए राजा को उद्बोधित करती है त्यों कि वह अब सयानी हो गई है और विवाह के योग्य है। उसके लिए ऐसा बर खोजा जाना चाहिए जो उसके कुल के दीपक को प्रकाशित कर सके। हिंदू संस्कृति में कन्यादान का असीक्तिक महत्व माना गया है। वैसे भी हिंदू समाज का दृष्टिकोण इतना नीतिप्रधान है कि वह "कन्या निष्काशिता बेष्ठा बधू व विनिवेशिता" के सिद्धान्त को मान कर चलता है। इसीलिए सामाजिक दृष्टि से बेटी का विवाह आवश्यक हो जाता है। पारसीक दृष्टि से भी उसे महत्वपूर्ण और सुफल देने वाला बताने का आधार भी साबित यही हो। इन्द्रावली में नूर-मुहम्मद यह बताते हैं कि कन्या का जन्य कुल को प्रकाशित कर देता है और कन्यादान से मुक्ति प्राप्त होती है<sup>१</sup>।

१- अबे फिर मीहि कहहिणी, कियो न तू गृह-काय ।

कहे सु करि आज्ञा अबे, मुंदयी बात दिनराय ॥

फि. गुं. २।१७

२- रानी कहा सुनहु नर नाहा, मीहि पुनि खरक उठी बिय माँहा ।

चित्रावलि संयोग सयानी की वै सोई रहै कुल पानी ॥

खोजिय कतहु एहि सगि जोरा, बेहि दीपक कुल होइ अबोरा ॥

उ. वि. पृ. १८४ अ

३- जातमवा जो होत एक, होत सदन उबियार ।

कन्यादान दिहे ते होत मुक्ति स्मार ॥

नूरमुहम्मद हिन्दी के कवि और काव्य पृ. ८२

२- माँ- माँ कन्या के विवाह की ही चिन्ता नहीं करती, उसे दायित्व जीवन के लिए तैयार भी करती है। दायित्व जीवन की सम्पन्नता के लिए जो कुछ अपेक्षित है, वह उसकी भूमिका प्रस्तुत करती है। जब कन्या स्वसुर गृह जाने के लिए प्रस्तुत होती है तो उसे तत्संबंधी आवश्यक जानकारी दी जाती है। ससुराल का "रहना" बड़ा कठिन है, वहाँ तभी कुशल है जब प्रियतम का स्नेह मिलता रहे। गुरुजनों के प्रति सज्जा और उनका डर उसे दिन रात कठोर अनुशासन में रखेगा। वह किसी की भी बात का प्रत्युत्तर नहीं दे सकेगी। जोर से बोलने पर सास उसे गाली देगी, ननद भी बुरा भला कहेगी। इस प्रकार ससुराल की परिस्थितियाँ ऐसी होंगी, जहाँ उसे एकमात्र प्रिय के स्नेह का आधार प्राप्त रहेगा। अतएव उसे प्रियतम के हृदय की बीतने का सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिए<sup>१</sup>। नैहर में तो पिता का राज्य था इसलिए हर प्रकार की छूट भी किसी प्रकार के बन्धन नहीं थे किन्तु ससुराल में वह स्वच्छन्दता और प्रसन्नता का वातावरण नहीं रह जाता। मायका तो कुछ थोड़े दिनों की ही झीड़ा-भूमि है, जाज जो है वह कल नहीं रहेगा इसलिए समझ बूझ कर चलना चाहिए। प्रियतम जब अपने देश से जायेगी तो वहाँ साज, संकोच और भय के मारे कुछ कष्टी नहीं बनेगा<sup>२</sup>। विधायत्री में ससुराल का चित्र और भी विकट है।

१- कठिन रहन ससुरे कर जाई, तबहीं कुशल कत जब चाहे।

साज सास पुनि गुरुजन केरी, सौंह न सक्य काहु न तरेरी।

बोलत ऊँच सासु देह मारी, ननदी नीच बोल बेवहारी  
रिसि जाहहि राखव बिय मारी, रिस कीन्हें जावै कुल मारी।  
सबक दुख सुख बी पै पित चाहा, ना तल बनम अकारय जाहा।

उ० वि० पृ० ४५-४६

२- हे नहि माइकी मेरी भटू मह सासुरी है सबकी साहिकी करी।

प० गृ० पृ० १०९

बीर भी ----- उ० वि० पृ० ४५



वहाँ माँ अपनी बेटी को यह बताती है कि पुत्री सोने की तरह है और ससुराल अग्नि की भाँति, सास संझी (शलाका) की भाँति है और कन्त का स्थान आभूषण निर्माता स्वर्णकार का है, नन्द उस नन्नी की तरह है जिससे फूँक कर अग्नि को पुन्जवर्धित करते हैं। इनके वाच्य रूपी घन पल-पल पर जाघात करते रहती हैं इस प्रकार इस प्रक्रिया से होकर स्त्री रूपी स्वर्ण की विशुद्धता सिद्ध होती है, वह कुन्दन बनती है। माता पिता के लाड़ प्यार के कारण स्त्री के गुण-अवगुण मायके में नहीं जात होते। सुहागिन स्त्री तो वह होती है जिसका ससुराल में मान हो। इसलिए प्रत्येक स्त्री को ऐसे कार्य करने चाहिए जिनसे स्वसुर गृह के लोग प्रसन्न रहें, वहीं उसकी अग्नि परीक्षा होती है। काशदास ने जब कहा था कि "प्रिय के संबंध में सौभाग्य रूपी फल देने वाला ही सौंदर्य कहलाता है तो सौंदर्य (चारुता) के अन्तर्गत महाकवि उन सभी गुणों को अन्तर्भूत करता है जो प्रिय के संबंध में सौभाग्य फल के विधायक है। सुंदरी तिलक की हठवर्षिणी नायिका अपना समय दिन रात गुड़ियों के खेल में लगाना चाहती है, उसकी उपेक्षा और अवज्ञा के बाद भी उसकी धाम उसे नारिबनोचित गुणों की शिक्षा प्रदान करती है। किंतु यह नायिका हठीली ही नहीं बह्कारिणी भी है। उसे यह विश्वास है कि बड़ी की अवज्ञा करके भी वह अपने स्वसुरासय में सबके आकर्षण का केन्द्र बनी रहेगी और

१- दुहिता सोन अग्नि ससुरारा, सास संझी कंत सोनारा ।

नन्द नास फूँकत नित रहई, सुहागि हिया कीइसा विनि दहई ।  
बाड बीस कन छिन छिन बाई, ठाई न धाई बानि निहाई ॥  
तब तिरिया कुंदन की नाई, भेटे अंक में भरि नग साई ॥

नैहर बानि न बाइ कछु, गुन बीगुन एक मान ।

सौद सौहागिनि भासिनी, बाकर ससुरे मान ॥

उसे कभी मायके जाने की आवश्यकता नहीं होगी<sup>१</sup> । विजायसी में ही, एक अन्य स्थान पर सीतों से ईर्ष्या न करने, प्रियतम का डर मानने, मान कम और सेवा अधिक करने, मन मार कर रहने की सीख दी गयी है । जिसमें यह गुण होते हैं वही स्त्री सीभाग्यवती होती है<sup>२</sup> ।

### बहिन

२४- बहिन के रूप में, भारतीय परिवार में, आरंभ से ही नारी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है । भाई-बहन का स्नेह अत्यन्त पुनीत माना गया है । साथ-साथ पालन पोषण होने और प्रामः समवयस्क होने के कारण उनमें एक अनोखी स्नेह-गुन्थ का विकास होता है जो पीरे-पीरे दूध से दूधतर होती जाती है । यह किंवदंती है कि भाई-बहन के संबंध इतने स्नेह संबंधित होने पर भी साहित्य में उन्हें वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जो होना चाहिए था । रीतिकाशीन कवि के मन की रसिकता को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है किंतु यह समस्या तो अन्य साहित्यिक युगों के संबंध में भी है । भाई-बहन के संबंधों का अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजित लोक गीतों में प्राप्त होता है । वहाँ भी बहन ससुराल जाकर भाई की याद करती दिखायी गयी है या भाई उसे लाने के लिए ससुराल जाता है । यद्माकर की नायिका ससुराल में है तभी उसका भाई उसे लेने जाता है । मां,

१- ही जब ली तब ही सिंगरी दिन में गुड़ियान से खेलि बितीही ।  
 पाय सिखाय मरे कितनी गुन सीखिने के मैं नजीक न बैहा ।  
 पै इतनी कहे राखत हरै धनि सीतन में रघुनाथ कहे ही  
 गीनेहि जाय के ऐरी भट्ट सुनि मायके के रि न जावन पैहों ॥

रघुनाथ सु० ति० पृ० १५०

२- सीतिन्ह कर हरखा नहिं करना, साईं संग सदा बिय डरना ।  
 अल्प मान सेवा अधिक रिधि राखव बिठ मारि ।  
 बैहि धन मई पै तीन गुन, सीई सीहागिनि नारी ॥

उ० बि० पृ० २९४

भाभी, तथा नैहर के सभी लोग उसके बिना व्याकुल है किंतु पति इतना स्नेह करता है कि उसे मायके नहीं जाने देता। भाई बहिन और बहिन-बहिन के रूप में नारी की उपेक्षा का कारण यह कहा जा सकता है नियमित संबंध स्वीपान में उनका स्थान नहीं है, विकास के साथ-साथ उनके आर्थिक हित जलग होते चले गये हैं, बाल्यावस्था के पश्चात् वह अधिक समय तक साथ नहीं रह पाते। देवर-भाभी के संबंध भी नियमित संबंध-स्वीपान के अन्तर्गत नहीं आते, किंतु उनका आरंभ उस अवस्था में होता है जब दोनों मानसिक स्तर पर अपेक्षाकृत परिपक्व हो चुके होते हैं, दोनों प्रायः साथ रहते हैं, मन्सा जागृत रहते हैं, इसीलिए कदाचित् रसिक रीतिकवियों ने ही नहीं, गोस्वामी तुलसीदास जैसे संत-स्वभाव के कवि भी इस रूप में नारी की उपेक्षा नहीं कर सके। भाई बहन का संबंध मानसिक अपरिपक्वता की वय में होता है, अपेक्षाकृत अपरिपक्वता के समय में ही समाप्त हो जाता है, बाद में दोनों प्रायः दूर रहते हैं, इसीलिए एक मधुर संबंध की स्मृति मात्र शेष रह जाती है जिसे वे बहल करते रहते हैं।

### पत्नी के रूप में-

१४- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा में नायिकाओं के अनेक भेदोपभेद किये गये हैं। रीतिकासीन काव्य रसिक कवियों की सृष्टि है और परकीया नायिका में उसका मन स्वभावतः अधिक रमता था, किंतु भारतीय समाज की प्रकृति और रचना ऐसी है कि उसमें परकीया और सामान्या नायिकाओं की नैतिक मान्यता का बल प्राप्त नहीं है। ये कवि रसिक अवश्य थे किंतु समाज की सार्वभौम मान्यताओं के प्रति विद्रोह करने की शक्ति इनमें नहीं थी। फलस्वरूप इन

कवियों ने भी स्वकीया नायिका को ही भूगार का आदर्श पात्र माना ।  
वस्तुतः परिवार, विवाह, स्वकीया (पत्नी), संतान आदि के  
महत्व एक दूसरे पर आश्रित है । पद्माकर ने स्वकीया का लक्षण  
बताते हुए कहा है कि जो मन, वचन, और तन से अपने पति के प्रेम में  
पगी रहे, जो स्वभाव से ही सज्जाशीला है- उसे स्वकीया कहते हैं<sup>१</sup> ।  
मतिराम के अनुसार भी सज्जावती, पति का प्रेम प्राप्त करने वाली,  
सुशीला नायिका को स्वकीया कहते<sup>२</sup> । देव भी स्वकीया में निज नायक  
के प्रति तन, मन और वचन से प्रीति होना आवश्यक मानते हैं, किंतु  
उन्होंने एक निष्ठा<sup>३</sup> धात्मक विशेषता को भी सम्मिलित किया है- उसके  
लिए परपुरुष से विमुख होना भी आवश्यक है<sup>४</sup> । वह हर प्रकार के  
कष्ट सहकर भी प्रियतम को सुखी रखती है, "सहीविधि" से बातें  
करती है, निर्मल हृदय से सर्वमंगलादिक कार्य करती है, स्वयं तप्य रहकर,  
भी दूसरों को शीतलता और सुख प्रदान करती है । ऐसी ही सर्वगुण

१- निज पति ही के प्रेममय जाको मन बचकाइ ।

कहत सुकीया ताहि को सज्जासील सुभाइ ॥

पद्म गृ० पु० ८२

२- सज्जावती निशिदिन पगी निज पति के अनुराग ।

कहत स्वकीया सीतमय ताको पति बडभाग ॥

म० गृ० पु० १०४

३- जाके तम मन बचन करि निज नायक सों प्रीति

विमुख सदा पर पुरुष सों सौ स्वकिमा की रीति ॥

दे० भा० वि० पु० १०३

संयुक्ता नायिका की कीर्ति संसार में प्रसरित होती है<sup>१</sup> । इन सबके साथ ही रीतिकाल का रसिक कवि स्वकीया नायिका के केशिमंदिर में रासरंग की भी विधिवत् व्यवस्था कर लेता है । रीतिकालीन काव्य का नायक हर प्रकार से नायिका का सहवर और सखा होता है वह उसका साज-संगार भी कर देता है । ताल ने नायिका की बेणी फूलों से बना कर गूँथ दी है, भास ने मृगमद की अक्षित बेदी लगा दी है, जग-पुत्ररंग का संगार करने के उपरान्त पान का बीड़ा खिला दिया है, किंतु रस के वशीभूत होकर ज्योंही वह महावर लगाने के लिए नायिका के चरण पकड़ता है, नायिका नाथ का हाथ पकड़ कर उन्हीं बरबती है । भारतीय नारी की दृष्टि में पति से चरणात्परी कराना अति अनुक्ति है, अतः उनका हाथ चूम कर वह जाखों से लगा लेती है, स्वयं प्रेमातिरेक से उद्देक्षित हो जाती है । भारतीय नारी काम के वश में होकर भी संयम और आचरण-संज्ञा का त्याग नहीं करती<sup>२</sup> । इसी प्रकार पद्माकर की नायिका भी अन्य जंगों में जंगराग पाव में मेहरी लगवाने का निबोध कर देती है<sup>३</sup> । रीति कवि परकीया के प्रेम की तीव्रता और गहनता का भी अभाव स्वकीया में नहीं देखना चाहता । अक्सर की नायिका की स्थिति अपनी सहेलियों के बीच में विविध सी है । उसकी अन्य सहेलियाँ अपने प्रियतमों के प्रेम का वर्णन करती हैं- प्रीति क्वाएँ सुनाती है, किंतु वह कैसे कहे? कहा-सुना तो उसके विषय में जाता है जो मन में न हो यहाँ तो प्रियतम अहर्निश ही उसके हृदय में वास करते

१- देति सुकीया तू पी की सुख निबु केती बगारतहुँ मति मैली ।  
दासबू मे गुन है जिनमे तिन ही की रहे जग कीरति पौली ।  
बात सही विधि कीन्हों भली तिहि पौ ही भलाइन सौ निरमेली ।  
काहि जंगारन मे गहि गारहुँ देति सुवासना जदन-पैली ॥

भि० गु० २।८०

२- सेनापति- क० र० पु० ४१

३- जंगराग औरें जंगनि करत कछु बरबी न ।

ये मेहदी न दिखावहीं तुम सौ पगनि प्रवीन ।

प० गु० पु० १२८

है इसलिए वह उनकी क्या कहे तो कैरी ? आदर्श स्वकीया नायिका की वाणी में मार्मिक, बड़ों के प्रति सम्मान के भाव, सखियों से स्नेहपूर्ण मधुर व्यवहार, शील, सावध्य और आकर्षक दृष्टि जैसी विशेषताएं होती हैं। साथ ही उसमें सौन्दर्य और रमणीत्व, जीवन और काम भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं जो सपत्नियों के हृदय में वेदना उत्पन्न करते हैं<sup>१</sup>। देव की नायिका सुशील है, सभी से मधुरवार्तालाप करती है, गुस्तेजनों एवं वन्दनीयों के समुक्त सम्वाणीय और विनयावन्त रहती है, उसके कोमल कपोलों पर हृदय की पीत-बाधा है, मुस्कान में अनोखी मधुरिमा और संकोच है, नेत्र रक्तभाष हैं, किंतु वह सौंदर्य और संयमिता बाह्य स्तर पर ही नहीं है, उसका अन्तर भी स्नेह समृद्ध है<sup>२</sup>।

१- और तिया बतिया पिय प्रेम की,

नीके सखी सखियान सुनावै ।

कैरी के जान कहै हमसी,

जे छिनो छतिया से न छूटन पावै ॥

अकबर- बृं मं० पृ० ८२

२- कोमल बानि, बहैन की कानि हरे मुस्कान सनेह सनीयी ।

सील सखीनी सखिनी बित्तीनि बिते सलवीनी सुभाइ बनी थी ।

सेव पे सति करेजम सास मनीज के जीव ममेव बनी थी ।

दे० श० र० पृ० ६३

३- सील भरी बोलत सुखील बानी सबही सौ,

देव गुस्तेजननि की साव सौ लची रहै ।

कोमल कपोल पे दोसै हृदय सौ दुति

चूनी सौ सकुच मुसुकानि में मची रहै ।

सासन की साखी आखियान में दिगाई देव

अन्तर निरन्तर ही प्रेम सौ पची रहै ॥

दे० द० पृ० १२६



२५- हिंदू समाज में विवाह को एक स्मृत सामाजिक आवश्यकता ही नहीं समझा गया अपितु जीवन की पूर्णता और पारलौकिक फलों की प्राप्ति के लिए उसे एक आवश्यक साधन माना गया है। कहा गया है कि जब तक पुरुष सुविधि भार्या को नहीं प्राप्त करता तब तक उसका जीवन और व्यक्तित्व अधूरा रहता है। हमारे यहाँ कुछ ऐसे दृष्टा माने गये हैं किनसे मुक्त होने के लिए विवाह एक अनिवार्य उपाधि है, विशेषकर स्त्री के जीवन की सार्थकता ही सुजन में निहित है और सुजन प्रकृति पुरुष-संयोग (विवाह जिसका स्वीकृत सामाजिक रूप है) के बिना संभव नहीं है। विवाह के माध्यम से स्त्री अपने जीवन का साध्य प्राप्त करती है। <sup>१</sup>स्त्री सृष्टि में सुजन पुरुषता को अविच्छिन्न रखती है। इसीलिए हिंदू विचार धारा में प्रारंभ से ही पत्नी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। संसार को बन्ध किसी भी जातीय संस्कृति की परम्परा में नारी को पत्नी-रूप में इतना आदर मिला है, इसमें संदिह है। हिंदू गृहिणी अपने पति की अर्धांगिनी कही गयी है, मंत्रदात्री दासी, माता के समान स्नेहमयी और अप्सरा के सदृश सौम्य विधायिका होकर वह अनेक प्रकार से उसके जीवन की सार्थक, सरल और सुगम बनाती है। परिव्रज के मनीषियों के जितन में भी नारी के ये रूप मिलते हैं, बर्नाई शां की नायिका कैन्डिडा के व्यक्तित्व में प्रायः वह सभी आदर्श गुण उपलब्ध हैं किंतु हिंदू संस्कृति और भारतीय समाज में इन रूपों को जितनी समग्रता से अभिव्यक्ति मिली है वह अन्यत्र प्रायः कम ही देखने को मिलती है। यहाँ गृहिणी गृह का और लोक भाषा में घरनी घर का पर्याय बन गयी है। गृहिणी के अभाव में गृह के सारे मूल धर्म नष्ट हो जाते हैं, वह

१- वाक्मन्न विन्धो वायां तावद् अर्थाभीत पुमान् ।

वन्न वासिः परिवृत्तं रममाणं तव तद् गृहम् क्व

जीहीन ही नहीं हो जाता निष्ठा भी हो जाता है<sup>१</sup>। लोक जीवन में यही परम्परा और दृष्टि कोण "विनु घरनी घर भूत का डेरा" के रूप में अभिव्यक्त पाते हैं। भारतीय संस्कृति के उषः काल से काफी समय बाद तक पत्नी का स्थान प्रायः पति के समकक्ष ही रहा। पति और पत्नी, स्वामी और स्वामिनी आदि एक ही वर्ग को देने वाले शब्द भी यही ध्वनि करते हैं। ऋग्वेद की एक सूचा में नवोढा को खसुर गृह में सामग्री का पद प्राप्त करने का आशीर्वाचन दिया गया है<sup>२</sup>। वैदिककाल में पति, पत्नी को परिवार समान आर्थिक अधिकार प्राप्त थे किंतु यह स्थिति अधिक दिन तक नहीं चल सकी और गौतम बुद्ध के समय से ही उसका स्थान बहुत कुछ ह्रासोन्मुख दिखायी पड़ता है। किन्तु आर्थिक अधिकार खोकर भी पत्नी अन्य रूपों में अपने महत्वपूर्ण स्थान को अक्षुण्ण बनाए रही। महाभारत के आदिपर्व में कहा गया है कि पत्नी का मधुर वार्तालाप सुब के वाणों में पति के लिए मित्र का सा आनन्द देता है, पार्ष्णिक कृत्यों के समय में पिता स्वरूप होती है, व्याधि और पीड़ा के वाणों में उनके स्पर्श में माँ की ममता सबग हो उठती है<sup>३</sup>। पद्मपुराण में एक स्थान पर यह कहा गया है कि यदि स्त्री अनुकूल है तो त्रिदिन से त्याग प्रयोग, यदि वह प्रतिकूल है तो नरक की त्याग आवश्यकता। सुब के लिए ही गृहस्थकर्म है और उस सुब का भूत पत्नी है<sup>४</sup>। आलोच्यकाल में भी पत्नी का

१- न गृहं गृह्णियात्तुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।

गृहं तु गृहिणी हीनमरणसदृशं मतम् ॥

शांति०, १४४-६६ ।

२- सम्राज्ञी खसुरे भव सम्राज्ञी खसुरा भव ।

ननादरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेव्यु ॥

श्रु० १०, ८५, ४३ ।

३- महाभारत- आदिपर्व, ७४।४३ ।

४- पद्मपुराण- उत्तरखण्ड २३३।३६, ३७ ।

वह महत्व बना रहा । केशवदास के अनुसार पत्नी पति के अभाव में दीन रहती है और पति पत्नी के अभाव में निस्तेज होता है जिस प्रकार यामिनी चन्द्रमा के अभाव में शीहीन होती है और चन्द्रमा यामिनी के अभाव में निस्तेज रहता है । पति के बिना पत्नी की बहुत कुछ बड़ी स्थिति होती है जैसे जल के बिना किसी मछली की<sup>१</sup>।

२७- पतिव्रता स्त्री हर प्रकार से सुख दुःख में पति की सहभागिनी होती है वह पति में अनुरक्त रहती है, स्वयं सुखी रह कर उसे भी सुखी रहती है<sup>२</sup>। सब प्रकार से अभाव और असुविधा रहने पर भी पति का सहारा पाकर पत्नी सुखी होती है । टूटी हुई चारपाई, बरसात में टपकता छत पर और टूटी हुई टटिया होने पर भी यदि प्रियतम की बांह का सहारा मिला रहे तो संतोखी भारतीय नारी अपने लिए सभी सुख सुख समझती है<sup>३</sup>। दीनदयाल पत्नी को हर प्रकार से पति के प्रति निष्ठावान् और अनुरक्त रहने के लिए कहते हैं क्योंकि बांह गड़े की तन्वा होती है और अपराध को स्वीकार कर लेने पर पति उसे क्षमा कर देता है<sup>४</sup>। हिन्दू समाज में पत्नी से पति के प्रति निष्ठावर्ति की आज्ञा की जाती है और उसकी च शिक्षा-

- १- पतिन पति बिनु दीन अति पति पत्नी बिनु मन्द ।  
चन्द बिना ज्यों चांदनी ज्यों यामिनी बिनु चन्द ॥  
पत्नी पति बिनु तनु तबै पितु पुत्रादिक काइ ।  
केशव ज्यों जलमीन त्यों पति बिनु पत्निा माई ॥ के० वि० गी० पु० १८९ ।
- २- रीति पतिव्रत सुंदर की पति में मन बाकी रहे अनुरागी ।  
जापसुखी पति होत सुखी पति दुख दुखियत होत सभागी ॥  
सु० ति० पु० ३१ ।
- ३- टूटि छोट पर टपक टटिखी टूटि ।  
पिय के बांह छिरहनवा सुख के छूटि ॥ रहीम क० की० पु० २९७ ।
- ४- दीन० गु० पु० ११६ ।

दीक्षा भी उसी के अनुरूप होती है । "हंस जवाहिर" में पति - पत्नी से कहता है कि वह उसी के प्रति अनुरक्त रहे पर-पुरुष की ओर न देखे । किसी अन्य पुरुष की सेवा पर न जाये, न उसके पास बैठे<sup>१</sup> । नूरमुहम्मद की नायिका ईश्वर से यह प्रार्थना करती है कि उसके प्रियतम के अतिरिक्त उसके नेत्रों में अन्य कोई न समाये तो अच्छा हो<sup>२</sup> । पत्नी को सारा संसार अपने पति पर वार कर ऐसे काम करने चाहिए कि पतिगृह और पितृगृह दोनों का ही कल्याण हो<sup>३</sup> । भावना के स्तर पर ही नहीं जीवन के ठोस परातल पर भी पत्नी पति की सहभागिनी होती है । पति घर के बाहर काम करता है, कृषि, सेवावृत्ति आदि विविध साधनों से बीविकीपार्जन करता है, अर्जित संपत्ति घर लाकर पत्नी को जो गृह-स्वामिनी होती है, दे देता है । पुरुष स्वभावतः अपेक्षाकृत अधिक निस्पृह और सापरवाह होता है इसलिए व्यय-व्यवस्था में वह उतना निपुण नहीं होता है जितना स्त्री । पत्नी उसके दिये हुए रूपये-पैसे अपने पास रखती है, दूर दृष्टि और वक्त की योजना के अनुसार खर्च करती है और गाढ़ समय में वक्त के पैसे निकास कर पति की चिन्ता दूर करती है<sup>४</sup> । उसके लिए अपने घर का दुःख परामे घर के सुख से कहीं

१- मैं जो प्रीत चही बनि मोरी । दूख पुरुष देखी बनि गोरी ॥

दूखे काज न दरश दिखायो । दूखे के सेव नहिं जायो ॥

का० हंज० पृ० ६७ ।

२- अब प्रीतम बिन दूर कोई ।

जो न समाय नैन भल होई ॥ नूर मु० अनु० बा० - पृ० ८६ ।

३- औरे सब जग पुरुष को अपने पति पर वार ।

जैसी कैसी निज भलो दुहुं कुल तारन हार ॥ दी० गुं० पृ० ११७ ।

४- कहत सुन अर्जुनपुर बात । रजनी गई भवौ परभात ॥

तहि एकत कत के पानि । बीस रूपैया दीए जानि ॥

ए मैं जोरि धरेयें दाम, जाए जाज तुम्हारे काम ॥

+ - +

यहि कहि नारि गई माँ पास गुप्त बात कीन्ही परगास ॥

ब० अ० क० पृ० ४९ ।

सुखकर है । कुसुमधू जीर सतवन्ती रजो इसी रूप में जीवन को स्वीकार करती है<sup>१</sup> । उसके नेत्र प्रियदर्शन में ही अपने को कृतकृत्य समझते हैं, उसके जब्ब सदैव प्रिय की मधुर बातें सुनने में ही सुख मानते हैं, उसकी रसना प्रियतम के चरित्र का गायन करने में रत रहती है जीर उसका मन सदैव "मनभावन" के ध्यान में सीन रहता है<sup>२</sup> । वह पति को खिन्नाकर स्वयं खाती है जीर उसके सी जाने के बाद, उसके उठने के पहले बग जाती है<sup>३</sup> । वह प्रियतम को जब सुखी जीर संतुष्ट देख लेती है तभी स्वयं कुछ खाती पीती है । केसिबल में प्रसन्न-चित्त जीर मुस्कुराती हुई पति का स्वागत करती है । उसकी अनुपस्थिति में अपना बेजोबन नहीं बोलती, तपस्विनी की तरह संयम के साग जीवन बिताती है, इस प्रकार वह पति के प्रेम का निर्वाह करती है<sup>४</sup>

१- अपने घर का दुख भला घर घर का ख सुख छार ।

ऐसे जाने कुसुमधू सो सतवन्ती नार ॥

चरनदास-संतबानी संग्रह पृ० १४७

२- प्रिय दरसन फलु नैनन को मान्यो जिन  
प्रिय बतियन ही के सुवन अधीन है ।

सख सुभा सदा रसना की अवलंब

चरित्र विचित्र प्रान पति के अधीन है ।

साब सील सलित सकल आवरन अल,

मन मनभावन के ध्यान रसतीन है ॥

अकबर-शृ० मं० पृ० ८

३- खान पान पीछू करति सोवत पिछले छोर ।

प्रान पिमारे ते प्रथम जगत भावती भोर ।

पदम गृ० पृ० ८२

४- पान जी खान तें पी को सुखी सबे जाय तबै कुछ पीवति खाति है ।

दासबू केसि-बली ही में डोठो बिलोकति बोलति जीर मुसकाति है ।

सूने न बोलत बेनी सुनैनी ब्रुती है बितावत बासर-राति है ।

जातिमी जाने न ये बतियाँ यों तिया-प्रिय प्रेम निवाहति जाति है ।

मि० गृ० १।१०४

बदले में पति का प्यार भी उसे मिलता है । बकवर की नायिका का शरीर ही नहीं मन भी सुंदर है विधाता ने रूप के साथ उसे गुण भी दिये हैं इसलिये वह सदैव प्रियतम की इच्छा का अनुसरण करती है और प्रियतम उसे अपना प्यार देते हैं<sup>१</sup> । दरिया साहब के अनुसार वही स्त्री सुहागिनी है जो प्रियतम के रंग में रंगी रहती है, जिसका चित्त प्रिय की ओर ही लगा रहता है । एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं वही स्त्री पतिव्रता होती है जो एक मात्र अपने पति में ही अपने चित्त को बँधन रखती है<sup>२</sup> । सुंदरदास ने और विशद रूप से पतिव्रता के लक्षणों का विवरण प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार पतिव्रता कभी पतिसेवा का त्याग नहीं करती, वह किंकरा की भाँति सदैव पति के निकट प्रस्तुत रहती है, अन्य पुरुष की ओर नहीं देखती । जो स्त्री सदैव पति की आज्ञा में रहे उसे ही पतिव्रता माना जाना चाहिए । ऐसी स्त्री को प्रियतम के बुलाने पर बोलना चाहिए, बैठाने पर बैठना चाहिए और उसके कहने पर चला जाना चाहिए

१- क्यों प्रिय प्यार करे नहिं तोषै,  
करे सदा तू प्रिय की मन भाई ।  
क्यों यह रूप निकाई दई त्यों,  
दई बिधि तोहि सुभाव निकाई ।

बकवर -शृ० मं० पु० अ० १०७

२- पतिवरता एक पति चित्त राखी ।

+ + +  
सीई सुहागिन प्रिया रंगराखी । सीई सुहागिन कुत नहिं जाती ।  
दरिया शृ० पु० ४०५



वह जिस प्रकार से बताये उसी प्रकार बताना चाहिए । स्त्री का आदर्श ही यह है कि उसे पति से प्रेम हो । पति की सकलता में ही उसका कल्याण है और उसके आदेश ही पत्नी के लिए आचार-संहिता है । पति में ही यज्ञादि और रसोपभोगों की सार्वक्या है । पति से ही सारे दुःखों का नाश होता है, ज्ञान, ध्यान और पुण्य आदि का वरम साध्य पति ही है । तीर्थ स्नान आदि भी उसके लिए व्यर्थ है क्योंकि पति के रूप में उसे वह सभी कुछ मिल जाता है । पति के अभाव में उसकी कोई सार्वक्या और गति नहीं है । सेनापति भी पत्नी की ओर से तन मन अर्पण की

१- पति बरता छाई नहीं सुंदर पति की सेव ॥

पति बरता पति के निकट सुंदर सदा खुर ॥

पति बरता देखे नहीं आन पुरुष की ओर ॥

पति की आज्ञा में रहे स पति बरता जानि ।

सुंदर संमुख है सदा निखरि जेरे पानि ॥

प्रभु बुलावे बैठिये ऊठि कहै तब ऊठि

बैठावे तौ बैठिये सुंदर पौ की बूठि ॥

प्रभु बुलावे तब बसे सोई कहै तौ सोई ।

सुं० गृ० पु० १९४ ।

२- पति ही सूं प्रेम होय, पति ही सूं नैम होय ।

पति ही सूं कोम होय, पति ही सूं रत है ॥

पति ही है जल जोग, पति ही है रस भोग ।

पति ही सूं मिटे सोग पति ही को बत है ॥

पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुण्य धाम ।

पति ही है तीर्थ ध्यान, पति ही को मत है ।

पति बिनु पति नहि, पति बिनु गति नही ।

सुन्दर सकल विधि, एक पतिव्रत है ॥

सुंदर० क० की० पु० ३३०-३३१

पातिव्रत की सीमा मानते हैं<sup>१</sup> । इस प्रकार की पातिव्रता स्त्री का महत्त्व बहुत बड़ा है । वह जीवन की पारिवी सीमाओं का अतिक्रमण कर अतीतिक गरिमा प्राप्त करती है । मन्दोदरी जो स्वयं पातिव्रता के रूप में प्रख्यात है रावणा से यत्ननुरोध करती है कि वह पातिव्रता स्त्री की सामान्य देहधारियों की भाँति न समझे<sup>२</sup> । पत्नी का यह धर्म है कि वह आपत्तियों को सहन कर कुतशील की रक्षा करे और हाव-भाव-विभावोदि से पति को बश में करके रखे<sup>३</sup> । मतिराम की नायिका का अनुराग तो इस सीमा तक पहुँच गया है कि वह पति की पर्यादा बनाये रखने के लिए स्वयं बन्ध्या कहता कर भी तप्य की छिपाये रखती है<sup>४</sup> ।

२८- पत्नी से, आरंभ में संभवतः इतनी आशाएँ नहीं की जाती थी । यदि वह पति के बिना अधूर्ण समझी जाती थी तो पुरुष भी उसे अभाव में अधूरा समझा जाता था वहाँ समता और समरसता थी । किंतु धीरे धीरे अनेक आर्थिक और सामाजिक कारणों से पत्नी के लिए पातिव्रत अधिक आवश्यक समझा जाने लगा और पति के ऊपर बन्धन

१- मानी एक पतिनी के व्रत की, पातिव्रत की,

सेनापति सीमा तन मन वरपन की ॥१९॥

से० क० र० पृ० ७९

२- संधि करी विग्रह करी सीता को तो देहु ।

गनी न पिय देहीन में पातिव्रता को देहु ॥

के० गृ० पृ० २९६

३- सीत है कुत नारि को वह आपदा सहि सेइ ।

हाव भाव विभाव करिके वरम कै पति सेइ ॥

के० वि० गी० पृ० २०२

४- गुरुजन को व्याह की० प्रतिदिन कह्य रिसाइ ।

पति की पति राखे बहु, बाधुन बाँध कहाइ ॥

म० गृ० पृ० ४४४

कम होते गये । आसौज्य काल तक जाते जाते स्थिति काफी बिगड़ गयी थी । अकबर की नायिका अपनी सखी से यह चिन्ता व्यक्त करती है कि रति सी पत्नी घर में, होने पर भी पुरुष परस्त्री के साथ रमण करता है सबसे उसने सुना है कि उसका पति परस्त्री के स्नेह पाश में जाबद्ध है तब से अत्यन्त दुखी रहती है किन्तु उसके प्राण भी नहीं निकलते<sup>१</sup> । मतिराम की नायिका अघरायी प्रियतम को रंग हाथ पाकर भी बर्मा कर देती है<sup>२</sup> । सहिष्णुता तो भारतीय नारी का आवश्यक धर्म सा बन गया है । भारतीय संस्कृति की सुदीर्घ परम्परा ने भारतीय नारी को संसार की सर्वाधिक सहिष्णु और अभागी प्रकृति प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत किया है । उससे यह आशा की जाती है कि वह पति द्वारा दिये जाने वाले दुःखों को भी सुख मान ले । सारे संसार को मित्र और पति को ही मित्र समझे । योग-व्रत, स्नान-ध्यान, धर्म-कर्म सभी कुछ निष्फल है एक मात्र पति की सेवा ही फलदायिनी है । पति के अभाव में माता-पिता, बन्धु-बान्धव, देवर-बेठ, पुत्र-पुत्री सभी दुःख के आस्पद सिद्ध होते हैं । स्त्री अपने पति को स्वयम् में भी नहीं त्यागती चाहे उसमें कितने ही दोष और अभाव क्यों न हों । पंगु, गूंगा, बहरा, अनाथ, कसही, कोढ़ी, भील, चोर, अश्विचारी, अघम, अभागी, कुटिल, कुमति पति भी पत्नी के लिए

१- जो अपने घर में सखी रति सी पतिनी होय ।  
तऊ पुरुष परतिय वह कौन रीति यह होय ॥

सुन्यो सखी घरनारि सौ रमत हमारी पीठ ।  
यह समुझि तन तबत नहिं कीछिन बरी यह बीबु  
अकबर- मृ० मं० पृ० ७४, ७५ ।

२- पिय अघराय अनेकहुं जाखिन हूँ तखि जाय ।  
तिय इकत हूँ कत सौं, मानो करत तवाय ॥  
मं० मृ० पृ० १२१

त्याग्य नहीं है<sup>१</sup> कुल मिला कर कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं समझी गई जिसमें पत्नी पति का त्याग कर सके और दूसरा पति ग्रहण कर सके । इसके विपरीत पति को एकाधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार है । पति के लिए पत्नी को प्राण त्यागने चाहिए किन्तु पत्नी के लिए पति के प्राण छोड़ने का प्रश्न नहीं उठता । महाराज मनु<sup>२</sup> की भाँति केशवदास<sup>३</sup> भी पति को सागर और पत्नी को सरिता के समान बताते हैं ।

१- पति देह जो वति दुःख , मन पान तीव्र सुख ।

सब जगत जानि जमित्र, पति जानि केवल मित्र ॥

जोग जाग ब्रत आदि जु कीवै, न्हान, गान गुन, दान जु दीवै ।

धर्म कर्म-सब निष्कल देवा, होहि एक फल के पति सेवा ॥

तात मातु जन सौकर जानी, देख बैठ सब संगिहु मानी ।

पुत्र पुत्रुत श्री छविछाई, है विहीन भरता दुख दाई ॥

नारी तवै न मापनी सपने हू भरतार । पंगु गुंग बीरा बधिर बंध  
जनाय अपार ।

कतही कोढ़ी भीरु और न्यारी अवभिवारी, जयम जभागी कुटिल  
कुमति पति तवै न नारी ॥

के० को० १।१४४

२- मनु, १-३९

३- पति पतिनी बहु करै, पति न पतिनी बहु करही ।

पति-हित पतिनी बरहि, पति न पतिनी-हित मरही ॥

एक नायिका दुख कहा बहु नायक दुख ।

सूखै सरिता एक कहा बहु सागर सूखै ॥

के० गु० पु० ५३८

### निष्कर्ष:

२९- रीतिकालीन हिन्दी कविता में नारी के स्वयं और चित्रण का विहंगमलोकन करते समय कवियों के दो वर्ग स्पष्टरूप से देख लेने चाहिए । एक ओर तो रसिक मनोवृत्ति के कवि हैं जिन्हें सावन के अन्धे की भाँति जीवन के प्रत्येक क्षण में काम का ही प्रभाव और उसी की सीता दिखायी पड़ती है, दूसरी ओर संत परंपरा के अवशेष हैं जो संसार से विरक्त होकर व्यक्तिगत स्तर पर आत्मोन्नयन का प्रयास करते हैं और काव्य की माध्यम बनाकर संसार-त्याग का उपदेश देते हैं । रीतिकालीन काव्य में संतुलन कहीं नहीं है चाहे वह आसक्ति की ओर हो चाहे विरक्ति की ओर । संतुलन जीवन का मूलधार है असंतुलन या तो निष्क्रियता, अतएव, जीवनहीनता उत्पन्न करता है या विप्लव और उसके फलस्वरूप विनाश का हेतु बनता है । विनाश के लिए, ध्वंस के लिए शक्ति की अतिशयता अपेक्षित है । यह असंतुलन रीतिकाल जैसे सांस्कृतिक पराभव के युग में संभव नहीं है । लोकजीवन में सांस्कृतिक गतिराव तो नहीं था किन्तु संभवतः जीवन का उत्साह भी नहीं था और रीतिकाल का कवि या तो सामंती आतावरण में रहने के कारण परावित मनोवृत्ति का था या जीवन की विभीषिकाओं से अस्त और पराङ्मुख । जिनमें जातीय चेतना का जागरण था भी, जैसे भूषण और जोधराज जादि, वे व्यक्ति की ही जाति का पर्याय समझ बैठे थे । व्यक्ति जाति का प्रतीक हो सकता है, और आधुनिक लोकतांत्रिक युग में, भी गांधी हिन्दू जाति और राष्ट्र के जागरण का प्रतीक माना गया है किन्तु व्यक्ति की जाति का पर्याय बना देना उचित नहीं, क्योंकि व्यक्ति और जाति में व्यक्ति सापेक्षिक रूप से बल्की नष्ट होने वाला होता है । इसलिए रीतिकाल के रसिक कवियों और संत कवियों में सतही भेद भी ही दिखायी पड़ता है किन्तु वे, नारी के संबंध में एक ही स्थिति की दो भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं । जिस प्रकार किसी बड़ी हुई नदी के भयावह उफान और नावर्त-विवर्त को देख कर एक व्यक्ति न चाहो हुए भी सान्निध्यवशत् नदी की सहरी में आ जाता है और डूबने-उतराने लगता है, दूसरा व्यक्ति दूर से ही जल-प्लावन को देख भाग बढ़ा होता है । वे दोनों ही स्वाध्य नहीं हैं क्योंकि एक तो डूबा जा रहा है, दूसरा भागा जा रहा है किन्तु इनमें से कोई भी

साहस और सद्बुद्धि के साथ उस पार जाने का प्रयत्न नहीं करता । उसी प्रकार रीतिकाल का रसिक कवि सामन्ती समाज के ऐहिकतापूर्ण वातावरण में जाकण्ठ मग्न होकर उससे बाहर निकलने की शक्ति खो देता है तो तत्कालीन संत कवि सामन्ती जीवन की ऐहिकता और भ्रष्टता के सम्बन्ध मात्र को सुनकर जंगल की राह से होता है । बाब और भड्डरी जैसे लोक जीवन से संपृक्त कवियों को छोड़ कर जो कवि से कहीं अधिक लोक-गायक हैं, जन्म में या तो पराजित मनोवृत्ति का प्रतिफल दिखायी देता है या पराङ्मुख विरक्ति का प्रभाव ।

१०- स्वभावतः नारी के सम्बन्ध में ये दोनों प्रकार के कवि संतुलित और सवर्गीण दृष्टि से विचार नहीं कर सके हैं । जे, भिखारीदास, मतिराम, बिहारी, बनानन्द आदि सभी में न्यूनाधिक मात्रा में नारी के रूप या मन के प्रति एक गहरी ललक मिलती है इसलिए अपनी आसक्ति के कारण वे नारी के प्रेमदात्व और रमणीत्व को अधिक रसमयता के साथ बाणी के सके हैं । झूरी और दरिया, दादू दयाल, सुंदरदास, नाबरीदास आदि के काव्य में नारी स्वभाव के उत्पत्ति को समझने की असामर्थ्य मिलती है । काव्य दृष्टि का मूल तत्त्व सहिष्णुता है और इन कवियों में नारी के प्रति सहिष्णुदृष्टि का ही अभाव है । निःसंगता भी काव्य सुवन की एक स्थिति हो सकती है किन्तु ये कवि नारी के असत् पक्ष के प्रति निःसंग नहीं रह सके, कटु भी हो गए हैं । इसलिए इनमें से कोई भी वर्ग या कवि भारतीय नारी को उसके समग्र रूप में नहीं देख सका । काव्य की तत्कालीन विधा भी इसमें बाधा-स्वरूप उपस्थित होती रही होगी । कवित्त सबंधों में जीवन के विराट् क्षेत्र में से अधिक व्यापक क्थानक लाकर उसे गूँथ देना संभव नहीं हो पाता रहा होगा क्योंकि जीवन में एक मूर्खता होती है और उस तारतम्य में अनेक प्रकार के रसों का समाहार होता है इसलिए जीवन में पुनरावृत्ति होते हुए भी एकरसता नहीं होती। किन्तु रीतिकाल के अधिकांश काव्य में एकरसता और तन्मय विरसता भी दिखायी पड़ती है । महफांगी दृष्टि जिस प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रतिबिम्बित और प्रतिफलित हुई है उसी प्रकार नारी के व्यक्तित्व को भी समग्ररूप में नहीं ग्रहण कर सकी । इसका परिणाम यह हुआ है कि माता, बहिन, कन्या आदि रूपों में नारी के जो विभिन्न चित्र मिलने चाहिए वे वे इनके काव्य में प्रायः नहीं मिलते। पत्नी के रूप में रसिक कवियों ने स्त्री को अवश्य लिया है और



पर्याप्त विस्तार के साथ उसका विवर्ण किया है, किन्तु वहाँ भी पति और पत्नी की केसि, आकर्षण और उनके हाव-भाव किस्किंचित् आदि का ही वर्णन करने में उसका मन रमा है। पत्नी को कर्मक्षेत्र के संघर्ष और उत्थान-पतन में पुरुष के साथ कन्धे-से-कंधा मिला कर बतने वाली अर्धांगिनी के रूप में वे उसे चित्रित नहीं कर सके। उनकी रसिकता में उस अग्नि और ऊष्मा का अभाव है जो सृजन और निर्माण का हेतु बनती है। नारी जीवन के अनेकानेक अधिक व्यापक चित्र हमें नूर मुहम्मद, कासिमशाह, उस्मान आदि उन कवियों में मिलते हैं जो रसिक कवियों की तरह "इश्क़ मियाजी" के शिकार नहीं थे। उनमें "इश्क़ हकीकी" अधिक मिलती है किन्तु इश्क़ हकीकी उनकी दृष्टि को एकांगी और संकुचित नहीं बनाती।

अध्याय ७

जीवन - दृष्टि

## अध्याय ७

### जीवन - दृष्टि

#### वाधार सामग्री:

रीतिकालीन काव्य में अभिव्यक्त समाज के धर्म, विश्वास, प्रथाओं, कुप्रथाओं, शिष्टाचार, शिक्षा और साहित्य अर्थात् जीवन-दृष्टि के अन्तर्गत जाने वाले प्रत्यक्ष से संबद्ध वाधारभूत सामग्री रीतिमुक्त एवं रीति-मुक्त कवियों के अतिरिक्त नीरकाव्य रचयिताओं के एवं नीति और संत कवियों के काव्यों से प्राप्त होती है। रीतिकवियों में केशवदास का सामाजिक ज्ञान संभवतः सर्वाधिक व्यापक समझा जायेगा। इस प्रकार उनमें से केशवदास (१६१२-१६७४) के अतिरिक्त सेनापति (१६४६), बिहारी (१६६०-१७२०), मतिराम (१६७४-१७५८), रसनिधि (१७६०), काननन्द (१७४६-१७९६), भिवारीदास (१७८५), रघुनाथ (१७९०), पद्माकर (१८१०), ग्वास (१८७९) के काव्य हमें इस संबंध में वाधारभूत सामग्री प्रदान करते हैं। संतकवियों में सुंदर (१६५६-१७४६), पलटू साहब और सखीबाई (१८००) के काव्य इस संबंध में विशेष सहायक सिद्ध होते हैं। चरित कवियों में मान (१७०७), लालकवि (१७६४), सुदन (१८२०) एवं बीधराज (१८७५) की कृतियों से विशेष सहायता प्राप्त होती है। सभी नीतिकवि प्रायः व्यापक लोक-जीवन के अत्यन्त निकट थे इसलिए लोक की जीवन दृष्टि का प्रतिबिम्ब उनके काव्य और उनकी सूक्तियों में मिलना स्वाभाविक है। इनमें भी बाब (१७५६) की लोकोक्तियाँ इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध और संभावना - गर्भ हैं। बाब के अतिरिक्त बैताल (१७२४) और दीन दयाल (१८८८) का काव्य भी पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। सूफ़ी कवियों में उत्प्रेक्षनीय सहायता केवल उत्तमान (१६७०) से उपलब्ध होती है। कुष्मा कवियों में रसवान (१६४०) और भावतू रसिक (१७९५) की रचनाओं से उत्प्रेक्ष्य सहायता प्राप्त होती है। रीतिकाव्य जिस सीमा तक तत्कालीन समाज की वास्तविक जीवन-दृष्टि का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है और जिस सीमा तक कवि -कल्पित या कवि के अपने समाज और पर्यावरण की प्रतिबिम्बित करता है वह प्रश्न इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि तत्कालीन समस्त काव्य के वाधार पर इस समाज का जो चित्र बनाते हैं वह रीति काव्य के

अधिक निकट दिखायी देता है। रीतिकाव्य, संतकाव्य और चरित काव्य में परस्पर जीवन-दृष्टि संबंधी वैषम्य अवश्य दिखायी देता है। रीतिकाव्य प्रधानतः ऐहिकापरक जीवन-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है, वीर काव्य में संघर्ष की इच्छा और संतकाव्य में संसार के मोह, वैषम्य और बन्धन को त्याग कर अलौकिक ज्ञानन्द की उपलब्धि का लक्ष्य प्रमुखतः दृष्टिगोचर होता है, किन्तु यह अन्तर महत्वपूर्ण होते हुए भी मूलभूत नहीं। मूलतः ये एक ही परिस्थिति की तीन भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। रीतिकवि जिस परिस्थिति के घेरे में पड़ कर ऐहिक और ऐन्द्रिक जीवन-दृष्टि अपना लेता है, व्यापक जीवन-वीर उसके लिए रमणीय और सुन्दर में सिमट कर रह जाता है, चरित कवि उसी परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष करता है। संतकवि तत्कालीन समाज की पतनोन्मुख स्थिति देखकर जीवन को ही निरर्थक और अकाम्य समझने लगता है।

### राजनीतिक पराजय और सांस्कृतिक पराभव की प्रतिक्रिया:

२- मनुष्य और पशु की जीवन-यापन-पद्धति में मूलभूत समानता होते हुए भी तात्त्विक अन्तर है। इसीप्रकार मनुष्य मात्र की जीवन-यापन पद्धति और जीवन के साध्य के संबंध में उनकी दृष्टि में मूलभूत समानता होते हुए भी ऐसा अन्तर है जिसकी उपेक्षा संभव न होने के कारण ही जाति, धर्म और राष्ट्र जैसे विभाग दृष्टिगोचर होते हैं। चिंतन के जो वैशिष्ट्य, जो विश्वास, एक प्रजाति की दूसरी मानव-प्रजाति से अलग करते हैं, एक युग को दूसरे युग से अलग करते हैं, एक को अग्रिम दूसरे को भारतीय और तीसरे को फ्रांसीसी की संज्ञा प्रदान करते हैं उन्हें ही हम यहाँ जीवन-दृष्टि के अन्तर्गत ले रहे हैं। इन विश्वासों में दर्शन की-सी व्यवस्था और पूर्वापर-क्रम-बद्धता नहीं होती किन्तु इनमें वह वैशिष्ट्य अवश्य होता है जो देश-काल विशेष में बसने वाले जन को दूसरे देश-काल में बसने वाले जन से अलग व्यक्ति-त्व प्रदान करता है।

३- जातीयवादीन भारत राष्ट्र-राज्य नहीं था। वस्तुतः

राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्र - राज्य की परिकल्पना का विकास परिवर्तन में भी उन्नीसवीं सदी में हुआ। राज्य के लिए जन, निश्चित भौगोलिक क्षेत्र, सरकार और संप्रभुता- इन चार तत्वों की आवश्यकता होती है<sup>१</sup>। आसौज्यकासीन भारत में ये सभी तत्व उपस्थित थे और राष्ट्रीयता के लिए अपेक्षित तत्वों में जातिगत विद्युद्धता भाषा एवं समुदायगत समैतय एवं भौगोलिक एकता का भी अभाव नहीं था किन्तु भारतीय जन में <sup>एक</sup>समान राजनीतिक स्वप्न (कामन पासिटिक्ल एस्पिरेशन) नहीं था<sup>२</sup>। इन तत्वों की उपस्थिति की केंतना का अभाव था। तत्कालीन भारत राजनीतिक पराजय, सार्वभौम विपन्नता और सांस्कृतिक पराभ्र का देश था। अकबर (१५५०-१६०१) के समय तक की जड़े न केवल प्रवृत्त हो गयी थीं, बल्कि सामान्य रूपी वृक्ष पूर्णरूपेण पतनवित एवं पुष्पित भी होने लगा था। अकबर का शासन काल केवल राजनीतिक स्थिरता का ही काल नहीं है अपितु वह इस्लाम संस्कृति की विजय का काल भी है। हिन्दू जाति, कुछ ऐसा लगता है कि मुगल शासन की, बहुत कुछ अवशिष्टार्थ समझ कर स्वीकार कर चुकी थी और जैसा कि उत्तरवर्ती इतिहासकारों के अध्ययन से ज्ञात होता है अकबर की नीति-धेरित उदारता के कारण वे उसमें कुछ गुण भी देखने लगे थे। इस प्रकार तत्कालीन हिन्दू चरित में राजनीति के प्रति, राजनीतिक पराजय, अनित उदासीनता और सांस्कृतिक पराभवजन्य धार्मिक सहिष्णुता के दर्शन होते हैं<sup>३</sup>।

४- रीतिकासीन काव्य के आधार पर तत्कालीन जीवन का, विशेषकर उसके आभ्यन्तर पक्ष का कोई चित्र बनाने में बहुत सतर्क रहने की

१- गेटिस-बार०जी०पासिटिक्ल साइंस, पृ० १९।

गितकास्ट- प्रिंसिपल्स ऑफ पासिटिक्ल साइंस, पृ० ६।

२- गार्नर - पासिटिक्ल साइंस एण्ड गवर्नमेंट, पृ० १०६-११२।

३- सब विधि रनधीर लोहे साहि बहागीर तिहुपुर बाकी जसु गंगा की लो जसु है।

आवरणकता है। नीतिकाव्य का कवि वस्तुतः जीवन के दोनों पक्षों का रूप और आन्तर में एकरस है। यह एकरसता कभी-कभी प्राणहीनता की सीमा का संपर्क करने लगती है। ज्ञानपान में, उन्हीं व्यक्तियों का उत्प्रेषण है जो जन-सामान्य को उपलब्ध न होने के कारण वास्तविक और एकदेशीय तो है ही पुनरावृत्ति के कारण नीरस भी हो जाते हैं और यही बात जीवन के अन्य पक्षों पर भी समान रूपों से लागू होती है। रीतियुग का कवि अनेक कारणों से सम्राट्कुल और सामन्तवर्ग के अधिक निकट था। काव्य सुवन में सृष्टा के समग्र व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है और उसके व्यक्तित्व के निर्माण में पर्यावरण का योग और प्रभाव निर्विवाद है। इस प्रकार रीतियुग का काव्य भी कवि के पर्यावरण से प्रभावित एवं उद्भूत है। भक्तियुग के कवि उदाहरणार्थ तुलसी और रीतियुग के कवि की कृति प्रक्रिया में भी भिन्नता है। तुलसी लोकजीवन को राजभवन में ले जाते हैं राजभवन के जीवन को

लोकजीवन की सरलता प्रदान करते हैं इसलिए बसोष्मा के राज्य में सर्वप्रभुत्व संपन्न एकाग्र होने के बावजूद भी उत्पीड़न और जल्माचार का अभाव है। भावनात्मक परातल पर राजपरिवार के जीवन और लोकजीवन के बीच कोई गहरी खाई नहीं है वरन् दोनों बहुत कुछ एक से हैं। रानी की शल्वा एक सामान्य सास की तरह कहती है "दीप बाति नहीं टारन कहैल" और यह भूल जाती है कि राजकुल की बच्ची को दिए की बाती टाकने की जरूरत ही नहीं पड़ा करती। राजपर वल्लभ लोकजीवन के निकट पहुँचता है। राम सीता के कहने पर सीता को निर्वासित कर देते हैं। पाठक यह भूल जाता है कि रामायण काल में जनतंत्र नहीं था वह राजतंत्र का केवल आदर्श रूप था। कवि उपमान भी लोकजीवन से लेता है। किन्तु रीतियुग का कवि लोकजीवन से या तो बहिष्कृत रहता है या उसपर सामन्ती जीवन का आरोप करता है। पद्माकर का प्रसिद्ध छन्द जिसमें शीतशमन के उपकरण गिनाये गये हैं, किसी सामान्य गृहस्थ के जीवन का चित्र नहीं देता है। यदि इन्हीं मसालों से शीत समाप्त होती रही हो तो यह समझ लेना चाहिए कि भारत की तत्कालीन जनसंख्या का पचानव प्रतिशत बाड़े से ठिठुर रहा था। रीतिकाव्य के कवि की इस सीमा के कारण काव्य के आधार पर तत्कालीन भारतीय जीवन-दृष्टि



का अध्ययन करना एक कठिन और संयम सौपेस्य कार्य है फिर भी बड़ा सहजता से काम लेने पर एक रूपरेखा तैयार की जा सकती है ।

५- भारत धर्मप्राणा देश रहा है । धर्म अर्थात् जीवन यापन की पद्धति का अधिक महत्व होने का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जीवन को, धर्मरूपी साध्य का साधन समझ लेता है । उसे अपने धर्म के लिए प्राणात्याग परधर्म-गृहण से अधिक सुगम प्रतीत होता है । उसका मान्यार्थ है "वधमे निधन मेवः पर धर्मोभयावहः ।" स्वभावतः जीवन के अन्य उपकरण उसकी दृष्टि में अपेक्षाकृत महत्वहीन हो जाते हैं । अपने धर्म की रक्षा के लिए वह पुत्र, मित्र, भोजन, भजन, भूमि आदि सभी कुछ छोड़ सकता है<sup>१</sup> । सेनापति वैराग्य-भाव की अभिव्यक्ति करते हैं उनकी सलाह है कि एक गुरु कर लिया जाय तो सच्चिदानन्द का बोध कराये, जिसके फलस्वरूप काम, क्रोध आदि का विनाश हो जाता है । कवि पुनीत नगरी वाराणसी के मणिकर्णिका घाट में पावन स्नान करके राम नाम का पाठ करने की आकांक्षा व्यक्त करता है<sup>२</sup> । इस देवपरक संस्कृति का परिणाम यह होता है कि हिन्दू मानव जीवन को अकिंचन और देवकीर्ति को अनपेक्षित महत्व की दृष्टि से देखता है । जिस दूरे की देखकर सुर आदि भी मोहित हो गये उसके लिए मानवीय प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रह जाती<sup>३</sup> ।

१- मांगहु मंत्री मित्र पुत्र प्रभु सकल कसिगन ।

मांगहु भोजन भजन भूमि भाजन भूजनगन ।

मांगहु आसन अनसन भान परिधान जानिगति,

मांगहु बाग तड़ाग राग बड़भाग भोगमनि ।

कहि केसव सकल पुर सुत समेत बसु असुधनी ।

सब देहों को कहु मांगिहो धर्म न दे हों आपनी ॥ के० गृ० पु० ५३९ ।

२- "वाराणसी जाय मणिकर्णिका अन्हाइ मेरी संकर तैराम नाम पहिने कोन मनई" से० के० र० पु० २१० ।

३- चारो दल दूह चालु बने, मोहे सुर गौरन कोन गने ।

के० गृ० पु० २७३ ।

### बातीय-चरित्रः

६- समाज की दृष्टि में गौत्र, गुण, ग्राम और देश, स्वभाव, प्रभाव, कुल, विक्रम आदि का विशेष महत्व है। राज-समाज का परिचय देते समय केशव ने इनके विवरण दिये जाने का उल्लेख किया है<sup>१</sup>। पिता के अभिप्रेत से ही पुत्र का परिचय समझा जाता है अतः पिता के मेत्री और वैर भी पुत्र का उत्तराधिकार में प्राप्त हो जाते हैं। जो पुत्र अपने पिता का वैर-बोधन नहीं करता उसका जीवन निष्फल समझा जाता है<sup>२</sup>। केशवदास मानव-जीवन के वैशिष्ट्यों का उल्लेख करते समय विरघ्ना सर्वविद्या विज्ञासी, सर्व-सम्पत्तिवान्, संयोगी, अरोगी और एक पत्नीव्रती की चर्चा करते हैं<sup>३</sup>। दान का महत्व बहुत बड़ा है किन्तु देने का जितना बड़ा महत्व है, भिक्षादान ग्रहण करने का कार्य उतना ही गर्हित समझा जाता है। केशव रामराज्य की आदर्शविस्था का वर्णन करते हुए बताते हैं कि उनके राज्य में भिक्षादान केवल यज्ञोपवीत के अवसर पर औपचारिक रूप से ही ग्रहण किया जाता है, गति की वज्रात केवल सरित्तानों में मिलती है और कोकिलकुल ही पुत्र का त्याग करता है<sup>४</sup>। दान तीन प्रकार के माने गये हैं - सात्त्विक, रजस्, और तमस्

१- सिंगरेराज समाज के कहे गीत गुन ग्राम ।

देख स्वभाव प्रभाव कुल वल विक्रम नाम ॥ के०गु०पु० २४१ ।

२- जो सुत अपने बाप की वैर न छेड़ प्रकास ।

तासी जीवत ही मर्यो लोग कहे तपि भास ॥

के०गु०पु० २१५ ।

३- जुवा सर्वदा सर्व विद्या विज्ञासी । सदा सर्व सम्पत्ति सोभा प्रकासी ॥

विरधीय संयोग योगी अरोगी । सदा एक पत्नीव्रती भोग भोगी ॥

के०गु०पु० २६९ ।

४- से होत जनैक भिक्षा दानु । कुटिल बाल सरित्तानु बलानु ॥

त्याकरणाहि दिव वृत्तन हरे । कोकिल कुल पुत्रा पाहिरे ॥

के०गु०पु० २७० ।

वा उत्तम, मध्यम और अधम<sup>१</sup>। बगैब बात्री एडवर्ड टेरी ने हिन्दू धर्मियों की स्वामिभक्ति और सेवापरायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। केवल के अनुसार भी संकट काल में स्वामी को छोड़ देना या किसी को कुछ देकर उससे वापस ले लेना निन्दनीय कार्य है। सारा संसार ऐसे व्यक्ति के नाम पर ब्रूकता है<sup>२</sup>। सभी पर हाथ उठाने की वर्जना की गयी है, बबला पर ब्राह्मण करना पुरुष का धर्म नहीं माना जाता<sup>३</sup>। पराक्रम की शोभा इसी में है कि वह पराक्रमवन्ध बलिचार को रोकें, बलहायों और बबलों को रक्षा करें। विभूति का बौद्धिक इसी में है कि वह अपने प्रसार से देव्य को कम करें तभी तो भावान राम दानव दत्तन है, कलिमत का मयन करने वाले हैं और द्रिब और दीनों के दुःखों का हरण करने वाले हैं<sup>४</sup>। हम्पीर रासी में बार्दी गुणों के अन्तर्गत विनीत, धर्मी, दयावान् और धीर की प्रशंसा की है<sup>५</sup>। धर्म की हिन्दू चरित्र का विशेष बग माना गया है। एडवर्ड टेरी ने हिन्दुओं के धर्म की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

१- के०गु०पु० १४१।

२- के०गु० पु० १३८।

३- वह धर्म पुरुष की क्लिष्ट नाहि,

तिय ऊपर ऊचों करत बाहि ॥

जी० ह० रा० पु० १३०।

४- दानी दत्त-मत्तन, मयन कलि-कलन की।

दत्तन हैं देव द्रिब दीनन के दुख की ॥

दे० क० रा० पु० ७५।

५- जी० ह० रा० पु० १।

### ऐहिकतापरक मनोवृत्ति:

७- बिहारी ने महाराज बसिंह के दरबार की स्थिति देखकर जो उद्बोधन किया था वह रीतिकाम्य में चित्रित समाज की मनोवृत्ति को सम्पूर्णतः जीवित करता है। बसि जीवन की कर्मभूमि में न जाकर कसी में ही जाबद हो गया है<sup>१</sup>। कोई उस संसार-सागर को पार नहीं कर सकता क्योंकि स्त्री की छवि रूपी ग्राहिणी - छाया उसे बीच में ही धर लेती है<sup>२</sup>। यद्यपि संकर ने काम की नष्ट कर दिया है, तथापि वह हटाने नहीं हटता। स्वयं विनष्ट होकर भी दूसरों के हृदय को संतप्त करता है। इसी मनोब के निवारण हेतु केशव परमेश्वर, शिव और गुरु को सधेम प्रणाम किया करते हैं<sup>३</sup>। वस्तुतः आलोच्यकाल में ऐहिकता और काम प्रवृत्ति थी, कम से कम उस समाज में जिसका कवि चित्रण करता है, स्थापित इतनी अधिकता हो गयी थी जीवन के चार पुरुषार्थों में काम सर्वग्राही और सर्वभक्षी बन बैठा था। जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में प्रायः पूर्वस्थ तीन के माध्यम से मानव समाज व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर निरंतर गतिशील रहा है। धर्म अर्थात् जीवन-साधन की पद्धति (Way of Life) और अर्थ कहीं तो उसका परिणाम मान लिया गया है कही उसका साधन-पर दोनों रूपों में वह अपने आप साध्य कभी नहीं रहा है, और वह निर्विवाद है कि काम जीवन-साधन

१- नहिं परागु, नहिं मयुर मयु, नहिं विकासु नहिं कात ।

मली, कली हीली कण्ठी बागी कीन ह्यात ॥

वि०र०दी० ३८ एवं बी०ह०रा०पु० ३९ ।

२- या भव-वारावार कीं उत्तपि पार को जाय ।

तिव-छवि-छाया-ग्राहिणी गृहे बीच हीं जाय ॥

वि०र०दी० ४३३ ।

३- के०गु० पु० ६४३ ।

की मूलप्रवृत्ति है। मानवीय सेवा-विकास और सामर्थ्य के कारण इस काम कल्प-बुद्धि में विविध कामना-कृत्यम विस्तारती जाती है, काम अपने व्यापकतम अर्थ में हमारे सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित किये हुए है। हमारी समस्त वासनाएं, इच्छाएं और मनोकामनाएं इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। मनुष्य की सबसे प्रबल ऐश्वर्या विविधविध, भी इसी के अन्तर्गत आयेगी। मोक्ष इनसबसे मुक्ति नहीं इनके माध्यम से मुक्ति है।

८- रीतिकाम्य के जीवन-दर्शन में काम की बहुत बड़ा स्थान दिया गया है। यह भी कहना अतिशय नहीं होगा कि उसका सर्वोत्तम अंश काम क्या ही है। किन्तु यहाँ काम का सीमित अर्थ लेना पड़ता है। भव्य-भवनों में निवास, जीवन के संघर्षों और कौशलज्ञ से दूर सुरम्भ उद्यानों में भ्रमण, नारी की शरीर-वर्णिका के हर प्रत्यक्ष-गुप्त मोड़ पर ऐन्द्रिक वासना तक में ही यहाँ काम की परिधि समाप्त हो जाती है।

९- नारी रूप के प्रति वासना अत्यन्त गुरुणीय नहीं है वह तो एक सख प्रवृत्ति है। नैतिकता - अनैतिकता के परंपरागत मानदण्डों से परे, आत्म-प्रवचना से दूर होकर देखा जाय तो पता चलेगा कि रूपही प्रमदा की कोमल-कान्त काया के प्रति मनुष्य तो भी पुरुष के आकर्षण में सुषुप्ति का रक्षण छिपा है, सुषुप्ति के अस्तित्व का भ्रम ही उसके आधार पर बड़ा है। नर-नारी एक दूसरे के प्रति अपने सख आकर्षण की तीव्रता और व्यापकता में नीति की आत्म-प्रवचना को चुनौती ही नहीं देते रहे, परिरंमपाश में आवद्ध प्रणवी जीवन का सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और कल्पित सुख सूते रहे हैं। जिसकी मंदिर छाया में दार्शनिक का दर्शन डूबित हो उठता है, जिसके अंगों की ऊष्मा पुरुष शरीर के प्रत्येक ठोस अवयव की चेतना को सरसित कर देती है और जिसकी गंध पुरुष के अन्तर्धन में व्याप्त होने पर सुषुप्ति की सीरम फीका हो जाता है, जिसकी बाणी के तार नर की हृत्पद्मी को भँस कर देती है उसके प्रति पुरुष का सख आकर्षण पुनीतता-अपुनीतता के बाये आदर्शों से नहीं मापा जा सकता।

१०- पर देवता यह है कि रीतिकाम्य के कवि पुरुष की अन्तरचेतना नारी की सौन्दर्याभा से प्रबुद्ध हो उठती है या स्त्री का स्मृत रूप पुरुष

की वासना लिप्ता को ही बागुल करता है और इससे जागे नहीं बढ़ता ।  
मतिराम का अति प्रसिद्ध सबैया है--

कुदन की रंगु फीकी लगी, भलके अति अंगनि चालू गुराई,  
जाकिन मैं बल्लानि चितौन मैं मंजु बितासन की सरसाई ।  
को बिनु मोलबिकात नहीं, मतिराम लहे मुसकानि-मिठाई,  
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे लूँ नैननि, त्यों-त्यों बरी निकरै-सी निकाई<sup>१</sup>

नायिका (रीतिकासीन स्त्री होने के नाते) कुन्दनवर्णी है, उसका गौर वर्ण  
जंग-जंग से फूटा पड़ रहा है । रात्रि केति में व्यतीत होने के कारण जाँची  
में आलस्य है, दृष्टि से बितास की मधु मदिरा बरस रही है, उसका हास्य  
पिटा है वहाँ मधु लोभी मधुकर (पुरुष) बिना मोल के ही बिक जायेगा ।  
बितनी ही निकटता से देखा जाय उसकी कान्ति सीने की तरह निबरती जाती  
है । काव्य की दृष्टि से यह सबैया हिंदी साहित्य के रसभीने स्वर्णों में से  
होगा- अब इसे प्रसाद के नारी चित्रण से मिलाइये -

बिबरती अलके ज्यों तर्क - बात ।

वह विश्व-मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड - सदृश वा स्पष्ट भाव  
दो पद्म-पलाश बभक से द्वा धौ अनुराग- विराग डाल  
गुंवरित मधु-से मुकुल सदृश वह जानन बिसमें भरा गान  
व वाग्बल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान  
वा एक हाथ में कर्म-ज्ञान वसुधा-जीवन-रस सार लिए  
दूसरा बिचारों के नभ की वा मधुर अभय अवलम्ब दिये  
बिबती थी किण्वा तरंगमयी आलीक बसन लिपटा बरात  
चरणों में भी गतिभरी तात्<sup>२</sup> ।

१- म०गु०, पृ० १७४ ।

२- प्रसाद- कामायनी, पृ० १६८(अष्टम संस्करण) ।



वह इडा का चित्र है जिसे शास्त्रीय भाषा में "शिव-नव" कहा जावेगा । कवि इडा के प्रत्येक महत्वपूर्ण अंग के लिए एक एक उपमान को नियोजन करता है । उसकी बसके तर्कवात की तरह बिहारी हैं । उसका स्पष्ट मुखरित भाव विरव-मुकुट-सा, उज्ज्वल शशिचण्ड सदृश है । दो यक्षपलाश-वृक्षक से नेत्र अनुराग और विराम दोनों का समान रूप से प्रसूचना करने में समर्थ हैं । उसका मुख उस मुकुट के सदृश है जिसमें ध्रुव-गुंजार का संगीत भरा हुआ है । उसके वक्ष पर संसृति के सब ज्ञान-विज्ञान एकत्र स्थित हैं । उसके एक हाथ में वसुन्धरा के जीवन की रससार प्रदान करने वाला कर्म-कलश है दूसरे को विचारों का मधुर भक्ष्य अलवम्ब प्राप्त है । उसकी शिखी, त्रिगुण और तरंगमयी है । उसने शुभ वसन धारण कर रखा है और उसके वरणों में संगीत की गति का सौंदर्य है । मतिराम के चित्र में वहाँ कुंदन वर्ण का वैभव है वहाँ प्रसाद में शुभ्र वर्ण की ज्योत्स्ना है । मतिराम की नायिका की आँखों में वात्सल्य और माधुर्य है, दुःखात में एक विशेष प्रकार का विश्वास है । प्रसाद की नायिका के नेत्र यक्षपलाश वृक्षक सदृश होने के कारण सुन्दर तो हैं ही उनमें अनुराग और विराम एक साथ, ठास देने की शक्तता भी है, उसके वक्षस्थल पर संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान एकत्र स्थित है । मतिराम के चित्र में वहाँ कर्म के उर्वर क्षेत्र का भभाव है वहाँ प्रसाद की इडा के एक हाथ में वसुधा के जीवन की रस प्रदान करने वाला कर्म कलश और दूसरे में विचार-सम्पत्ति है । ये दोनों चित्र अपने-अपने युग के कवि की नारी-दृष्टि के प्रतिनिधि चित्र हैं और दोनों का वैजम्ब अत्यन्त अर्थपूर्ण है ।

### धर्माधिकर्षण की प्रकृति:

११- रीतियुग के कवि में अतिशय कामपरकता के कारण धर्माधिकर्षण की प्रकृति भी मिलती है । सेनापति प्यारी के उन वरणों की बंदना करते हैं जो मुनिवर के सदृश हैं, जो अग्नि की भाँति "जग जीवन जग" को सकल बना देते हैं, जिनका संलग्न कल्पवृक्ष के समान सर्वकामनाप्रदायी और सर्वमंगलविधायी

हैं। उसके उरोवों को देख कर साधुओं को अपने अचल "शिव सा ह्व" का स्मरण हो जाता है। ब्रह्मा ने, कवि की दृष्टि में, नाविका के वधादेश में उरोव रूपी परमेश्वर की व्यवस्था इसलिए की है कि हरि के करमस्त उनकी पूजा कर सकें। वाला प्रिय-मिलन की कामना की पूर्ति के लिए अपने प्रेमाशु रूपी मुक्ति-मात से अहर्निश अपने कुव रूपी शिव की आराधना करती है<sup>४</sup>। कहाँ भावान शिव और कहाँ रमणी के उरोव ? रीति कवि धर्म की मर्यादाएँ तोड़ कर अनवरत वहाँ प्रवेश करता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि कवि को धर्मक्षेत्र में प्रवेश का अधिकार नहीं है या उसकी ऐन्द्रिक मनोवृत्ति निर्गुणीय है, जीवन के इन दो अलग-अलग पक्षों का एक स्थान पर संवय जिसमें एक एक गरिमा का ह्वास हो और दूसरे का उन्मथन भी न हो यह अवाञ्छनीय है और तत्कालीन कवि की मनोवृत्ति का परिचायक है। तभी तो भित्तारीदास के लिए जीवन में उपलब्ध होने वाले समस्त ऐश्वर्य और वैभव सुंदरियों के समक्ष तुच्छ व अतएव त्याज्य है<sup>५</sup>। रमणी के संग रहकर

१- सेनापति - क० र० पृ० १०। और

साहिब सहाब के गुलाब गुड़हर-गुर

ईगुर-प्रकाश दास ताबी के चरन है।

कुसुम-बनारी कुरबिंद के अंकुर कारी,

निर्दक पवारी प्रान्प्यारी के चरन है।

भि०गु० २।२५।

२- भि०गु० २।२४।

३- म० गृ० पृ० ४६४।

४- वाला फल तेरी मिलन निधि बासर यह बाल।

कुव शिव पूजति, नैन बल, बुंद मुक्तमय मात ॥ म०गु०पृ० ५००।

५- बादि छुनी रस अवन बाइवी बादि नवी रस मिश्रित गैदवी।

बादि बराई प्रबक बिछाई प्रसून की परि पा पतुटेवी।

दासवू बादि बनेस बनेस बनेस फनेस गनेस कहेवी।

या बग में सुखदायक एक मयकमुनीन की अंक समीची ॥

भि०गु० पृ० २।२८।

१९- हर ज़ोर काम का ही साम्राज्य है । कामदेव ने अपने कुसुमशर से सक्त संसार को अपने बश में कर लिया है, कोई भी शक्ति नहीं है, काम के अधीन होकर कोई भी उचित कार्य नहीं कर पा रहा है<sup>१</sup> । जहाँ भामिनी है वहीं भोग का बलित्व है बिना भामिनी के भोग कहाँ? उसके छूटने से जग से नाता टूट जाता है और जग से नाता छूटने से सक्त सब छूट जाते हैं<sup>२</sup> । सेनापति की नायिका की कुटिल भूकटि काम के कमान की तरह है जिससे तीक्ष्ण तीर चलते हैं । धूँट की जोट से काम रूपी बधिक द्वारा बिना मारे गये भी, जिसने कामी पड़े सिक रहे हैं<sup>३</sup> । पलटू साह्य सुबों की व्यवस्था में महल के भीतर पुष्प शम्भा, उस पर सुगंधि का फँसाव, साथ में सुन्दरी, नान और पुलाव जैसे पट भर भोजन और एक मंदिरा की बोलल की आवश्यकता बताते हैं । तत्कालीन जीवन-दृष्टि पर संत कवि ने संभवतः शोध व्यक्त किया होगा । कैत के प्रभात में रात्र मंदिर की फुलवारी में बसताही हुई प्रियतमा का संसर्ग सेनापति अत्युत्तम मानते हैं<sup>४</sup> । रीतिकालीन नायिका की भी तन और मन दोनों और से प्रियत होने की साथ पिटाये नहीं मिटती<sup>५</sup> । नवेली नायिका के घर के सभी लोग कहाँ न कहाँ बसे गये

१- किसी सबे जगु काम-बस, जीते बिते जिये ।

कुसुम सरीई सर अनुच कर जगहु गहन न देख ॥

वि० २० दो ४९५

२- जहाँ भामिनी भोग सहै बिन भामिनि कहाँ भोग ।

भामिनी छूटे जग छूटे जग छूटे सब भोग ॥

के० गू० पृ० २५५

३- काम की कमान तेरी भूकटि कुटिल जाती,

साते अति तीक्ष्ण ए तीर से चलत है ।

धूँट की जोट कोट, करिके खाई काम,

मारे बिन काम, कामी कै सकल है ।

से० क० २० पृ० २१ ।

४- से० क० २० पृ० ५६

५- कछु मन फूली रही, कछु मन-फूति, जैसे,

तन मन फूतिवै की साथि न बुझाति है ॥

से० क० २० पृ० ४३

है, प्रियतम, जो उसके जीवनरूपी उद्यान के मासी है रूठ गये है और साथ उन्हें मनाने गयी है इसीलिए वह किसी और बनमासी का आवाहन कर रही है<sup>१</sup>। प्रीड़ा नायिका के वात्सल्य स्नेह में भी काम की गंध आती है। वह पुस्तकित होकर, झेंते हुए अपने पुत्र को पास बुलाती है, उसे देख कर रसीली नायिका की स्वेद आता है और वह पुत्र का मुँह चूम लेती है। इस हर्षातिरेक का कारण उसका पुत्र के प्रति उमड़ा हुआ स्नेह नहीं है, पुत्र का चुंबन वह करती है क्योंकि कुछ ही देर पूर्व नायक पुत्र के गालों पर अपना चुंबन अंकित कर चुका है। प्रिय द्वारा चुंबित मुँह की चूम कर नायिका प्रिय को ही चूमने की अनुभूति करके पुस्तकित हो रही है<sup>२</sup>। विभिन्न क्रीड़ाओं में निमग्न नायिका को अपने वस्त्रादि का भी ध्यान नहीं रहता प्राग के हर्ष में विभीर नायिका का वस्त्र "उपर" जाता है उसे अपना वस्त्र संभालने की सुधि ही नहीं है। फिर क्या है ? रसिया नायक को तो स्वर्ण अवसर मिल गया और उसने नायिका के उपरि बख्शिश की और तक कर ही निशाना लगाया है<sup>३</sup>। जो रमाकसुंदर केश का और केश के साथ-साथ जग का मन मोहती है उनका चित्र भी दर्शनीय है। उनके अंग-प्रत्यंग आभूषणों से सुशीलित है, चाल लीचन में मोहमयी मदिरा की लचिरता है और कंठ में रसि की बाहुल्यता है<sup>४</sup>। सभी व्यक्ति काम के

१- लखि कहुँ कदि मासी गयी गई ताहि मनावन साथ उतासी ।  
 त्यों पद्माकर न्हान नदी ननदी जो हुती नगनावन वाली ।  
 मँजु महाछवि को कम की यह नीकी निकुं परी सब वाली ।  
 मैं इहि बाग की माहिनि हौं इत आये भोले तुम ही बनमासी ॥

प० गृ० पु० १६१

२- बिहसि बुलाव, बिलीकि उत प्रीठ तिवा रस घूमि ।  
 पुस्तकि पसीजत, घूत की घिस-चूम्यों मुँहु घूमि ॥  
 वि० २० दी० ६१७ ।

३- लास है चलायो ललचाय ललना की देखि ।  
 उधरारी उर उरवसी और तक के ॥  
 से० क० २० पु० ७३

४- के० वि० गी० पु० १५ ।

वशीभूत हैं। जो रात में बारबकुलों के साथ झीड़ा बितास करता है वही प्रातःकाल स्नानकर, फलक पर टीका लगा कर, उज्ज्वल वस्त्र धारण कर लोगों को जप-तप, योग, मन्त्र एवं कृतियों के उपदेश एवं विधिविधानों की रीति सिखाता फिरता है। उसका दिन पर-उपदेश में एवं रात्रि भोगसिप्पा में व्यतीत होती है।

### धन का महत्व -

१३- काम के महत्व के साथ-साथ सक्त सुख-व्यवस्था करने वाले धन का महत्व बढ़ जाना स्वाभाविक है। रीतिकासीन कवि जिस समाज का चित्र खींचता है उसमें धन की महत्ता अपरिमित है। कोई किसी का मित्र नहीं है "वित्त" ही एकमात्र मित्र है। धनी ही पंडित और साधु है। पास में पैसा होने पर याचक मित्रों की भाँति बर बातें हैं, पुत्र-कन्या इत्यादि चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं, समाज में जादर होता है, राजा-पूजा सभी एक स्वर से उसका गुणांगन करते हैं<sup>१</sup>। "टका" सभी कार्य-व्यापारों का हेतु और साधन है। मृदा उसी की प्रेरणा पर बबता है,

१- के० वि० गी० पृ० २२ ।

२- (क) केशव- वी० दे० च० पृ० १४-१५ ।

(ख) सेवा देई विविध प्रकार सेती काँवे बहु व्यापार ।

बानि, मुकति लीवै गाँठ । धन पावै मठपती सुभाठ ।

पारस<sup>†</sup> प्रसिद्ध गिरि<sup>†</sup> क्लृप्तस् काम<sup>†</sup> हेतु<sup>†</sup> धन काव सब ।

साधन अनेक धन हेतु तू दान भयो कि भयो न अब ॥

† † †  
विहि धन पतित पुनीत होत साधन बिनु पावन ।

बाबिन पुस्तक पुनीत होत ज्यौ पतित अपावन ॥

के० वी० च० पृ० १६, १७ एवं २० ।

उसी की प्रेरणा पर सिर पर छत्र-धारण होता है, वह मा-बाप है, जीर भाइयों का भाई है। वही सास-ससुर है, जीर ताड़ करने वाला है। धन के महत्व का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि सर्वसौख्य विधायक होने के कारण वही साध्य बन जाता है। उचित अनुचित साधनों से उसे प्राप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं और भ्रष्टाचरण फैलता है। उचित-अनुचित साधनों के प्रयोग से धनीपार्वन के प्रयत्नों के फलस्वरूप एक विशेष वर्ग के लोगों के पास संपत्ति अधिक हो जाती है। एक बार संपत्ति अधिक हो जाने के साथ ही संपत्ति के वर्जन के साधन उनके पास अधिकाधिक होते जाते हैं। सामाजिक संपत्ति का एक बहुत बड़ा भाग उनके पास चला जाता है फलतः अन्य बहुसंख्यक लोगों के पास अल्पत्व शेष रहता है। राजा नीतिविहीन हो गये हैं। मित्र को मित्र पर विश्वास नहीं रह गया। स्नेह-सखिता स्त्रियों के स्नेह-स्रोत सूख गये हैं, उन्हें बारम्बारत रहना अच्छा लगता है, शिष्य बूढ़ा विहीन हो गये हैं, पंखों में न्यायभावना नहीं रह गयी, कुल भिन्न कर रीति युग का कवि

१- टका करे कुलकुल टका मिरदंग बजावे ।  
 टका बड़े सुखपास टका सिर छत्र धरावे ।  
 टका मांम बल बाप टका-धैर्यन को भेजा ।  
 टका सासु बल ससुर टका सिर ताड़ बड़ेबा ॥  
 बैताल- क० की० पृ० १९९ ।

२- बात है हराम दाम करत हराम काम,  
 कहे करनेश आवे कूनि से बाबि तब ।  
 रीवा नै, निबाब अंत यम काहि छावैगे ।  
 करनेश-सा० २० पृ० १८ ।

३- राजन की नीति गई भीत की पुतीति गई ।  
 नारिनि की पुतीति गई बार विष भायो है ।  
 शिष्यन को भाव गयो पंवन को न्याय गयो ।  
 साध की प्रभाव गयो भूठ ही सुहायो है ।  
 धैर्यन की वृष्टि गई भूमि से ती नष्ट भई ।  
 सुनिष्ट वै सकल विपरीत दरसायो है ॥ गोविंद क० की पृ० ५०८



जिस समय के समाज का चित्र दे रहा है वह उस समय समग्र समाज का चित्र ही या नहीं पर किन्ति किसी भी समाज का है नितान्त असन्तुष्ट और चिन्ताजनक है। आज ज्ञ के पुरुष कैसे हो गए हैं बिन पर चित्रों भी झूठे और पूर्ण होने का आरोप लगा सकती हैं। समाज से कलुषा विदा हो गयी है, धर्म उठ गया है पुण्य पाताल प्रमाण कर गया है, प्रत्येक वर्ण में पाप का प्रवेश हो गया है। राधा न्याय नहीं करता, प्रजा महान् कष्ट में है हर घर में दुखी और पीड़ित लोग हैं। शीश और संकोच का कहीं पता नहीं है, इस प्रकार और कलियुग आ गया है<sup>२</sup>। यहाँ तक कि धर्मपुरीण भी अधर्म के ठेकेदार बन बैठे हैं। कामोन्मत्त जन परमार्थ की बातें करते हैं, बाठीयाम वेद पुराण का बखान करने वाले "रज्ज" के पाँव पूजते हैं, हाथ में माता धारण किन्ने हुए साधु भी धर्म के ठग बन बैठे हैं, अकरणीय कार्य करते, बलाघ खाते हैं और असेवनीय का सेवन करते हैं<sup>३</sup>। ब्राह्मण वेदों को बेच कर म्लेच्छ महीष

१- जो जिय में छी जीभ में रमन सावरे ठौर ।  
आज काल के नरन के जीभ कछु जिय और ।

प० गू० - पृ० ९१

२- दया चढ़त है मई, धर्म धंसि गयो धरनि में ।  
पुण्य गयो पाताल पाप भी बरन बरन में ।  
राजा करै न न्याय प्रजा की होति सुवारी ।  
घर घर में भे पीर दुखित में सब नर नारी ।  
अब ठलटि दान गवसति भी सीस संतोष मयो ।  
बैताल कहै विक्रम सुनौ यह कलियुग पुकट भयो ॥  
बैताल सा० २० पै० ३४९-५० ।

३- काम रसमातों परमार्थ की बातें करै बराते बराते नहीं पीरे और रज्ज की  
वेद और पुराण के बखान कर बाठी याम साधक समाज बाढ़ पूरे पाप  
रज्ज की ।  
हाथ लिपे माता ब्रह्माता मुख बोलन धर्म ठीया बल बात है अरज्ज की ।  
करमि- सा० पृ० पृ० १६४ ।

की सेवा में रत है, शत्रु पुरा को बरबाद छोड़ देते हैं, बैर्यों ने बणिक्कृति छोड़ दी है, शूद्र शिखों की पूजा करते हैं, धन बुराते हैं, उनके चित्त में शासक वर्ग का भव नहीं रह गया है ।

### मध्याह्न एवं मांसाहार-

१४- सुन्दरदास परतिवर्गमन, मध्याह्न और मांसाहार को नरक-गमन का कारण-भूत बताते हैं । रीतिभूग का काव्य जिस समाज का चित्रण करता है उसके पुरुष परस्त्री लोचन, स्त्रियाँ वितासिनी और जीवन की कर्मभूमि से बहुत दूर हैं । एक और प्रियतमा के हाथ सम्पादित लेटे-लेटे हुस्का पीने का चित्र है । ती दूसरी और मध्याह्न से नायिका की शोभा निबर उठती है । पूर की रात में प्रियतम और प्रियतमा मदोन्मत्त हो रहे हैं । स्त्रियों द्वारा मध्याह्न करने के उत्तेजक बहुलता से जाये है । चन्द्रवदनी मदनद पर भुकी बैठी है दाहिने हाथ से भूम-भूम कर च्वाला पी रही है । बलसाती-मुसकाती बाँधों पर नखों की लताई गा गयी है । मद में वह ज्यों-ज्यों बहती है त्यों-त्यों विभोर होकर प्रियतम उसे हृदय से लगा लेते हैं । नायक की नायिका की काम चैष्टायं,

१-ब्राह्मण वेत्त वेदन को सुन्देच्छ महीप की सेव करे वू ।

शत्रु छोड़त है परजा अपराध बिना छिन्न वृत्ति हरि वू ।

छोड़ि दयो कृप विक्रम बैरयन शत्रु ज्यों हथियार धरे वू ।

पूजत शूद्र शिखा धनचोरति चित्त में राव को न डरे वू ॥ के० वि० गी०पु० ७०

२- नागर समुच्चय - पु० १९६

३- बकवर भू मं पु० १९०

४- पूर निता में सुवाल नि है बनि बैठे दुहुँ मद के मतवाले ।

त्यों पदमाकर भूमि भुके धन घूमि रवे रस रंग रताते ॥ चं०

चं० गी० पु० १८३

५- चांदनी में बैठी चन्द वदनी मदनद हैके, लागी मदनद भुकि भुकि उभरती है  
पीये धूम लीने नये बकवा की बामपानि, दाहिने से भूमि २ च्वाले से छकी है  
कहे कवि तोच ऐसी बलसाती मुसकाति, रातीराती बलिया सों तरुनी  
तकति है ।

सलकि सलकि त्यों त्यों लाल उर लावे ज्यों ज्यों  
बलकि बलकि बाल बलिवाँ बकति है ॥

तो० पु० नि० पु० १५० ।

मान और ठिठ्ठाई अति प्रिय लगती है और इसमें उसके रसिक हृदय की विशेष तुष्टि होती है। सम्बाशीला नायिका अपनी सीमाओं और मर्यादाओं का ध्यान रखती है और नायक इन चोटियों का मान नद उठाने से बचता रहता है। नायक उसके लिए बालूनी का सहारा लेता है। बालूनी का सेवन कर नायिका विवश हो जाती है और नशे में मान-तमाशे करती है, हँस हँस कर दोहरी हो जाती है, सदा सम्बा में पगी नायिका बहकी-बहकी बातें करने लगती है। उसकी ठिठ्ठाई बढ़ती जाती है और नायक उसके इस मदहोश मयूर रूप का पान करता रहता है। मखमान के ये वर्णन भी तत्कालीन समाज के शासक एवं सामन्त वर्ग के जीवन का ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। जन सामान्य, बख्श मध्यम वर्ग या हिन्दू समाज व्यापक रूप से मखमान करता था इसके कोई साध्य उपलब्ध नहीं होते। मखमान को सदैव ही गहिरी कुँष्ट से देखा गया है और उसकी निन्दा की गयी है।

१५- मांस भक्षण का भी चलन था, यद्यपि हिन्दुओं में यह सार्वभौम रूप से कभी प्रचलित नहीं रहा। बहामौर के समय में भारत जाने वाले अंग्रेज यात्री एडवर्ड टेरी के अनुसार हिंदू मांसाहार के पक्ष में नहीं हैं। बर्नियर ने मांस की दुकानों के होने का उल्लेख किया है। शाही घरानों एवं कुछ विशिष्ट लोगों के यहाँ ही मांस का अधिक उपयोग होता था। रीतिवादी काल में समाज में इसके लोक प्रिय होने के उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं। सुदन तथा मानकवि के द्वारा दी गयी भीजन एवं पञ्चानों की सम्बन्धी सूचियाँ तथा उस्मान एवं कासिम शाह के द्वारा किये

१- मान तमाशी करि रही विवश बालूनी सेह ।

भुंकति, छेकति, हँसि-हँसि भुंकति, भुंकि भुंकि हँसि-हँसि देह ॥

†

†

†

वि० २० दी० ५३९

निपट लबीसी नवस तिय बहकि बालूनी सेह

त्यों त्यों अति भीठी लगति ज्यों ज्यों डीठयो देह ॥१६८॥

वि० २० दी० १६८

गये भोजों एवं दावतों के विस्तृत वर्णन में वहाँ नाना प्रकार के पकवानों और मिठाइयों के नाम हैं वहाँ मांस बक़्ता मद्य का संकेत भी नहीं किया गया। रीतिकान्ठ में जहाँ कहीं भी मांस भक्षण के उत्तेज जाये हैं वही इसकी धीर निन्दा की गयी है। प्रायः इसके सभी उत्तेज वर्णना एवं अवांछनीयता के रूप में जाये हैं। जुना खेतने का प्रचलन भी था किन्तु मांसाहार एवं मद्यपान की ही भाँति जुना खेतना भी अनैतिक कहा गया है और इसकी हर स्थान पर निन्दा की गई है। भूषर के अनुसार इस लोक में जुना खेतने से बड़ा और कोई अनैतिक कार्य नहीं है।

#### निवृत्तिवादी जीवन दर्शन:-

१६- एक और वहाँ ऐतिहासिक विषय है, समाज की मनोदशा में काम का प्रभाव सर्वातिशयी बताया गया है वहाँ दूसरी ओर विषयविरत और नीतराग मन के विषय भी कम नहीं हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि विषय के प्रति आसक्ति और उससे विरक्ति में दोनों ही अतिवादी मनोदशाएँ हैं। मानव प्रकृति में आसक्ति और विरक्ति दोनों सहज हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी सत्य है कि एक का अतिशय होने पर प्रायः उसकी प्रतिक्रिया के रूप में दूसरी की भी अतिशयता देखने में आती है। भृंहारि के शृंगार शतक का नग्न शृंगार विषय मनोयोग से चरम सीमा में पहुँचाया गया, स्त्री के एक-एक अवयव के प्रति शतक और उपभोग के विषय दिये गये, मुख, नाक, कान, वक्षस्वत, जघन आदि में अनुपमेय रमणीयता और आकर्षण का साक्षात्कार हुआ, उसनी ही तीव्रता के साथ वैराग्यशतक में इन्हीं अंगों को कुत्सित और गहँणीय बताया गया।

१- यह निपट निषय अथविषयति, कुमि कुत रास निवास नित ।

आमिष अथवा याकी सदा, वरणाँ दोष दयाल वित ।।

भूषर सा० र०पु० ३७६ ।

२- जुना समान दृष्टीक मै जान अनीति न देखिये ।

इस व्यवसन राय के सेत की कौतुकहु न देखिये ।।

भूषर- सा० र०पु० ३७५ ।

इसलिए रीतिभंग के काव्य में विषय विरत और वाध्यात्मिक जीवन दृष्टि के जो उदाहरण उपलब्ध हैं वे या तो सत्कासीन संत कवियों के स्वभावज उद्गार हैं या विषय वासना में प्रतिबन्ध सिद्ध रहने के कारण आंगारिक कवियों की सन्पाद वृत्ति के दीरे जाते हैं और उनमें ही वे लिखे गये । इसीलिए भृंगार प्रधान काव्य के सृष्टा कवियों के वैराग्य प्रधान उद्गार या तो स्वयं अस्वाभाविक हो गये हैं या रतिभाव प्रधान कविताओं का सा रस स्निग्ध काव्यत्व उनमें से तिरोहित हो गया है । इसलिए सत्कासीन काव्य में व्यक्ति समाज में वाध्यात्म प्रधान मनीवृत्ति के अस्तित्व का अतिशय कथन नहीं किया जा सकता ।

१०- जो दिन को रात और रात को दिन कर सकता है जो सुमेरु को राई और राई को सुमेरु बना सकता है, ऐसे स्वेच्छापूर्वक सब कुछ करने में समर्थ दशरथ तनय के प्रति पद्माकर अपनी श्रद्धावति वर्णित करते हैं<sup>१</sup> । भिवारी दास को भी राम के नाम से ही काम है । वे उस अवस्था में पहुँच गये हैं वहाँ भूष-प्यास, हठा-विषाद जैसे भाव कवन-काव्य और मृत्तिका-माणिका जैसी वस्तुओं और फूल जैसे सौख्य विषादक और रूखी जैसे उत्पीड़क के बीच उनकी दृष्टि में कोई अंतर नहीं रह गया<sup>२</sup> ।

१- बीस को रात करे जो बह बस रातिहु को करि बीस दिखायै ।  
त्यों पद्माकर सीस को सिंधु पिपीतिका के बस फीस फिरायै ।  
यों समरबध तनय दशरथ को सोइ करे जो कछु मन भावै ।  
चाहे सुमेरु को राई करे रवि राई को चाहे सुमेरु बनावै ।

प० गृ० पृ० २३८ ।

२- भूषे अमाने रिसाने रसाने हिनु अहिनु सौ स्वच्छ भो है ।  
दूषन भूषन कवन काव्य बु मृत्तिका मानिक एक गने है ।  
सूल सौ फूल सौ सात प्रवास सौ दास हिए सम सुख सने है ।  
राम को नाम होकर केवल काम तई जग जीवनमुक्त बने है ।

भि० गृ० २।२५

इसलिए रीतिभंग के काव्य में विषय विरत और आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के जो उदाहरण उपलब्ध हैं वे या तो तत्कालीन संत कवियों के स्वभावज उद्गार हैं या विषय वासना में प्रतिबन्ध तिष्ठ रहने के कारण आंगारिक कवियों की सम्पाद बुद्धि के दौरे जाते हैं और उनमें ही वे लिखे गये । इसीलिए भृंगार प्रधान काव्य के सृष्टा कवियों के वैराग्य प्रधान उद्गार या तो स्वयं जस्वाभाविक हो गये हैं या रतिभाव प्रधान कविताओं का सा रस स्निग्ध काव्यत्व उनमें से तिरोहित हो गया है । इसलिए तत्कालीन काव्य में व्यक्ति समाज में अध्यात्म प्रधान मनोबुद्धि के अस्तित्व का अतिशय क्थन नहीं किया जा सकता ।

१७- जो दिन को रात और रात को दिन कर सकता है जो सुमेरु को राई और राई को सुमेरु बना सकता है, ऐसे स्वेच्छापूर्वक सब कुछ करने में समर्थ दत्तत्रय तनय के प्रति पद्माकर अपनी श्रद्धावलि अर्पित करते हैं<sup>१</sup> । भिखारी दास को भी राम के नाम से ही काम है । वे उस अवस्था में पहुँच गये हैं जहाँ भूष-प्यास, हठा-विषाद जैसे भाव कंचन-काच और मुक्तिका-माणिका जैसी वस्तुओं और फूल जैसे सौख्य विषादक और रूखी जैसे उत्पीड़क के बीच उनकी दृष्टि में कोई अंतर नहीं रह गया<sup>२</sup> ।

१- बीस को रात करै जो बहे जल रातिहु को करि बीस दिखावै ।  
त्यों पद्माकर सीत को सिंधु पिपीतिका के बल फीत फिरावै ।  
यों समरबय तनय दत्तत्रय को सोइ करै जो कछु मन भावै ।  
चाहे सुमेरु को राई करै रवि राई को चाहे सुमेरु बनावै ।

प० गृ० पृ० २३८ ।

२- भूषे जवाने रिसाने रसाने हितु जहिनुन सो स्वच्छ भने है ।  
दूषन भूषन कंचन काच बु मुक्तिका मानिक एक गने है ।  
सूख सों फूल सों सात प्रवास सों दास हिए सम सुख सने है ।  
राम को नाम सोक केवल काम तई जग जीवनमुक्त बने है ।

भि० गृ० २।२५



संत पलटू साहब भी "तैन तबकैन भुंजीवा" के आदर्श पर विश्वास रखते हैं, वे संग्रह त्याग के अभिले में नहीं पड़ना चाहते<sup>१</sup>। उनकी दृष्टि में संत का आदर्श यह है कि वह घर से छुटकी मांग कर अपनी कुशा पिटाये। पानी पीने के लिए अपने पास एक तुम्बा रखे, वह भी फूटा हुआ। जीढ़ने की एक चादर ली, हाट-बाद मस्जिद वहाँ कहीं जगह मिले पड़ कर रात काट दे और बहर्निश सत्वन का संग करे। ऊपर की आवरण के लिए जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पर्याप्त है, शर्त यह है कि अंतर स्वच्छ और परिष्कृत रहे<sup>२</sup>।

१८- महाकवि पद्माकर को वेद और परचाताप है कि उन्हींने जीवन व्यर्थ ही बिता दिया और एक बार भी राम का नाम नहीं लिखा भोग में रोग का भय है, संयोग में वियोग का भय है, योग साधने में काविक कष्ट है, इसी प्रकार वेद पुराण के पठन-पाठन से अनेक विचार संभव सड़े होते हैं और कवि इन्हीं मृग-वृष्णाओं में लिप्त रह कर जीवन व्यतीत कर देता वह राम नाम का गायन नहीं कर पाता<sup>३</sup>। जिस

१- गाइ बजाइ संसार को काटना छेना छेना बात मीठी कहे।  
छाड़ये पीबिये मिले ली पहिरना संग्रह त्याग में नहीं पड़ना।

पलटू बा० पृ० २१।

२- घर घर से छुटकी मांग के कुशा को चारा डार दीये  
फूटा एक तुम्बा पास राखी जीढ़ने की एक चादर लीये  
हाट बाट मस्जिद में लीये रहो दिन रात सतसंग का रस पीये  
ऊपर एक बिबड़ा जीढ़ लेना बंदर को साफ रख पीना ॥

पलटू बानी- पृ० ६२

३- भोग में रोग वियोग संयोग में योग में कायक्लेश कमायी।  
त्यों पद्माकर वेदपुराण पढ़ायी, पढ़िके बहुवाद बढ़ायी।  
दीरयो दुरास में रास भयो पै कहु बिरराम को धाम न पायो।  
कामो ममायो सु ऐसे ही जीवन हामैराम को नाम न गायो।

प० गृ० पृ० २०७

नारी शरीर के प्रति अन्य समासमयिक कवियों की भाँति पद्माकर के मन की ललक और भूख रोकें नहीं सकती, वही नारी शरीर जब, कफ, वात, पित्त, मल-मूत्र, हाडमांस और रूधिर का संकलन-मात्र रह गया है। राम तो मन में जा ही नहीं सके। जीवन के अंतिम दिनों में पद्माकर बचन विचार कर कह रहे हैं कि वह सब ईश्वर की माया का प्रसार था<sup>१</sup>। बाबा केशव दास की चन्द्रवदनी रमणियों के मुख से "बाबा" संबोधन अच्छा नहीं लगता था। पर उन्हें पर नारी नर को पापशिखा की भाँति जलाती प्रतीत होती है<sup>२</sup>। मानव शरीर जो केवल आशा के बल पर डोलता रहता है उसका क्या विश्वास किया जाय। वह पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर एवं विनाशशील है। तन तो बाम का चीला है हरिनाम के अतिरिक्त अन्यत्र विश्राम नहीं है<sup>३</sup>। मनुष्य तन पाकर गंगा के पुनीत जल में स्नान करके भावान की कृपा का परावण न कर पाने के कारण पद्माकर अत्यन्त दुःखित है। जीवन काल में उन्होंने अपना मन भावान के चरणों से हटा कर अन्यत्र लगाए रखा और जब काल सर पर जा गया है और वे अशक्त-असहाय हो गये हैं<sup>४</sup>। पलटू साहब देह और गेह की सीमाओं में बंध कर माया और अहंकार में रहने के मिलावट उद्बोधन करते हैं<sup>५</sup>। ज्ञान

१- कफ वात पित्त मल मूत्र हाड नस मांस रूधिर बड़े छाया है।

ये ऐसी निषरूप नारिन की तिन सौ प्रेम पगाया है।

सुभ सुंदर स्वाम सरोरुह लोचन राम न मन में जाया है।

जब बचन विचार की पद्माकर वह ईश्वर की माया है।

पं० गुरु० पृ० २९५

२- पावक पाप सिखा बनचारी, बारति है नर को पर नारी।

के० गुरु० पृ० १५४

३- पं० गुरु० पृ० २४२

४- पं० गुरु० पृ० २४५

५- पलटू बानी १।११

नारी शरीर के प्रति बन्धु सम्प्रदायिक कवियों की भाँति पद्माकर के मन की ललक और भूख रोके नहीं रुकती, वही नारी शरीर बब, कफ, वात, पित्त, मल-मूत्र, हाडमांस और रूधिर का संकलन-मात्र रह गया है। राम तो मन में जा ही नहीं सके। जीवन के अंतिम दिनों में पद्माकर बचन विचार कर कह रहे हैं कि वह सब ईश्वर की माया का प्रसार था<sup>१</sup>। बाबा केशव दास की चन्द्रवदनी रमणियों के मुँह से "बाबा" संबोधन अच्छा नहीं लगता था। पर उन्हें पर नारी नर को पापशिला की भाँति जलाती प्रतीत होती है<sup>२</sup>। मानव शरीर जो केवल माता के बल पर डोलता रहता है उसका क्या विश्वास किया जाय। वह पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर एवं विनाशशील है। तन तो चाम का चीला है हरिनाम के अतिरिक्त अन्यत्र विश्राम नहीं है<sup>३</sup>। मनुष्य तन पाकर गंगा के पुनीत जल में स्नान करके भावान की क्या का परावण न कर पाने के कारण पद्माकर अत्यन्त दुःखित है। जीवन काल में उन्होंने अपना मन भावान के चरणों से हटा कर अन्यत्र लगाए रखा और अब काल सर पर आ गया है और वे अशक्त-असहाय हो गये हैं<sup>४</sup>। पलटू साहब देह और मेह की सीमाओं में बँध कर पाया और अहंकार में रहने के बिलकुल उद्बोधन करते हैं<sup>५</sup>। जान

१- कफ वात पित्त मल मूत्र हाड नख मांस रूधिर बह छाया है।

ये ऐसी निषरूप नारिन की तिन तों प्रेम पगाया है।

सुभ सुंदर स्वाम सरोरुह सोवन राम न मन में जाया है।

अब बचन विचार की पद्माकर वह ईश्वर की माया है।

पं० गू० पृ० २९५

२- पावक पाप सिखा बनचारी, बारति है नर की पर नारी।

के० गू० पृ० १५४

३- पं० गू० पृ० २४२

४- पं० गू० पृ० २४५

५- पलटू बानी २।११

योग, व्रत, नेम और निर्वेद आदि विषयों से कहीं नेष्ट है। प्रभु के वरणा कर्मलों में रति हुए बिना सब निष्फल है<sup>१</sup>। भावान् संकर बोड़े से, केवल धतूर के फूल बढ़ाने से, प्रसन्न हो जाते हैं इसलिए कवि अपने मन की धरणा देता है कि वह आशुतोष संकर के प्रति रति करे<sup>२</sup>। वह सारा संसार काम के तेज से तप रहा है अतः बिना राम की उपासना के यहाँ निराम नहीं है<sup>३</sup>। शैल एक बाणस्यायी स्वप्न की भाँति आया और चला गया, राम की उपासना नहीं की जा सकी। जीवन आया शरीर में शक्ति और मद का संघात हुआ, धन धाम आदि के मग्न में पड़ कर हरिनाम की विस्मृत कर दिया। रात्रि रमणियों के साथ बिताते रहे। चासीस वर्ष की अवस्था आ गयी और भावत् प्राप्ति की दिशा में कोई भी कार्य नहीं हो पाया<sup>४</sup>। इस प्रकार कवियों की दृष्टि में सारा संसार और तीनों लोक स्वप्नवत् है। सुंदरदास के अनुसार इस संसार-रूपी स्वप्न से जागरण के बाद ही इसके निष्कामत्व का ज्ञान होता है<sup>५</sup>।

१- मतिराम- ल० ल० छ० १६० ।

२- संकर-पायनि मैं लगि रे मन बोरेहि बातनि सिद्धि सुहाई ।  
आक-धतूर के फूल बढ़ाये हैं रीझत है तिरु लोक के साईं ॥

म० गू०, पृ० ४०२ ।

३- काम के तेज निराम तपे किन राम जपे बिसराम न पैहै ।

भि० गू०, २/१९ ।

४- मेरी धन मेरी धान रोयो कहि सब धाम,  
सोयो हरिनाम सोयो धाम संग निद्र मैं ।  
मातिस करत जग मातिस कुंज गहि,  
सातिस भयो न जायो चासीस बारिस मैं ॥

दी० गू० पृ० १३५ ।

५- स्वप्न सकल संसार है स्वपना तीनहु लोक ।

सुंदर जाग्यो सपन से सब सब जाने फौक ॥

सु० गू०, पृ० १५४ ।

### धर्म एवं दर्शन की विविधता:

१९- जब पारलौकिक मनोदृष्टि जन्म लेती है तो स्वभावतः वह विविध रूपों में प्रत्यक्षित-पुष्पित होती है। मनुष्य महान् अनुसंधाता और विधायक है। उसका मन बिस किसी ओर भी जाता है उसकी मेधा और विराट् कल्पना शक्ति उसी ओर अनेकानेक उपस्थापनों और विधानों की आजीवना करती रहती है। उसकी कारयित्री प्रतिभा इन कल्पनाओं और व्यवधारणायों की क्रियात्मक रूप प्रदान करती है इस प्रकार प्रवृत्ति, आजीवना और कार्यान्वय की श्रुति रहती है। धर्म - परावर्ण भारत ने इसीलिए अनेकानेक धर्मों और विरवालों को जन्म दिया। यहाँ के सहिष्णुता पूर्ण और उन्मुख वातावरण में विभिन्न धर्मों, दर्शनों और संस्कृतियों की प्रत्यक्षित - पुष्पित होने का अवसर मिला। बालोद्यमकास के काव्य में सम सामयिक विभिन्न धर्मों और दर्शनों के पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं है और किसी भी काव्य में उन्हें खोजना भी संभवतः बहुत उचित नहीं होगा। किन्तु काव्य में जो भी संकेत मिलते हैं उनके आधार पर देश की धार्मिक विविधता और उस विविधता में निहित एकसूत्रता की कल्पना की जा सकती है। "सुबान चरित" में साम, यदुः, चक्र और नवर्ष देशों, मीमांसा, वेदान्त, न्याय आदि दर्शनों, विष्णु, वायु, शिव, अग्नि, नारद आदि पुराणों, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक आदि वाङ्मय के विभिन्न रूपों के उल्लेख आये हैं।

### विभिन्न उपास्य और उपासना - पद्धतियाँ:

२०- भारत में देवताओं की जनसंख्या देखी जाय तो वह इतनी अधिक मिलेगी कि संभवतः उनके लिए एक इतने ही विशाल मन्दिर देश की व्यवस्था करनी होगी। कुछ भिन्न-भिन्न तरीक़ों से देवता तो माने ही जाते हैं।

जातीयकाल में भी कहीं रज्जुबीर है तो कहीं रमेत, कहीं महेत कहीं  
इकदन्त-गजानन<sup>१</sup> । उसी प्रकार धर्म गुलबों की संख्या भी अनन्त है ।  
कोई गौरब को मानता है, कोई कंवर को कोई भृंहारि को, कोई कबीर,  
हरदास आदि के संबंध में विवाद करता है । सुंदर कवि इन सब के प्रति  
नतसिर होते हुए भी दादू को सबसे ऊपर मानते हैं<sup>२</sup> ।

२१- उसी प्रकार धार्मिक कृत्यों और उपसाधनों में भी अपरिमित  
विविधता दृष्टिगत होती है । कोई निविष प्रकार के वाजपेय आदि  
यज्ञों का विधान करता है, कोई तीर्थ यात्रा करता है तो कोई संज्या,  
तर्पण, आदि धार्मिक वाचारी में रत है । एक और, कुछ लोग अगर  
वैष्णव के अनुसार ब्रह्मचर्य का पावन करते हैं, पुनः-कृत्य आदि संहिता  
गार्हपत्य धर्म में प्रवृत्त हैं, कामिनी संहिता धानपुस्त्य हेतु बन जाते हैं तो कुछ  
ऐसे भी हैं जो समस्त लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर परम हंस के पद पर  
प्रतिष्ठित हैं । अन्य लोग स्नान-ध्यान, उपवास, संकम आदि के  
माध्यम हैं ।

१- मान० रा० वि० पृ० १०४ ।

२- कौल गौरब को मुल बापत कौलक का दिगम्बर नादू ।

कौल कंवर कौल मरम्बर कौल कबीर कौल राखत नादू ।

कौल कहै हरदास हमारै कौल ठानत बादविवादू ।

बीर तो सब सबे सिर ऊपर सुंदर के उर है मुल दादू ॥



अपने इष्ट देवों की उपासना में लीन हैं<sup>१</sup> । इसी प्रकार कोई शिव उपासक है तो दूसरी ओर अपने बावों का सुंवन करने वाले हैं भी । मुद्रा-धारण करने वाले भ्रष्ट कापासिकों की भी कमी नहीं है । जीवों की बलि देने वाले शक्ति और अग्नि के उपासक भी हैं । यहाँ तक कि ईश्वर के अस्तित्व को नस्वीकार करने वाले भी मिल जायेंगे<sup>२</sup> ।

२२- जिन देवताओं की भक्ति के उत्प्रेष जाये हैं उनमें कृष्ण और राम सबसे महत्वपूर्ण हैं । कवि भक्तिराम मुंजुनों के हार की तर पर और मोरमुकुट की मस्तक पर धारण करने वाले श्रीकृष्ण को अपने उर निक्षेप

१- सु० गृ०, पृ० ८८-८९ ।

२- केचित् शिव शिव वपाहिं अपारा । गो तिम अस्त सावहिं छारा ॥  
 केचित् धर्म सु बापाहिं बैना । केश सुवहिं करै अति पैना ॥  
 केचित् मुडा पहिलै कानै । कापासिक भ्रष्ट मत जानै ॥  
 केचित् नास्तिक्याद प्रवडा । तेतै करे बहुत पाषण्डा ॥  
 केचित् देवी शक्ति मनावै । जीव हतन कर ताहिं चढावै ॥  
 केचित् बहुविधि होम कराहीं । तित छत जब अग्नि मुख माही ॥

सु० गृ० पृ० ९० ।

में बिहार करने का नियन्त्रण छोड़े है जिसे राधा और मोहन के प्रति प्रेम नहीं है वह मन्त्रों के समान है। भगवान् स्वामी का अभिराम रूप सकल विमल गुणों की धारण है इसलिए मतिराम अपनी बुद्धि को छोड़े परमेश्वर का विस्मरण न करने की कही है<sup>१</sup>। महाकवि के राधा-कृष्ण "क्विरवुग" के चरणों की बंदना करते हैं जो रति और गुमार की साक्षात् मूर्ति है और शुद्ध सच्चिदानन्द है<sup>२</sup>। बिहारी सतसई का आरम्भिक दोहा भी "राधा-नामरी" की बंदना से आरम्भ होता है। राधा का महत्त्व कृष्ण के साथ तो था ही उनकी स्वतंत्र सत्ता भी हो गयी थी। बिहारी उस राधा नामरी से अपनी भाषा दूर करने का निवेदन करते हैं जिसके तन की छाया पड़ने से भगवान् स्वामी "हरित दुति" हो जाते हैं<sup>३</sup>। राम भक्ति की परंपरा भी भाषा रूप से चली जा रही थी और आलोच्य काल में तद्विषयक संदर्भों की कमी नहीं है। निर्गुण परमेश्वर सगुण और साकार होकर राम के रूप में अवतरित होता है। "वक्त्र-राम" के रूप की बिहार का बाध रोके नहीं सकते<sup>४</sup>। सेनापति कही है कि यदि धन की चाह है तो

१- राधा मोहन साथ की बहि न भावत नैह ।

परिवाँ मुठी ह्वार क्य ताकी बाजि नैह ॥

† † †

स्वामीरूप अभिराम मति सकल विमल गुणधाम ।

तुम निशि-दिन मतिराम की मति बिहारी मतिराम ॥

म०गु०, पृ० ४४२ एवं ४९० ।

२- राधा कृष्ण क्विरवुग, पग बंदी बगबंद ।

मुरति रति गुमार की, शुद्ध सच्चिदानन्द ॥ के० भा० वि० पृ० २ ।

३- मेरी भा-बाधा हरी राधा नामरि सीह ।

वा तन की काँई परे स्वामु हरित-दुति सीह ॥ वि०र०दी० १ ।

४- वक्त्रि है मति निर्गुनताई । मानुष रूप परे रघुनाई ॥

वक्त्रम राम बहाँ बगबंदीके । निनन से नरहूयो बस रोके ॥

के०गु०, पृ० २० ।

"सिमाराम" की सेवा करो क्योंकि यदि वे विभीषण की अविवक्षित राख्य दे सकते हैं तो धनाकांक्षी भक्त को वे अपार धन संपत्ति दे सकेंगे । यदि मुक्ति चाहिए तो सक्त कोश्ल को मुक्त करने वाले भावान राम की शरण में जाओ । यदि नीरोग रहने की कामना करते हो तो भी उसी का स्मरण करो जिसने मृत कपि-समूह को पुनर्जीवन प्रदान किया था । सेनापति के विचार से ऐसे रावाराम को छोड़ कर और किसी की नाराधना करने से क्या लाभ ? वे "धन दूत दहन", "भरतसिखमंडन" और रघुराई की "जय-मंडन" की वेदना करते हैं । उन्हें एक मात्र राम के चरण कमलों का ही भरोसा है । सेनापति उस "पूर्ण पुरुष अधिष्ठित गुणधाम" राम की विनती करते हैं जिसने जीव, ज्ञान, प्राण, तन, मन, मति आदि देकर जगत की अपार रचना का दर्शन कराया, वस्तुष्ठा देखने पर जो विरवरूप है और बुद्धि के माध्यम से अवगाहन करने पर जो निराकार और अनादि ज्ञात होता है, जिसका अर्थ और ऊर्ध्व संपूर्ण गगन और समस्त दिशाओं में व्याप्त है जिसके हृदय में तेज है और जो तीनों लोकों का नाधार भूत है<sup>१</sup> । शारदा एवं लक्ष्मी भी जिनकी रसना एवं लसना है और निगम पुराणादि जिसकी माया का गान करते हैं, जिनके लोचन सुधाकर की भांति शोभायमान् हो रहे हैं, विधाता जिसके पुत्र हैं, हर जिसके प्रसीत हैं, चारों दिक्पाल जिसके विशाल भ्रमदण्ड हैं, शेष जिनकी शय्या है और तीनों लोकों में जिनका तेज व्याप्त है<sup>२</sup> । अनन्त महिमावान् सीता-पति के समान और कोई नहीं है<sup>३</sup> । पद्माकर दिनरात, जाठोभाम, "रामराम सीताराम" कहने का आह्वान करते हैं<sup>४</sup> ।

२३- शिवभक्ति के भी उत्सव जाये हैं । सेनापति मोक्ष की सेवा

१- सेनापति- क०र०पु० १, २, १९ एवं ७७ ।

२- से० क० र० पु० १८-१९ ।

३- ऐन दिन जाठी नाम राम राम राम राम ।

सीताराम सीताराम सीताराम कहिए ॥

करने और अन्वय न भटकने का उपदेश देते हैं। शिव की सेवा से घर में सुख रहता है संतति लाभ होता है किसी प्रकार का दुःख नहीं व्यापता उसकी उपासना के लिए विशद् व्यवस्था की भी आवश्यकता नहीं रहती, अनेक उपसाधन भी नहीं बुटाने पड़ते। वे वास्तुतोष हैं और घटूरे के दो फूलों से प्रसन्न होकर ऐसी संपत्ति का दान दे देते हैं जो धैर्य के लिए भी चिन्ता का विषय बन जाय<sup>१</sup>। पद्माकर भी उस त्रिपुरारि की उदारता की ओर संकेत करते हैं जो घटूरे का एक फूल देने पर चारों प्रकार के फल देता है<sup>२</sup>। मतिराम अपनी बुद्धि और मन को हरि के अनुकूल बनाकर घटूरे के फूल देकर शिवोक्त की साहिबी प्राप्त करना चाहते हैं<sup>३</sup>। भिवारी दास शिव पार्वती दोनों की स्तुति करते हैं। जगद्गुरु अर्थात् गणेश, जगन्जननी पार्वती और जगदीश संकर तीनों की भिवारीदास अपना पुणाम निवेदिता करते हैं<sup>४</sup>।

२४- शक्ति एवं सरस्वती की वारवचना पर भी काव्य दृष्टि की गयी है। भूषण नादि शक्ति माँ काशी, मयु-कैटभ का संहार करनेवाली महिषासुर मर्दिनी की वंदना करते हैं<sup>५</sup>। मतिराम भी भवसागर में प्रगति

१- से० क० र० पृ० १११।

२- देखी त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,

यै फलवारि फूल एक दे घटूरे की। प० गृ० पृ० २३७।

३- प० गृ० पृ० ४८७।

४- जगद्गुरु जग की जननी जगदीश भरे सुख देत जसीस की।

दास पुनाम कर कर जोरि मनाधिय की गिरिजा की गिर्रीश की ॥

भिवारीदास १।१०।

५- वे अवति हैं नादि सकति हैं कविकर्दिनि।

वे मयुकैटभ छवि देवि हैं महिषि विमर्दिनि ॥

भुवंगपृ० १।

संपट और लोभी मन को, सदा मण्डप में विराजने वाली जगदीश्वर भगवती के भवन में रहने की कहती<sup>१</sup>। देवी के उपासक उसकी प्रसन्न करने के लिए जीवों की बलि भी देते हैं<sup>२</sup>। मानकवि उन माता सरस्वती के करणों में रहना चाहते हैं जिनकी सेवा सुर-नर-मुनि सभी सेवा करते हैं और दिन-प्रतिदिन बुद्धि एवं सुख प्रदान करने वाली है<sup>३</sup>।

### त्रिंशती-माहात्म्यः

१५- हिन्दू धर्मावलम्बी के लिए अत्यन्त प्राचीन समय से गंगा-यमुना-सरस्वती की त्रिंशती का महत्व रहा है। रीतिकाल में इन नदियों का स्वतंत्र रूप से और त्रिंशती की उपासना स्तुति एवं पूजन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। शिव की बटा में स्नान पाने के कारण गंगा का विशेष महत्व है। केशव की दृष्टि में गंगा केवल नदी ही नहीं है, वह वादि, अरूप का द्रव्य रूप है जो संसार को तारने के लिए तरल होकर वह निकलता है। उसमें इतनी शुद्धता है कि बिना विद्या, तप, भक्ति के ही, केवल मात्र जगद्गुरु से और पातक का नाश हो जाता है। सेनापति के अनुसार सुरलोक की शीतल करती हुई, पृथ्वी को तृप्त कर जो धरणी-तल को भी धन्य करती है, ऐसी गंगा के गुण कौन कह सकता है। सुर-नर-मुनि तो यह ही मते हैं ब्रह्मा की मति भी काम नहीं कर रही है। गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, उसकी समता कोई सरिता नहीं कर सकती, कृष्ण ने इसे ही विभूति कहा है। यदि गंगा इतनी महत्वपूर्ण न होती है तो भीरव अपना राक्षसी ठाटवाट छोड़ कर तपस्वी में अपना शरीर

---

१- म०गु० पृ० ४१० ।

२- म०गु० पृ० ४१० ।

३- केषित् देवी शक्ति मनायै । जीव हन करि ताहि बढायै ।

मु०गु०, पृ० १० ।

४- मान - रा०वि० पृ० १ ।

संपट और लोभी मन को, सदा मण्डप में विराजने वाली जगदंबा भगवती के भवन में रमने को कहते हैं<sup>१</sup>। देवी के उपासक उसकी प्रसन्न करने के लिए जीवों की बलि भी देते हैं<sup>२</sup>। मानकवि उन माता सरस्वती के करणों में रहना चाहते हैं जिनकी सेवा सुर-नर-मुनि सभी सेवा करते हैं और दिन-प्रतिदिन बुद्धि एवं सुख प्रदान करने वाली है<sup>३</sup>।

### त्रिैणी-माहात्म्यः

२५- हिन्दू धर्मावलंबी के लिए अत्यन्त प्राचीन समय से गंगा-जमुना-सरस्वती की त्रिैणी का महत्व रहा है। रीतिकाम्य में इन नदियों का स्वतंत्र रूप से और त्रिैणी की उपासना स्तुति एवं पूजन के उत्सेह प्राप्त होते हैं। शिव की जटा में स्थान पाने के कारण गंगा का विशेष महत्व है। केशव की दृष्टि में गंगा केवल नदी ही नहीं है, वह वादि, अरूप का द्रव्य रूप है जो संसार को तारने के लिए तरल होकर वह निकलता है। उसमें इतनी शुषिता है कि बिना बिद्या, तप, भक्ति के ही, केवल मात्र जगगाहन से भीर पातक का नाश हो जाता है। सेनापति के अनुसार सुरलोक की शीतल करती हुई, पृथ्वी को तृप्त कर जो धरणी-तल को भी धन्य करती है, ऐसी गंगा के गुण कौन कह सकता है। सुर-नर-मुनि तो यह ही मते हैं ब्रह्मा की मति भी काम नहीं कर रही है। गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, उसकी समता कोई सरिता नहीं कर सकती, कृष्ण ने इसे ही विभूति कहा है। यदि गंगा इतनी महत्वपूर्ण न होती तब तो भीरव जपना राबसी ठाटवाट छोड़ कर तपस्वा में जपना शरीर

---

१- मं० गं० पृ० ४३० ।

२- मं० गं० पृ० ४३० ।

३- केचित् देवी शक्ति मनाते हैं। जीव हान कर ताहि बढ़ावे ।

मु० गं०, पृ० १० ।

४- मान - रा० वि० मु० १ ।



स्वी तपाते । गंगा राम के चरण कमलों की संगिनी है वतः गंगा का संपर्क प्राप्त कर लेने का स्वाभाविक परिणाम होता है श्री राम के चरणों में पहुँच जाना<sup>१</sup>। कवि पद्माकर ने तो गंगा की स्तुति के लिए ही अपने प्रसिद्ध काव्य गंगासहस्री की रचना की । उनके अनुसार मनुष्य का तन पाकर जिसने गंगा में स्नान और गंगावत का पान नहीं किया उसका जन्म निरर्थक है । वे अपने पाप लुपी शत्रु को गंगा की कछार तक बलने की चुनौती देते हैं वहाँ वे उसे पछाड़ कर धूसि में मिला देंगे । वहाँ-वहाँ गंगा के चरणों की धूसि उड़ जाती है वहाँ वहाँ पातक समूह नष्ट हो जाते हैं<sup>२</sup>। बनानंद अपनी बाणी से गंगा के वसोगान करने की अनुरोध करते हैं उस गंगा का परमपावन वत सभी प्रकार का दावाग्निवीरों को दूर कर देता है, वह हरि के चरण कमलों में निरत रहने वाली मति और गति प्रदान करता है । पुराणों ने उसकी कीर्ति का विशद बखान किया है<sup>३</sup>। गंगा के साथ-साथ उसकी बनुवा यमुना का वसोगान किया गया है । केशवदास गंगा और यमुना की प्रशस्ति में कहते हैं कि गंगा जी की सीमा साती सीकों, साती द्वीपों और साती रसातलों में सभी के लिए सौख्य प्रदायिनी है । इसी प्रकार यमुना का वसप्रवाह भी व्याप्त हो रह

१- से० क० र० पृ० १११, ११४, ११५ ।

२- एरे काादार मेरे पातक बपार तोहि,

गंगा की कछार में पछार छार करिहै ॥

+ + +

वहाँ वहाँ पैया धूरि तेरी उड़ि जाति गंगा,

वहाँ तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है ॥

प० गृ० पृ० २५५, २५६ ।

३- प० गृ० पृ० ४१९ ।

हैं<sup>१</sup> । जनानंद यमुना का ही यशोगान और सौंदर्य लाभ करना चाहते हैं वे नियमतः नित्य यमुना स्नान की कामना करते हैं और यमुना को छोड़ कर कहीं नहीं जाना चाहते<sup>२</sup> । गंगा-यमुना और सरस्वती की त्रिलोचनी का अपना विशिष्ट महत्व है । पाप समूह को काटने के लिए वह एक अत्यन्त घनी छनी की तरह है, स्वर्गारोहण की सीढ़ी है और सुखों को देने वाली है<sup>३</sup> । बिहारी की दृष्टि में भी त्रिलोचनी के संगम का स्थान महत्व है कि वे परमेश्वर श्रीकृष्ण और भावती राधा के केसिस्पर्श को प्रयाग के समान बताते हैं<sup>४</sup> । इन पवित्र स्थानों के लिए तीर्थ यात्रा का महत्व विशेष रहा है । सेनापति के विचार से जिन लोगों के हृदय में भक्ति नहीं होती उनके शरीर तो तीर्थ यात्रा पर निकल पड़ते हैं किन्तु उनके मन तिवरूपी रथ पर बालूड़ रहते हैं<sup>५</sup> ।

२६- भारत की सांस्कृतिक परम्परा में गुरु का स्थान अतुलनीय गरिमा का रहा है । गुरु और गोविन्द दोनों के एक साथ बड़े होने पर महात्मा कबीर का निर्णय पछले गुरु को पुण्यमान करने का रहा है जो

१- सात लोक सात दीप सातहु रसातलन गंगा की सोभा सबही की  
सुखदाई है ।

यमुना को बल रहयो कै तिकै प्रवाह पर केशवदास बीच बीच गिरा  
की गोराई है ॥

के०ग०पु० ३३२ ।

२- स०गु० पु० १८२ ।

३- ग्वाप्त रत्नावली, पु० १८ ।

४- तबि तीरथ, हरि-रापिका-तन-दुति करि अनुरागु ।

जिहिं कृव-केति-निकुव-मग पग-पग होतु प्रयागु ॥ वि०र०दो०२०७ ।

५- हिये न भाति बाँतें होत सुभ गति, तन,

तीरथ बल मन तीरथ चलत है ॥

से०क०र०पु० १०६ ।

गोविन्द से साक्षात्कार कराने का माध्यम है। अज्ञोन्मत्तकाल में भी गुरु का स्थान अथावत् गौरवान्वित है। सुन्दरदास गुरु की शरण में जाने पर ही ज्ञान उत्पन्न होना संभव कहते हैं क्योंकि भानु के प्रकट हो जाने पर अन्यकार का अस्तित्व रह ही नही सकता है<sup>१</sup>।

२७- वह ठीक है कि भारत अनेक एवं बहुदेवतावादी देश रहा है। वस्तुतः हुआ कुछ ऐसा है कि हमें किस किसी भी सृष्टाण या प्राणहीन वस्तु के संपर्क में जाना पड़ा है हमने उससे एक प्रकार का संबंध बनाने की चेष्टा की है इसीलिए हमारे देवताओं में गौर हमारे ध्वनीयों में राम गौर कृष्ण जैसे, दुर्गा, सरस्वती गौर राधा जैसे व्यक्ति चरित्र ही नहीं हैं अपितु वृक्ष, वन, पर्वत, सरिताएं, सिंधु, गो, सर्प आदि अनेक जीवन्त गौर जीव नहीन वस्तुएं सम्मिलित हैं। किन्तु इस अनेक देवतावाद के कारण ऐसा कभी नहीं हुआ कि परमात्मा की एकता गौर अद्वैतता पर हमारी वास्था कभी कम रही हो। एक परमसत्त्व की सत्ता मानकर विभिन्न रूपों कृतियों गौर योनियों में उसके अवतरण की कल्पना की गयी है<sup>२</sup>। इसलिये एकता के संयम में रह कर भी भारत की आत्मा की सहिष्णुता के उदार गौर व्यापक विस्तार में पंख खोलने का अवसर मिलता है। एक ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हुए हमें अन्य क्षेत्री-देवताओं के वर्चन एवं वाराधन की स्वाधीनता सुलभ रही है। परमसत्त्व पर हमारी वास्था कभी नहीं टिकी, इस धार्मिक सहिष्णुता ने हमें कठोर धार्मिक अनुशासन गौर तन्मय गति-हीनता से बचा लिया है। हिन्दुओं के भीतर अपने अनेक कठपरे रहे हैं किन्तु इसके बावजूद भी सामान्य रूप से संकीर्णता व्याप्त नहीं हुई गौर

१- गुरु के सरने जाइहे तबही उपरै ज्ञान ।

तिमिर कहो कै रहे होइ प्रकट जग भान ॥ सु० ग० १।१९ ।

२- तुम यीन हूँ देख को उपरी बू, तुमही बर कछप बेश धरी बू ।

तुमही जग जग वाराह भयो बू, छिति छीन गई हरिनाथ हुए बू ॥

के० ग० पु० ११६ ।

विजातीय-विदेशी भी उसकी सहानुभूति का पात्र बनता रहा है। हिन्दू धर्म में बाहर से कुछ बाने की रोक कभी नहीं रही, अवनति एवं पतन के समय स्वयं बाहर निकल कर बच सकने की शक्ति अवरय समाप्त हो गयी थी। बाबा हाजी बिस्वात पीर है, सिद्धि देते उन्हें देर नहीं लगती, "हिन्दू-तुर्क" उन्हें समान रूप से जानते हैं तथा उन्हें अपने पुरनों एवं समस्याओं का समाधान पूछते हैं और संतुष्ट होते रहते हैं<sup>१</sup>। सुंदरदास ने तो "हिन्दू और तुर्क" दोनों की राहें छोड़ दी हैं और उन्होंने एक मात्र सत्य मार्ग पा लिया है जिससे ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है<sup>२</sup>। काम्य के बीच से और लोक मानस से भी, शिव और विष्णु के भक्तों का वैमनस्य तुलसी ने बहुत कुछ समाप्त कर दिया था किन्तु कबीर आदि के प्रयत्नों के द्वारा भी हिन्दू-मुस्लिम असहिष्णुता को दूर नहीं किया जा सका। अनेक संस्कृतियों का आत्मसात् कर लेने वाली भारतीय पुष्पापगा में इस्लाम को भी अपने प्रवाह में मिला लेने की चाह नहीं रही, इसके कारण बहुत गहरे होने चाहिए। मुसलमान अपना इस्लाम के संदेश-वाहक वहाँ शासक होकर आये। वे अधिकारशक्तः अनधीत एवं अस्पर्धित होते थे, राज्य दण्ड-शक्ति का अविवेक-सम्मत प्रयोग करना इनके लिए प्रायः सत्य था। ऐसी स्थिति में शाहजहाँ के समय से ही मंदिर बहाने की प्रक्रिया चल पड़ी थी और औरंगजेब ने उसकी परम परिणति हुई। उसने मंदिर बहाकर उसके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण आरम्भ कराया।

१- बाबा हाजी पीर अपारा, सिद्धि देते वेहि लाग न वारा ।

+

+

+

हिन्दू तुर्क सबे कोह बाना, निरदिन बांचहि इछा दाना ॥

उ०वि०पू० १० ।

२- हिन्दू की हदि छाड़ि के सबी तुर्क की राह ।

सुंदर सबी बीन्हवा एके राह बताह ॥ सु०ग०पू० २०४ ।

देवालयों के शिव और घंटे-बड़ियालों की ध्वनि मुसलमानों के अजान देने और बहिरत जाने में बाधक न हो, उन्हें रोक न दे, वह व्यवस्था करने के लिए देवालयों की ध्वस्त किया गया।<sup>१</sup> वक्ते शाहवां राज्यास्तु हु है उन्होंने हिन्दुओं के तीर्थों पर कर लगा दिया है, देवालय डहा दिये हैं, बजिया लगा दिया है और स्वेच्छापूर्वक, स्वतंत्ररूप से हिन्दुओं के विरुद्ध बनेक इस प्रकार के कार्य करते रहते हैं, सभी राजपूत पैदल चलकर सिर झुकाने के लिए पहुँचते हैं<sup>२</sup>।

धर्माभासः

२८- भारत जैसे धर्मपरायण और धर्मप्राण देश के लिए यह आश्चर्यजनक है कि धर्म की उसकी अपनी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है। हमारे शास्त्रों में धर्म की जो परिभाषाएँ एवं व्याख्याएँ उपलब्ध हैं, उनमें स्पष्टता और संहति का अभाव है। धर्म की बहुवचन परिभाषा "यतो भ्युदय निः शेषा सिद्धिः स धर्मः" में भी वर्णित सीमा-निर्धारण और स्पष्टता नहीं है। वस्तुतः भारत की सांस्कृतिक परंपरा में शास्त्रीयधर्म एवं लोकधर्म एक दूसरे के इतने निकट रहे हैं कि उनके बीच-विभाजक रेखा खींचना कठिन है। इतिहास-मुनियों द्वारा सुचिन्तित धार्मिक धारणा को जब लोक जीवन में स्वीकृति मिलती है तो उसकी वैचारिक आधार-भूमि दूर रह जाती है और जनसाधारण उसे एक धार्मिक कृत्य के रूप में अपना लेता है। यीशुख्रीस्ते उन कृत्यों की वैज्ञानिक पुष्टभूमि विसृष्ट हो जाती है और एक धार्मिक औपचारिक विधान-मात्र शेष

१- ऊँची पुजा देवालय रावै, घंटा सब फाटरे बावै ॥

छापे देय सिखक दे ठाढ़े, मासा घरे रहत मन बाढ़े ॥

ऐसा हुल्ल सरै का नाही, क्यों ए करै चित्त की बाढी ॥

जो कहु कान सब धुनि बावै, मुसलमान ती भिस्त न पावै ॥

सीसा बौटि कान की नावै, तो दीवस से बुदा बनावै ॥

तातै हाहि देवालय दीवै, तिनके ठौर मस्जिदें कीवै ॥सा०छ०पु०पु०८९॥

२- सात- छ०पु०, पु० ७८ ।

रह जाता है। यदि अपकर्ष की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही तो धर्म न रह कर केवल धर्माभास शेष रहता है। विनय और सौम्यता के नाम पर सं दंभ और अहंकार जा जाता है और पाखंड, सबाई का स्थान ले लेता है। आलोच्यकाल में यह विठम्बना और भी अधिक है क्योंकि कई अर्थों में यह हमारे "सांस्कृतिक पराध्व की प्रतिक्रिया" का युग कहा गया है। काशी, जिसे परम्परा से पुण्य नगरी होने का गौरव प्राप्त रहा है पाखंडियों और विषमियों की क्रीड़ाभूमि बनती जा रही थी। विज्ञान गीता में महामोह यह दावा करता है कि दण्डी, मुंढी, यती और ब्रह्मचारी का वैश्व<sup>लोक</sup> व्यवस्था बनाते हैं किन्तु इन पाखंडियों और धर्म विरोधियों का वेदविद्या आदि के अध्ययन से कोई प्रयोजन नहीं। महामोह के पाश में आवद्ध वे कसियुगी जन प्रति<sup>दिन</sup> सुरापान कर बारांगनाओं का सेवन करते हैं। चोरी और व्यवहार का मोलवाला है। इस प्रकार काशी में दिनरात महामोह के ही दूत बिहार कर रहे हैं। कवि रसिक गोविंद की भी यह वेदना होती है कि अब भले का बमाना नहीं रहा धर्म का स्थान अधर्म ने ले लिया है। ब्रमा, दवा, सत्य, शील, संतोष आदि सभी सद्गुण तिरौहित हो गये हैं। काम, क्रोध, लोभ मोह, मद आदि का आधिपत्य है। चोर ठा बधिक और असाधु यज्ञ-तन्त्र-सर्वत्र व्याप्त हैं। ऐसे अधर्म के राज्य में साधुजन अपने अस्तित्व की

१- तहाँ लोग मेरे रहे वैश्वचारी । बड़ी छण्ड मुण्डी यती ब्रह्मचारी ।  
पढ़े शास्त्र की वेद विद्याविरोधी महाछण्ड पाछण्ड धर्मों विरोधी ।  
मारति राह उछाहीन सो पुरपाछ माह अन्हात उचरी ।  
बारवितासिनि सो भित पीवत मद्य बनीदिक के प्रति पारै ।  
चोरी करे विभिवार करे पुनि केशव वस्तु विचार विचारै ।  
जो निसिबासर काशी पुरी मंह मेरेह लोग अनेक विहारै ।



नहीं फुट करे । हे गोविन्द । इस कठिन काल कलिकाल के अवसर पर आप ही कृपा करके सहायक हों<sup>१</sup> । कलिकाल आ जाने के कारण लोग दैवपूर्वक स्नान-दान-पूजन आदि करते हैं । द्विज आदि उच्चवर्ण के लोग गृहों की तरह रहते, आचरण करते हैं मित्रों पतियों को छोड़ कर उपपत्तियों के पास जाती है<sup>२</sup> । कई कथा में जाठों बर्ष अनेकानेक पुत्रपत्नों के बाद वातक का जन्म होने पर उसे पुजारी के चरणों में डाल कर यह कहा गया- यह वातक तुम्हारे चरणों में है" यह सुनकर पुजारी ने मीनधारण किया और अटपूर्वक मिथ्या ध्यान लगाया और एक बड़ी व्यतीत होने पर यह कहा कि मुझे "जिनवर" के वक्ता का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है<sup>३</sup> । यह कथा अपने आप में धर्म की ठीस बाजार भूमि के स्थान पर धर्माभासी प्रत्ययों के आगमन की सूचक है ।

१- मुलक रमानो नहिं भो को बमानो नहिं ।

परम को पानो अधरम ने उठायो है ।

कामा दया सत्य शील संतोषादि दूर दुरे ।

काम, क्रोध लोभ मोह मद सरसायो है ।

चौर ठा बधिक बसाधु भये ठौर ठौर ।

साधनि ने ऐसे में अपनयो छियायो है ।

कोजिये सहाय नु कृपाल की गोविंदलात ।

कठिन काल कलि काल बाही जायो है ।

रसिक गोविंद-कलियुग राखी ।

२- दैव सौ, नर करत पूजन न्हानदान विधान ।

विष्णु छलित सकि भूषण पूजनीय प्रभान ॥

गृह ज्यों सब रहत है द्विज धर्म काल काल ।

नारी बारनि तीन भर्तनि छोड़ि के इहि काल ॥

के० वि० गी० पृ० ७० ।

१- ब० अ० क० पृ० ११ ।

पाखंडी साधुओं की संख्या इतनी हो गयी रही होगी कि बिहारों की कच्चे मन के बूया नाचने और बप माता और तितक से कोई काम सिद्ध न होने तथा राम के सत्यप्रिय होने की घोषणा करनी पड़ी<sup>१</sup> । भावत् रसिक भी कहते हैं कि साधु का झूठा बेबा बनाने वाले से हरि के मन में बेदना होती है । ये पाखंडी ऐसे हैं जो स्वप्न में भी परमार्थ का चिंतन नहीं करते । ऐसे के ही लिए कहीं बच्चा बन जाते हैं, कहीं भागवत् कथा का उल्टा-सीधा अर्थ करते हुए ऐसे के पीछे दीड़ लगाते हैं<sup>२</sup> । नावकावार्थ साधु का कल्याण के मुख से वर्णन कराते हुए केशदास ने उसका जो चित्र खींचा है वह भी पाखण्ड और विद्रुपता का अनोखा उदाहरण है । उसके अंग मल-पंक से अंकित हैं, केश सिर से उखाड़ लिये गये हैं, हाथ नग्न हैं, वह भयावने नरक के बीच की भांति चला कूट जाता बावक दूर से ही पहचान में आ जाता है<sup>३</sup> । स्थिति इतनी विकरास हो गयी प्रतीत होती है कि बाध ने दगाबाध की निशानी ही खड़ा बन्दन और मयूर बानी को बताया है<sup>४</sup> । योगी संसार को छूते फिरते हैं इस लिए योगियों पर किसी को विश्वास न करना चाहिए और न उन्हें अपने पास बैठाना चाहिए । दान देना भारतीय गृह्य का पुरातन कर्त्तव्य है अतः भिक्षा हेतु जाने पर उसे भिक्षा तो दे देनी चाहिए पर अविश्वसनीय होने के कारण उसे द्वार पर नहीं बैठने देना चाहिए । केशव के कायातिक का चित्र तो और भी अर्थकर है, उसके गले में नरमुंड की माता है, उसने मदिरा मिश्रित नर शोणित का

१- बपमाता, छावै, तितक सी न एकी कामु ।

मन-कवि नावे बूया सवि रावि रामु ॥

वि० र० दो० १४१

२- बेसधारी हरि के उर साते ।

परमारथ सचने नहिं जानत पैसन ही को साते ।

कबहुक बच्चा है बैठे कथा भागवत बावे ।

अर्थ अनर्थ कबहु नहिं भावे पैसन ही को धावे ।-भाक्तरसिक-पु० मा० सा० पु० २३१

३- के० वि० गी० पु० ७५

४- खड़ा बन्दन मयुरी बानी । दगाबाध की यह निशानी ।

बाध भ० पु० १०४ ।

पान किया है, वह वेद मिश्रित मांस का अग्नि में हवन करता है<sup>१</sup> ।  
 कवि सेनापति ने भी "कैलि के गौसाई" की मंगतों के समान बताया है ।  
 वे वैष्णव वेश रख कर भक्तों की कमाई खाते हैं, उन्हें सत्य छू तक नहीं  
 गया है, वे गीत सुनाकर तितक भलकाकर, द्वारिकापुरी जाते ही भुजाओं  
 को छपवा लेते हैं, वे अपने स्वामी विष्णु की सेवा नहीं करते, इनकी वेश-  
 भूषा देखकर गर्दन झुक जाती है, अपने बाँकर द्वारा लोगों को मोहित  
 कर उनका सब कुछ ले लेते हैं और मन में धन का ही ध्यान करते हैं<sup>२</sup> ।

#### विश्वासः

३०- हमारे विश्वासों में पुनर्जन्म कर्मफलवाद और भाग्यवाद का स्थान प्रमुख है । वस्तुतः वे मान्यताएँ एक दूसरे से अविविच्छिन्न रूप में संबद्ध हैं और बहुत कुछ एक दूसरे की सहज परिणामस्वरूप हैं । हिन्दू विश्वासों के अनुसार जीव ईश्वर का वंश है और अविनाशी है । जीव अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों में अवतरित होता रहता है । इन योनियों की संख्या चौदासी लाख मानी गयी है । आसीम्बकास में भी इन मूलभूत विश्वासों की अभिव्यक्ति मिली है । जीव सूकर, खान, काग, कीट, पतंग, भूत, पिशाच, निशाचर एवं राक्षस आदि अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ अपने कर्मफलानुसार जन्तु में प्राणधारियों में केष्ठ मानव जीवन की प्राप्ति करता है<sup>३</sup> । पुनर्जन्म के साथ परलोक के अस्तित्व का विश्वास भी जुड़ा हुआ है । कवि, सूदन को इस बात का विश्वास है कि उनका और

---

१- वेदमिश्रित मांस होम अग्नि में बहु भांति सी ।

सुद दुह्म क्वास शोणित को पियो दिन राति सी ।

विषु बात बात से बलि देत हो न दियो लखी ।

देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्वनि सी रन्वो भव भाव सी ॥

के. वि. गी. पु. ७७ ।

२- से. क. २० पु. १५ ।

३- सुं. गं. पु. ११२९ ।

उनकी प्रियतमा का स्नेह संबंध अनोखा और अविनाशी है, इसलिए उन्हें परलोक में भी अपनी प्यारी से मिलन की आशा है। सबसे बड़ी ने ती कर्मफलानुसार पुनर्जन्म की एक तात्त्विका ही प्रस्तुत करदी है। उनके अनुसार जिस व्यक्ति के मन में घर द्वार की लगन लगी होगी वह दूसरे जन्म में "भूत" होता है। जिसके मन में वासना का अस्तित्व होता है उसे नाग योनि प्राप्त होती है। कामिनी की कामना रखने वाले व्यक्ति को कीड़ी कुत्ते का शरीर मिलता है और जिस स्त्री को पुरुष का चाह रहती है उसे कुत्तिया का जीवन-जन्म ग्रहण करना पड़ता है। जिसकी वासना रावदार के प्रति होती है उसे गूँघूँची और नीच घर का वास प्राप्त होता है। पिपासु को मत्स्य योनि प्राप्त होती है इस प्रकार सभी वासनाओं का त्याग करने पर ही उत्तम जीव-योनि प्राप्त हो सकती है। सबसे बड़ी ने बीरासी लाख योनियों के विभाजन भी बताए हैं, इनमें नी लाख बल के जीव है, दस लाख पक्षी है, ग्यारह लाख कृमि कीट है, बीस लाख स्थावर जीवों का विस्तार है, पशु योनियों की संख्या तीस लाख और मनुष्य योनि

१- मिलन हमारी फिर हूँ है परलोक प्यारी

मन है न न्यारी प्रेम-पथ पग दीनी है ॥

सू०सू०च०पु० १४० ।

२- बाकी रही वास मंदिर में होकर फूल बसे लो घर में ।

रह्य वासना ह्रस्व मंभारा वनमें नाग होइ फुफकारा ॥

रहे वासना तिरिया माँही कीड़ी स्वान की तनु बाही ॥

रहे वासना तिय को घर की कुत्तिया होय दूसरे घर की ॥

सूवर जन्म नीच घर बासा बाकर मन रहे राव कुारा ।

रहे वासना नीर पिपासी मीनदेह कर बल की बासी ॥

करण दास गुरु मोहिं बतार्ई, तबी वासना सखीबाई ॥

सखी०च०पु० पु० ४४ ।

की संख्या चार लाख है<sup>१</sup> । कर्मानुसार जीव को इन विभिन्न योनियों में तो जाना ही पड़ता है, दुष्कर्मों के लिए अनेक प्रकार के दण्ड विधान और सत्कार्यों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था भी है । दुष्कर्मों के फलस्वरूप अनेक व्यक्तियों के मुख में साप लगा दिये जाते हैं, बहुत से पापियों को अग्नि में तपाया जाता है, किसी के पांव ऊपर और सिर नीचे करके टांग दिया जाता है, किसी को तेल के कड़ाहे में जोंक दिया जाता है, बहुतों को कुंड में डाल दिया जाता है और कौए उन पर चीब मारते हैं<sup>२</sup> । कर्म-फलवाद और भाग्यवाद की सिद्धान्ततः तो नहीं पर व्यवहार में प्रायः विरोधी समझा जाता रहा है । वस्तुतः ऐसा है नहीं । जब हम यह कहते हैं कि जो भी भाग्य में होगा वही मिलेगा और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा तो उसमें यह भी अन्तर्निहित होता है कि हमारे भाग्य का निर्माण हमारे पूर्व कर्मों के द्वारा हुआ है । चूंकि हमने जो पूर्व कर्म किये हैं उनका फल वर्तमान में मिल रहा है, वर्तमान जीवन में किये कर्मों का फल स्व-भावतः अगले जन्म में मिलेगा । भाग्यवादी पर अकर्मण्य होने का दोष लगाया जाता है किन्तु भाग्यवादी दर्शन को यदि कर्मफलवाद का नाशिर दिया जाय तो उसका यह अभाव दूर हो जाता है । राजा और ब्राह्मण को मारने का परिणाम भी बुरा होता है, क्योंकि राजा को मारने से स्वार्थ का हनन होता है और द्वि की हत्या से परमार्थ नष्ट हो जाता है<sup>३</sup> ।

१- नव लाख बस के जीव बताए पक्षी बात कही कल सावा ।

गुमारह लाख कुमि कीट बताए बीस लाख बाबर विस्तारा ।

तीस लाख पशु योनि सुनावा चारहु लाख मनुष्यादेही ॥

सहस्री० स०पु० पृ० ६३ ।

२- सहस्री- स०पु० पृ० ६९ ।

३- धैरा, राजा, बाम्हन मारे यह फल होय ।

स्वार्थ, परमार्थ मिटे बुरा कहे सब कीय ॥

के०पु०पृ० १२८ ।

उस्मान की नायिका विजावली अपने प्रियतम का दर्शन पाकर यह सोचती है कि पिछले जन्म में उसने ऐसा कौन - सा तप किया था जिसका सुफल उसे इस रूप में देखने की मिल रहा है<sup>१</sup>।

### भाग्यवादी जीवन-दृष्टि:

३१- रीतिकालीन काव्य में भाग्यवादी दर्शन के भी पुरुर प्रमाण मिलते हैं। केसवदास कहते हैं कि कर्म का सिद्धा कदापि नहीं मिट सकता यह चाहे राजा के संदर्भ में हो अथवा पुत्र के<sup>२</sup>। सेनापति में यह मानते हैं कि कोई क्रिस्ता ही प्रयत्न क्यों न करे भाग्य-विधि को जन्मदा नहीं किया जा सकता। जो भी भाग्य में लिखा है वही प्राप्त होगा<sup>३</sup>। रानी ने चित्र-सारी में विजावली के प्रियतम का चित्र देखकर लोकनिदा के भ्रम से उसे यह ज्ञात नहीं था कि विधि का सिद्धा कोई नहीं मिटा सकता। विजावली का संयोग एवं आकर्षण तो एक पूर्वनिश्चित भाग्य-बीजना के परिणाम के और केवल चित्र मिटाकर उन्हें मिथ्या नहीं किया जा सकता<sup>४</sup>। गिरधर

१- भवो भाग्य मग दाहिल बाबू, तेहि विधि दीन जानि यह साबू ।

कै वहि जन्म पुन्ध कछु कीना, तेहि परसाद दरस इन्ह दीना ॥

उ०वि०पु० ३३ ।

२- तिल्ली कर्म की भेट न जान । कह राजा कह रंक कहाय ॥

के०वी०च०पु० २४ ।

३- केती करी कोई, पैय काम तिल्लीई, तासै,

दूधरी न होई, तर सोई ठहराई ॥

से०क०र०पु० १०० ।

४- भेटि चित्र रानी बली, हिण दुद दुब बीड ।

एतन न जाना विधि सिद्धा, भेटि सकै नहीं बीड ॥

उ०वि०पु० ४२ ।



कवि के अनुसार जीवन, मरण एवं उपभोग-ये अपने हाथ नहीं हैं। देवी, देव्यों जबका अन्य किसी से पराजित होने का भय नहीं रहता, हार तो वस्तुतः होनहार से ही होती है<sup>१</sup>। कवि सूदन के अनुसार वेद-पुराणों का मंथन करने के परचात् गीता ने भी यह बताया गया है कि जनहोनी कभी होती नहीं और होनहार कभी टलता नहीं<sup>२</sup>। इस मनुष्य बोधि का सुफल यही है कि निरुद्ध भाव से भावान श्रीराम का भजन किया जाय क्योंकि भावी बिना प्रयास के भी होगी ही और जनहोनी कोटि उपाय करने पर भी बटित नहीं होगी। ब्रह्मा ने मृतक पर जो भाग्य रेखा अंकित कर दी है वह किसी भी प्रयास से घटायी बढ़ायी नहीं जा सकती<sup>३</sup>।

३२- कर्म-फल पर विश्वास के कारण हिन्दू को सत्कर्म और पुण्य कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। पुण्यरत्नोत्तरिणी, पुनीत स्थानों के प्रति उसके मन में आस्था स जगती है और भावी जीवन को सुखमय बनाने के

---

१- जियबो मरिबो भोगनो यह नहिं अपने हाथ ।

जानत है वह नंद सुत बिहरत बछलन साथ ॥

गिरधर-सां०र०पु० ८७ ।

२- देख से न हारे पुनि दानो से न हारे और ।

काहू से न हारे एक हारे होनहार से ।

भूषर - सां०र०पु० २७४ ।

३- गीताहू में यी कह्यो वेद पुरानन टोहि ।

जनहोनी होनी नहीं होनी होइ सु होहि ॥

सू०सु०क०पु० १४५ ।

४- झूँ रहे होनी प्रयास बिना जनहोनी न झूँ सके कोटि उपाई ।

जो विधि भास में लोक सिखी सुबड़ाई बड़े न घटे न घटाई ॥

प०गु० पु० २४६ ।

लिए वह कृपण की भाँति पुण्य संकल में लगे जाता है। तीर्थों में उसे बहूट विश्वास हो जाता है, मन में बगावत बढ़ा उपवती है। बीर सिंह देव ने प्रयाग के दर्शन कर जीवन का परमफल प्राप्त कर लेते हैं। उसके दर्शन - मात्र से सभी गत-कल्मष धुल जाते हैं और उसके पुनीतपथ में ब्रह्मगान करने से सभी सांप्रतिक पापों का क्षम हो जाता है। बीरसिंह देव ने ब्राह्मण किया और पवित्र होकर गंगा के समीप पहुँचे। कुलमुण्डिका एवं नारिकेल के साथ स्वर्णदान किया जिसे उदार भागीरथी ने स्वीकार किया<sup>१</sup>। उसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की धार्मिक क्रियाओं के प्रतिभास्वा उद्यत होती है। फलतः मन एवं मस्तिष्क पवित्र और शुद्ध होते हैं। कोई स्नान नौदि करके होम करता और जोड़स दान देता है, तो कोई समाधि लगाये है, कोई विभिन्न प्रकार से पूजन वर्जन करता है। एक बछड़े के सहित गाय का दान देता है तो दूसरा अन्य उपादानों का सहारा लेता है<sup>२</sup>। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के वृत्तों और उपवासों एवं कर्म-काण्डों पर भी लोगो की आस्था है। इनका बलन चाहे स्थूल रूप में हो रहा हो किंन्तु वा बहुत व्यापक रूप में। संभवतः सभी सुंदरदास की पाखण्ड के रूप में इनका निषेध करने की आवश्यकता समझ पड़ी<sup>३</sup>।

### ज्योतिषः

३३- ज्योतिष विज्ञान ग्रहों के योग एवं नक्षत्रादि के अध्ययन पर आधारित है। भारतीय जीवन में ज्योतिष का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण

१- जब प्रयाग की दरशन भयो । जीवन बनम सुफल करि लयो ।

देखत पाप हरि प्राचीन । परहत छरित न देह नवीन ॥

करि: ब्राह्मण परम सुचि भये । बीरसिंह गंगा में गये ॥

के०बी०च०पु० ७२, ७४ ।

२- के०बी०च०पु० ४, ५ ।

३- सु० ग्रे० पु० ३०४ ।

रहा है। जात्यावान हिन्दू के जीवन का हर कार्य इसके विधि-विधानों से नियमित होता ही रहा है, मुस्लिम शासकों एवं सामान्य वर्ग में भी ज्योतिष के प्रति विश्वास बढ़ने लगा था और वे भी बुद्ध प्रमाण, शिकार एवं अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर ज्योतिषियों के विधानों का पालन करते थे। गृहों और नक्षत्रों की गतिविधि के संबंध में कवियों की ज्ञान होने के उदाहरण सुलभ हैं। केशव, सेनापति, बिहारी आदि सभी में इसके प्रमाण मिल जायेंगे। शीतकाल में शीत के ज्ञास से अशुभ सुखद्विध पनराशि में चले जाते हैं<sup>१</sup>। बिहारी ने नारी की शरीर शक्ति की कल्पना में अनेक स्थलों पर ज्योतिषज्ञान के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। शनि-रूपी कल्पित से चल भ्रम रूपी मुख में लग्न होने के कारण सुदिन उपस्थित हो गया है<sup>२</sup>। किसी सुंदरी में ज्ञान की शुभ भाषा इतनी अधिक प्रबल है कि उसके पास-पड़ोस में तिथि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पंचांग की अपेक्षा होगी<sup>३</sup>। रमणी के मंगलरूपी बिंदु, शशि-मुख, केशर-रूपी बृहस्पति इन सबने मिलकर बर्षा का ऐसा सुयोग उपस्थित कर दिया है कि उसके फल स्वरूप सारा संसार रसमय हो रहा है<sup>४</sup>। ज्योतिष पर विश्वास होने के कारण हर महत्वपूर्ण कार्य की आयोजना शुभ मुहूर्त में की जाती है चाहे विवाह हो, विरागमन हो या कुल-बापी निर्माण। यात्रा, युद्ध, संधि आदि सभी महत्वपूर्ण कार्य मुहूर्त शोधन और शुभ

१- और की कहा है, सविता हूँ सीत हूँ बानि,  
सीत की सतायी धन राशि मैं परत है।

ले० क० २० पृ० ६९

२- शनि-कल्पित, चल-भ्रम-लग्न, उपज्यों सुदिन सनेहु।

ज्यों न नृपति है भोगवै, तदि सुखे सब देहु।

वि० २० दी० ५

३- वि० २० दी० ७३

४- मंगल बिंदु सुरंग मुख सखि, केशरि-बाह गुल।

इक नारी तदि संग, रसमय किम लोचन जगत ॥

वि० २० दी० ४९

और पान खाने के लिए कहते हैं<sup>१</sup> । ज्योतिष के साथ हस्तसामुद्रिक शास्त्र पर भी विश्वास किया जाता है<sup>२</sup> ।

### शकुन-अपशकुन-

३४- ज्योतिष और हस्त सामुद्रिक शास्त्र से कहीं अधिक शकुनापशकुन पर विश्वास किया जाता था और काव्य में इसके उल्लेख भी अपेक्षाकृत पुराने मात्रा में उपलब्ध हैं । विशेष कार्यों के लिए विशेष दिनों को शुभ माना जाता था । बाब-महदरी वस्त्र धारण के लिए बुधवार वृक्षपतिवार तथा शुक्रवार को अधिक शुभ समझते हैं और अधिक आवश्यकता होने पर रविवार को कपड़ा पहनने की अनुमति देते हैं<sup>३</sup> । मात्रा पर निकलते समय सूर्योदय शुभ समझा जाता था । बीराम के पुर में बैठते ही सूर्योदय होने पर केशवदास कहते हैं कि ऐसा शकुन कभी और किसी के साथ नहीं हुआ<sup>४</sup> । बाबमहदरी यह बताते हैं कि यदि चलते समय नेवला दिखायी पड़े जाम या बायीं ओर नीलकंठ दिखायी पड़े या दाहिनी ओर कौवा हो तो सभी मनोरथ सफल होते हैं<sup>५</sup> । यदि सुहागिन नारी उस से भरा बड़ा लिये मिले, दही, मछली सामने पड़े या गाय बछड़े को दूध पिला रही हो तो ये सगुन सबसे अच्छे होते हैं । इसी प्रकार लोमड़ी के बार-बार दिखायी पड़ने पर या मृग के बायीं ओर से दाहिनी ओर जाने पर शुभ होता है और सभी कार्यों

१- बाबा बैठ बाबा पानी पिया पान खावा फेरि,

होय के सुखित नैक गणित विचारी तो ॥

ठाकुर० री० गृ० पृ० २०२ ।

२- सफल धरी है जाय करहु जानिय यह मन हरष ।

बावन को कुराव इनके कर है है सिखी ॥

कुरवासीदास० हि० दे० पृ० ७७

३- बा० भ० पृ० ६३

४- के० की० २/१४८

५- बा० भ० १४ ।

की सिद्धि होती है<sup>१</sup>। रसज्ञों के सुं बाधों बगों का फड़कना बच्छा माना जाता है। रसज्ञान की नायिका बाधों नेत्र के फड़कने से जानंद मग्न हो जाती है और जानंद की तरंग में सुख के प्रकाश की भाँति मीलित-उन्मीलित होती रहती है<sup>२</sup>। कौवे का बोलना, यदि कर्त्तृ किन्ती के जाने की संभावना हो तो उसके आगमन का सूचक बतएव शुभ माना जाता है। रीति काव्य की नायिकाएं अत्यन्त रसवती होती थीं। वे दिन का अधिकांश समय और जीवन का अधिकांश भाग प्रियतम के सम्मिलन की आशा, प्रियतम के सम्मिलन बच्चा प्रियतम के वियोग में बिताती थीं। इसलिए काकशकुन के संदर्भ रीति काव्य में भरे पड़े हैं। कौवा बैसा उपेक्षित और अवांछनीय पक्षी इस विश्वास के कारण किता मयूर बन गया है यह दर्शनीय है। नायिका गृहवासिनी होती है, भोजन और गृह नियमन की व्यवस्था उसके हाथ होती है। उसे प्रसन्न करने पर इस विर उपेक्षित पक्षी को विविध प्रकार के पकवान, बामूषण और इन सबसे ऊपर नायिका का मयूर स्नेह प्राप्त होता है। भित्तारी-दास की नायिका प्रियतम का दर्शन लाभ होने की स्थिति में कौवे से यह वायदा करती है कि सोने के कटोरे में खीर, चाँद भर कर सुबह ही

- १- नारि सुहागिनि बस पट लावे, दधि मछली जो सम्मुख लावे ।  
सम्मुख धेनु पिपायै बच्छा, रहे सकुन इ सबसे बच्छा ।।  
लौमड़ फिरि-फिरि दरस दिखायै बाएँ से दहिने मृग जावे ।  
भइडर रिसि यह समुन बतावै सिंगरे कार्य सिद्ध है जावे ।

बा० भ० पु० ११, १२

नागरि नवैली रूप नागरि बकेली रीती  
गागरी है ठाढ़ी भई बात ही के पाट मै ।

म० गृ० ११७

- २- बाम नैन फरकत भयो बामा जानंद जाइ ।  
बिन उबरति बिन मुदति है बाक्य धूप सुभाइ ।।  
रसज्ञान -री० गृ० १५१ ।

दीन० गृ० पु० २८९

उसके लिए बटारी पर रह देगी और अपने द्वार से मोती निकाल कर, बाभूषणा बना कर उसके कंठ को सुशोभित करेगी । वह यदि कौवे के शकुन निर्देश के परिणामस्वरूप प्रियतम का दर्शन पा जायेगी तो कौवे पर अपना सर्वस्व-तनमन-धन, निछावर कर देगी<sup>१</sup> । तोष की नायिका भी क्यों पीछे रहे- उसका वायदा और भी मयूर है । वह उसके लिए पैवनी गढ़ायेगी, उसकी चौंख सोने से मढ़ा देगी, बटारी पर कंबल कटोरे में भरकर खीर रह जायेगी और इतना ही क्यों- वह तो वह भी करेगी, वस्तुतः उसका दृष्टिकोण बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है, कहीं कौवे का यह संदिग्ध न हो जाय कि प्रियतम के आगमन के आनन्द-तिरेक में वह अपने वचन को भूल जायेगी इसलिए वह अपने उपकारी कौवे को विश्वास दिलाती है कि प्रियतम का आतिथ्य वाद में करेगी, कौवे के प्रति अपने कर्तव्य और वचन का पालन पहले करेगी<sup>२</sup> ।

३५- बाबू भट्टरी ने यात्रा के समय तिथि-वार बादि का धित उतना आवश्यक नहीं माना है जितना उन तिथि-वारों को यात्रा करते समय बताया गयी विधि के संपादन को । वे रविवार को बीस,

१- कंबल कटोरे खीर हाँठ भरि-भरि तेरे,

है ठठि भोर ही बटान पर बारिहीं ।

जापने ही द्वार से निकारि नीकी मोती, कंठ

भूषन सवारि नीकी तेरे गल डारिहीं ।

एरे करे काग । तेरे सगुन-सुभाय जाब

बो मै इन बाँसियन प्रीतम निहारिहीं

और प्रान प्यारे मै निछावरि करेगी मै,

है तन मन धन प्रान तोहि पर बारिहीं ।

फि० मू० १।२२

२- --- करती करार तीन पहिले करौगी सब,

जापने पिवा को फिरि पीछे बंक भरिहीं ॥

तोष० री० कू० पु० १७२



सोमवार को सोसह, मंगलवार को पंद्रह, बुधवार को चौदह, गुरुपतिवार को तेरह और शुक्र तथा शनिवार को बारह अंगुल लड़कड़ी गाड़ने के लिए बताते हैं। जो कोई इतनी व्यवस्था करके बैठेगा उसका ताँबा भी लौना बन जायेगा। भट्टा एवं शूद्र के सारे प्रभाव समाप्त हो जायेंगे। इसी प्रकार पूर्व दिशा में जाना हो तो गोपूति बैला में, पश्चिम के लिए प्रातः काल और उत्तर व दक्षिण के लिए क्रमशः दोपहर और रात्रि उपयुक्त है<sup>१</sup>। यदि किसी शुभ कार्य का आरंभ करना हो तो रविवार के दिन पान का दान देने, सोमवार को दर्पणाह, भीमवार को धनिया व गुण, बुधवार को मिठाई, गुरुवार को राई, शुक्रवार को दही और शनिवार को वामविरंगी सेवन करने पर कार्य अवश्य ही सिद्ध होता है<sup>२</sup>। साथ ही याचों यदि आत्मवैतिक हो और शुभ मुहूर्त न बन रहा हो तो उसके लिए प्रस्थान करने की व्यवस्था है। रविवार को चमार के घर, सोमवार को नाई के वहाँ, मंगल को काँची के घर, कौस्तुब को घोड़ी, गुरुवार को ब्राह्मण, शुक्रवार को वैद्य वैश्य और शनिवार को वैश्य के वहाँ प्रस्थान रखा जाना चाहिए<sup>३</sup>। याच भट्टरी का संपूर्ण कायम लोक-जीवन से अविच्छिन्न रूप से संबंध है, इसलिए उसमें लोक-जीवन के विश्वासों की बाणी मिली है और उनकी निराधार मान्यताओं को भी मुबारक होने का अवसर मिला है। बुद्धि जीवियों के लिए जो निर्विक है उसे ही वहाँ सार्वज्ञ्य प्राप्त हुई है। छिक्की के गिरने से न्या-न्या परिणाम होते हैं वे भी याच-भट्टरी की दृष्टि से अशक्त नहीं रह सके। छिक्की खिरपर गिरे तो राजसुख मिलता है। कंठ पर गिरने से प्रियतम के सुख की प्राप्ति होती है, स्त्री पर गिरने से विषय, युगत बाह्यों पर एवं दोनों

१- याच-भा. पृ० १९

२- रवि तांबूल सोम को दर्पण भीमवार धनिया गुड़ चर्वन ।

बुद्ध मिठाई बीक राई, शुक्र कड़े मोहि दही सोहाई ।

सनी भाय विरंगी भावै, ईँडेबीत युन पर जावे ॥

याच-भा. पृ० १९

३- याच-भा. पृ० १९

कानों पर गिरने से घन लाभ होता है । हाथ पर गिरने से धर संपत्ति से भर देती है, पीठ पर गिरने से सुख मिलता है, कौह पर गिरने से फलस्वरूप वंशु-वांछनों से मिलन होता है, कटिपर गिरने से बहुदुर्ग वस्त्र की प्राप्ति होती है, गुदा पर गिरने से बंधा मित्र मिलता है और बाँध पर गिरने से मनुष्य नीरोग होता है<sup>१</sup> ।

२६- शकुनों एवं शुभ लक्ष्णों के साथ साथ, अपशकुनों और अशुभ लक्ष्णों की शृंखला भी चलती है । दाहिने और गणा, सम्मुख चील, और बायीं ओर कीड़े का बोलना अशुभ समझा जाता है । दिन की उत्सू का बोलना अमंगल कारक है । खान और स्वारों का रुदन, गीधों का मँढराना अत्यन्त अमंगल सूचक माना जाता है<sup>२</sup> । सूदन ने पीढ़े पर सवार होते समय उसके नेत्रों से आँसू गिरने, तंग टूटने, कंक, बायल, उलूक, गिद्ध आदि के बोलने और मँढराने की अवधि के घटने का सूचक बताया है<sup>३</sup> । बाघ भँडरी के अनुसार बाजारों के समय यदि पाँच भैंसे, छः कुत्ते, एक बैल, एक बकरा या तीन गायें अथवा सात

१- बाघ-भँडरी -पृ० १०

२- वक्षगुन लक्षि सब कहै, यह कातिका की कोप है ।

दाहिने धर चीलह सम्मुख, बाय क बोह्वो काग है ।

अरु गई काटि गलि बिलों, पित राऊँ रोवत राग है ।

दिन कटक माँझ उलूक बोलत, लूक लूटत राग है ।

कहु स्वार बोलत सुरनि सों, कहु स्वार गन फिरकात है ।

मँढरात रि पर गीध गन, यों बड़ो उत्पात है ॥

श्रीधर-जंगनामा- पृ० ३६

३- सू० सु० क० पृ० १० ।

हाथी मिलें तो यात्रा स्वगित कर देनी चाहिए क्योंकि यह शुभ सन्धान नहीं है और किसी अनिष्ट की संभावना है । यदि कुत्ता अपने बगों को तोड़मरोड़ रहा है, उनपर प्रहार कर रहा हो अथवा भूमि पर लोट रहा हो तो इसे अपने दृष्ट की असफलता का सूचक समझना चाहिए<sup>१</sup> । चीब का चाँद देखने से कर्क लगता है । पद्माकर की नायिका ने नायक को बंक से नहीं लगाया, किंतु उसने भादों सुदी चीब का चाँद देख लिया है इसलिए उसे झूठा कर्क सुनना पड़ रहा है<sup>२</sup> । वृष की गलियों में कहीं कर्क न लग जाय, यह जातीका चीब का चाँद देखती ही सुंदरी के हृदय में भर कर जाती है<sup>३</sup> । यदि किसी विशेष दिन कोई तपीहार पड़ जाता है, तो उसके परिणाम अनिष्टकारक होते हैं । फगुआ मंगल को पड़ने पर भूवात, वृष की पड़ने पर अकास, का पूर्वाभास होता है । मंगलवार को दीवाली पड़ने से बच्चा अधिक होती है, किसान पुसन्न होता है और व्यापारी रुदन करता है<sup>४</sup> । सुवान वरित में लड़ते हुए बिलारों का सामने आ जाना अशुभ समझा गया है । भृगास रोवे, चीबी ने बिना पुते वस्त्र लाकर दिये, उसक जाकर प्यवा पर बैठ गये, चलते हुए अश्व अकस्मात् रुक गये, महावत का अंकुश गिर गया । रण के लिए जाते समय ये अमंगलसूचक घटनाएँ घटी<sup>५</sup> । कहीं-कहीं चलते समय एक छीक को भी अपशकुन समझा जाता है । छीक का परिणाम बताते हुए पाव भट्टरी का कथन है कि सामने की छीक

१- सू०-सु०-ब०-वृ० पा० ५० पृ० १२, १५ ।

२- भादों सुदी चीब को लखी में मृगमक बातें ।

झूठहू कर्क मोहि लागियो बह्य है ॥ प० गृ० पृ० ९९

३- लगे न कहूँ अवमतिन में आवत जात कर्क ।

निरखि चीब की चाँद यह सोच सुमुखि ससंक ॥

प० गृ० पृ० १८२

४- मंगल पड़े तो भू चले वृष के पड़े अकास ।

फगुआ होय सनिचरा निपटै परे अकास ॥

मंगल को दो परे पियारी । छी किसान रोवे पैयारी ॥

पा० ५० पृ० ८४

बड़ाई की सूचना देती है, पीठ पीछे की छोक सुब के आगमन की सूचक है दाहिनी ओर की छोक धन का नाश करती है, बायीं ओर की छोक सदैव सुखविधायिनी होती है। इसी प्रकार नौवीं छोक होने पर महान् दुख और ऊँची छोक होनेपर महान् सुख होता है। अपनी छोक विशेष रूप से दुखदायी होती है। राम अपनी ही छोक से बन गये थे, सीता का तत्काल हरण हुआ था<sup>१</sup>। नायक-नायिका छोक के अपशकुन माने जाने का लाभ उठाते हैं और इसका प्रयोग अवसरानुकूल एक दूसरे की यात्रा स्थगित कराने के लिए भी करते हैं। नायक चलने वाला था तभी किसी ने छोक दिया, नायक का जाना थोड़ी देर के लिए रुक गया, नायिका के मुखमंडल पर प्रसन्नता की आभा व्याप्त हो गयी<sup>२</sup>। नायिका नायक के घर आते हैं आती है। उसकी घर, बुलाने के लिए उसकी सास का संदेश आता है। नायक गुलामों के कर समक्ष उसे कैदे रोके? पाहुनी न जा सके इसलिए, वह जब भी चलने की उधत होती है तो वह छोक्ते हुए संमुख आ जाता है और पाहुनी का जाना रुक जाता है<sup>३</sup>।

#### अज्ञात आचार वाले विश्वास-

३७- प्रायः सभी संस्कृतिओं में कुछ ऐसे विश्वास होते हैं जिनके बुद्धिगम्य आधार या तो होते ही नहीं या होते भी हैं तो कालान्तर में वे अपने मूल रूप से बहुत दूर चले जाते हैं और लोक की सामान्य बुद्धि उसे ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है। संस्कृति की उन्नतावस्था में ऐसे विश्वासों की संख्या कमसेकम होती है किन्तु सांस्कृतिक पराभव या गतिरीच के समय में विश्वास ही प्रमुख हो जाते हैं। आलोच्यकात्

१- क. वाच महदरी पृ० ९

२- रघुनाथ टी० वृ० पृ० १८२।

३- पाहुनी जाहे चल्पी जबही तबही हरि सामुहें छोक्त जावे ॥

में ऐसे ज्ञात माधार या निराधार विश्वासों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रही है। रीतिकान्य में इसके प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। सुंदरदास कहते हैं बिसे भूत लग जाता है उसकी स्मरण शक्ति समाप्त हो जाती है। एक अन्य स्थान पर कहते हैं कि विरहिणी को विरह का भूत लग गया है और वह तभी उतरेगा जब प्रियतम जाकर उसके मिलेगी, अन्य सारे उपाय निष्फल होंगे<sup>१</sup>। भूतप्रेतादि का भय स्वभावतः अंधेरे में, रात और रात में अधिक रहता है<sup>२</sup>। भूतप्रेतादि में विश्वास के साथ साथ उन्हें दूर करने के लिए मंत्र-तंत्रादि का भी विधान है। सुंदरदास मंत्र और भूत-पूँक का उल्लेख करते हैं<sup>३</sup>। सुंदरी तितक में जंतर बाधने के बहाने नायक की छाती बाध जाने का उल्लेख बनाया है<sup>४</sup>। बादू टीना करने और ठाँगीरी आदि लगाने के उल्लेख भी यथापि मात्रा में मिलते हैं। रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति इतनी भ्रूणार-परक है कि बादू टीने या दिठौने आदि के भ्रूणारेतर उल्लेख प्रायः अनुपलब्ध है। सुंदरी तितक में एक स्थान पर सुंदरी के बगों पर गीने की चून्नी टीना सा करती है तो दूसरे स्थान पर नायिका प्रिय की सावकश गड़ी जा रही है और सारा कुज उसे टीना लगाता-सा प्रतीत हो रहा है<sup>५</sup>। सुंदरमुख मंडल पर दिठौना इसलिए लगा दिया गया था कि नजर न लगे किन्तु दिठौने ने उसके सौन्दर्य को इतना बढ़ा दिया है कि न लगती हुई दीठ भी लग जाय<sup>६</sup>।

१-सुं० गूं० पृ० ७७४, ६८३

२- भूत परेत को साँभ समी, यह देखो घरीक पौं होत कहा है।

कुं० म० र० र० पृ० १५

३- कौड को दूध जल घूत है, कर पर मेसि भभूत

मंत्र तंत्र बहु विधि करै, भूत-पूँटी देख- सुं० गूं० २।७३४

४- सुं० ति० पृ० ३१७

५- सुं० ति० पृ० २३८

६- लौने मंह दीठि ल न लगे, यौ कहि दीनी ईठि।

दूनी है लागन समी, दिवै दिठौना, दीठि ॥ बि० र० दी० २८

नायिका ने जबसे सलीने "बड़े साहिब" को देह लिया है तबसे उसके नैनो से वे नहीं निकलते मानो उसकी छावि ने कुछ पड़ कर उस पर टोना -कर दिया हो<sup>१</sup>। सुंदरदास ने टोने के विविध रूपों का वर्णन किया है कोई तो ठाँरी डाँसता है तो कोई सिहर कर बालकों को जंग लगा लेता और वह उनके पीछे-पीछे चल देता है तो कोई मूठ बसाते है। डाइनों द्वारा भी नजर लगा दी जाती है<sup>२</sup>। इसके अतिरिक्त सुंदरदास ने मलिनमंत्र आराधने, बशीकरण, उच्चाटन साधने मृतरमशान जगाने, यभन मोहन आदि बसाने, वक्तियों को आकर्षित करने, घातुरसाधन, गुटका सिद्ध कराने, वनरूपति पत्र बसाने,, बल-जगिन को बांधने आदि विभिन्न जादू टोनों का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। नूर मोहम्मद ने भी नरसिंही मंत्र जगाने कामरू टोना पढ़ने का उल्लेख किया है<sup>४</sup>। यनानन्द की गोपी पर साँबरे ने मुरली के द्वारा ठाँरी कर दी है<sup>५</sup>। रसलीन की नायिका भी इससे रक्षित नहीं है चित्तवीर मोहन ने रूप की ठाँरी डाँसी है इसलिए उसके नैन जंजन के बहाने प्ला सगाता है मानो घोर हला हल पीये है<sup>६</sup>। जादू

१- व०गु०पु०, पृ० ३३ ।

२- केचिद् मैलहि मूठ ठाँरी । सब से जाय देखते दीरी ॥

केचिद् सिहर लगावहि जंगा । बालक बसे लाग कर संग ॥

कोई डायन दृष्टि बसावै । तब बालक अतिदुख पावै ॥ सु०गु०पु० १२, १३९ ।

३- सु०गु०पु० १० ।

४- नूर मुहम्मद- अनु०वा०पु० १५ ।

५- यनानन्द गु० पु० ५३० ।

६- रूप ठाँरी डाँस के मोहन गी चित्तवीर ।

जबनु मिस बनु नैन ये पिलत हला हल घोर ॥

रसलीन क०की० पु० १० ।



टोने और छाँरी के साथ साथ उनसे बचने और उन्हें दूर करने के उपाय भी प्रचलित थे । इन उपायों में राई-सोन बारने के उत्प्रेष सबसे अधिक प्राप्त है । ब्रज की गलियों में निपट टोनहाइयाँ डीकती फिरती है । ब्राह्मण ने इसके लिए राई-सोन बारने की मीमांसा बताई है<sup>१</sup> । देव की कंवकली नायिका भी राई सोन उतारती है<sup>२</sup> । मतिराम की नायिका का सौंदर्य दुबले होने के कारण दूना हो गया है इसलिए उसे नवर लगने से बचाने के लिए राई-सोन उतारने की आवश्यकता पड़ी है<sup>३</sup> ।

#### पुथाएँ : (दोह) :

३८- दोह पुथा के आरम्भ के अनेक कारण रहे हैं । हमारे देश का परिवार पितृसत्ताक रहा है । पितृसत्ताक परिवारों में पिता का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । परिवार की बल-बचल सम्पत्ति तथा परिवार अन्दर व बाहर के सभी संबंधों का विनियमन उसकी इच्छानुरूप होता है । वधू, विवाह के परचात् घर के घर जाकर रहती है । पिता के परिवार में जब तक कन्या रहती है उसका शासन-पालन भाइयों के साथ ही होता है । उत्तराधिकार के सामान्य नियमों के अनुसार पुत्र के साथ पुत्री का भी समानाधिकार होना चाहिए किन्तु विवाह के परचात् बेटी स्वसुरगृह चले जाने के कारण घर की बचल सम्पत्ति में, (यह स्मरणीय है कि कृषि प्रधान देश होने के कारण भारतीय परिवारों में भूमि ही प्रधान सम्पत्ति होती है) उसको अधिकार देने में व्यवहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं इसलिए बचल संपत्ति के एवम में बल सम्पत्ति दोह के रूप में दे दी जाती होगी । इससे संबद्ध एक और कारण है । पुरुष प्रधान सामाजिक रचना होने के कारण विवाह के

१- ब्राह्मण केति- पृ० १ ।

२- पुरित पराग सौ उतारा कर राई सोन ।

दे० द० पृ० १४६ ।

३- राई सोन बारिये तिया की भियराई घर ।

म० गृ० पृ० २३६ ।

समझाते में पुत्री के पिता का पक्ष हीन पड़ जाता है। वर-पक्ष जाते की ओर से विवाह की स्वीकृति होना एक कृपापूर्ण कार्य होता है। वधू पक्ष कृतज्ञता से विनम्र हो जाता है, तथा माभार प्रदर्शन और कृतज्ञता ज्ञापन के रूप में उपहार देता है। यही उपहार पहले स्वेच्छिक रह कर कालान्तर में अनिवार्य औपचारिकता का रूप ग्रहण कर लेता है और दहेज की प्रथा चल पड़ती है। समीक्ष्यकाल तक जाते-जाते दहेज प्रथा सार्वभौम और जटिल रूप धारण करती जा रही रही। निर्धन पिता के लिए अपनी पुत्री का विवाह नितान्त जटिल समस्या हो गयी थी। तत्कालीन अधिकांश विदेशी यात्री इसका साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। मनुषी विवाहोपरान्त बुन्नी के पिता के परिवार के आर्थिक द्वालिपन का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है। जो सामान जिस किसी के घर से जाया था अपना-अपना सब लौग उठा ले गये, पुत्री विदा हो गयी। घर में रिक्तता और सुनापन व्याप्त हो गये। पिता के अधिकाधिक भार से लदा गया, विवाह के सारी घुमघाम की परिणति इस दुःखद रूप में हुई।

१९- रीतिकालीन काव्य में भी दहेज प्रथा के प्रचुर संदर्भ उपलब्ध हैं। किन्तु कठिनाई यहाँ भी वही है कि रीतिकालीन कवि दहेज आदि के उत्प्रेष करते समय अपनी दृष्टि राजमहल की ओर ही रखता है। मान कवि के राजविज्ञास में दहेज की सूची में अपरिमेय स्वर्ण, हीरे, मौक्तिक-हार, ज़रबाफ के बरत, हथ-गव और दासी आदि सम्मिलित हैं। हथ-जवाहिर के विवाह में "सुत्तान" ने जो दहेज दिया है उसकी गणना असंभव है। उसमें गजमुक्ताओं से भरी हुई पिटारी सहस्रों हीरे और बहुमूल्य नग अनेक हाथी

---

१- करी सु करहा बहुजनक हीरा मौक्तिकहार ।

पंचवर्ण ज़रबाफ पट बाए सकल अपार ॥

हथ लल किन किन बीस हथ दीन दाही दान ।

साकति स्वर्ण पत्तान सब गिनत सहस्र नय मान ॥

मान०रा०वि०पृ० १८ । और भी - वही पृ० ८०, १०२ ।

जीर बहुत से कहार है। विजावली के विवाह में चित्रसेन सभा में बैठकर दहेज का बिट्ठा तैयार करते हैं उसमें हाथी, घोड़े, हीरे, नग, मोती, माणिक्य, रत्न तो हैं ही साथ में विभिन्न बहुमूल्य वस्त्र आदि भी है । पाटम्बर बरकली पाँवरौ, बड़ाऊ छड़ी आदि है । कस्तुरी जीर बास तो गणनातीत है । विजावली में ही एक जन्म स्थान पर कौलावली के विवाह के प्रकरण में रावा सागर सभा में बैठ कर दहेज देते हैं जिसमें रत्न, माणिक्य आदि जिनकी ज्योति सूर्य जीर चन्द्र की आभा की समानता करती है, घोड़े पतवाले हाथी, बरकस पटंबर तथा बहुमूल्य वस्त्रों से भरी पिटारियाँ हैं। विरह बारीश में बीषा ने दहेज का वर्णन किया है । पतकावार के परचात् बघू के पिता कुल के लोगों जीर जवमानों आदि को बुलाकर दहेज देने जनवासे में गये । दहेज की सामग्री में बहुमूल्य मणि-मुक्ता, स्वर्णवास, गज, बाबू, रथ एवं विशाल शिविका हैं। किन्तु इस सब चमक दमक जीर रावसी प्रदर्शन से जनसामान्य के दहेज की वस्तुओं का अनुमान नहीं हो सकता । ऐतिहासिक साक्ष्य से जीर जन्म स्रोतों से स्पष्ट है कि दहेज प्रथा जातीयकाल में प्रायः

१- बड़े लौ साव दीन्ह सुत्ताना, नागिन बाय न बाय बहाना ।

गज मुक्कन की भरी पिटारी, हीरासास सख्त नग भारी ॥

हस्ती बहुत, बनेक कहारा - - - - -

का० ह० ब० पृ० १९८ ।

२- चित्रसेन पुनि सभा बहठा, तिवे लाग दायब कर चीठा ।

+                      +                      +

सभा बैठि पुनि सागर रावा, देइ लाग सब दायब सावा ।

उ० वि० पृ० २०५, १५६ ।

३- कुल जवमान सबको बुलाय । गए देन दायबो सबको सिवाय ।

गज बाबू रथ शिविका विशाल । मणिगन बनेक मुक्तामाल ।

दीने बहु भाँति के कनकार । बरत भाँति भाँति बँबर जपार ।

बो० वि० वा० पृ० १५५ ।

सार्वभौम रूप से प्रचलित थी किन्तु उपलब्ध उदाहरणों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि जन-सामान्य भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप अधिकाधिक दहेज देने का प्रयत्न करता रहा होगा। दहेज बहुत कुछ इतना आवश्यक हो गया था कि बिना दहेज के योग्य घर प्राप्त होना सामान्यतः संभव नहीं था<sup>१</sup>। कभी - कभी पुत्री के पिता की संपत्ति का कोई पुरुष उत्तराधिकारी न होने पर वह दामाद को ही अपने पास रख लेता था यह प्रथा बहुत कुछ आज भी प्रचलित है। उस स्थिति में सामान्य-जन के विपरीत घर-बधू के घर जाकर रहता था। इसके फलस्वरूप बधू के परिवार में एक तनाव उत्पन्न होता था साथ ही साथ घरबमाई बनने वाले दामाद की प्रतिष्ठा को भी क्षति पहुँचती है। बिहारीलाल पूर के सूर्य की उपमा घर बमाई से देते हैं जिस प्रकार घर बमाई घर में इतना महत्वहीन हो जाता है कि उसका जाना-बाना ज्ञात नहीं होता, अन्ततः कोई उस पर ध्यान नहीं देता उसी प्रकार पूर का दिनमान भी क्षीण शक्ति वाला हो जाता है। उदित और अस्त होते समय सूर्य की शक्तिप्रवाहः समान रहती है उसमें प्रचरता का अभाव होता है<sup>२</sup>।

### बहु-विवाहः

४०- सभी अंशों में किसी व्यापक रूप में बहुविवाह के प्रचलित होने के ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलते। हिन्दू समाज में एक पत्नी व्रत का बहुत महत्व रह है और सामान्य परिस्थिति में किसी हिन्दू का दूसरा विवाह होना वांछनीय और नैतिक नहीं समझा जाता था। बहुविवाह का चलन राजकुल और शासक परिवारों में ही था। शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार

१- दीवत बेटी कीर व्याहि। देत दाहनी दीरघ ताहि।

के०वी०ब०पु० २७।

२- जावत बात न बानिस्तु, तेवहिं तवि सिबरानि।

घरह बमाई ली, चट्नी उरी पूर - दिन मानि ॥

वि०र०दी० १७१।

संतान न होने पर स्त्री और पुरुष दोनों को अन्य किसी माध्यम से संतान प्राप्ति का अधिकार दिया गया है और किसी सामान्य व्यक्ति के एकाधिक विवाह होने का यह वैध कारण माना जाता था। एडवर्ड टेरी हिन्दू के एक पत्नी-व्रती होने के तथ्य पर बहुत दृढ़ और प्रशंसात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। रीतिकाल के काव्य में बहु विवाह, परकीया प्रेम और वारकरी के अपेक्षा-कृत अधिक संदर्भ पाये हैं। उसका बहुत कुछ कारण तत्कालीन कवि की, और कवि किस वर्ग के समाज में रहता था उस वर्ग की, ऐहिकतापरक मनोवृत्ति थी। यह तो सत्य है कि ब्राह्मण्यकाल में राजपरिवारों और सामन्त कुलों में अनेक विवाह करना प्रायः सहज और स्वाभाविक हो गया था, इसलिए कवि पर अपने उस समाज का प्रभाव पड़ना बहुत कुछ अपरिहार्य था। फिर, कवि को काव्य में सरसता और अन्य मनोदत्ताओं की सृष्टि करने के लिए परकीया प्रेम, सपत्नी भाव की उपस्थिति सहायक सिद्ध होती थी। सम्भवतः इन्हीं कारणों से रीतिकालीन काव्य में बहुविवाह या सपत्नी भावपरक संदर्भ अनुपात से अधिक पाये हैं। मतिराम की नायिका अपने मायके गयी हुई थी तभी उसकी ससुराल से उसके पित्रात्म के दूसरे विवाह का संवाद जाता है। यहाँ मायके में नायिका का किसी अन्य व्यक्ति से अनुराग हो गया है। इस नये विवाह की सूचना को सामान्य परिस्थिति में उसे दुःखदायी हुई होती सम्प्रति उसे सुख प्रतीत होती है यद्यपि वह "छवीली" अपने इस सुख को दुःख के व्याज से छिपा लेती है। कवि बनारसी दास के तीन विवाह हुए थे। पहली पत्नी की बहुत बहन का नारियल शुभ मुहूर्त में नाई द्वारा लाया गया और कविवर ने उसे स्वीकार कर लिया। इसके परवात् उनका तीसरा विवाह भी हुआ। उनकी "पचावन बरस" की वय में तीन विवाहित भार्याएँ हुईं दो पुत्रियाँ और सात

---

१- मोहन हैं कछु चीखन मैं "मतिराम" बह्यो अनुराग सुहायो,

बैठी छुती तब मायके मैं ससुरारि की काहु सखी सुनायो।

नाह के व्याह की चाह सुनी, हिय माँहि उछाह छवीली के छापी,

पौढ़ि रही पट जोढ़ि बटा दुख को मिस के सुख बात छियायी ॥

पुत्र हुए ।

४१- बहुव्रतनीत्व का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले उत्प्रेष, अपिकारणः सपत्नियों के पारस्परिक कलह एवं दोनों के बीच दक्षिण नायक द्वारा स्थापित संतुलन के रूप में ही जाये है । हंस-बवाहिर का दक्षिण नायक दोनों पत्नियों पर समान प्रीति रखता है । उसके दक्षिण पर एक मुस्करा देती है दूसरी उसके गले में अपनी बांहें डालें देती है<sup>२</sup>। मतिराम का नायक और भी पटु है वह अपनी एक पत्नी की दर्पण देकर उसे अपना चन्द्रमुख देखने के लिए कहता है । प्यारी जब तक अपना चन्द्रमुख देखे तब तक मैं नायक दूसरी के डरीबों का स्पर्श कर लेता है । इस प्रकार उसकी उपस्थिति से दोनों प्रकुल्लित होती है । इतना ही नहीं जबसर पढ़ने पर उनके नदत्तास प्रसन्न-चित्त होकर एक की बेणी गूंथते है और साथ ही दूसरी के हाथ कपीलों का-रसपान करते चलेते हैं<sup>३</sup>। साथ भदुरी सीत के निर्भीक पुत्रों और साके के काम-दोनों को बुरा कहते हैं<sup>४</sup>। सुहागिन का निहारा सौन्दर्य देखकर प्रियतम के मुख उसके प्रति माकुष्ट होने की संभावनाओं और अपने से विरक्त होने की लेशकारिणी कल्पना से बाधा भर में ही चलने लगती है<sup>५</sup>। प्रियतम सीत

१- प्रथम बहु की भगिनी एक सी तिन भेरी कियो विवेक ।

नाक जानि नारिखर दिया । सो हम भो महरत तिया ॥

+ + +

भयो तीसरी नारि-के प्रथम पुत्र अवतार ।

द्विज कैकु दिन ठठि गयो बसप बाबु संसार ॥

+ + +

कही पचावन बरस ली कसारहि की बात ।

तीन बिबाही भारवा सुता दोइ, सुत सात ॥ ब० ब० क० पु० ४९, ६८ व ७१ ।

२- का० ह० व० पु० २६३ ।

३- म० गु० पु० २८४ ।

४- सीत बुरी है बून की और साके का काम ।

+ + +

तीन बैल दो मेहरी कात बैठ बा ठेहरी ॥ क० क० पु० ७०, ६८ ।

५- द० भा० वि० पु० ११० ।



के संग ही बसते है नित्यप्रति उसी के आंगन में रस रंग रवाते है<sup>१</sup> । विहारी ने भी अनेक स्थलों पर सौत के सम्बर्ध दिये है<sup>२</sup> ।

४२- पुरुषों के बहुविवाह के समानान्तर स्त्रियों के एकाधिक विवाह के उत्प्रेष नहीं प्राप्त होते । उनके लिए एक से अधिक विवाह का प्रायः निषेध रहा है । पराशर ने पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, सम्बासी हो जाने पर, नपुंसक होने, पतित होने, इन पाँच आपत्तियों पर नारी के लिए दूसरे विवाह की अनुमति दी है<sup>३</sup> । नारद ने भी बहुत कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था बतायी है । उनके अनुसार नीकत्व को प्राप्त हुआ, परदेश गया, राजकित्तिणी, प्राण हरण करने वाला और नपुंसक पति त्याज्य है<sup>४</sup> । किन्तु ये व्यवस्थाएँ उस युग में की गयी थी और तभी संभव थी जब स्त्री के अधिकार अपेक्षाकृत अधिक थे । कालान्तर में समाज में स्त्री का स्थान उतना स्पृहणीय नहीं रह गया । बालोच्चकास में पति के जीवन काल में तो स्त्री का पुनर्विवाह अल्पनीय ही था उसके मरणोपरान्त भी स्त्री के लिए पुनर्विवाह निषिद्ध था और सती होने की व्यवस्था की गयी थी । केशवदास के अनुसार पति की तो एकाधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार है किन्तु पत्नी एक से अधिक पति नहीं कर सकती । पत्नी ही पति के लिए सती होती है, पति पत्नी के लिए मृत्यु का आश्रितन नहीं करता । एक नायिका के दृष्ट से

१- स्वायत्ते सौति के संग बसे निसि आंगन वा हिके रंग रवाइके ।

दे० भा० वि० पु० ७६ ।

२- वि० र० दी० १४८, १८० ।

३- नष्टे, मृते, पुङ्गविते, क्लीबे च पतितो पतो ।

पञ्चवापत्सु नारीणां पतिरन्य विधीयते ॥ पराशर ।

४- नीकत्व, पर देश वा पृथ्वी राजकित्तिणी ।

प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोपि वा पतिः ॥

-नारद ।

नायक को दुखी होने की तथा आवश्यकता है ? एक सरिता के सूबने पर सागर तो नहीं सूख जाता है<sup>१</sup>। पतिव्रता नारी प्रियतम का साथ नहीं छोड़ती, वह अपने प्रियतम की मृत्यु के साथ अपना भी प्राणार्ति कर लेती है<sup>२</sup>। शास्त्रों में विधवा स्त्री के लिए यह विधान किया गया था कि वह पवित्र पुष्प फल-मूलादि अल्पाहार के द्वारा अपने शरीर को क्षीण करती रहे परन्तु व्यवहार बुद्धि से परपुरुष का नाम न ले<sup>३</sup>। उसे केशरवन करने, पान खाने, गंध पुष्पादि<sup>४</sup> सेवन करने, माभूषण धारण करने, रंगीन वस्त्र पहनने और कसि के वर्तन में भोजन करने का निषेध किया गया है<sup>५</sup>। जातीयव्यक्त के काम में भी ये निषेध ज्यों के त्यों प्रस्तुत कर दिये गये हैं। नारी को अपने मृत पति का त्याग नहीं करना चाहिए उसके साथ ही उसे अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहिए<sup>६</sup>। संगीत वाद्यवादि का त्याग कर देना चाहिए, क्रीड़ा में भाग न

१- पति पतिनी बहु करे पति न पतिनी बहु कर ही ।

पति-हित पतिनी बरहि पति न पतिनी-हित बरही ।

एक नायिका दुख, कहा बहु नायक दुख ।

सूखे सरिता एक कहा बहु सागर सूखे ॥ के० गु० पु० ५३८ ।

२- सुंदर नारि पतिव्रता तबै न पिय को संग ।

धीव चले सह्यामिनी तुरत की तन भंग ॥ सु० ग० पु० ७०९ ।

३- कामं तु क्षपये देहं पुष्पमूल फलैः सुभैः ।

न तु नामपि गृह्णीत्पतनीं प्रेतं परस्व तु ।

-मनुस्मृति- अ० ५ ।

४- केश रंजन ताम्बूल गन्ध पुष्पादि सेवनम् ।

भूषणं रंग वस्त्रं च काल्य पात्रेषु भोजनम् ।

-हारीतसंहिता ।

५- नारि न तजहि मरे भरतारहि ।

ता संग सहहि धनजन भारहि ॥

के० कौ० १।१४५ ।

सेना चाहिए, तैल सेवन नहीं करना चाहिए, चारपाई त्याग कर भूमि पर सोना चाहिए, गर्म खाना नहीं खाना चाहिए, ठंडा पानी नहीं पीना चाहिए, शीतल जल से स्नान नहीं करना चाहिए, मधुर अन्न नहीं खाना चाहिए, पाँवों में उपान नहीं धारण करना चाहिए, उपवास आदि से बचने की कृष्णकाम बनाना चाहिए, और सभी इन्द्रियों पर विषय पाने की चेष्टा करनी चाहिए<sup>१</sup>। सुंदर दास पिया बिन माग निकासने और पाटी पारने का निषेध करते हैं। प्रियतम के अभाव में आँखों पर पट्टी बांध कर बाह्य आकर्षणों से बचने की चेष्टा करनी चाहिए<sup>२</sup>।

### सती प्रथा:

४३- सती-प्रथा यवन, शक, पल्लव, संपर्क से उत्पन्न हुई मानी जाती है या कुछ लोग इसका जन्म तो भारत में ही मानते हैं पर उस संपर्क से उसे प्रोत्साहन या प्रेरणा हुई ऐसा मानकर चलते हैं। विष्णु धर्म सूत्र में विधवा के लिए ब्रह्मचर्य या वितारोहण का विकल्प रखा गया है। इसके अतिरिक्त वैदव्यास स्मृति, कुमारवल्ग्व, गाथा सप्तसती, कामसूत्र, बृहत्संहिता आदि में भी कुछ हेर-फेर के साथ सती प्रथा के प्रवर्तित होने या सतियों की प्रशंसा के उल्लेख आते हैं। मध्ययुग में सर्वप्रथम वाणा के हर्षचरित में यशोमति के अग्नि प्रवेश का वर्णन है पर वह प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के पूर्व ही अग्नि प्रवेश करती है पर कादम्बरी में वाणा ने स्वयं इस प्रथा की निन्दा की है<sup>३</sup>। वस्तुतः सती

- १- गान बिन हास बिन मान बिन बीबहि। तत्प नहिं बाय जल सीत नहीं पीबहि ॥  
तैल बधि बेल तधि छाट तधि सोबहि। सीत जल न्हाय नहीं उछा जल जोबहि ॥  
बाय मधुरान्न नहिं पान पनही धरै। काय मन बाच सब कर्म करिबो करै ॥  
कृच्छ उपवास सब इन्द्रियन बीतहिं। पुत्र सुख सीन तन बी सौ अतीतही।  
के० की० १।१४५।
- २- पिय बिन सीस न पारु पाटी। पिय बिन आँखिन बांधी पाटी ॥  
सु० गु० पू० ३४९।
- ३- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास।

पृथा के प्रचलित होने के मूल व में धार्मिक पृष्ठभूमि और पतिभक्ति के साथ साथ सामाजिक सुरक्षा का आधार भी रहा होगा । आरम्भ में जो किया वैकल्पिक थी वह कालान्तर में अनिवार्य और सार्वभौम होती चली गयी । बालीयकास में सती पृथा के प्रचलित होने के प्रभू ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं - बर्निवर, तबर्निवर और मनुजी सभी यात्री सती पृथा का असंदिग्ध और स्पष्ट शब्दों में उल्लेख ही नहीं करते हैं अपितु सती होने की विशेष घटनाओं और संदर्भों का पूरा विवरण भी देते हैं । मनुजी ने ऐसी अनेक घटनाओं का बाँधों देखा विष प्रस्तुत किया है । राजाणियों का बीहड़ इन यात्रियों के लिए एक अनोखी घटना थी । ऐसे उदाहरण उन्हें किसी अन्य देश में कभी दृष्टिगत नहीं हुए । कोमलांगी अत्यवय-नारियों का मृत पति की विधा में प्रवेश अत्यव साहस का दूरव प्रस्तुत करता था । ये यात्री इस अद्भुत साहस को देखकर चकित रह जाते थे । प्रशासन की ओर से अनेक प्रयास होने पर भी पतिघरायण स्त्रियों का अपराधेय साहस यथावत् बना रहता था और इन यात्रियों ने इस बात की साक्षी दी है कि यद्यपि अनेक अवसरों पर स्त्रियों के अपनी इच्छा के प्रतिकूल अग्नि प्रवेश के लिए बाध्य किया जाता था किन्तु वह भी सत्य है कि अनेक स्त्रियाँ मना करने पर भी पति के साथ अपने शरीर को भस्म कर देने में गौरव समझती थीं । विदेशी विचारक और अपने देश के समाज सुधारक इस पृथा के विरुद्ध संघर्ष करते जाते हैं और जब वह एक प्रकार से समाप्त-सी हो गयी है किन्तु राजाणियों के सामूहिक बीहड़ के दूरव की कल्पना आज भी साहस और उत्साह का, निष्ठा की सर्वोच्चता और पार्थिव जीवन की अकिंचनता का विस्मयकारी दृश्य प्रस्तुत करती है । काव्य में इसके अधिक उदाहरण नहीं हैं किन्तु जो भी हैं वे अपने भाष में अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित हैं । कवि गोरेतास छम्पकास में राजाणियों के बीहड़ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब उन्होंने उत्साह-पूर्वक अग्नि में प्रवेश किया तो उनके साहस को देखकर इन्द्र बादि देवी-देवता भी विस्मय विभूषण रह गये ।

१- सब ठकुराइन उमगि के कीन्हों अग्नि प्रवेश ।

देवत साहस बकि रहयी देन सहित दियेस ॥

### पदाप्रथा:

४४- भारतीय संस्कृति के विकास के जिस चरण में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार नहीं रह जाते, स्त्री बहुत कुछ परतंत्र और परार्थीन होने लगती है, उसके लिए कुछ ऐसे नियम और विधान बनाये जाने लगते हैं जो उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास में बाधक होते हैं। पदा-प्रथा के प्रारंभ के मूल में यह परिस्थिति रही है। वैसे तो सौंदर्य की अनावृत्त और आवृत्त करने की दो विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ मानव-स्वभाव में पायी जाती हैं, और उन्हीं के फलस्वरूप एक ओर वह अनावृत्त प्रकृत सौंदर्य की ओर झुका है तो दूसरी ओर वस्त्राभरणाभूषित शरीर भी उसके सौंदर्य बोध को उत्पन्न करता है। मनुष्य की इस मनोवृत्ति ने ही प्रारंभ में उसे सुंदर के लिए अपेक्षित आवरण की व्यवस्था करने की प्रेरणा दी जो जो कालान्तरे में विकसित होती चली गयी। विकास की अगली दशा में उसने मात्र आवरण की दृष्टि में परिष्कार कर लिया होगा और ऐसे आवरणों की अपेक्षा उसे प्रतीत होने लगी होगी जो अपरिहार्य न होते हुए भी वांछनीय थे। क्रमशः वह ऐसे आवरणों की भी व्यवस्था करने लगा होगा जो अपरिहार्य ही नहीं अवांछनीय भी थे। पदा प्रथा इसी विकास-दशा में आयी होगी। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्रारम्भ में स्त्री का स्थान यदि बहुत ऊँचा नहीं था तो कम्बे कम स्थिति ऐसी अवश्य थी जिसमें नारी के शोषण और उत्पीड़न के अवसर अपेक्षाकृत कम थे। कदाचित् इसीलिए और सामाजिक सुरक्षा का कोई चिन्ताजनक अभाव न होने के कारण, प्रारम्भ में स्त्रियों के लिए पदों की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई होगी। आसौच्यकाल तक जाते-जाते स्त्रियों की अपेक्षाकृत अयोगामी दशा, सांस्कृतिक पराभ्र उन्मुक्त सौंदर्य-बोध का अभाव, मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ता के परिणाम-स्वरूप मुस्लिम संस्कृति की विजय और तन्त्रित प्रभाव, और सार्वभौम रूप से व्याप्त सामाजिक असुरक्षा ने पदा प्रथा के अधिक दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित होने की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। इस प्रकार रीतिकालीन समाज में स्त्रियों का पदा करना आवश्यक हो गया था। समाज की इस आवश्यकता ने कवियों की सौंदर्य दृष्टि को बहुत कुछ प्रभावित किया है। वे आवरण को आवश्यक ही नहीं



सुंदर भी मानने लगे थे । सुंदरी के घूँघट की जूनन के भीतर उसके भ्रूमके भ्रूम रहे हैं कवि उनकी क्लिप्तमिल छवि पर मुग्ध है, उसके गाँव की गलियों से गुजरते ही घुसबू के खाने बूत जाते हैं<sup>१</sup> । नयनास गाँव से जाये है, ताड़नी उनकी रूपराशि देख कर मोहित हो रही है, घूँघट की जीट उसे रूपसुधा का पान करने में सहायता देती है क्योंकि किसी को सरेजाम देखते जाना भी पर्यादा के विरुद्ध है । नायिका घूँघट नहीं डाल पाती क्योंकि वह पापके में है इसलिए सज्जावश वह ना के पीछे छिप जाती है<sup>२</sup> । बिहारी की नायिका ने नायक की ओर पीठ किये ही किंचित् मुड़कर, घूँघट-पट डाल कर, गुलाब से भरी अपनी मुठी जलाकर, मूँठ मारने का सा प्रभाव उत्पन्न कर दिया<sup>३</sup> । एक अन्य स्थान पर उनकी चन्द्रमुखी नायिका अपने मुख पर घूँघट पट डाल करीब से भाँकती है, उसका मुखमण्डल जगिनशिखा की भाँति देदीप्पमान हो रहा है<sup>४</sup> । रघुनाथ की नायिका का भी घूँघट बुलने से कुछ बिहारी की नायिका जैसा ही प्रभाव पड़ता है । मुख की ज्योति वातावरण में व्याप्त हो जाती है<sup>५</sup> । यदि एक ओर घूँघट रूपी उदमाकल से रूपसुधा की सुन्दरछवि निकल कर बिहारी हुई है<sup>६</sup> । तो दूसरी ओर शेष की नायिका घूँघट की

१- घूँघट की घूमके से भ्रूमके बजाहिर के,

क्लिप्तमिल भ्रूमतर भूमि लीं झुलत जात ।

भ्रूनाकी भ्रूकीरन चहुँबा खोरि खोरिन में,

सुख लसबोई के खाने से बूतत जात ॥ प०गु०पु० १३१ ।

२- प०गु० पु० १३७ ।

३- पीठि दिवै ही मैक मुरि, कर घूँघट-पट टारि ।

भरि, गुलाब की मूँठि लीं गई मूँठि-सी मारि ॥ वि०र०दो० ३५० ।

४- सटपटाति सखिमुखी, मुख घूँघट-पट डालि ।

पावक-भर-सी भ्रूमकि के गई भ्रूमके भाँकि ॥ वि०र०दो० ६४६ ।

५- रघुनाथ- री० शृ० पु० १८० ।

६- श्रीपति- री०शृ० पु० १३५ ।



किनारी को दबाकर भुक्ति ऊंची कर और मन्द मुक्ताकर चपला सी कींच गयी है। सुन्दरी का मुखमण्डल धूषट की गोट में उसी प्रकार फूट होता और तिरौहित हो जाता है जैसे चन्द्रमा नभ मंडल की घटाओं के बीच कभी बाहर आता है और कभी छिप जाता है<sup>१</sup>। धूषट में लाज से लिपटी हुई नायिका प्रियतम के हृदय में स्नेह उत्पन्न करती है। सज्जावत धूषट काढ़ने की प्रश्रिया में नायिका (अपने सौंदर्य के बढ़ जाने के कारण) अकारण ही सज्जा को लजा रही है<sup>२</sup>। जब तो वह पर्दा इस सीमा तक पहुँच गया है कि जसवंत की नायिका भूमि पर पाँव भी नहीं धरती, उसे सूर्य भी कभी नहीं देख पाता, चंद उसे निहार सकने में असमर्थ है, वायु को उसके संपर्क का भी ज्ञान नहीं है तो उसका समाचार कहाँ से और कौन लाकर दे<sup>३</sup>। कुलीन घरों में पर्दा अपेक्षाकृत अधिक है। सुंदरी को मर्यादा की रक्षा के लिए कोठरी में बंद — रखा जाता है जबकि ग्वालिनि बाहर उन्मुक्त वातावरण में विचरणा करती है<sup>४</sup>।

१- बीधराव- ह०रा० पु० २४८ ।

२- धूषट बीच मरीचन की लुचि कोटिक चंदन को मद चूरत ।

लावनि सौं लिपटी बन आनंद साजन के हिय में हित पूरत ॥ प० गृ० पु० १०९ ।

धूषट काढ़ि बी लीं लाव सकेसति लावहिं लावति है विन कावहिं ।

नैनन नैनन में तिहि ऐन सु होत कहा न सबे पट सावनि ॥ प० गृ० पु० ५६ ।

३- भूमि पै पाँव धरे कबहुँ नहिं, सूरज देखि सके नहिं जाकी ।

मानस की चर्चा का बलाइये चंद चित्त न सके पुनि जाकी ।

जौचक भ्रांकि भरीबनि मैं जसवंत विलोक्त ताकी प्रभा की ।

लाऊँ कहाँ केहि भांति ह्लास ह्ला सौं न जानत जाकी ॥

जसवंत सु० ति० पु० २०६ ।

४- रूप अधिकारी तोहि कोठरी बसायो जानि ।

ग्वालिनि सुगेल गई बैसती पकासा है ॥

दलद- क० कु० क० भ० पु० ६० ।

### सौगंधः

४५- रीतिकार्य में सौगन्ध खाने के भी उल्लेख जाये हैं । सौगन्ध खाने का बतलन सार्वभौम है और यह हर देश एवं जाति में किसी न किसी रूप में पाया जाता है । सौगन्ध खाने के पीछे, वस्तु में आत्म विश्वास का अभाव अथवा जीता का विश्वास उपलब्ध होने में संदिह अथवा दोनों एक साथ, कारण होते हैं । सौगन्ध खाने की आवश्यकता तभी पड़ती है जब हमें अपने वास्तव्य के यथावत् पूर्ण विश्वास के स्वीकृत हो जाने के संबंध में संदिह रहता है और हम चाहते हैं कि उसे और इसकी अपराधियता को पूर्णरूपेण स्वीकार किया जाय । प्रायः ईश्वर या अन्य पूजनीय देवी-देवताओं की अपने पूजनीय वरीय संबंधियों अथवा, अपने धर्म और विश्वास या अपने प्रिय पात्र की सौगन्ध खाते हैं । सूदन ने सवान चरित्र में ईश्वर और गंगा के नाम पर शपथ लेने का उल्लेख किया है<sup>१</sup>। लिखों में प्रायः "बवा की सौह" लेने का बतलन है । रसखानि बाबा की सौगंध खाने का उल्लेख करते हैं<sup>२</sup>। बिहारी की बाकी नायिका का "कका की सौह" खाने का उंग भी निरासा है, उसकी चेष्टा नायक के मन से निकाले नहीं निकलती<sup>३</sup>।

### शिष्टाचारः

४६- अनुष्य और अन्य जीवधारियों में मूल अन्तर यह है कि अन्य जीवधारियों ने अपनी जीवन-प्रकृति को जाने या अनजाने प्रकृत स्वरूप

१- सूदन - सु० च० पृ० ७७ एवं २५५ ।

२- बहु और बवा की सौ सौर सुने,  
मन भरेठ जावे रीस को,  
ये कहा करी व रसखानि बिलोकि  
हिमी हुलै, हुलै हुलै ॥

रस०धना० पृ० २३ ।

३- बि० र० दो० ४०६ ।

के अधिक निकट रखा है किन्तु मनुष्य ने अपने जीवन के प्रत्येक पक्ष में परिष्करण और संस्करण के सबग प्रयत्न किये हैं। मनुष्य पशुओं से केवल धर्म के आधार पर ही भिन्न नहीं है, आहार, निद्रा और मैथुन आदि इन्द्रियगत आवश्यकताओं की मूल प्रवृत्ति भी ही दोनों में समान हो, इनके संबंध में भी यह सत्य है मनुष्य ने इनकी संपूर्ति के लिए जो प्रयास किये हैं वे अधिक संस्कृत और परिष्कृत हैं, साथ ही उसने इनके उन्नयन के प्रयत्न भी किये हैं। उसने अपनी ऐसी सामाजिक रचना निर्मित की है जो अन्य जीवधारियों की तथाकथित सामाजिक रचना से कहीं व्यवस्थित और अपेक्षाकृत अधिक बढ़ित है। इस सामाजिक रचना की वाचरणा संबंधी कुछ अपनी आवश्यकताएं हैं। सामाजिक संबंधों में व्यक्ति, अवसर और स्थान के अनुरूप वाचरणा संबंधी आवश्यकताएं ही शिष्टाचार का नाम पाती है। शिष्टाचार का महत्व इतना अधिक है कि उसके अभाव में, अशिष्ट को, मनुष्यत्व की संज्ञा से अभिहित किन्तु पशुतन्त्र समझा जाता है। आलोच्यकाल की सामाजिक रचना में शक्ति और सम्पत्ति के साधन कुछ बड़े लोगों में सीमित और केन्द्रित थे। समाज में जब ऐसी स्थिति आती है, जिसे हम किसी अधिक उपयुक्त शब्द के अभाव में आभिजात्य संस्कृति की अवस्था कह सकते हैं, तो बड़ों, के प्रति छोटों के व्यवहार के निम्न अधिक विशद् और कठोर हो जाते हैं। कहते हैं फ्रांस में एक समय में राजघराने की भाषा का स्वरूप ही विलुप्त जलग हो गया था और जनसाधारण में से कोई व्यक्ति उसका प्रयोग करता तो उसे कठोरतम दण्ड का भागी बनना पड़ता। समीक्षकाल में भारत में मुगल सम्राट् का शासन था। राजनीतिक दृष्टि से, और नायिक दृष्टि से भी सर्वग्राही शक्तिवा सम्राट् और सामन्त-वर्ग व बड़े से विजातीय तत्वों के पास केन्द्रित होने के कारण सामाजिक शिष्टाचार की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक हो गयी थी, यहाँ तक कि कभी-कभी वे असह्य कृत्रिमता की सीमा का संपर्क करती थीं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि शिष्टाचार स्वैच्छिक और सामाजिक दृष्टि से उतना आवश्यक नहीं था। आलोच्यकाल के कवि गुवाल् ने शिष्टाचार के महत्व पर जोर देते हुए कहा है कि बिन व्यक्तियों की उठने-बैठने, बोलने-वाकने का ढंग नहीं मालूम वे मनुष्य के रूप में पशु के समान

हैं। शिष्टाचार का पहला पाठ कुटुम्ब की पाठशाळा में पढ़ा जाता है। पुत्र का माता-पिता के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, भाई-बहन का परस्पर, परिवार के अन्य वरीय सदस्यों के प्रति कनीय सदस्यों का तथा व्यवहार होना चाहिए- ये बातें हमें पारिवारिक पर्यावरण में ही सीखने की मिलती है और ये शिष्टाचार ही समाज के व्यापक शिष्टि में शिष्ट-जागरण के माध्यम बनते हैं। सिंह बवाहर अपने पिता के पास जाकर राम-राम करते हुए शीश नवाता है, पुत्र को देखकर पिता के मन में आनंद उमड़ जाता है<sup>१</sup>। छोटा भाई भी बड़े भाई का वरण स्पर्श करता है। लक्ष्मण ने भरत के वरण-स्पर्श किये और शत्रुघ्न ने लक्ष्मण के। इसी प्रकार भातृजाया के वरण-बंदन की भी परंपरा है। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनों ने सीता के पैर छुए। बड़े छोटी की पुत्रपुतर में आशीर्वाद देते हैं<sup>२</sup>। बड़ों के पाद-पुजासन की भी परंपरा रही है। शत्रुघ्न ने लक्ष्मण के पांव पछारे थे। कनैस पिता की भांति माता की भी वरण-बंदना की जाती है। श्री रघुनन्दन ने सीता लक्ष्मण आदि के सहित माताओं के वरणस्पर्श किये थे<sup>३</sup>। बड़ा भाई

१- बैठने की ठठिने की बोलने की बातने की,

बान न एकी बात बाए जग डानि में ।

देखने में मानुष की अकृत दिवार्द परै,

पर नरपक्षु भी परिंद है ये बाधे में ।

सूकर ते सूकर ते गंधर्व ते उन्वुन ते,

काहि काहि बीच डारे मानुष के सवि में ॥ ग्वात० र० पृ० ४८ ।

२- तब सिंह बवाहर पास जाइ । किम राम राम निव सीस नाइ ।

सुत की निहार बदनस-नंद । आनंद पाइ उर में विलंद ॥ सू० सु० व० पृ० ११० ।

३- भरत वरण लक्ष्मण परे लक्ष्मण के शत्रुघ्न ।

सीता पग लागत दियो आशिष सुभ शत्रुघ्न ॥ के० की० २।२१ ।

४- (क) पीछे दुरि शत्रुघ्न सन लखन बुबाए पाय ।

पग सीमित्रि पदवारियों अंगदादि के आय ॥ के० की० २।२३ ।

(ख) संग सीता लक्ष्मण, श्री रघुनन्दन मातन के सुभ पाइ परे ।

के० की० २।३० ।

छोटे भाई का पूजन करता है और सिर सूंघता है । श्रीराम छोटे भाई का मुख चूम कर, सिर सूंघ कर नेत्रों में अणु भरके उसे हृदय से लगाते हैं<sup>१</sup>। हम्पीर रासों में भी दोनों भाइयों के रनिवास जाने और वहाँ माता की पुणाम करने का उत्सव है । उनके पास छूकर, गणेश और शंकर बादि का पूजन करने पर उन्हें युद्ध के लिए भेजा गया है<sup>२</sup>। मतिराम की नायिका भी प्रियतम की पुणाम करती है किन्तु और लोग न देख ले इसलिए हाथों की ओर कर लेती है<sup>३</sup>।

उपहारः

४७- राजदरबार के अपने अलग शिष्टाचार है । वहाँ सम्राट् की स्थिति सर्वोपरि होती है । राजा सभी प्रकार के ऐश्वर्य का स्रोत समझा जाता है । राजविवास में कस्तूरी, धनसार, १०८ कुंभज, मधु, दधि, संदुल, पक्वान, मेवा, फल बादि से शोषित के पाविष्ये जाने का उत्सव किया गया है<sup>४</sup>। कोई उससे मिलने जाता है तो भेट होने से पूर्व उनकी अनुमति की जरूरत होती है । महाराज हम्पीर के पास "शेख" मिलने जाया है, सेवक उसकी उपस्थिति की सूचना देता है और मिलने की अनुमति मांगता है । शेख उपस्थित होता है और यथोचित शिष्टाचार के साथ कुशल वीम पूछा जाता

१- भूमि मुख सूंघि सिर बँक रखनाथ परि

अनुबल लोचन पैलि ठर साहसी ॥

के.कौ. २।११ ।

२- गयो रत्नास जहाँ दीड और किसी परनाम बुहार सुधीर ।

गनेसुर शंकर पूज सुभाय को बहु ध्यान गहि बब पाय ॥

बोध-हरा.पु. १०७ ।

३- चढ़ी बटारी वाम वह किसी पुनाम बखौट ।

तरनि-किरन है द्गान को कर-सरोज की बौ ॥मति.गं.पु. २८८ ।

४- मान. राज वि. पु. ८६ ।

है<sup>१</sup>। राजदरबार में मुबरा करने की परंपरा भी थी। जंगनामा में एबदीन के मुबरा करने का प्रसंग आया है। वही एक अन्य स्थान पर शाह से मुबरा करने की भी बात कही गयी है। राजदरबार में राजा के पास जाते समय नज़र से जाने की भी परंपरा थी। तत्कालीन वात्रियों ने मुगल सम्राटों को स्वयं भेंट दी थी और उनके उत्तेज किए हैं। राजा के जन्मदिन, रान्यापिरी हण-वार्षिकी आदि अवसरों पर विशेष रूप से उपहार दिये जाते थे। सम्राट् या राजा जबवा छोटे सामन्त और नवाब आदि भेंट लेने के बाद अपनी कृपा के ज्ञापन रूप में भेंट देने और मिलने वाले लोगों को कुछ उपहार देते थे। सूदन ने सुबान चरित में इसका उत्तेज किया है<sup>२</sup>। सुबान चरित्र में एक अन्य स्थान पर सुबान राजा बदनस के दूत को हाथी पीढ़े और मोतियों के हार आदि देकर और वस्त्र पहना कर, सम्मानपूर्वक, नृपति के नाम संदेश देते हुए विदा करते हैं<sup>३</sup>। ऐसा ही नहीं है कि राजा केवल स्वयं ही सम्मान का अधिकारी हो। यह अपने समकक्षों के प्रति सदाशयी, अपने से बड़ों के प्रति विनम्र और छोटे के प्रति सहिष्णु होता है<sup>४</sup>। सभा भवन में मुनियों, पुरोहितों आदि के जाने पर सम्राट् उन्हें सम्मक् आदर देता है। रामचन्द्र जी अपने दरबार में बन्धुबान्धवों और सभासदों सहित मुनिवर को प्रणाम करते हैं। अर्घ्यादि से उनकी स्तुति करते हैं और उन्हें उचित आसन पर बैठाते

१- जी० ह०रा० पृ० ५६-५७ ।

२- जीवर- ब०ना०पृ० ३२ ।

३- हाथी हथ हीरा सिरपेय बैगा चीरा संग,  
भेते सरोपाव पास बान लै-लै जाए है ।

अतर गुलाब चीरा होत है पवन सीरा,  
लैकर नवाब सबही को पहिरायी है । सू०सु०च०पृ० ६४ ।

४- तब कूरम बित चाय सुबान मुसाइके । हथ गय मुक्ताहार बसन पहिराय के ।  
कियो अधिक सम्मान विदा करि देत की । कहियो यह संदेश नृपति बदनस की॥

सू०सु०च०पृ० ३९-४० ।

५- गीरे- छ०पृ०पृ० ३४-३५ ।



है<sup>१</sup>। युद्ध में जाने से पूर्व भी महाराज हमीर ने गुरु, विप्रों की पूजा की थी<sup>२</sup>। युद्ध में विजय-प्राप्ति के बाद सभी लोग एकत्र होते हैं। बमीर-उमराव सम्राट् को सत्ताम करने जाते हैं। अनेक प्रकार के बहुमूल्य उपहार सम्राट् की सेवा में प्रस्तुत करते हैं। राजा प्रसन्नता की अभिव्यक्ति और सहायकों के सहयोग और प्रशंसा की विज्ञप्ति हेतु अनेक प्रकार की उपाधियाँ वितरित करता है<sup>३</sup>। स्वागत-सत्कार के समय पान के बीड़े दिये जाते थे। विरह-बारीश और सुखान चरित में इनके उल्लेख जाये हैं<sup>४</sup>।

४८- किसी के जागमन का अवसर शिष्टाचार की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण होता है। जागमन पर हर प्रकार के स्वागत की व्यवस्था और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की जाती है। जागन्तुक की कृपा और वत्सलता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किया जाता है। अतिथि के लिए आसन-भोजनादि की व्यवस्था की जाती है<sup>५</sup>। सन्तों एवं वरेण्य व्यक्तियों के जागमन पर वरणा

१- सर्वधु रामचन्द्र वू ठठे विशीकि के सवे ।

सभा समेत पा परे विशेषि पूवियो सवे ।

विबेक सौं अनेक्या दए अनूप आसने ।

अनर्ब अब जादि दे विने किये पने-पने ॥ के० की० २।३५।

२- बाप राम बह्मान हमीर तुरंत मंगावो गंग की नीर ।

करि बसनान दान बहु दीन्हों बहुरि विप्र गुरु पूजन कीनों ॥

ब०श०बा०ह०ह०पु० ३६ ।

३- बीघर- ब०ना० पु० २७ ।

४- करि सनमान पास बैठावो । बीरा दे वृत्तांत सुनावो ।

बो०वि०बा०पु० ३८। और भी सू०सू०ब०पु० ६८ ।

५- अरब देत भीतर घर नीन्हो । धनि धनि तिन कहि आदर दीन्हो ।

चरन घोड़ आसन बैठावो । बहु प्रकार भोजन करवावो ॥

बृजवासीदास- हिन्दी सेतेश्वरम्, पृ० ७८ ।

पहारे जाते हैं और विधिवत् पूजा की जाती है<sup>१</sup> । विदा की बेला अत्यन्त शोचकारिणी होती है । प्रिय व्यक्तियों से विछड़ने का शिष्ट वसह्व हो जाता है । चन्द्रमुखी नायिका प्रियतम के जाने का समाचार सुनकर व्याकुल हो गयी । जाते समय की शिष्टाचार-गत औपचारिकता के लिए दूध, दही, चीफर, रूपया, रौखी आदि रख कर उसकी सास अपने बेटे के लिए टीका की व्यवस्था करती है । अवसाद बन्म विस्मृति के कारण वह भाल में चावल रखना भूल गई । बधू को वह तंदुल लाने का आदेश देती है और बधू तंदुल लेकर जाती है किन्तु उसके शरीर की लज्जा और पुम्बेद के योग से चावल पक कर भात बन जाते हैं<sup>२</sup> । केशव ने भी विदा के अवसर पर टीका करने और बीरा देने का उल्लेख किया है<sup>३</sup> ।

#### शिक्षा:

४९- शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व के संसार और परिष्कार का सबसे महत्वपूर्ण साधन है । आलोच्यकाल में अनेक कारणों से सार्वभौम शिक्षा के लिए कोई संगठित प्रयास राज्य की ओर से नहीं किया गया है । साहित्य में तो शिक्षा की योजना संबंधित संदर्भ अत्यल्प है ही, ऐतिह्य ग्रंथों में भी पर्याप्त नहीं है । वस्तुतः व्यापक और सार्वभौम शिक्षा की अवधारणा लोक-मंगलकारी राज्य में ही जन्म लेती है और आलोच्ययुग के शासन का उद्देश्य लोक-मंगल न होकर एक वर्ग विशेष का कल्याण-साधन था । इतिहास ग्रंथों

१- करि दण्डित पुदक्षिण कीनी विगसत बक भरे ।

--वरण<sup>†</sup> पहार<sup>†</sup> लिए<sup>†</sup> वरणोदक<sup>†</sup> पूरव<sup>†</sup> पाय<sup>†</sup> गरे ॥

सु०गु०पु० ९१२ ।

२- ग्वाव- सा०र०पु० १५९ ।

३- तब तिन विदा की सुख पाई निर्भय पट पियरी पहिराई ।

भात सुबस की टीका दीनी सकल सिद्धि की बीरा दीनी ॥

के०वी०दे०पु० पु० १९१ ।

से, आसीन्यकाल में हिन्दू और मुसलमानी दो प्रकार की शिक्षा-पुष्पा-लियों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। हिन्दुओं के अध्ययन के स्थानों को पाठशाळा कहते थे और मुसलमानों की पढ़ाई के स्थान को मक़तब और मदरसा कहलाते थे। बर्निवर ने काशी की एक पाठशाळा में गणित, संस्कृत आदि की शिक्षा का प्रबन्ध होने का उल्लेख किया है। पाठशाळाओं में हिन्दू संस्कृति के वरेण्य गुण और विषय पढ़ाये जाते थे। उस्मान ने विजावली की शिक्षा के प्रसंग में अमरकोश, व्याकरण, वैष्णव, पिंगलशास्त्र, संगीत, ज्योतिष, भूगोल के अतिरिक्त व्यायाम, मत्स्य, धनुष-बाण, शब्दवैद्य, बाहेर आदि की शिक्षा का भी उल्लेख किया है<sup>१</sup>। इतिहास के द्रोतों से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि हिन्दुओं के बच्चे पाँच पाँच वर्ष की उम्र में पाठशाळा जाने लगते थे। सखोबाई ने भी पाँच वर्ष की आयु में बालक को पढ़ने के लिए बैठाये जाने का उल्लेख किया है<sup>२</sup>। मिरह-बारीश में पाँच वर्ष की उम्र में, विप्र को बुलाकर बालक का विद्यारंभ कराने की बात कही गयी है<sup>३</sup>। हिन्दुओं ने शिक्षा के क्षेत्र में ब्राह्मण वर्ग अगगण्य रहा है। आसीन्यकाल में पतनीन्मुख होने पर भी उनकी यह स्थिति बहुत कुछ बनी रही। अर्थ क्या है एक स्थान पर यह कहा गया है कि अधिक अध्ययन तो ब्राह्मण और भाटों को ही शोभा देता है, बाणिज्य पुत्र को तो बाणिज्यस्थिति में ही लगाना चाहिए। अधिक पढ़ने वाले

१- अमर कोश व्याकरण बखाना, योग वैष्णवहि के सब जाना ॥

पिंगल सप्त दीरघ दिळासी, कंठहि मांझ छन्द बीरासी ॥

पढ़ी संगीत ताल देवरावा, एक सुर मंद इस राग सुनावा ॥

ज्योतिष मंद कोठ बाई न बाँटा, एक पल सज्ज बार के बाँटा ॥

अस भूगोल बखानि सुनावा, पल मंद मनु पुहुमी फिरि जावा ॥

उ० वि० पु० २३ ।

२- सखो० स० पु० पु० ५० ।

३- पंच वर्ष जान विद्वान्त तब कुत बंध कीन्हों तात ।

कछु दिन विप्र अपने गेह पढ़वो को किमो अति नेह ॥

बोधा० वि० वा० पु० १९ ।

सौग भीष मांगते हैं<sup>१</sup> । स्त्रियों की 'शिक्षा' प्रायः घर में ही होती थी । हिन्दू स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व समझा जाता रहा है इसलिए उसकी सम्पत्ति शिक्षा दीक्षा का उद्देश्य पति को पुस्तन्त रखना और पारिवारिक वातावरण में शान्ति और सौख्य की स्थापना करना था । अकबर उसी कामिनी को बहुभागिनी बताते हैं जिसके ज्ञान सदैव प्रियतम की प्रेम्णा में पगे रहें । निश्चिन्तासर प्रियतम के संग रहने वाली स्त्री ही सदाहनीय है, जिसे प्रियतम का प्रेम प्राप्त है वही स्त्री धन्य है<sup>२</sup> । विरह-वारीश में सुमंत नायक कायस्थ की कन्या सीतावती का भी पाँच ही वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ का प्रमाण मिलता है । उसे व्याकरण, भाष्य, संगीत, नृत्य और वाद्य आदि सभी प्रकार की शिक्षा दी गयी थी<sup>३</sup> । इसके अतिरिक्त स्त्रियों को चित्रकारी की भी शिक्षा दी जाती रही है । रीतिकालीन काव्य में नायिकाओं द्वारा चित्रकारी के जोशे हैं । अनुराग वासुरी में इसका उल्लेख आया है<sup>४</sup> ।

१- बहुत पढ़े बामन बल भाट । बनिक पुत्र तौ बैठे हाट ॥

बहुत पढ़े सो मागे भीष । मानहु पूत बड़े की सोख ॥

ब० अ- क० पृ० २३ ।

२- अकबर- कुं० पं० पृ० ११३

३- कायस्थ नाम सुमन्त तासु सदा सीतावती

बाल्यशा में बालपढ़ायी व्याकरण भाष्य तब

निष्कृत ग्रंथ रसातल बरचरित नूतन रच्यो-

- - - - -

पाँच वर्ष में कन्या जबही लग्यो पढ़ावन नायक तबही ।

सुरगति ताल साज कबवावै राग रागिनी भेद पढ़ावै ॥

तिबरी तौड बनाव नचावै ----- ॥

बो० वि० ता० पृ० १४ - १७

### निष्कर्ष -

५०- रीतिकासीन काव्य में विभिन्न समाज की जीवन दृष्टि के संबंध में विचार करने पर हम कुछ इन निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। रीतिकास का समानांतर ऐतिहासिक युग राजनीतिक और सांस्कृतिक पराजय का काल है। भारतीय जन राजनीति के क्षेत्र में पराजित अतएव हताश और उदासीन हो गया था। राजनीति जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है किन्तु वह जीवन का सर्वस्व है नहीं। भारतीय जन ने राजनीतिक पराजय के इस काल में राजनीति के प्रति उदासीन रहकर राजनीतिक स्वतंत्रता के अभिमान को विह्वलित कर दिया। सांस्कृतिक स्तर पर भी इस काल का इतिहास पराभूत जाति की कहानी है। राजकुल और लोक जीवन के बीच इस युग में एक गहरी खाई मिलती है। सांस्कृतिक पराभव के परिणामस्वरूप हिन्दू जाति का सांस्कृतिक विनाश होते-होते इसलिए बच गया कि लोक जीवन कभी मूल से विच्छिन्न नहीं हुआ। जाति में विषीविषा शेष थी। तत्कालीन कविता का अधिकांश लोकजीवन से दूर है। उसे वहाँ से पोषक-तत्त्व नहीं प्राप्त होते इसलिए काव्य में एक रसता और मज-सत्र विरसता दिखायी होती है। रीतिकासीन काव्य में अतिशय भोग और अत्यन्तिक विरक्ति दोनों प्रकार की मनीषितियाँ देखने को मिलती हैं। कहीं-कहीं एक ही कवि के काव्य में जागे पीछे ये दोनों मनः स्थितियाँ द्रष्टव्य हैं जैसे केशव मतिरास और पद्माकर जादि में। कुछ कवियों का सम्पूर्ण काव्य ही वैराग्य का उदघोष है। यह प्रवृत्ति संत कवियों में देखी जा सकती है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ एक ही स्थिति की प्रतिफल हैं। पहला जिसमें तिप्त हो जाता है झूरा उसके निकट जाकर निःसंग और निर्लिप्त न रह पाने के डर से दूर भागता है। ये दोनों ही गीता के कर्म-सम्बास के अनुकूल नहीं पड़ते। समाज की भोगप्रधान अवस्था में, (जैसी कि रीतिकासीन काव्य की विभिन्न समाज में देखने में आती है) भोगोपलब्धि के प्रधान साधनों, के कवन-कामिनी और शक्ति का महत्व बढ़ जाता है।

संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है कि जीवन, धन, संपत्ति, प्रभुत्व और अविवेक इन चारों में से किसी भी एक की उपस्थिति अन्य का पर्याप्त कारण बन जाती है। फिर रीतिकाशीन समाज के एक वर्ग के पास तो इनमें से अन्तिम तीन प्रचुर मात्रा में और इन तीन के द्वारा वे बृद्ध होकर भी युवा बनने के साधन उपलब्ध कर लेते थे। जहांगीर की मदिरा के प्रति, अकबर और शाहजहाँ की स्त्री के प्रति भावना की इस संदर्भ में देखा जा सकता है। कवि इस त्रिवर्ग संपन्न सामन्तवर्ग के निकट जा इसलिए उसके काव्य में यह छाया प्रायः सर्वत्र देखने को मिलती है। कहीं-कहीं कवि उस वातावरण में लिप्त हो जाता है और कहीं उसके प्रति वैष्टित उदासीनता की अभिव्यक्ति करता है किन्तु कुल मिला कर उस संबंध में कवि में स्वस्थ और संतुलित दृष्टि का अभाव है। उसकी काव्य-प्रतिभा एक सीमित धरे में चक्कर काटती है।

५१- रीतिकाशीन समाज की जीवन-दृष्टि का अधिक आशाजनक पक्ष हमें तब दिखायी देता है जब जाने-बनबाने कवि लोक-जीवन से प्रभावित हो जाता है। तब उसके काव्य में हमें पार्थक्य विविधता और उसमें सम्मिश्रित एक सूक्ष्मा के साथ-साथ दर्शन होते हैं। अनेकता और एकता का यह विरोधाभासी सह-अस्तित्व ही हिन्दुत्व का मूलोपास्य है। यह सह-अस्तित्व हिन्दुत्व में संभव भी कदाचित् इसीलिए हुआ है कि हिन्दू धर्म का प्रणेता और प्रकृत प्रवर्तक कोई एक व्यक्ति नहीं अपितु संपूर्ण लोक जीवन और जाति है। उसका निर्माण एक समय एक व्यक्ति या एक व्यक्ति-समूह और एक देश-विशेष में नहीं हुआ। हिन्दू की आस्था बहुदेवतवाद के बावजूद भी परमसत्य की एकता पर सदैव बनी रही। एक ने उसे कठोर अनुशासन और तन्मय गतिहीनता से बचाया तो दूसरी ने उसे विनम्र नहीं होने दिया। रीतिकाशीन काव्य में जाति के विश्वासों और अज्ञात आधार वाले विश्वासों के जो उत्सव मिलते हैं उन्हीं यह स्पष्ट है कि सांस्कृतिक अधोगति के युग में ठीस आधार वाले विश्वासों की संस्था



कृमशः कम होती जा रही थी और जो विश्वास हमारे दैनंदिन जीवन की प्रेरणा के स्रोत थे, उसका नियमन करते थे, उनके भी आधार अज्ञात और दूर होते जा रहे थे । लोकजीवन का उनसे निकट परिचय प्रायः नहीं रह गया था । भारतीय दर्शन में कर्मफलवाद और भाग्यवाद में से किसी एक को सार्वभौम मान्यता कभी नहीं मिली और यह आलोच्यकालीन जीवन-दृष्टि में भी देखने को मिलता है किन्तु ऐसा संभवतः दोनों वादों के निश्चितार्थ को न समझने के कारण हुआ । संक्षेप में भाग्यवादियों की मान्यता यह है कि हमें जो कुछ भी प्राप्त होता है वह प्रारब्ध का फल है । कर्मफलवादी भी इसे मजबूतकार नहीं करता । वह इतना और जोड़ देता है कि हमारे भाग्य का निर्माण करने वाला तत्त्व कर्म है । इस प्रकार इन दोनों में समझौता कठिन भले ही हो पर असंभव नहीं है । सांस्कृतिक उत्थान के युग में यह समझौता रहा करता है । तत्कालीन काव्य में विभिन्न समाज ज्योतिष और शकुनापशकुन आदि पर भी विश्वास करता रहा है । स्त्री का महत्त्व या पुरुष और स्त्री की समानता और सांस्कृतिक उत्थान में दोनों प्रायः समानान्तर चलते हैं । समाज में छोटे-बड़े का भेद और ऊँच-नीच का अन्तर अभी अधिक होता है जब बड़ों की महत्ता के ठीस आधार नहीं रह जाते । इसलिए रीतिकाल में स्त्री-पुरुष और ऊँच-नीच का अन्तर प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है । पर्दा, दीख, सती और पुरुषों के एकाधिक विवाह के चलन इस बात के साक्षी है कि स्त्री का महत्त्व घट गया था और उसका शोषण तक आरंभ हो चुका था । इसी प्रकार समाज में व्यापक पैमाने पर संपन्न और विपन्न के बीच गहरा अन्तर मिलता है । शिष्टाचार उस सीमा तक आवश्यक है, वहाँ तक वह सामाजिक गुंथता को टूटने से बचाने में सहायक हो । छोटे बड़े के प्रति आदर और सम्मान की भावना से पूरित हों और बड़े छोटों के प्रति सहिष्णु हो वहाँ तक शिष्टाचार अपनी उपयोगिता रक्ता है किन्तु यह समझौता जब सम्बन्धपूर्ण सन्तुलित नहीं रह पाता तो

शिष्टाचार के रूप में एक निर्जीव औपचारिकता को पुनः मिलने लगता है। लोकजीवन में परिवार में विशेषकर, यह समझौता अपने वादी रूप में मिलता है इसलिए वहाँ शिष्टाचार के सर्वोत्तम परिणाम निकलते हैं। किंतु रीतिभंगीन काम्य में चित्रित समाज के विभिन्न वर्गों में इस आदान-प्रदान और संतुलन का अभाव है इसलिए वहाँ वह वांछित प्रतिफल नहीं दे पाता। उपहार और नम्र वादि की औपचारिकता में पुर्दान तो है किंतु उसका कोई आंतरिक आधार नहीं है इसलिए वह निर्जीव है और स्वयं जीवनी शक्ति से हीन वस्तु बन्ध्या होती है वह किसी प्रकार का सुवन नहीं कर सकती।

---

**पुनरवलोकन एवं समीक्षण**  
**समाप्त**

**पुनरवलोकन एवं समाहरण**

(४)

२- समाज की राजनीतिक और वार्षिक संरचना के गिरे पर भी जन-शक्ति और राजशक्ति का केन्द्र उपयोगिता से अधिक विस्तार को महत्व देने वाला, सीमित राष्ट्रीय आय का अधिकांश पैसा ग़राम में लगाने वाला राज-कुल और सामन्तपरिवार स्थित है इसलिए सभी अवकाश में जनसामान्य की वार्षिक विपन्नता के और राजनीतिक शोषण तथा प्रताड़ना के प्रभूत चित्र न होने पर भी यह कहने के लिए पर्याप्त आधार है कि प्रजाजन अधिकार-विहीन थे, उन्हें सबग राजनीतिक चेतना का भी अभाव है, संघर्षशक्ति नहीं है और वार्षिक दृष्टि से भी वे विपन्न हैं।

३- रहन-सहन के विविध पार्श्व आनयान, वेशभूषा, भाषा एवं भजन-सम्भा, झुंमार-प्रसाधन, वसंकरण तथा मनोरंजन के संबंध में काव्यगत समाज की स्थिति यह है कि सामाजिक का जीवन दिन-दिन अनिवार्य आवश्यकताओं की और ध्यान कम और विस्तार सामग्री के संवय एवं उपयोग के प्रति वह अधिक सबग है। रहन-सहन में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग (मध्यवर्ग का अस्तित्व प्रायः नहीं है) के मध्य और वैषम्य दिखायी पड़ता है। उच्चवर्ग के जीवन में वहाँ बहुलता और वैशद्य है, विस्तारोन्मुख झुंमार और वसंकरण का वैभव है वहाँ दूसरी और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी संभव होने के कारण दो बार का भोजन, पहनने-बीड़ने के कपड़ों, रहने के मकान का भी अभाव है, पर्याप्तता और विविधता उनके लिए अक्षुण्णीय है। रीतिकासीन काव्य के नायक नायिका झुंमार प्रसाधनों और वसंकरणों के प्रति अत्यन्त सबग हैं, उनकी सौंदर्य दृष्टि सब रमणीयता की अवेद्या प्रसाधन-साधनोन्मुख है। समाज का वह वर्ग जिस पर समाज की शांति, सुरक्षा और सुव्यवस्था का दायित्व है प्रयोजनहीन कार्यों में अपना समय बिताता है, कर्म से विरत होकर विश्राम और मन बहलाव के लिए वे मनोरंजन की सामग्री नहीं बुटाते मनोरंजन ने कर्म का स्थान ले लिया है।

४- लोक मानस के विश्वासों एवं विशुद्ध धार्मिक प्रत्ययों का नीर-नीर संयोग प्रस्तुत करने वाले हिन्दू संस्कारों के वैज्ञानिक आधार छूट गये हैं।

(ग)

जातौव्यकाल में उतनी विशदता के साथ ये संस्कार भी नहीं संघन्य किये जाते किन्तु विवाह, जिसके माध्यम से मनुष्य की नवेय कामेष्णता को संतुष्टि, विनिमित्त और फलीभूत किया गया है बाव भी उतनी ही महत्वपूर्ण और सार्वभौम रूप से प्रचलित है। स्त्री और पुरुष दोनों के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन की पूर्णता के लिए वह अपरिहार्य उपाधि है। लोकजीवन के उत्साह और नाइसाद को प्राकृतिक परिवर्तनों के समानान्तर व्यक्त करने वाले कृषि प्रधान भारत के पर्वों और उत्सवों की रीतिकाल का रसिककवि समग्रता में ग्रहण और विभक्त नहीं कर सका। परिमाण की दृष्टि से रीतिकाव्य में होली की उन्मुक्ति और वसन्तोत्सव के रागरंग का वर्णन अधिक है और नन्वत्र भी मधुलोभी कवि माधुर्य की ही लीन में रहता है। इन पर्वोत्सवों में हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय की भसक भी मिलती है।

५- सांस्कृतिक उत्थान और नारी का महत्व समानान्तर चलते हैं। सांस्कृतिक पराभव के इस युग में रसिक और संतकवियों की नारी संबंधी दृष्टि में सतही भेद होने पर भी मूलभूत समानता है। रसिक कवियों के मन में नार के रूप और मन के प्रति गहरी ललक और आसक्ति मिलती है जिसके कारण वे नारी के प्रेमदात्व एवं रमणीत्व को अधिक रसमयता के साथ बाणी दे सके हैं। संतकवियों में काव्य-दृष्टि के मूलभूत सहिष्णुता और निःसंगता के स्थान पर नारी के प्रति अतिशय विरक्ति और यत्र-तत्र कटुता दिखायी पड़ती है। कवित्व सबैयों के रूप में तत्कालीन काव्यविधा में विराट् एवं व्यापक कथानक को समेटने की अक्षमता भी नारी जीवन के अधूरे चित्र के लिए उत्तरदायी है। फलस्वरूप माता बहिन कन्या आदि रूपों में नारी जीवन के जो विशद् चित्र मिलने चाहिए वे, जातौव्यकाल में उनका अभाव है जीवन के कर्मक्षेत्र की सहकारी तथा अर्धांगिनी का भी जो चित्र मिलता है उसमें उत्कृष्ट स्थलों पर माधुर्य और अपेक्षाकृत अज्ञत काव्यस्थलों पर एकरसता और तन्वन्व्य विरसता के दर्शन होते हैं। कवि की रसिकता में सुजन क्षमता का अभाव है। नारी जीवन के अपेक्षाकृत व्यापक चित्र सूफी कवियों में मिलते हैं जिनकी बरकदकीकी उनकी दृष्टि को संकुचित और एकामी नहीं बनाती।



(घ)

६- सांस्कृतिक स्तर पर इस काल का इतिहास पराभूत जाति की कहानी है, तथापि हिन्दू जाति का सांस्कृतिक विनाश होते - होते इसलिए बच गया कि लोकजीवन कभी मूल से विविच्छन्न नहीं हुआ। जाति में विजीविष्णु शेष थी। तत्कालीन कविता का अधिकांश लोकजीवन से दूर है। रीतिकालीन काव्य में अतिशय भोग एवं जात्यतिक विरक्ति दोनों प्रकार की मनःस्थितियाँ देखने को मिल जाती हैं, कहीं-कहीं एक ही कवि के काव्य में जागे-पीछे में मनीषार्थ द्रष्टव्य हैं। समाज की भोगप्रधान अवस्था में भोगोपलब्धि के प्रधान साधनों कवन-कामिनी एवं शक्ति का महत्व बढ़ गया है। जीवन-धन-सम्पत्ति, पुत्रत्व और अविवेक में से अतिम किर्तन-सम्पन्न-सामन्तवर्ग के निकट होने के कारण तत्कालीन कवि का काव्य उस वातावरण में निर्मलित हो जाता है और कहीं उसके प्रति विरक्ति मिलती है किन्तु कुल मिलाकर जीवन के प्रति उसमें स्वस्थ एवं संतुष्टि दृष्टि का अभाव है। कवि जाने अनजाने जब लोकजीवन के निकट पहुँच जाता है तब उसके काव्य में हिंदुत्व के मूलधार-स्वरूप अनेकता और एकता के विरोधाभासी सहान्तरित्व के दर्शन होते हैं, बहुदेववाद के बावजूद भी परमतत्व की एकता पर उसकी आस्था अक्षत होती है जिनमें से एक उसे कठोर अनुशासन और तन्त्रनिष्ठ गतिहीनता से बचाता है तो दूसरा विश्वास उसे विमुक्त नहीं होने देता। सांस्कृतिक अधोगति के युग में ठीस आधार वाले विश्वासों की संख्या कम और अज्ञान व निराधार विश्वासों की संख्या अधिक होती जा रही थी। भारतीय दर्शन की कर्मफलवाद, भाग्यवाद और पुनर्जन्मवाद संबंधी मान्यताएँ बचावत् थीं किन्तु जातीय जीवन में भाग्य का आधार अधिक लिया जाने लगा था। सम्पन्न एवं विपन्न, ऊँच और नीच, छोटे और बड़े के बीच कृपा और आदर, सहिष्णुता एवं सम्मान का आदान प्रदान उतना संतुष्टि नहीं रह गया था। दायित्वपूर्ण वर्ग अपने अधिकारों के प्रति अधिक संवेष्ट एवं कर्तव्यों के प्रति उदासीन है। शिष्टाचार भी बदा-कदा जीपचारिकता की सीमा का संस्पर्श करता है।

७- रीतिकाल के काव्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि लोक जीवन में ऐहिकता और काम परकता की दृष्टि प्रधान हो गयी थी कदाचित्

(४०)

उक्ति नहीं होगा। वास्तविकता यह है कि रीतिकाल का प्रतिनिधि काव्य लोकजीवन से असम्बन्धित हो गया था, उसके निर्माण-कारी शक्तियों के कारण व्यापक जातीय जीवन कवि से दूर था। फलस्वरूप रीतिकालीन काव्य के आधार पर काव्य के प्रेरक समाज के वातावरण की ऐहिकता प्रधान और काम परक बताना आधार और इतिहास सम्मत है। कवियों ने वहाँ लोकजीवन के चित्र दिये हैं उन्हें असामान्यता माना गया है। जिनके संबंध में प्रायः तीन स्थितियाँ दिखायी पड़ती हैं-

(क) वर्षावस्तु - घटना व्यक्तित्व या स्थिति, वैभव-विशाल में आकृष्ट भग्न रावकुल या शर्मित परिवार से ली गयी है।

(ख) वर्षाभावस्तु का घटातल सामान्य लोक जीवन होने पर उन्हें असामान्य जीवन का आरोप कर दिया गया है।

(ग) कवि ने चरित्र, परिस्थितियों और घटनाओं के संघर्ष में लोकजीवन से उन्हीं को ग्रहण किया है जो कामपरक होने के कारण कवि का आत्मगत प्रयोग विड करती है।

८- अपने काव्य के संस्करण के लिए कवि ने जिन उपमानों एवं काव्योपकरणों का विधान किया है उन्हें देखने पर भी ज्ञात होता है कि कवि का प्रेरक और साध्य व्यापक जातीय-जीवन नहीं था। रीति-कवियों के काव्योपकरणों की निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है -

(क) परंपरागत काव्योपकरण जिनके प्रयोग से सृष्टा मैनव-व्योन्मेष शक्तिनी प्रतिभा का अभावमात्र विधि होता है।

(ख) मौखिक किन्तु दूरकृष्ट और अंतर्वेध काव्योपकरण।

(ग) पर्यावरण से जुने गये काव्योपकरण जिनमें से जिनका चयन पूर्वनिर्धारित है।

९- साहित्य एवं साहित्यिकर दोनों के आधार पर रीतिकालीन

(ब)

जीवन के विषयों में बारम्बारजनक साम्य देखने की विलक्षण  
कारण संभवतः यह है कि साहित्य और इतिहास दोनों की मूल  
प्रकृति आधिवात्य है। वाङ्मय में लोक की प्रतिष्ठा तो अब हुई  
है।

---●---

**वनुवष**  
**वनुवष**

## पुस्तक सूची

### आधार ग्रन्थ

- १- अकबर साहिब - मुंगेर मंजरी, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, १९५६ ई०
- २- आलम - आलम केसि, नागरी पुचारिणी सभा, काशी, १९१२ ई०
- ३- उम्मान - विशावली, नागरी पुचारिणी सभा, काशी, १९१२ ई०
- ४- कासिमशाह - हंस बवाहिर, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९३० ई०
- ५- कुमारमणि - रसिक रसास, विद्या विभाग, काशी, १९९४ वि०
- ६- कुतुबति - रसरङ्ग, इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९५४ ई०
- ७- केशवदास - केशव कीमुदी भाग १, राम नारायण सास, इलाहाबाद, २००४ वि०
- ८- " - केशव कीमुदी भाग २, राम नारायण सास, इलाहाबाद, १९५० ई०
- ९- केशवदास - केशव ग्रन्थावली भाग १, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५० ई०
- १०- केशवदास - केशव ग्रन्थावली भाग २, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५१ ई०
- ११- केशवदास - केशव ग्रन्थावली भाग ३, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद १९५९ ई०
- १२- केशवदास - बीरसिंह के वरित, मातृभाषा मंदिर, प्रयाग, २०१३ वि०
- १३- केशवदास - विज्ञान गीता, मातृभाषा मंदिर, प्रयाग, २०११ वि०
- १४- केशवदास - कविप्रिया, मातृभाषा मंदिर, प्रयाग, १९५२ ई०
- १५- केशवदास - रसिक प्रिया, मातृभाषा मंदिर, प्रयाग, १९५४ ई०
- १६- गुवाल - गुवाल रत्नावली, भारतवासी प्रेस, इलाहाबाद, १९४५ ई०
- १७- गौरिसाह - छत्रकाश, नागरी पुचारिणी सभा, काशी, १९५६ ई०
- १८- फनानंद - फनानंद ग्रन्थावली, बाणी वितान, वाराणसी, १९५८ ई०
- १९- बाबू-भट्टरी - बाबू भट्टरी की कहावतें, बाणी वितान, वाराणसी, १९५८ ई०
- २०- बन्धुखर बाबूमेयी - हमीर हठ, नागरी पुचारिणी सभा, काशी,
- २१- बीधराज - हमीर रासो, नागरी पुचारिणी सभा, काशी, १९०८ ई०
- २२- ठाकुर - ठाकुर ठाकुर, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, १९८३ वि०
- २३- तोब - सुधानिधि, भारत जीवन प्रेस, काशी, १८९२ ई०
- २४- दरिया - दरिया ग्रन्थावली, बिहार राज्य भाषा परिषद्, पटना, २०१८ वि०

(२)

- २५- दीनदयाल गिरि- दीनदयाल गुंवावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०६ वि०
- २६- दूतह - कविकुल कंठाभरण, सुकवि सुधा कार्यालय, लखनऊ, १९६२ वि०
- २७- देव - भाववितास, तरुणा भारत गुंवावली कार्यालय, इलाहाबाद, १९९१ वि०
- २८- देव - शब्द रसायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००४ वि०
- २९- देव - रस वितास, बनारस मॅन्टेडाइट कं., कसकता, १९६१ वि० ई०
- ३०- देव- देव दर्शन, इडियन प्रेस, प्रयाग, १९४६ ई०
- ३१- देव- सुधा, गंगा पुस्तक माता, लखनऊ, २००५ वि०
- ३२- नागरीदास, नागर समुच्चय, ज्ञान सागर छापाखाना, मुंबई, १८९८ ई०
- ३३- नूर मुहम्मद - अनुराग वासुदेवी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००२ वि०
- ३४- पद्माकर, पद्माकर गुंवावली, नारी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१६ वि०
- ३५- पद्माकर, पद्माकर पंचामृत, रामरत्न पुस्तक भवन, काशी, १९९२ वि०
- ३६- पतट्ट, पतट्ट दास की बानी, बैलबेडियर प्रिंटिंग वर्क, इलाहाबाद, १९३५ वि० ई०
- ३७- बनारसीदास - वर्षक्या, संशोधित साहित्य माता, बम्बई, १९५७ ई०
- ३८- बिहारी, बिहारी रत्नाकर, गंगा पुस्तक माता कार्यालय, लखनऊ, १९८३ वि०
- ३९- बिरबनाथ प्रसाद मिश्र- बिहारी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१६ वि०
- ४०- बेनी-प्रवीण - नवरस तरंग, प्राचीन कवि माता कार्यालय, काशी, १९२५ ई०
- ४१- बीबा - विरह बारीश, नवत किशोर प्रेस, लखनऊ, १८९४ ई०
- ४२- भिखारीदास- भिखारीदास गुंवावली भाग १, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१३ वि०
- ४३- भिखारीदास- भिखारीदास गुंवावली भाग २, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि०
- ४४- भूषण - भूषण गुंवावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००५ वि०
- ४५- भूषण, भूषण गुंवावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०
- ४६- भूषण - भूषण गुंवावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९७८ वि०
- ४७- मतिराम- मतिराम गुंवावली, गंगा पुस्तक माता कार्यालय, लखनऊ, १९९१ वि०
- ४८- मान कबीर- राव वितास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०
- ४९- रघुनाथ - रसिक मोहन, नवत किशोर प्रेस, लखनऊ, १८९० ई०



(३)

- ५०- श्रीधर - बंगनामा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०४ ई०  
 ५१- सहजोबाई- सहज प्रकाश, बेंकटेश्वर, फटीम प्रेस, बम्बई, १९२४ वि०  
 ५२- सुन्दरदास- सुंदरदास गुंयावली १-२, रामचमान रिसर्व सोलाइटी, <sup>कलकत्ता,</sup> १९२३ वि०  
 ५३- सुदन- सुदान चरित, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२० वि०  
 ५४- सेनापति- कवित्तरत्नाकर, हिन्दी परिषद्, प्रयाग, १९४९ ई०

संग्रह

#### काव्य-संग्रह

- ५५- राम नरेश त्रिपाठी - कविता कौमुदी भाग १- नाईन इंडिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९४६ ई०  
 ५६- विद्योगी हरि - ब्रजभाषुरी सार- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००६ वि०  
 ५७- डा० नीन्दु- रीति संगार, गीतम बुक डिपो, दिल्ली, १९५४ ई०  
 ५८- जमीरसिंह- रसवान और बनानंद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००८ वि०  
 ५९- -संतबाणी संग्रह, बैलबैठियर प्रेस, इलाहाबाद, १९३२ ई०  
 ६०- रामशंकर त्रिपाठी- साहित्य प्रभाकर, बीसवाल प्रेस, कलकत्ता, १९८२ वि०  
 ६१- कहानवी पर्यसिंह- साहित्य रत्नाकर, राजकोट, काठियावाड, १९२६ ई०  
 ६२- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- सुंदरी तिलक, बङ्ग विलास प्रेस, बांकीपुर, १८९२ वि०  
 ६३- गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी के नौ कवि और काव्य, हिन्दी-स्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९३९ ई०  
 ६४- साता सीता राम- हिन्दी सेलेक्शन्स पुस्तक ४ भाग १, यूनिवर्सिटी आफ कैलकटा, कलकत्ता, १९२५ ई०  
 ६५- साता सीता राम- हिन्दी सेलेक्शन्स पुस्तक ४ भाग २, यूनिवर्सिटी आफ कैलकटा, कलकत्ता, १९२६ ई०

#### सहायक ग्रंथ (हिन्दी)

- ६६- गिरिधर शर्मा कर्तुर्बेदी- वैदिक विज्ञान और भारती संस्कृति, बिहार  
 राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, १९६० ई०  
 ६७- गुलाबराय - काव्य के रूप, प्रतिभा प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, १९५० ई०

(४)

- ६८- गुलाबराय- सिद्धान्त और अध्यायन, प्रतिभा प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, २००६ वि०
- ६९- चतुरसेन शास्त्री- भारतीय संस्कृति का इतिहास, रस्तोगी एण्ड कंपनी,  
मेरठ, १९४८ ई०
- ७०- तुलसीदास- कवितावली, व रामप्रसाद एण्ड बुक्स, आगरा, १९२० ई०
- ७१- तुलसीदास- रामचरित मानस (गुटका), गीता प्रेस, गोरखपुर,
- ७२- धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, सन्तकवि (एक अनुशीलन) बिहार राष्‍ट्र भाषा परिषद्,  
पटना, १९४४ ई०
- ७३- धीरेन्द्र वर्मा - मध्यदेश, बिहार राष्‍ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९४४ ई०
- ७४- धीरेन्द्र वर्मा- हिन्दी साहित्य, द्वितीय संड, भारतीय, हिन्दी, परिषद्,  
प्रयाग, १९४९ ई० ।
- ७५- नगेंद्र- रीतिकान्य की भूमिका, गीतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४९ ई०
- ७६- नगेंद्र- देव और उनकी कविता, गीतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४९ ई०
- ७७- नगेंद्र- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (अष्टांश), नागरी  
प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०
- ७८- नामवर सिंह- इतिहास और आलोचना, सतसाहित्य प्रकाशन, बनारस,  
१९४६ ई०
- ७९- बजरत्नदास- बहागीरनामा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि०
- ८०- बेनी प्रसाद- हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, हिन्दुस्तानी एकडमी,  
इलाहाबाद, १९३१ ई०
- ८१- बी० एल० बुनिया- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, नारायण  
प्रकाशन, आगरा, १९४८ ई०
- ८२- बी० एल० शर्मा- भारतीय संस्कृति का विकास, सक्ष्मी प्रकाशन मंदिर,  
बुरवा, १९४२ ई०
- ८३- वैजनाथ पुरी- भारती संस्कृति और इतिहास, भारतीय विद्या भवन,  
इलाहाबाद, १९४८ ई०
- ८४- भावत शरदाउपाध्याय, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण,  
जनवाणी प्रेस, बनारस, १९४० ई०
- ८५- भावती प्रसाद पांडेरी- मुगलराज महलों का जीवन, स्त्रियाँ महल, इलाहाबाद  
१९४० ई०

(१५)

- ८६- मुंशी देवी प्रसाद - गौरंगजीव नामा, ऐमराव कृष्णदास, बम्बई, १९०९ ई०
- ८७- मुंशी देवी प्रसाद- हुमायूनामा, भारत त्रि, कलकत्ता, १८७६ ई०
- ८८- मोती चन्द्र- प्राचीन भारत की वेशभूषा, भारती भंडार, प्रयाग, २००७ वि०
- ८९- राजवली पाठि- हिन्दी साहित्य का वृत्त इतिहास (प्रथम भाग), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि०
- ९०- राम कुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का वास्तविक इतिहास, राम नारायण शर्मा, इलाहाबाद, १९४८ ई०
- ९१- राम चन्द्र वर्मा - अकबरी दरबार, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९९३ वि०
- ९२- रामचन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का इतिहास- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१२ वि०
- ९३- रामचारी सिंह खिन्न- संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, १९५६ ई०
- ९४- राम बहीरी गुप्त- हिन्दी साहित्य का उद्भाव और विकास, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५६ ई०
- ९५- लक्ष्मीशान्तर बाज्जैय- हिन्दी साहित्य और उसकी सांस्कृतिक भूमिका, हिन्दी परिषद्, प्रयाग, १९५२ ई०
- ९६- बासुदेव शर्मा जगन्नाथ- पाणिनी काशीन भारतवर्ष, नेपाली खपरा, बनारस, २०१३ वि०
- ९७- शिवराज शास्त्री- अंगवैदिक काल में पारिवारिक संबंध, सीता कमल प्रकाशन, मेरठ, १९६२ ई०
- ९८- खारी प्रसाद द्विवेदी- मध्यकाशीन धर्म साधना, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५६ ई०
- ९९- खारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और विर्तक, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५४ ई०
- १००- हरिदत्त वेदाशंकर- भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, १९५५ ई०

(६)

- १०१- हरिदत्त वेदाशंकर- भारत का सांस्कृतिक इतिहास, आत्माराम एण्ड  
सन्स, दिल्ली, १९५२ ई०  
१०२- त्रिभुवन सिंह - दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुस्तक, हिन्दी प्रचारक,  
मुस्तकासय, बाराकान्हासी, १९५८ ई०

सहायक ग्रंथ (अंग्रेजी)

- १०३- आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव- मुगल एम्पायर, मल्होत्रा बुक्स, दिल्ली,  
१९५२ ई० ।  
१०४- क्लियर एण्ड डायन- हिन्दी भाषा इण्डिया एण्ड टोटल वाई इट्स,  
जोन हिटोरियन्स एण्ड १, २, क्लायव मल्ल,  
इलाहाबाद  
१०५- एडवर्ड टैरी - ए वायव टु इट इण्डिया, लंदन, १९५५ के संस्करण का  
तीसरी पुनर्मुद्रण  
१०६- ए०एस०बल्टेकर- पोलीशल भाषा विमेन इन हिंदू सिविलिजेशन, क्लवरस  
पब्लिकेशन हाउस, बनारस, १९३८ ई०  
१०७- के०एम०मुंशी- इंडियन इन हेरिटन्स, भारतीय विद्या भवन, बम्बे,  
१९५६ ई०  
१०८- कृ० मुहम्मद अशरफ - लाइफ एण्ड कन्डीशन भाषा पीपुल भाषा  
हिन्दुस्तान, जीवन प्रकाशन, दिल्ली, १९५९ ई०  
१०९- के० बणिक्कर- डिटरमिनिंग पीरियड्स भाषा इंडियन हिन्दी, भारतीय  
विद्या क्लन, बम्बई, १९६२ ई०  
११०- गार्नर- पातिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेन्ट, द बल्ड प्रेस, कलकत्ता, १९५१ ई०  
१११- गिलक्राफ्ट- प्रिंसिपल्स भाषा पातिटिकल साइंस, जोरियण्ड लॉग मन्स,  
दिल्ली, १९६२ ई०  
११२- गेटिस- पातिटिकल साइंस, द बल्ड प्रेस, कलकत्ता, १९६१ ई०  
११३- बलुनाथ सरकार- मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, बोमेनहान्टल, कलकत्ता, १९३५ ई०  
११४- बलुनाथ सरकार- हिन्दी भाषा औरगणेश, एम०सी०सरकार, कलकत्ता,  
१९३४ ई०

(७)

- ११६- वे० मित्त- हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, बाल्डविन कारडक, सन्दन,  
१९२६ ई०
- ११७- टाड - एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, कोनपास, लण्डन,  
१९२० ई०
- ११८- तबर्नियर- ट्रेवल्स इन इण्डिया, भाग १, २, माक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,  
लण्डन, १९२५ ई०
- ११९- निकोलाई मनुची- स्टोरिया द मोगार जिल्द १, रायस एशियाटिक  
सोसाइटी, कलकत्ता, १९०७ ई०
- १२०- पर्सी ब्राउन- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन आर्किटेक्चर, १८७६ ई० का संस्करण
- १२१- पर्सी ब्राउन- इंडियन पेंटिंग्स अंडर द मुगल, स्टीरेडन प्रेस, माक्सफर्ड,  
१९५४ ई०
- १२२- बर्नियर- ट्रेवल्स इन इण्डिया, कान्सटेबिल एण्ड कं०, लण्डन, १८९९ ई०
- १२३- बनारसी प्रसाद सक्सेना- हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ दिल्ली, सेन्ट्रल  
बुक डिपो, इलाहाबाद, १९३२ ई०
- १२४- मैल्काम - मेमोयर्स भाग २, लण्डन, १९३२ ई०
- १२५- यूसुफ ख़ान- गिलगंध आफ मिडिएवल इंडियन कल्चर, एशिया  
पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, १९५९ ई०
- १२६- मोरलेण्ड - इंडिया ऐट द डेव आफ बक्कर, आत्माराम एण्ड सन्स,  
दिल्ली, १९६२ ई०
- १२७- मोरलेण्ड- एंगेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम, इंडिया, सेन्ट्रल बुक डिपो,  
इलाहाबाद, १९२९ ई०
- १२८- मोरलेण्ड- फ्राम बक्कर टु बीरगंज, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,  
१९६२ ई०
- १२९- रासिन्सन- इण्डिया- ए शार्ट कल्चरल हिस्ट्री, द प्रिंट प्रेस, लण्डन,  
१९५४ ई०
- १३०- राधाकृष्णन् - द हिन्दू यू आफ लाइफ, बनविन बुक्स, लण्डन,  
१९६१ ई०
- १३१- राधाकृष्णन्- रिलीजन एण्ड सोसाइटी, बनविन बुक्स, लण्डन, १९५६ ई०
- १३२- रिचर्ड बर्न - कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, जिल्द ४, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी  
प्रेस, लण्डन, १९३७ ई०

(८)

- १३३- शकुन्तला राव शास्त्री- बीमेन इन वैदिक एव, भारतीय विद्या भवन,  
बम्बई, १९५४ ई०
- १३४- श्रीराम शर्मा - मुगल एम्पायर इन इंडिया, कर्नाटक पब्लिकेशन, बाम्बे,  
१९४० ई०
- १३५- ह्यूसर बलबाब- यूरोपियन ट्रेवल्स इन इंडिया, सुशीला गुप्ता इंडिया  
लि०, कलकत्ता, १९५६ ई०
- १३६- हुमायूँ कविर- द इंडियन हेरिटेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे,  
१९५५ ई०

#### शोध-प्रबंध

- १३७- उषा पांडे- मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में नारी भावना, हिन्दी साहित्य  
संसार, दिल्ली, १९५९ ई०
- १३८- ज्योम प्रकाश शर्मा- संत काव्य की लौकिक पृष्ठभूमि, प्रयाग विश्व-  
विद्यालय, इलाहाबाद, १९६१ ई०
- १३९- गणपति चन्द्र गुप्त- हिन्दी काव्य में रंगार परम्परा और महाकवि  
विहारी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९५९ ई०
- १४०- नारायण दास कन्नड- आचार्य भिखारीदास, लखनऊ विश्वविद्यालय,  
लखनऊ, १९५३ ई०
- १४१- बच्चन सिंह - रीतिकाशीन कवियों की प्रेम व्यवस्था, नागरी प्रचारिणी  
सभा, काशी, १९५८ ई०
- १४२- भोलानाथ तिवारी- हिन्दी नीति-काव्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा  
१९५८ ई०
- १४३- मनोहर लाल गौड़- ज्ञानंद और मध्यकाल की स्वच्छन्द धारा, नागरी  
प्रचारिणी सभा, काशी, १९५८ ई०
- १४४- मोहन्रकुमार - मतिराम - कवि और आचार्य, भारतीय साहित्य मंदिर,  
दिल्ली, १९६० ई० ।



(९)

- १४५- रघुवंश - एकुति और हिन्दी काव्य, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग,  
१९५१ ई०
- १४६- राजपति दीक्षित- तुलसी और उनका युग, ज्ञान मण्डल लिमिटेड,  
बनारस, १९४९ ई०
- १४७- रामसागर त्रिपाठी - मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी, अशोक  
प्रकाशन, दिल्ली, १९६० ई०
- १४८- विजय पात सिंह - केशव और उनका साहित्य, राजपात एण्ड सन्स,  
दिल्ली, १९६२ ई०
- १४९- सत्यदेव चौधरी- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख नाट्यार्थ, साहित्य भवन  
लिमिटेड, प्रयाग, १९५९ ई०
- १५०- सरला शुक्ल - बायली के परवर्ती सूफी कवि और काव्य, लखनऊ विश्व-  
विद्यालय, लखनऊ २०१३ वि०
- १५१- सरयू प्रसाद बगवात- बकरी दरबार के हिन्दी कवि, लखनऊ विश्व-  
विद्यालय, लखनऊ, २००७ वि०
- १५२- सावित्री सिन्हा - मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिणी, आत्माराम एण्ड  
सन्स, दिल्ली, १९५३ ई०
- १५३- हीरासात दीक्षित- नाट्यार्थ केशवदास, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,  
२०११ वि०
- १५४- विभूजन सिंह - मध्यकालीन अवलोकित कविता और मतिराम, काशी विश्व-  
विद्यालय, वाराणसी, १९५८ ई०

अंग्रेजी

- १५५-<sup>†</sup> ज्ञानन्द प्रकाश माधुर - सोशल कण्डीरन्ड नाफ सिन्सटीन्स एण्ड  
सेवेन्टीन्स सेचुरीज एव ग्लोम्ड यू कंटम्पोरेरी वर्नाक्यूलर लिटरेचर  
(हिन्दी), प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग,
- १५६-<sup>†</sup> कु० कीमुदी - स्टडीज इन मुगल पेंटिग्स, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग,
- १५७- बी०पी०एस०रघुवंशी- इंडियन सोशल लाइफ, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

<sup>†</sup> अप्रकाशित ।

(१०)

पत्र-पत्रिकाएं

- १५८- कल्याण (नारी बंक), गीता प्रेस, गोरखपुर, १९४८ ई०  
 १५९- भारतीय संस्कृति, नवम्बर १९५० ई०,  
 १६०- भारतीय संस्कृति, फरवरी, १९५८ ई०

अभियान - संक्षेप - सूची

- १- अ० गुरु म० - अकबर साहिब गुरार मंबरी  
 २- अ० के० - आलम केलि  
 ३- उ० वि० - इस्लाम विभावली  
 ४- का० ई० म० - कासिम साहब खैर-बवाहिर  
 ५- कु० म० र० र० - कुमारमणि रसिक रसास  
 ६- कु० र० - कुतपति रस-रहस्य  
 ७- के० की० - केशव कीमुदी  
 ८- के० गुरु० - केशव गुंवावली  
 ९- के० बी० के० च० - केशव बीरसिंह केस वरित  
 १०- के० वि० गी० - केशव विज्ञानगीता  
 ११- के० क० प्रि० - केशव कवि-प्रिया  
 १२- के० र० प्रि० - केशव रसिक-प्रिया  
 १३- गुंवास० र० - गुंवास रत्नावली  
 १४- गो० छ० प्र० - गोरेसास छत्रप्रकाश  
 १५- व० गुरु० - वनानंद गुंवावली  
 १६- वा० भ० - वास भट्टरी की कहावतें  
 १७- व० वा० ह० ह० - चन्द्र शेर वावपेवी हम्मीरहठ  
 १८- बी० ह० रा० - बीधराज हम्मीर रासी  
 १९- ठा० ठ० - ठाकुर ठाक  
 २०- ती० सु० नि० - तीज सुधानिधि

२१- द० ग०-	दरिया गुंवावली
२२- दी०ग०-	दीनदयाल गुंवावली
२३- दू०क०कु०भ०-	दूतह कवि कुल कंठाभरण
२४- दे०भा०वि०-	देव भाव-वितास
२५- दे०श०र०-	देव शब्द रसामन
२६- दे०र०वि०-	देव रसवितास
२७- दे०द०-	देव दर्शन
२८- दे०सु०-	देव सुधा
२९- ना०स०-	नागर समुच्चय
३०- नू०अ०वा०-	नूर मुहम्मद अनुरागवासुरी
३१- प०ग०-	पद्माकर गुंवावली
३२- प०प०-	पद्माकर पंचामृत
३३- प०वा०-	पलटू साहब की बानी
३४- व०अ०क०-	वनारसीदास वर्धक्या
३५- वि०र०-	विहारी रत्नाकर
३६- वि०वि० -	विश्वनाथ प्रसाद मित्र विहारी
३७- वै०न०र०त०-	वैनीप्रवीण नवरसतरंग
३८- वी०वि०वा०-	वीर विरह वारीश
३९- कि०ग०-	भिवारीदास गुंवावली
४०- भू०ग० -	भूषण गुंवावली
४१- म०ग०-	मतिराम गुंवावली
४२- मा०रा०वि०-	मान राववितास
४३- र०र०मो०-	रघुनाथ रसिकमोहन
४४- की०ब०ना०-	कीशर बंगनामा
४५- स०स०पु०-	सहजीबाई सहजप्रकाश
४६- सु०ग०-	सुंदरदास गुंवावली
४७- सु०सु०च०-	सूदन सुमान चरित
४८- से०क०र०-	सेनापति कवित्तरत्नाकर

**काव्य-संग्रह**  
**क-**

४९- क० की०-	कविता कीमुदी
५०- क० मा० सा०-	कव माधुरीसार
५१- री० क०-	रीति-कृमार
५२- र० क०-	रसवान बनानन्द
५३- सं० वा० सं०-	संतवाणी संग्रह
५४- सा० प्र०-	साहित्य प्रभाकर
५५- सा० र०-	साहित्य रत्नाकर
५६- सु० ति०-	सुंदरी तिलक
५७- हि० से०-	सेतेकाल्य फाम हिन्दी सिटरेकर

-----